एम.एस.डब्ल्यू. उत्तरार्द्ध

प्रथम प्रश्नपत्र

सामाजिक कार्य अनुसंधान और सांख्यिकी

(SOCIAL WORK RESEARCH AND STATISTICS)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal (M.P.)

2. Dr. Aarti Shrivastava
   Professor
   Govt. Sarojini Naidu (PG) College, Bhopal

3. Dr. Sadhana Singh Bisen
   Former Assistant Professor,
   BSS College, Bhopal (MP)

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr. Anjali Singh
   Director, Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (MP)

4. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal (M.P.)

5. Dr. Aarti Shrivastava
   Professor
   Govt. Sarojini Naidu (PG) College, Bhopal

6. Dr. Sadhana Singh Bisen
   Former Assistant Professor,
   BSS College, Bhopal (MP)

COURSE WRITERS

Dr. Nutan Singh, Associate Professor, GDM Girls PG College, Modinagar
Units (1.2, 1.3, 3.3)

Dr. Suman Lata, Lecturer, Department of Economics, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modi Nagar, Ghaziabad, Uttar Pradesh
Unit (1.0-1.1, 1.4, 1.5-1.10, 2.0-2.1, 2.2-2.2.2, 2.3-2.3.1, 2.3.2, 2.4, 2.5-2.10, 3.0-3.1, 3.2, 3.4-3.8, 4.0-4.1, 4.2, 4.3, 4.4-4.8, 5.0-5.1, 5.2, 5.3, 5.5-5.10)

Dr Rupesh Tyagi, Assistant Professor (Contractual), Deptt of Economics, CCS University, Meerut
Unit (5.4)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

सामाजिक कार्य अनुसंधान और सांख्यिकी

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 1. वैज्ञानिक पद्धति की प्रकृति, सामाजिक घटना में संप्रयोग, सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति, महत्व और क्षेत्र 2. समाज कार्य अनुसंधान : प्रकृति, उद्देश्य, प्रकार्य	**इकाई 1** : वैज्ञानिक पद्धति की प्रकृति और सामाजिक कार्य अनुसंधान **(पृष्ठ 3–50)**
इकाई–2 1. सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान के प्रकार 2. सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान के प्रमुख चरण 3. आंकड़ा संकलन की विधियां और प्रविधियां (तकनीक)	**इकाई 2** : सामाजिक सर्वेक्षण, अनुसंधान और आंकड़ा संकलन की प्रविधियां **(पृष्ठ 51–130)**
इकाई–3 1. निदर्शन : प्रकार और प्रविधियां 2. शोध प्रारूप के प्रमुख प्रकार	**इकाई 3** : निदर्शन और शोध प्रारूप **(पृष्ठ 131–186)**
इकाई–4 1. सांख्यिकी का महत्व, क्षेत्र और सीमाएं 2. चित्रात्मक और आरेखीय प्रदर्शन	**इकाई 4** : सांख्यिकी : महत्व, क्षेत्र तथा ग्राफिक और आरेखीय प्रदर्शन **(पृष्ठ 187–222)**
इकाई–5 1. विश्लेषण की इकाइयों का अध्ययन (क) अनुपात (ख) प्रतिशत 2. केंद्रीय प्रवृत्ति की माप (क) मध्यमान (ख) माध्यिका (ग) बहुलक 3. परिक्षेपण की माप (क) परास (ख) चतुर्थक विचलन (ग) मध्यमान विचलन (घ) मानक विचलन 4. सहसंबंध और उनके माप	**इकाई 5** : विश्लेषण की इकाइयों का अध्ययन : केंद्रीय प्रवृत्ति की माप, परिक्षेपण एवं सहसंबंध **(पृष्ठ 223–345)**

विषय–सूची

परिचय 1–2

इकाई 1 वैज्ञानिक पद्धति की प्रकृति और सामाजिक कार्य अनुसंधान 3–50

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 वैज्ञानिक पद्धति की अवधारणा
1.2.1 विज्ञान की प्रकृति
1.2.2 विज्ञान की प्रमुख विशेषताएं
1.2.3 वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ
1.2.4 वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएं
1.3 सामाजिक घटना में संप्रयोग
1.4 सामाजिक शोध (अनुसंधान) की प्रकृति, क्षेत्र और महत्व
1.4.1 सामाजिक शोध की प्रकृति एवं उद्देश्य
1.4.2 सामाजिक शोध का क्षेत्र
1.4.3 सामाजिक शोध का महत्व
1.5 सामाजिक कार्य अनुसंधान : प्रकृति, उद्देश्य और प्रकार्य
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 सामाजिक सर्वेक्षण, अनुसंधान और आंकड़ा संकलन की प्रविधियां 51–130

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान के प्रकार
2.2.1 सामाजिक सर्वेक्षण के प्रकार
2.2.2 सामाजिक अनुसंधान के प्रकार
2.3 सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान के चरण
2.3.1 सामाजिक सर्वेक्षण के चरण
2.3.2 सामाजिक अनुसंधान के चरण
2.4 आंकड़ा संकलन की विधियां और प्रविधियां
2.4.1 आंकड़ा संकलन की विधियां
2.4.2 आंकड़ा संकलन की प्रविधियां
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 निदर्शन और शोध प्रारूप 131–186

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 निदर्शन : प्रकार और प्रविधियां
3.2.1 निदर्शन : परिभाषाएं एवं विशेषताएं
3.2.2 निदर्शन के प्रकार एवं प्रविधियां
3.2.3 निदर्शन के गुण एवं दोष
3.3 शोध प्रारूप के मुख्य प्रकार
3.3.1 शोध प्रारूप : अर्थ, परिभाषाएं, विशेषताएं एवं उद्देश्य
3.3.2 शोध प्रारूप के विभिन्न चरण एवं महत्व
3.3.3 शोध प्रारूप के प्रकार

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 सांख्यिकी : महत्व, क्षेत्र तथा ग्राफिक और आरेखीय प्रदर्शन **187–222**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 सांख्यिकी का महत्व, क्षेत्र एवं सीमाएं
4.2.1 सांख्यिकी का अर्थ
4.2.2 सांख्यिकी की प्रकृति
4.2.3 सांख्यिकी का क्षेत्र
4.2.4 सांख्यिकी का महत्व
4.2.5 सांख्यिकी की सीमाएं
4.3 ग्राफिक और आरेखीय प्रदर्शन
4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.5 सारांश
4.6 मुख्य शब्दावली
4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 विश्लेषण की इकाइयों का अध्ययन : केंद्रीय प्रवृत्ति की माप, परिक्षेपण एवं सहसंबंध **223–345**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 विश्लेषण की इकाइयों का अध्ययन : अनुपात एवं प्रतिशत
5.2.1 अनुपात
5.2.2 प्रतिशत
5.3 केंद्रीय प्रवृत्ति की माप
5.3.1 मध्यमान
5.3.2 माध्यिका
5.3.3 बहुलक
5.4 परिक्षेपण की माप
5.4.1 परास
5.4.2 चतुर्थक विचलन
5.4.3 माध्य/मध्यमान विचलन
5.4.4 मानक विचलन
5.4.5 विचलन गुणांक
5.5 सहसंबंध और उसके माप
5.5.1 सह–संबंध के प्रकार
5.5.2 सहसंबंध की माप
5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'सामाजिक कार्य अनुसंधान और सांख्यिकी' का लेखन विश्वविद्यालय के एम.एस.डब्ल्यू. (उत्तरार्द्ध) के पाठ्यक्रम के अनुरूप किया गया है। समाज कार्य एक ऐसा व्यवसाय है जिसके द्वारा व्यक्ति की अधिकाधिक सहायता तथा विकास एवं उन्नति करने का प्रयत्न किया जाता है। इसके अंतर्गत सिद्धांतों, तरीकों, ढंगों, निपुणताओं तथा प्रविधियों का प्रयोग होता है। अतः इन क्षेत्रों में दिनोंदिन नवीनीकरण एवं परिवर्तन की आवश्यकता होती है क्योंकि व्यक्ति स्वयं एक परिवर्तनशील एवं विकासशील प्राणी है। समाज कार्य अनुसंधान एवं आवश्यकता को पूरा करता है। वह नए–नए तरीकों की खोज करता है, सिद्धांतों का सत्यापन एवं पुनर्स्थापना करता है तथा नवीन ज्ञान की खोज करता है। अनुसंधान का उद्देश्य सभी वैज्ञानिक क्षेत्रों में ज्ञान का विकास एवं वृद्धि करना है।

सामाजिक कार्य अनुसंधान एक ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा सामाजिक कार्य को नवीन ज्ञान प्राप्त होता है। यह एक ऐसी खोज है जिसके अंतर्गत वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके ऐसे उपायों की खोज की जाती है जिससे सेवार्थियों जैसे व्यक्ति, समूह, समुदाय तथा संपूर्ण समाज को अधिक अच्छे ढंग से सेवा प्रदान की जा सके तथा समस्याओं का समाधान एवं व्यक्ति का सर्वोन्मुखी विकास संभव हो सके। अनुसंधान वह व्यवस्थित वैज्ञानिक पद्धति है जिसमें वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग द्वारा वर्तमान ज्ञान व परिमार्जन, उसका विकास अथवा किसी नये तथ्य की खोज द्वारा ज्ञान कोष में वृद्धि की जाती है।

सामाजिक अनुसंधान एक अध्ययन–परायण अन्वेषण है जो सामान्यतः आलोचनात्मक और अत्यंत विस्तृत जांच या परीक्षण के रूप में होता है और जिसका उद्देश्य स्वीकृति–प्राप्त परिमाणों के विषय में नवीन सूचनाओं के आधार पर पुनः विचार करना है। प्रस्तुत पुस्तक की विषय–सामग्री का यही प्रयोजन है कि विद्यार्थी व शोधकर्ता व्यवहारपरक सामाजिक स्थिति के संदर्भ में शोध या अनुसंधान कार्य प्रणाली से भली–भांति अवगत हो जाएं।

पुस्तक में विषयों के विश्लेषण से पूर्व उनके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' कॉलम के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई वैज्ञानिक पद्धति की प्रकृति और सामाजिक कार्य अनुसंधान पर केंद्रित है जिसमें वैज्ञानिक पद्धति की अवधारणा, सामाजिक घटना के प्रयोग, सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति, क्षेत्र और महत्व तथा सामाजिक कार्य अनुसंधान की प्रकृति, उद्देश्य तथा कार्यों का उल्लेख किया गया है।

दूसरी इकाई सामाजिक सर्वेक्षण, अनुसंधान और डाटा संकलन की तकनीक पर आधारित है जिसमें सामाजिक सर्वेक्षण के प्रकार और प्रविधियों की विवेचना की गई है।

तीसरी इकाई में निदर्शन और शोध प्रारूप का अर्थ, महत्व तथा प्रकार का उल्लेख किया गया है।

टिप्पणी

चौथी इकाई सांख्यिकी के महत्व, क्षेत्र तथा ग्राफिक और आरेखीय प्रदर्शन पर केंद्रित है जिसके अंतर्गत सांख्यिकी के महत्व, क्षेत्र और ग्राफिक आरेखीय प्रदर्शन का विश्लेषण किया गया है।

पांचवीं इकाई केंद्रीय प्रवृत्ति की माप, परिक्षेपण एवं सहसंबंध पर आधारित है जिसमें केन्द्रीय प्रवृत्ति के विभिन्न मापों तथा सहसंबंध के विभिन्न प्रकारों की विवेचना की गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में सामाजिक कार्य अनुसंधान और सांख्यिकी पद्धतियों से संदर्भित कतिपय विषयों का सांगोपांग अध्ययन किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर उनका ज्ञानवर्द्धन करने में सफल सिद्ध होगी।

इकाई 1 वैज्ञानिक पद्धति की प्रकृति और सामाजिक कार्य अनुसंधान

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 वैज्ञानिक पद्धति की अवधारणा
 1.2.1 विज्ञान की प्रकृति
 1.2.2 विज्ञान की प्रमुख विशेषताएं
 1.2.3 वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ व परिभाषा
 1.2.4 वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएं
1.3 सामाजिक घटना में संप्रयोग
1.4 सामाजिक शोध (अनुसंधान) की प्रकृति, क्षेत्र और महत्व
 1.4.1 सामाजिक शोध की प्रकृति एवं उद्देश्य
 1.4.2 सामाजिक शोध का क्षेत्र
 1.4.3 सामाजिक शोध का महत्व
1.5 सामाजिक कार्य अनुसंधान : प्रकृति, उद्देश्य और प्रकार्य
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

समाजशास्त्र के अंतर्गत समाज संबंधी सभी बातों का अध्ययन किया जाता है जैसे समाज क्या है? समाज का स्वरूप क्या है, समाज का विकास किस प्रकार हुआ है तथा सामाजिक परिवर्तन के क्या कारण हैं आदि इन प्रश्नों के उत्तर समाजशास्त्री वैज्ञानिक ढंग से देता है। समाज के विषय में वैज्ञानिक ज्ञान होना, समाज के लिए तथा इसे एक निश्चित दिशा प्रदान करने के लिए अनिवार्य है। समाजशास्त्र एक विज्ञान है क्योंकि इसमें वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग का प्रश्न इसलिए ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि कुछ विद्वान इस विषय को विज्ञान मानने से इंकार करते हैं। वे समझते हैं कि समाजशास्त्र की विषय वस्तु के बारे में उन्हें अपने अनुभवों के द्वारा ही काफी ज्ञान प्राप्त होता है। वास्तव में ऐसा नहीं हैं जो ज्ञान हमें अपने अनुभवों से मिलता है जरूरी नहीं है कि वह वैज्ञानिक ज्ञान ही हो।

वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान की मौलिक विशेषता है। विज्ञान एक वस्तुनिष्ठ, तार्किक एवं व्यवस्थित अध्ययन पद्धति है। वस्तुतः विज्ञान यथार्थ का अध्ययन, अवलोकन एवं प्रयोग करते हुए प्राप्त तथ्यों से आगमन एवं निगमन द्वारा सामान्यीकरण करते हुए ज्ञान की प्राप्ति का एक माध्यम है। इस प्रकार यथार्थ का विशुद्ध और सर्वमान्य ज्ञान प्राप्त

करने की विधि को वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है। अतः वैज्ञानिक पद्धति एक सामूहिक शब्द है जो उन अनेक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है जिनकी सहायता से विज्ञान का निर्माण होता है। व्यापक अर्थों में वैज्ञानिक पद्धति का तात्पर्य अनुसंधान की किसी ऐसी पद्धति से है जिसके द्वारा निष्पक्ष एवं व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

अतः वैज्ञानिक पद्धति किसी विषय को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करने का सुदृढ़ आधार है। शोधकर्ता सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है। इसी तथ्य को समझाते हुए स्टुअर्ट चेज ने लिखा है कि विज्ञान का संबंध वैज्ञानिक पद्धति से है न कि किसी विशेष अध्ययन से। हमें सर्वप्रथम विज्ञान के अर्थ को स्पष्ट करके वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताओं को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। वास्तविकता यह है कि सामाजिक घटनाओं को करने वाली पद्धतियां प्राकृतिक विज्ञानों की अध्ययन पद्धतियों से कुछ भिन्न अवश्य हैं लेकिन इसका कारण स्वयं सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञानों की विषय वस्तु में भिन्नता होना है। 'विज्ञान' तथा 'वैज्ञानिक पद्धति' को समझने से यह स्पष्ट हो जाएगा। सामाजिक घटनाओं से संबंधित अध्ययन पद्धतियां पूर्णतया वैज्ञानिक हैं।

सामाजिक कार्य अनुसंधान का कार्य समाज के कार्य के उद्देश्यों को पूरा करने, नवीन ज्ञान की खोज करने एवं सेवकों की समस्याओं के कारण आदि को जानने में सहायता करना है।

इस इकाई में वैज्ञानिक पद्धति के चरण व प्रविधियों, सामाजिक घटना के प्रयोग, सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति, क्षेत्र व महत्व तथा सामाजिक कार्य अनुसंधान की प्रकृति, उद्देश्य व कार्य को विस्तार से समझाया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- विज्ञान तथा वैज्ञानिक पद्धति की अवधारणा से परिचित हो पाएंगे;
- सामाजिक घटनाओं के प्रयोग का विश्लेषण कर पाएंगे;
- सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति, क्षेत्र व महत्व की विवेचना कर पाएंगे;
- सामाजिक कार्य अनुसंधान की प्रकृति, उद्देश्य तथा प्रकार्य को समझ पाएंगे।

1.2 वैज्ञानिक पद्धति की अवधारणा

विज्ञान शब्द की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की जाती रही है। जिस प्रकार से कला का अर्थ मात्र चित्र बनाने की निपुणता से नहीं बल्कि किसी विषय को कलात्मक और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने से होता है उसी प्रकार से विज्ञान का तात्पर्य जीव शास्त्र, भौतिकशास्त्र तथा रसायन शास्त्र से न होकर किसी भी ऐसे ज्ञान से है जो व्यवस्थित और क्रमबद्ध हो।

वैज्ञानिक पद्धति का संबंध विज्ञान से है न कि विशेष विषय के अध्ययन से। विज्ञान क्या है? विज्ञान एक पद्धति है, एक तरीका है, जिसकी सहायता से सामाजिक

अनुसंधान में प्राप्त विशिष्ट ज्ञान को व्यवस्थित किया जाता है। विज्ञान की मौलिक विशेषता वैज्ञानिक पद्धति है। विज्ञान अनुसंधान कार्य का अनिवार्य हिस्सा विज्ञान का कार्य, तथ्यों का वर्गीकरण, इनके कर्मों की स्वीकारोक्ति और सापेक्षिक महत्व को जानना है। यह सत्य है कि विज्ञान की कोई एक निश्चित विधि सभी समस्याओं के हल के लिए उपयोग में नहीं लाई जा सकती। शोध के प्रत्येक स्तर पर समस्या के हल की आवश्यकतानुसार अपने तरीकों और प्रविधियों में विज्ञान परिवर्तन करता रहता है। लुंडबर्ग ने विज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है– ''विज्ञान शब्द का अर्थ किसी क्षेत्र विशेष के संदर्भ में यह है कि उस क्षेत्र का अध्ययन निश्चित सिद्धांतों के अनुसार अर्थात वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार किया गया।'' इस प्रकार विज्ञान का संबंध पद्धति से है न कि विषय सामग्री से। किसी अध्ययन को वैज्ञानिक तरीके से करने के लिए निम्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है।

ये प्रक्रियाएं हैं–

1. परीक्षण
2. सत्यापन
3. पारिभाषिक विवेचना
4. वर्गीकरण
5. संगठन तथा
6. परिस्थितिजन्यता।

इनमें पूर्वानुमान तथा व्यावहारिक उपयोग की विशेषताओं का भी समावेश है। उक्त प्रक्रियाओं का किसी शोध अध्ययन में जितना अधिक समावेश होगा वह अध्ययन उतना ही अधिक वैज्ञानिक माना जाएगा।

1.2.1 विज्ञान की प्रकृति

विज्ञान की प्रकृति को इसकी निम्नांकित विशेषताओं के द्वारा सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

1. विज्ञान का तात्पर्य किसी भी ऐसे ज्ञान से है जिसका संचय व्यवस्थित अथवा क्रमबद्ध तरीके से किया जाता है।
2. विज्ञान अनुभव सिद्ध ज्ञान है इसमें कल्पना अथवा दर्शन का कोई स्थान नहीं है।
3. विज्ञान में वस्तुनिष्ठता होती है अर्थात विज्ञान किसी सामाजिक घटना अथवा तथ्य को उसी रूप में देखता है जैसा कि वह वास्तव में है।
4. विज्ञान की एक अन्य विशेषता है कि यह कार्य–कारण के संबंधों को स्पष्ट करता है।
5. विज्ञान तार्किक होता है अर्थात–यह विभिन्न तथ्यों के बीच न केवल तार्किक संबंध स्पष्ट करता है बल्कि यह तर्क के द्वारा समझा जा सकता है।

6. विज्ञान तथ्यों का वर्गीकरण उनके पारस्परिक संबंध और क्रम के आधार पर करता है।
7. विज्ञान का प्रमुख आधार इसके नियमों का सार्वभौमिकरण अर्थात हर जगह मान्य होगा तथा नियमों का पुनर्परीक्षण है।
8. विज्ञान की महत्वपूर्ण विशेषता इसके पूर्वानुमान की क्षमता है अर्थात वर्तमान में पाए जाने वाले तथ्यों के आधार पर भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी करने की क्षमता होती है।

1.2.2 विज्ञान की प्रमुख विशेषताएं

विज्ञान एक वस्तुनिष्ठ, तार्किक एवं व्यवस्थित अध्ययन पद्धति है। यह प्राप्त तथ्यों से आगमन एवं निगमन द्वारा सामान्यीकरण करते हुए ज्ञान की प्राप्ति का एक उपागम है। विज्ञान की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं —

1. **संशयवाद**—संशयवाद विज्ञान की प्रमुख विशेषता है। सामान्यतया प्राकृतिक घटनाएं एक—दूसरे से पृथक घटित न होकर निश्चित व्यवस्था और क्रम के अनुसार घटित होती हैं। इन घटनाओं का एक—दूसरे से किस प्रकार परस्पर अंतःसंबंध है एवं ये घटनाएं किस प्रकार और किन नियमों के तहत संचालित होती हैं इस संबंध में वैज्ञानिक के मन में एक अवबोध या जिज्ञासा विकसित होती है। जो नये संशय को जन्म देती है। यह संशय ही विज्ञान की मूल आधारशिला है।
2. **प्रमाणिकता**—प्रमाणिकता विज्ञान की दूसरी मुख्य विशेषता है। विज्ञान के प्राकृतिक तथ्यों या नियमों को प्रमाणिकता की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रमाणिकता के आधार पर विज्ञान निष्कर्ष निकालता है और ये निष्कर्ष ही सिद्धांत या वैज्ञानिक नियम बन जाते हैं। इस प्रकार विज्ञान तथ्यों या प्रमाणों के आधार पर न केवल नवीन सिद्धांतों की रचना करता है वरन पुराने सिद्धांतों को संशोधित भी करता है। कभी—कभी पुराने सिद्धांतों को विज्ञान अस्वीकृत भी कर देता है।
3. **परिशुद्धता**—परिशुद्धता विज्ञान की तीसरी विशेषता है। विज्ञान द्वारा जो जानकारी या तथ्य ज्ञात किए जाते हैं वे पूरी तरह शुद्ध होने आवश्यक हैं। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्राप्त ज्ञान भिन्न—भिन्न हो सकता है। उसकी व्याख्या भिन्न—भिन्न हो सकती है परंतु विज्ञान द्वारा प्राप्त की गई जानकारी सदैव सत्य होती है।
4. **अमूर्तता**—विज्ञान की एक अन्य विशेषता अमूर्तता है। विज्ञान केवल तथ्यों का संकलन ही नहीं करता बल्कि वह उन तथ्यों की अमूर्तता की व्याख्या भी करता है। अमूर्तता से तात्पर्य उन कारकों से है जो किसी घटना के घटित होने के जिम्मेदार होते हैं। इन नियमों के लिए बहुधा न प्राप्त होने वाली अवस्थाओं को आधार बनाया जाता है; जैसे एक व्यक्ति एक घंटे में दो किलोमीटर चलता है तो वह 5 घंटे में कितना चलेगा? इसमें यह मान लिया

जाता है कि व्यक्ति की चाल हर घंटे बराबर है जबकि ऐसा वास्तव में नहीं होता परंतु उक्त घटना को मानने से समय और दूरी का सीधा संबंध समझ में आ जाता है। अमूर्तता का एक अन्य लाभ यह है कि इसमें किसी एक कारण का प्रभाव दिखता है। वास्तव में किसी कार्य के होने के बहुत कारण हो सकते हैं; जैसे एक व्यक्ति तैरकर नदी पार करे तो वह दूसरी ओर कहा पहुंचेगा। ठीक इस छोर के सामने या उससे कुछ दूर हटकर। यह अनेक कारकों पर निर्भर करता है जैसे तैरने की दिशा, नदी का वेग, हवा की दशा, आने वाले अवरोध आदि। इसमें प्रत्येक कारण का एक नियम है जिससे दूसरे कारणों पर ध्यान नहीं दिया जाता। जैसे – नदी का बहाव संबंधी नियम के अनुसार बहाव की दिशा में तैरने पर व्यक्ति ठीक इसी छोर पर नहीं पहुंच पाएगा। इस आधार पर अमूर्त नियम बनता है तथा वह समान परिस्थितियों में सभी जगह लागू होता है।

5. **व्यवस्थितता**—विज्ञान के द्वारा ज्ञान को व्यवस्थित तथा तर्कयुक्त बनाया जाता है। व्यवस्थितता के तीन प्रमुख गुण हैं— संबंध होना, पूर्ण होना, तर्क संगत होना। इसका तात्पर्य है कि विभिन्न सिद्धांत परस्पर संबंधित होते हैं। सिद्धांत अपने में पूर्ण होते हैं, यदि कोई पूर्ण नहीं है तो मिलकर पूर्णता को प्राप्त होते हैं तथा विभिन्न सिद्धांतों में कोई विरोधाभाव नहीं होता। विज्ञान की इसी व्यवस्थितता के कारण भविष्य की घटनाओं की व्याख्या संभव होती है।

6. **भविष्यवाणी करने की क्षमता**—विज्ञान का कार्य मात्र तथ्यों की व्याख्या करना, नियमों की रचना करना एवं उन्हें अमूर्तता प्रदान करना नहीं है वरन वह अपने नियमों के आधार पर भविष्य में होने वाली घटनाओं की व्याख्या में भी सक्षम है। अतः विज्ञान के द्वारा भविष्यवाणी कर सकते हैं कि अमुक विषय या सिद्धांत का भविष्य पर क्या असर होगा या भविष्य में अमुक घटना घटेगी या नहीं । भविष्य में होने वाली घटनाओं पर उसका नियंत्रण होगा या नहीं।

1.2.3 वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ व परिभाषा

विज्ञान की प्रकृति को समझने के पश्चात वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ कुछ सीमा तक स्वयं स्पष्ट हो जाता है फिर भी इसे पृथक रूप से समझना भी आवश्यक है। वैज्ञानिक पद्धति दो शब्दों से मिलकर बना है—वैज्ञानिक और पद्धति।

वैज्ञानिक—वैज्ञानिक शब्द विज्ञान से बना है। विज्ञान का अर्थ है क्रमबद्ध ज्ञान। वैज्ञानिक का अर्थ है विज्ञान से संबंधित। इस प्रकार जो बातें विज्ञान से संबंधित और विज्ञान पर आश्रित हैं वैज्ञानिक कहलाती हैं।

पद्धति—पद्धति का अर्थ किसी कार्य को संपादित करने के तरीकों या विधियों से है। इसमें कार्य प्रणाली को व्यवहार में लाया जाता है तथा प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

परिभाषाएं

विभिन्न विद्वानों ने वैज्ञानिक पद्धति को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–

कार्ल पियर्सन को अनुसार, "समस्त विज्ञान की एकता उसकी पद्धति में निहित है किसी एक विषय वस्तु में नहीं है।"

गुडे तथा हाट के अनुसार, "वास्तव में विज्ञान का तात्पर्य केवल व्यवस्थित ज्ञान के संचय से ही है।"

बर्नार्ड के अनुसार, "विज्ञान को इसमें छह मुख्य प्रक्रियाओं के संदर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है। ये प्रक्रियाएं हैं परीक्षण, सत्यापन वर्गीकरण, संगठन, परिभाषित विवेचना तथा परिस्थितिजन्यता जिनमें पूर्वानुमान तथा व्यावहारिक उपयोग की विशेषताओं का भी समावेश किया जा सकता है।"

लीनस्मिथ के अनुसार, "प्रश्न यह है कि विज्ञान क्या है और क्या नहीं है, इस समस्या का निवारण इस प्रश्न पर आधारित है कि किसी विषय के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग हुआ है अथवा नहीं।"

चर्चमैन तथा एकाफ ने विज्ञान को एक पद्धति न मानकर 'एक विशेष क्रिया' के रूप में माना है।

इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति में उनकी प्रक्रियाओं की सहायता से यथार्थ ज्ञान का निर्माण होता है। व्यापक अर्थ में वैज्ञानिक पद्धति का तात्पर्य अनुसंधान की किसी भी ऐसी पद्धति से है, जिसके द्वारा निष्पक्ष तथा व्यवस्थित ज्ञान को प्राप्त किया जाता है। लुंडबर्ग ने सामाजिक शोधकर्ताओं द्वारा वैज्ञानिक पद्धति पर विश्वास के संबंध को निम्न प्रकार स्पष्ट किया है। सामाजिक शोधकर्ताओं को यह दृढ़ विश्वास है कि उनकी शोध समस्याओं का समाधान सामाजिक घटनाओं के निष्पक्ष और व्यवस्थित अवलोकन, सत्यापन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण द्वारा ही संभव है। उक्त कथन से स्पष्ट है कि वैज्ञानिक पद्धति में शोधकर्ता निष्पक्ष और व्यवस्थित रूप से तथ्यों का अवलोकन, सत्यापन और वर्गीकरण करता है और वास्तविकता का विश्लेषण करता है तथा सामान्य प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक पद्धति ज्ञान का संचय करने तथा व्याख्या करने का एक विशेष ढंग है। यह किसी प्रकार से विषय वस्तु से संबंधित नहीं है। वैज्ञानिक पद्धति द्वारा किसी भी विषय को विज्ञान के रूप में स्थापित किया जा सकता है इसके लिए उस विषय का वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अध्ययन करते समय निम्न प्रक्रियाओं का समावेश आवश्यक है–

1. विषय का क्रमबद्ध अध्ययन करना तथा उसके विविध तथ्यों के पारस्परिक संबंध और क्रम का निरीक्षण करना।
2. विषय सामग्री को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना।
3. विषय के तथ्यों में सामान्यता का गुण होना।
4. विषय में यथार्थवाद का होना।
5. सामान्य बुद्धि के सभी व्यक्तियों के लिए समान रूप से उपयोगी होना।

इस प्रकार विस्तृत अर्थ में वैज्ञानिक पद्धति का तात्पर्य किसी भी उस अध्ययन विधि से है जिसके द्वारा विज्ञान का निर्माण और विस्तार होता है।

किसी भी शोध में विषय वस्तु का विश्लेषण करने के लिए शोधकर्ता को विज्ञान की प्रकृति को समझना आवश्यक है। मनुष्य वैसे तो स्वभाव से जिज्ञासु प्रवृत्ति का है उसकी इस प्रवृत्ति ने ही उसे प्राकृतिक घटनाओं को सकारण समझने हेतु प्रेरित किया है। घटनाओं को विश्लेषित करने के अनेक आधार हो सकते हैं। इनमें प्रमुख आधार उस घटना के संबंध में पूर्व के सिद्धांत हैं। इन सिद्धांतों के आधार पर हम यथार्थ को उसके स्वाभाविक रूप में समझ सकें, यह निश्चित नहीं है। इन पूर्व सिद्धांतों के द्वारा जो ज्ञान हम प्राप्त करते हैं वह कभी सत्य और कभी असत्य होता है। इसके अतिरिक्त ये सिद्धांत कुछ को मान्य होते हैं और कुछ को नहीं। अतः इन सभी अवगुणों से रहित यथार्थ का विशुद्ध और सर्वमान्य ज्ञान प्राप्त करने की विधि और उसे प्राप्त करने का ढंग ही वैज्ञानिक पद्धति कहलाता है। वर्तमान में शोध के विभिन्न पक्षों को समझाने व विश्लेषित करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। यह ज्ञान के विकास की उत्कृष्ट अवस्था है क्योंकि इसमें प्रत्यक्षवाद का गुण मौजूद है। वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा शोधकर्ता मानव मस्तिष्क एवं बुद्धि का सुसंयोजित प्रयोग कर सकता है। प्रभावकारी नियमों तथा समरूपता के अपरिवर्ती संबंधों के द्वारा स्वयं को अनुसंधान कार्य में लगाकर विषय घटना के निकटतम कारणों को प्राप्त करने संबंधी निरपेक्ष विचारों को स्वीकार करता है। वैज्ञानिक पद्धति में अनेक अवधारणाएं हैं। इनका विस्तार से उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया जा रहा है –

1. **क्रमबद्ध तथ्य** : वैज्ञानिक पद्धति की पहली अवधारणा है कि यह क्रमबद्ध तथ्य अथवा सूचना प्रदान करती हैः सामान्यता विद्वानों, विचारकों एवं शोधकर्ताओं का मानना है कि वैज्ञानिक पद्धति एक ऐसी क्रिया है जिससे संसार की सूचनाओं को क्रमबद्ध तरीके से प्राप्त किया जाता है। संसार का ज्ञान निरंतर वृद्धि करता जा रहा है। साथ ही इसे प्राप्त करने की प्रविधियां भी निरंतर विकसित होती जा रही हैं। तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक पद्धति से ज्ञान निरंतर तथा क्रमबद्ध रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

2. **समस्या का समाधान** : वैज्ञानिक पद्धति में समस्याओं के समाधान पर ध्यान दिया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति की इस अवधारणा के अंतर्गत सूचनाओं का संग्रह एवं तथ्यों का संग्रह करने से अधिक महत्वपूर्ण समस्या का समाधान ढूंढना है। केवल वही तथ्य अथवा सूचनाएं संकलित की जाएं जो समस्या का स्थायी हल दे सकें अथवा समस्या के समाधान में सहायक हो। इसलिए वैज्ञानिक पद्धति की यह अवधारणा शोधकर्ताओं को समस्या से संबंधित तथ्य संकलन के लिए मार्गदर्शन का कार्य भी करती है और समस्या पर ध्यान केंद्रित करती है।

3. **वैज्ञानिक पद्धति की प्रविधियां** : वैज्ञानिक पद्धति की प्रविधियां मानव विकास के लिए आवश्यक हैं। वैज्ञानिक पद्धति में अनेक प्रविधियां हैं, जिनका प्रयोग मानव अपने विकास के लिए कर सकता है। जैसे वैज्ञाानिक उपकरणों के माध्यम

से बड़े से बड़े कठिन कार्य आसानी से किए जा सकते हैं। उदाहरण स्वरूप शोधकर्ता अपने अध्ययन क्षेत्र में सर्वेक्षण के लिए पैदल न जाकर बस या टैक्सी से जा सकता है इससे अधिक सुविधा होगी तथा सर्वेक्षण कार्य ज्यादा आसान हो जाएगा।

4. **वैज्ञानिक पद्धति परीक्षण पर बल देती है**—विज्ञान संशयात्मक है। वह प्रत्येक तथ्य का बारीकी से परीक्षण करता है। वह बिना परीक्षण किए कोई तथ्य स्वीकार नहीं करता। वह स्वीकार किए हुए तथ्यों का पुनर्परीक्षण कर यह निर्धारित करता है कि ये तथ्य किन—किन विशिष्ट दशाओं और परिस्थितियों में उपयोगी हो सकते हैं अथवा ये तथ्य किसी समस्या के हल को किस सीमा तक प्रभावित कर सकते हैं।

5. **वैज्ञानिक पद्धति लचीली है**—वैज्ञानिक पद्धति का लक्ष्य निष्कर्षों को परिष्कृत करना होता है उसकी प्रमाणिकता के प्रति उसकी दृष्टि हमेशा संदेहास्पद होती है। इसलिए वह नये तथ्यों की खोज में रहता है। नवीन तथ्यों की खोज के पश्चात वह पुराने सिद्धांतों को त्याग देता है। पद्धति में लचीलापन होने के कारण उसका चिंतन आलोचनात्मक एवं परीक्षणात्मक होता है। इसलिए वैज्ञानिक पद्धति प्रगतिशील है। वैज्ञानिक पद्धति इन नवीन तथ्यों एवं विचारों को जो प्रमाणित हैं जल्दी स्वीकार कर लेती है। जब कभी शोध अथवा चिंतन में समस्याएं आती हैं तो वह अपने पूर्व तथ्यों और सिद्धांतों के अनुकूल तथ्यों को स्वीकार कर लेता है। इन सिद्धांतों अथवा पूर्व तथ्यों का वह प्रत्यक्षीकरण एवं पूर्णता का परीक्षण भी करता है।

6. **वैज्ञानिक पद्धति के क्षेत्र** : वैज्ञानिक पद्धति के क्षेत्र केवल परीक्षणीय तथ्यों तक सीमित हैं। वैज्ञानिक पद्धति का सीधा संबंध तथ्यों की व्याख्या से है। ऐसी व्याख्याएं सामान्य व्यक्ति के चिंतन को प्रभावित करती हैं। जो तथ्य अवैज्ञानिक और निरर्थक है वह इन्हें अप्रेक्षणीय और अपरीक्षणीय समझने के कारण इनसे तटस्थ रहता है। वह ऐसी व्याख्या को स्वीकार करता है जो क्रमबद्ध हो तथा जिसकी पुष्टि परीक्षित तथ्यों द्वारा की जा चुकी हो। वैज्ञानिक पद्धति में तथ्यों की सही एवं स्पष्ट व्याख्या होती है जबकि अन्य पद्धतियां केवल दार्शनिक व्याख्या करती हैं। इस कारण दार्शनिक पद्धति के लोगों को यह ज्ञात नहीं होता कि किन परिस्थितियों में और किस सीमा तक यह पद्धति लाभकारी होती है और कब नहीं। जबकि वैज्ञानिक पद्धति हमेशा कुछ न कुछ सीखने पर बल देती है। इसमें व्यावहारिक हल प्राप्त होते हैं। इसी व्यावहारिक बुद्धि के कारण ही वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने वाले विद्वानों ने अनेक लाभकारी व मानव कल्याण के उपयोग हेतु अनेक यंत्र बनाए।

7. **वैज्ञानिक पद्धति में शोध नियंत्रित होता है**—वैज्ञानिक पद्धति किसी शोध को बहुत सीमा तक नियंत्रित कर देती है। नियंत्रित करने का अर्थ है जिस तथ्य अथवा चर का किसी परिणाम के संभावित कारण की उपकल्पना का अध्ययन

किया जा रहा है उसके अतिरिक्ति अन्य सभी तथ्यों अथवा चरों को अलग कर देना ताकि यह पता लग सके कि उस उपकल्पित तथ्य अथवा चर का कोई प्रभाव पड़ता है अथवा नहीं और यदि प्रभाव पड़ता है तो कितना? वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा नियंत्रण इसलिए किया जाता है ताकि अतार्किक और निरर्थक तथ्य अथवा चर के संकलन से बचा जा सके। वैज्ञानिक पद्धति में ऐसी प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जिनसे अशुद्धियों का पता लग सके तथा निवारण कर सकें।

8. **वैज्ञानिक पद्धति कुछ विशिष्ट उपकरणों के उपयोग से संबंधित है**– वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग सामान्यतया प्राकृतिक विज्ञानों यथा भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान आदि में किया जाता है। इन विज्ञानों में उपकरणों और जटिल यंत्रों के माध्यम से वैज्ञानिक प्राकृतिक रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति का उक्त अर्थ में प्रयोग केवल प्रकृति के जटिल रहस्यों, नियमों, सिद्धांतों के उपकरणों एवं यंत्रों आदि से पता लगाना होता है। वैज्ञानिक पद्धति की परिभाषा देते हुए गुडे एवं हाट ने लिखा है, "वैज्ञानिक पद्धति का मूल स्वरूप उसके द्वारा आनुभविक अध्ययनों में प्रयुक्त किए गए उपागम के स्वरूप में निहित होता है। सामाजिक ज्ञान के संबंध में वैज्ञानिक पद्धति विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग; जैसे प्रतिदर्शन, आंकड़ों का विश्लेषण, साक्षात्कार, अवलोकन, सर्वेक्षण, निरीक्षण, प्रश्नावली, अंतर्वस्तु विश्लेषण आदि अपने शोध कार्य को करने के लिए करती है।"

9. **वैज्ञानिक पद्धति द्वारा केवल दृश्य जगत की ही व्याख्या हो सकती है**– वैज्ञानिक पद्धति द्वारा दृश्य जगत को आसानी से समझा जा सकता है। यह दृश्य जगत हमारी एक अथवा अनेक इंद्रियों द्वारा गृहीत होता है। इन दृश्यों को समझने के लिए कुछ ऐसे तथ्यों अथवा चरों की आवश्यकता होती है जो सीधे–सीधे ऐसी वस्तुओं को निरूपित नहीं करते हैं जिन्हें कि इंद्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सके। ऐसी वस्तुओं का अस्तित्व हम सैद्धांतिक व्याख्या के लिए मान लेते हैं। इन अस्तित्वहीन वस्तुओं के मध्य हमें आपसी संबंध मानने पड़ते हैं, जिससे दृश्य जगत को निगमित कर सकते हैं। निगमन में ज्ञात वस्तुओं एवं उनके ज्ञात संबंधों का आधार वाक्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। इन ज्ञात वस्तुओं एवं ज्ञात संबंधों के सापेक्ष दृश्यों से संबंध रखने वाले वर्णनात्मक कथनों अथवा तथ्यों की सत्यता अथवा असत्यता का निर्णय किया जा सकता है।

10. **वैज्ञानिक पद्धति कार्य–कारण संबंधों पर आधारित है**–वैज्ञानिक पद्धति समस्या अथवा अध्ययन विषय में कार्य–कारण सिद्धांतों के अध्ययन पर बल देती है। कार्य कारण का अर्थ है कि किसी घटना अथवा तथ्य के कारण अथवा परिणाम को ज्ञात करना एवं उसके पारस्परिक संबंध की व्याख्या करना। वैज्ञानिक पद्धति किसी घटना अथवा तथ्य को केवल उसके वास्तविक रूप में ही प्रस्तुत करने में रुचि नहीं लेती बल्कि उस घटना अथवा तथ्यों के कारणों की भी

व्याख्या करती है। वैज्ञानिक पद्धति तथ्य अथवा घटनाओं का वर्णन क्या है? क्यों है? एवं क्या होगा को ध्यान में रखते हुए करती है। इसमें तथ्यों के हर पहलुओं का पूरी तरह विश्लेषण किया जाता है। आर. ब्रेथवेट ने लिखा है कि "वैज्ञानिक पद्धति उन आनुभविक घटनाओं अथवा वस्तुओं के व्यवहारों को सम्मिलित करने वाले सामान्य नियमों की स्थापना करती है, जिनसे वर्तमान में विज्ञान संबंधित है और इनके द्वारा अलग–अलग घटनाओं के ज्ञान को एक साथ संबंधित करने में हमें समर्थ बनाता है तथा अब तक अज्ञात घटनाओं एवं तथ्यों की विश्वसनीय भविष्यवाणी करता है।"

इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति की बहुत सी अवधारणाएं हैं। एक सामान्य अवधारणा के अनुसार वैज्ञानिक पद्धति ज्ञान को एक व्यवस्थित रूप में व्यक्त करती है। यह विषय वस्तु को सीमित कर देती है। यह एक प्रविधि है एवं क्रियाशीलता इसका स्वरूप है। यह ज्ञान का संग्रह नहीं वरन् एक प्रकार का अन्वेषण, विश्लेषण व व्याख्या है।

लेस्ट्रसी के अनुसार–"वैज्ञानिक पद्धति एक वस्तुनिष्ठ, तार्किक एवं व्यवस्थित अध्ययन पद्धति है जो किसी विश्वसनीय ज्ञान की प्रघटना के विश्लेषण में प्रयुक्त होती है। यह विश्लेषण का एक व्यवस्थित स्वरूप है एवं किसी विशिष्ट ज्ञान से संबंधित नहीं है।"

1.2.4 वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएं

वैज्ञानिक पद्धति किसी विषय को विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करने का एक सुदृढ़ आधार है। सार्वभौमिकता तथा नियमों का पुनर्परीक्षण करना वैज्ञानिक पद्धति की महत्वपूर्ण विशेषताएं (Characteristics) हैं। वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताओं को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **वस्तुनिष्ठता**– वैज्ञानिक पद्धति की पहली विशेषता उसका वस्तुनिष्ठ होना है अर्थात यह पद्धति व्यक्तिनिष्ठ अथवा भावनात्मक न होकर वस्तुनिष्ठ होती है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति पक्षपातपूर्ण धारणाओं, पूर्वाग्रहों, व्यक्तिगत अभिवृत्तियों तथा भावनात्मक विचारों से प्रभावित नहीं होती। ए.डब्लू. ग्रीन ने लिखा है कि वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य किसी तथ्य अथवा प्रमाण की निष्पक्षतापूर्वक जांच करने की इच्छा एवं योग्यता है। ए. वुल्फ का कथन है कि "प्रत्येक सही अथवा ठोस ज्ञान की प्रथम आवश्यकता ऐसे स्पष्ट तथ्यों को प्राप्त करने की दृढ़ इच्छा एवं योग्यता है, जो अपने बाह्य स्वरूप प्रचलित धारणाओं तथा व्यक्तिगत विचारों से बिलकुल प्रभावित न हो। शोधकर्ता के लिए वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने में वस्तुनिष्ठता का पालन करना आवश्यक है इसके लिए आवश्यक है कि वह अपनी मनोवृत्तियों, संस्कार एवं दृष्टिकोण का सावधानीपूर्वक उपयोग करे।" अतः वैज्ञानिक पद्धति केवल स्वयं में ही वस्तुनिष्ठ नहीं होती बल्कि शोधकर्ता के दृष्टिकोण में भी तटस्थता लाने में सहायक होती है।

2. **तार्किकता**– वैज्ञानिक पद्धति की दूसरी विशिष्टता इसका तार्किक होना है अर्थात यह तार्किक विचारों पर आधारित होनी चाहिए। वैज्ञानिक पद्धति पूर्ण रूप से तार्किक ढांचे पर आधारित है। जॉन ड्यूवी ने लिखा है, "एक वैज्ञानिक न केवल तर्क के आधार पर अध्ययन के प्रयोग में लाई जाने वाली पद्धति के औचित्य और उपयुक्तता का परीक्षण करता है बल्कि अपने निष्कर्षों की सत्यता का परीक्षण भी कर सकता है।" वास्तव में तर्क का संबंध तथ्य और विवेक से है। अतः वैज्ञानिक पद्धति आधारभूत रूप से अनुभव सिद्ध अध्ययन को महत्व देती है। तर्कशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति का अभिन्न अंग है। तर्क की प्रक्रिया के दो प्रमुख भेद हैं–(क) निगमन, (ख) आगमन।

   (क) **निगमन**– निगमन के अंतर्गत आधार वाक्यों से आवश्यक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इसका तात्पर्य है कि यदि आधार वाक्य सत्य है तो निष्कर्ष भी सत्य होगा। उदाहरण के लिए माना (1) क, ख से बड़ा है तथा (2) ख, ग से बड़ा है।

   ये दोनों आधार वाक्य हैं। यदि ये दोनों वाक्य सही हैं तो यह निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा कि क, ग से बड़ा है। इसको एक और उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है–

   1. सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं।
   2. पृथ्वी एक ग्रह है। इसलिए पृथ्वी भी सूर्य के चारों ओर घूमती है।

   (ख) **आगमन**– आगमन उस तर्क को कहते हैं, जिसमें दृष्टांतों के आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है अर्थात कुछ दृष्टांतों में पाई गई बात को सबके लिए सत्य मानना; जैसे यदि त्वचा के किसी रोगी को एक दवा दी जाए और वह ठीक हो जाए और इसी प्रकार त्वचा के बहुत से रोगी इस दवा से ठीक हो जाएं तो निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह त्वचा रोग की दवा है। यही आगमन तर्क है।

   वैज्ञानिक पद्धति में निगमन और आगमन एक–दूसरे के पूरक के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

3. **उपकल्पना का निर्माण**– वैज्ञानिक पद्धति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें अध्ययन विषय से संबंधित किसी व्यावहारिक या सैद्धांतिक कठिनाई के हल के लिए हमारे मन में पुर्वानुमान या धारणा करने की क्षमता होती है। इसके परीक्षण के लिए हम आवश्यक तथ्यों का पता लगाते हैं। कभी–कभी ऐसा होता है कि हम जो तथ्य खोज रहे होते हैं उनसे इतर हमें कुछ और मिल जाता है परंतु फिर भी हम खोजते रहते हैं। जो हम खोज रहे होते हैं वे तथ्य हमारे सम्मुख उपस्थित नहीं होते। उनके आधार के स्वरूप हमारे मन में एक अवधारणा होती है जिसे उपकल्पना कहते हैं। ये उपकल्पनाएं वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत उत्पन्न होती हैं तथा इन उपकल्पनाओं के निर्माण से समस्या का संभावित हल निकलता है। उपकल्पना एक या

अनेक हो सकती है यह शोधकर्ता की कल्पनाशीलता तथा तार्किक बुद्धि पर निर्भर करता है। अतः उपकल्पना का निर्माण ऐसा हो जिसका वैज्ञानिक परीक्षण तार्किक आधार पर हो सकता है।

4. **संशयात्मक**—विज्ञान तथ्यों का तर्क सहित क्रमबद्ध ज्ञान है जहां थोड़े से अपर्याप्त प्रमाण दिखाई दें वहीं विज्ञान संशय करने लगता है। अतः संशय की प्रकृति वैज्ञानिक पद्धति की अनिवार्य विशेषता है। संशय के दो कारण हैं। एक तो यह कि अपर्याप्त प्रमाणों पर आधारित हमारे विश्वास सत्य नहीं हो सकते अर्थात केवल विश्वास के आधार पर तथ्य को सत्य नहीं माना जा सकता। दूसरा कारण है कि यदि कोई तथ्य प्रकाश में आता है तो यह जरूरी नहीं कि वह पूर्ण रूप से प्रमाणों पर आधारित हो अर्थात कोई भी तथ्य पूर्णतया सत्य नहीं है। उसमें कुछ न कुछ संशय की गुंजाइश अवश्य है। इसी कारण सिद्धांतों का परीक्षण तथा सत्यापन इन्हें सत्य के अधिक निकट ले जाने के लिए किया जाता है। हर बार सिद्धांतों के परीक्षण तथा सत्यापन में और ज्यादा सत्यता की गुंजाइश रहती है।

5. **सामान्यता**—वैज्ञानिक पद्धति की एक अन्य विशेषता है कि यह किसी विशेष घटना अथवा इकाई के अध्ययन को महत्व न देकर सामान्य घटनाओं के अध्ययन को महत्व देती है। यहां सामान्यता के दो आशय हैं— पहला वैज्ञानिक पद्धति समस्त विषयों में सामान्य है दूसरा यह कि विषय से संबंधित एक सामान्य सत्य की खोज की विधि वैज्ञानिक पद्धति है। इस पद्धति से जो निष्कर्ष तथा नियम संबंधित होते हैं वे किसी विशिष्ट इकाई पर लागू न होकर एक संपूर्ण वर्ग पर लागू होते हैं। इस संबंध में ए. वुल्फ ने लिखा है कि विज्ञान व्यक्तिगत पदार्थों से एवं समूहों से संबंध नहीं रखता वह मुख्यतः प्रतिनिधि रूपों, किस्मों, अथवा वर्गों से संबंधित है, जिसमें उपस्थित व्यक्तिगत पदार्थ एक उदाहरण मात्र है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस आधार पर नियमों अथवा तथ्यों का निर्माण किया जाए वह किसी विशेष इकाई पर लागू न होकर वर्ग विशेष पर लागू हो। उदाहरण के लिए, इस पद्धति द्वारा जब हम एक या कुछ श्रमिकों, नेताओं या अपराधियों का अध्ययन करते हैं तब वह एक अथवा कुछ व्यक्तियों के रूप में नहीं बल्कि एक संपूर्ण वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। उससे प्राप्त निष्कर्षों तथा नियमों को भी उस संपूर्ण वर्ग की विशेषता माना जाता है। अतः स्पष्ट है कि वैज्ञानिक पद्धति पर्याप्त सामान्यता रखती है।

6. **नियंत्रण एवं सत्यापनशीलता** – वैज्ञानिक पद्धति की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि यह पग—पग पर अपने को परखने की योग्यता रखती है तथा जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं उनकी सत्यता की किसी भी समय जांच की जा सकती है। यह नियंत्रण और सत्यापन तब तक चलता है, जब तक कि शोधकर्ता तुलनात्मक रूप से अधिक विश्वसनीय परिणामों तक न पहुंच जाए। अर्थात यदि शोधकर्ता वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष को ठीक नहीं समझता तो वह विषय

का पुनः अध्ययन करके उन निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा कर सकता है। इससे स्पष्ट है कि वैज्ञानिक पद्धति केवल तथ्यों का निर्माण ही नहीं करती बल्कि उनकी सार्वभौमिकता को भी प्रमाणित करती है। इस संबंध में जेम्स लूथर ने लिखा है कि जिस पद्धति के द्वारा तथ्यों की पुनर्परीक्षा नहीं की जा सकती वह एक वैज्ञानिक पद्धति न होकर केवल दार्शनिक अथवा काल्पनिक पद्धति होती है। वैज्ञानिक पद्धति कभी–अपने निष्कर्ष अंतिम नहीं मानती। वह अपने प्रत्येक शोध के परिणाम को परखने की विधियों का निर्माण कर पुनरावृत्ति निदेशन द्वारा उन परिणामों की पुनर्परीक्षा करती रहती है। इन परीक्षण के परिणामों से जो नए परिणाम प्राप्त होते हैं उनके आधार पर पुराने परिणाम अमान्य कर दिए जाते हैं, पर उनकी पुष्टि की जाती है। अथवा नवीन परिणामों के आधार पर उनके परिवर्तित रूप को स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि नियंत्रण और सत्यापन का मुख्य उद्देश्य शोधकर्ता के चिंतन और आचरण को वस्तुनिष्ठ बनाना है ताकि वह अपने को विस्मृत कर शोध कर सके।

7. **कार्यकारण संबंध पर आधारित**—वैज्ञानिक पद्धति दार्शनिक अथवा काल्पनिक न होकर कार्यकारण सिद्धांत पर आधारित होती है अर्थात वैज्ञानिक पद्धति घटनाओं की व्याख्या कार्यकारण संबंध के आधार पर करती है। सामान्यतः कोई घटना अपने आप नहीं घटती उसके घटने की वजह या कोई न कोई कारण अवश्य होता है। वैज्ञानिक पद्धति इन्हीं कारणों को ढूंढ़कर कार्यकारण संबंधों की व्याख्या करती है। वैज्ञानिक पद्धति की इस विशेषता के फलस्वरूप तार्किक, वस्तुनिष्ठ और सत्यापित ज्ञान में वृद्धि संभव हो सकती है।
8. **निश्चितता**—वैज्ञानिक पद्धति प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुनिश्चित होती है। इसके परिणाम प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अनुसरण किए जा सकते हैं। यह पद्धति संदेह उत्पन्न करने वाले तत्थों को कोई महत्व नहीं देती। यदि कोई तथ्य बिना तर्क के प्रकाश में आता है तो ऐसे निष्कर्ष को वैज्ञानिक पद्धति से संबंधित नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें वैज्ञानिक प्रकृति का अभाव होता है।
9. **अमूर्तकरण एवं सिद्धांत**— वैज्ञानिक पद्धति की अंतिम महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह पद्धति अमूर्तकरण तथा सिद्धांतवाद की ओर अग्रसर होती है। यह पद्धति तथ्यों के प्रकाश में आने पर तथ्यों के कार्यकारण संबंधों के आधार पर सिद्धांतों के निर्माण में सहायक होती है। ये सिद्धांत किसी विशेष क्षेत्र से संबंधित घटनाओं की प्रकृति को व्यवस्थित रूप से स्पष्ट करने में सहायक होते हैं तथा उनका अन्य समांतर घटनाओं में भी विशलेषण किया जा सकता है। नियम अमूर्त हैं, जब तक बहुत अधिक परिवर्तित नहीं हो जाते, ये नियम या सिद्धांत अपनी उपयोगिता को बनाए रखते हैं। वास्तव में सिद्धांतवाद वैज्ञानिक पद्धति का मुख्य लक्षण है।

वैज्ञानिक पद्धति के चरण

वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किया गया शोधकार्य क्रमबद्ध होता है तथा इसके लिए किसी भी अध्ययन को कुछ विशेष चरणों से होकर गुजरना आवश्यक है। एक शोधकर्ता अपने शोधकार्य को पूर्ण करने में जिन प्रक्रियाओं का उपयोग करता है, उन्हीं को चरण कहा

जाता है। अतः वैज्ञानिक पद्धति द्वारा व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध रूप से कार्य करने तथा अपनी वस्तुनिष्ठता को बनाए रखना इसलिए आवश्यक है कि इससे तथ्यों का संग्रह करके समुचित विश्लेषण किया जा सकता है। इस संबंध में लुंडबर्ग का विचार है कि "व्यापक अर्थों में वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ तथ्यों का समुचित अवलोकन, वर्गीकरण और व्याख्या करना है। वैज्ञानिक पद्धति का उद्देश्य अध्ययन विषय से संबंधित वांछित परिणाम प्राप्त करना है। वांछित परिणामों को प्राप्त करने के लिए विषय से संबंधित सही आंकड़े प्राप्त करने होते हैं। यह शोधकर्ता क्रमबद्ध चरणों में प्राप्त करता है। वैज्ञानिक पद्धति द्वारा क्रमबद्ध चरणों से प्राप्त आंकड़ों का संकलन तथा विश्लेषण किया जा सकता है।

वैज्ञानिक पद्धति के विभिन्न चरण हो सकते हैं। वैज्ञानिक पद्धति एक सार्वभौमिक पद्धति है। इसके चरणों को समझना तथा इनकी विवेचना शोधकर्ता की सुविधा और उपयोग करने की योग्यता पर निर्भर करती है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि इस पद्धति से संबंधित उन सभी चरणों की विवेचना की जाए जिसके द्वारा किसी समस्या से संबंधित वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकें।

समस्या का चुनाव

वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत सर्वप्रथम चरण अध्ययन या शोध के लिए एक विशिष्ट समस्या का चुनाव करना है। जॉन डीवी के अनुसार–"यदि समस्या की अनुभूति व परेशानी न हो तो गंभीर चिंतन प्रारंभ नहीं होता।" समस्या के प्रति शोधकर्ता को जागरूकता, सूक्ष्म अवलोकन और समस्या को ढूढ़ने की जिज्ञासा जितनी अधिक होती है समस्या का चयन उतने ही अच्छे ढंग से हो जाता है। आरंभिक स्तर पर समस्या का चुनाव करने में कठिनाई आती है फिर भी अध्ययन विषय से संबंधित साहित्य घटनाओं का स्वयं भी पूर्व अवलोकन तथा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर सही समस्या का चुनाव हो सकता है। समस्या का चुनाव जितना स्पष्ट होगा उसके लिए हल ढूंढ़ना उतना ही आसान और वैज्ञानिक हो जाएगा।

उद्देश्यों का निर्धारण

वैज्ञानिक पद्धति का दूसरा चरण अध्ययन से संबंधित उद्देश्यों का निर्धारण करना है। ये उद्देश्य दो प्रकार के हो सकते हैं– सामान्य तथा विशिष्ट। साधारणतः सामान्य उद्देश्य जन साधारण के लिए उपयोगी होते हैं, जबकि विशिष्ट उद्देश्य ज्ञान के संवर्धन में सहायक होते हैं। अतः उद्देश्यों का स्पष्ट होना आवश्यक है जिससे अध्ययन अधिक स्पष्ट और वैज्ञानिक हो जाता है। शोधकर्ता उद्देश्यों का निर्धारण अंतर्दृष्टि और अनुभव के आधार पर करता है। उद्देश्यों के स्पष्ट निर्धारण से अध्ययन अधिक रुचिकर, स्पष्ट, क्रमबद्ध तथा विश्लेषण करने योग्य हो जाता है।

परिकल्पना का निर्माण

वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अध्ययन में समस्या के हल के लिए शोधकर्ता विभिन्न परिकल्पनाओं का निर्माण करता है। ये परिकल्पनाएं शोध आरंभ करने से पहले लिए जाने वाले ऐसे सामान्य निष्कर्ष हैं जिनकी प्रमाणिकता आंकड़ों के संकलन के उपरांत तथ्यों के आधार

पर की जाती है। उपकल्पनाएं समस्या का हल भी हो सकती हैं अथवा परीक्षण हेतु प्रस्तावित लक्ष्य कथन हो सकता है। लुंडबर्ग के अनुसार, "परिकल्पना एक अस्थाई निष्कर्ष अथवा सामान्यीकरण है, जिसकी सत्यता का परीक्षण करना शेष होता है। अतः परिकल्पनाओं के निर्माण से पहले शोधकर्ता को विषय का गहन अध्ययन वर्तमान सूचनाओं के आधार पर करना चाहिए क्योंकि शोधकर्ता द्वारा समस्या का अध्ययन जितनी गहनता से किया जाएगा उसकी परिकल्पना भी उतनी स्पष्ट तथा सरल होगी। इसमें अध्ययन को एक सही व निश्चित दिशा देना संभव हो सकेगा।

अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण

वैज्ञानिक पद्धति का अगला चरण शोध समस्या के लिए अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण करना है। शोधकर्ता द्वारा अपने शोध के लिए एक अध्ययन क्षेत्र को चुन लेना आवश्यक है। इससे संबंधित रहकर विभिन्न सूचनाएं एवं तथ्य एकत्रित किए जा सकें। इसका एक अन्य तथ्य यह भी है कि शोधकर्ता व्यर्थ की सूचनाओं में भटकने से बच जाता है तथा उसके लिए एक निर्धारित अध्ययन क्षेत्र होता है यदि यह क्षेत्र बहुत बड़ा हो तो इसे निर्देशन पद्धति द्वारा सीमित किया जा सकता है।

अध्ययन यंत्रों का चुनाव

वैज्ञानिक पद्धति अध्ययन के लिए विभिन्न यंत्रों के प्रयोग पर बल देती है। इसके लिए शोधकर्ता को अध्ययन करने से पहले इससे संबंधित उपकरणों तथा प्रविधियों का चुनाव कर लेना होता है। इन उपकरणों तथा प्रविधियों का चुनाव सदैव समस्या की प्रकृति के अनुसार किया जाता है। जिससे आंकड़ों के संकलन में विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता और सफलतापूर्वक सही व स्पष्ट आंकड़ें प्राप्त हो जाते हैं।

अवलोकन

उपरोक्त चरणों के पश्चात वैज्ञानिक पद्धति का अगला चरण शोधकर्ता द्वारा समस्या से संबंधित इकाइयों का अवलोकन करना है। वास्तव में किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन की शुरुआत अवलोकन से होती है। तार्किक निगमन द्वारा शोधकर्ता अपनी परिकल्पनाओं से निष्कर्ष निकालता है, जिसके परिणामस्वरूप समस्या अधिक स्पष्ट होकर सामने आती है। यह अवलोकन अध्ययन की इकाइयों से दूर रहकर भी किया जा सकता है और अध्ययन का हिस्सा बनकर भी किया जा सकता है। प्रत्येक दशा में अवलोकन जरूरी है। इस अवलोकन के द्वारा ही वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अध्ययन के लिए उद्देश्य क्या हो? अध्ययन का क्षेत्र क्या हो? तथा उसके लिए आवश्यक यंत्र क्या होना चाहिए? तथा कौन–सी प्रविधियां आंकड़े के संकलन के लिए उपयुक्त हैं।

तथ्यों का एकत्रीकरण

तथ्यों अथवा आंकड़ों का संकलन वैज्ञानिक पद्धति का सबसे महत्वपूर्ण चरण है क्योंकि इस पर श्रेष्ठ शोध परिणाम निर्भर करते हैं। अतः तथ्यों को संकलित करने के लिए आवश्यक है कि वह अपनी व्यक्तिगत धारणाओं तथा विश्वासों को नियंत्रित कर वैज्ञानिक तरीका अपनाए। इससे संकलित तथ्य अधिक विश्वसनीय होते हैं और शोध तथा अध्ययन की वस्तुनिष्ठता भी बनी रहती है।

तथ्यों का वर्गीकरण

तथ्यों के एकत्रीकरण के पश्चात अगला चरण संकलित तथ्यों का वर्गीकरण है। तथ्यों के वर्गीकरण में समान प्रकृति के तथ्यों को अलग किया जाता है और इसका स्पष्टीकरण तथा संकलीकरण किया जाता है। जिसकी सहायता से विभिन्न घटनाओं और दशाओं के बीच संबंध स्थापित करना और अच्छे सह–संबंध को जांच सकना संभव हो जाता है।

आंकड़ों का निर्वचन

संकलित आंकड़ों का वर्गीकरण करने से शोध इस स्थिति में होता है कि वह प्राप्त आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष दे सके। ये निष्कर्ष या तो शोध के प्रारंभ में की गई उपकल्पना का समर्थन करते हैं, या पूर्व में किए गए निष्कर्षों के समान होते हैं अथवा उन उपकल्पनाओं या निष्कर्षों का खंडन करते हैं। यदि निष्कर्ष पूर्व की उपकल्पना का समर्थन करते हैं तो इन तथ्यों को सामान्यीकरण का आधार बनाकर सैद्धांतिक किया जाता है। यही निर्वचन तथ्य सामान्यीकरण कहलाते हैं।

उपकल्पनाओं के परीक्षण से संबंधित निष्कर्ष

इसे नव सामान्यीकरण भी कहते हैं। यह दो तथ्यों के संबंधों के वर्णन के द्वारा उपकल्पनाओं की संपुष्टि या उसे अमान्य कर देने की अवस्था है। यह निष्कर्ष निकालने के रूप में प्रयुक्त होती है।

वैज्ञानिक पद्धति के उपर्युक्त चरणों से स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिक विधि के द्वारा तथ्यों को एकत्रित करके सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इसमें यथार्थ तथ्यों के आधार पर कार्यकारण के संबंधों को व्यक्त किया जाता है तथा ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं जिनकी प्रमाणिकता की जांच शोधकर्ता द्वारा भी की जा सके। उक्त के संबंध में कार्ल पियरसन ने लिखा है कि ''सत्य के लिए कोई संक्षिप्त मार्ग नहीं है। विश्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति के द्वार से गुजरना आवश्यक है।''

वैज्ञानिक शोध पद्धति की प्रक्रिया के विभिन्न स्तर

वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक समान प्रक्रिया अपनाई जाती है। इस प्रक्रिया के विभिन्न स्तर होते हैं। ये स्तर विज्ञान की अलग–अलग शाखाओं के लिए समान हों यह आवश्यक नहीं है। फिर भी निम्नलिखित स्तर आवश्यक हैं। साधारणतया इनमें से कुछ स्तरों को लेकर भी उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। ये स्तर विभिन्न क्रम में या पुनरावृत्ति के क्रम में हो सकते हैं। ये स्तर हैं–

- समस्या को परिभाषित करना और जानना।
- समस्या की पृष्ठभूमि की खोज अथवा समस्या का पूर्वावलोकन।
- परिकल्पनाओं का निर्माण।
- आंकड़ों का संकलन।

टिप्पणी

- परिकल्पनाओं का परीक्षण।
- आंकड़ों का विश्लेषण तथा निष्कर्ष।

वैज्ञानिक पद्धति में प्रयुक्त होने वाले उक्त स्तरों की व्याख्या नीचे दी गई है–

1. **समस्या को परिभाषित करना और जानना** – सामाजिक घटनाओं का अध्ययन कर जिस समस्या का शोध करना चाहते हैं उसका अध्ययन कर उसके बारे में स्पष्टता होना ही समस्या को परिभाषित करना और उसे जानना है।
2. **समस्या की पृष्ठभूमि की खोज** – इसके लिए शोधकर्ता को जितना संभव हो सके समस्या से संबंधित सभी साहित्य को पढ़ लेना चाहिए, जिससे इसके बारे में पूर्व अवलोकन व उपकल्पनाओं का विकास हो सके।
3. **परिकल्पनाओं का विकास** – समस्या से संबंधित जो ज्ञान आपको है उस आधार पर उनके हल के लिए उपकल्पनाओं का निर्माण करना, कार्यकारण प्रभाव तथा इसका दूसरी घटना के साथ सह संबंध ज्ञात करने की क्षमता का विकास करना, इस स्तर की मुख्य विशेषता है।
4. **आंकड़ों का संकलन** – इस स्तर पर शोधकर्ता को अपनी उपकल्पनाओं को सही सिद्ध करने के लिए स्पष्ट आंकड़े संकलित करने की आवश्यकता होती है। उचित प्रगतियों द्वारा आंकड़ों का संकलन करना वैज्ञानिक पद्धति का अगला चरण है।
5. **परिकल्पनाओं का परीक्षण** – प्राप्त आंकड़ों के आधार पर निर्माण की गई परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जाना इसकी उपयोगिता है।
6. **आंकड़ों का विश्लेषण तथा निष्कर्ष** – प्राप्त आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष देना तथा इनकी पुनः अवलोकन से तुलना करनी होती है। यदि उपकल्पना सही है तो अगला चरण प्रतिवेदन होता है अन्यथा फिर से उपकल्पनाओं का निर्माण स्तर पर पहुंचना होता है और फिर से सही आंकड़े संकलित करने होते हैं एवं परीक्षण करना होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. विज्ञान की प्रमुख विशेषता निम्न में से कौन सी है?
   (क) प्रमाणिकता (ख) परिशुद्धता
   (ग) अपूर्तता (घ) उपर्युक्त सभी
2. दृष्टांतों के आधार पर किसका सामान्यीकरण किया जाता है?
   (क) निगमन (ख) आगमन
   (ग) तार्किकता (घ) अमूर्तता

1.3 सामाजिक घटना में संप्रयोग

सामाजिक शोधों में अध्ययन का विषय सामाजिक समस्याएं और सामाजिक घटनाएं होती हैं अर्थात सामाजिक शोधों में इन घटनाओं और समस्याओं का अवलोकन कर तथ्यों को खोजना और प्राप्त तथ्यों की तुलनात्मक व्याख्या कर नियमों का निर्माण किया जाता है। यद्यपि सामाजिक क्रियाओं (घटनाओं और समस्याओं) में जटिलता, परिवर्तनशीलता, माप संबंधी कठिनाइयां, वैयक्तिक पक्षपात की संभावनाएं, निश्चित भविष्यवाणी का अभाव आदि होता है। अतः यह एक विचारणीय प्रश्न है कि सामाजिक शोधों में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है या नहीं। विज्ञान का संबंध किसी भी अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति द्वारा तथ्यों को एकत्रित करके उनके आधार पर सामान्य नियमों का प्रतिपादन करना है। विज्ञान का संबंध किसी भी अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति द्वारा तथ्यों को एकत्र करके, अध्ययन चाहे प्राकृतिक क्षेत्र का हो अथवा सामाजिक क्षेत्र का, इसे विज्ञान के रूप में स्पष्ट करने के लिए इसमें वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग जरूरी है। अतः यह समझना आवश्यक है कि सामाजिक शोध के अंतर्गत किए गए अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किस सीमा तक किया जा सकता है। इसके लिए घटनाओं की प्रगति को समझना जरूरी है। सामाजिक घटनाओं की बनावट की कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. सामाजिक घटनाओं में समरूपता नहीं पाई जाती है।
2. सामाजिक घटनाएं गुणात्मक होती हैं गणनात्मक नहीं होती।
3. सामाजिक घटनाओं में वस्तुनिष्ठता नहीं पाई जाती।
4. सामाजिक घटनाओं में सार्वभौमिकता की कमी पाई जाती है।
5. सामाजिक घटनाएं जटिल एवं अस्पष्ट होती हैं।
6. सामाजिक घटनाएं अमूर्त होती हैं।
7. सामाजिक घटनाएं स्थिर नहीं होती अपितु गतिशील होती हैं।
8. सामाजिक घटनाओं के संबंध में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

सामाजिक घटनाओं की उक्त विशेषताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि वे प्राकृतिक विज्ञान से भिन्न होती हैं। इसके अलावा जितनी आसानी से हम प्राकृतिक घटनाओं में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग कर सकते हैं उतनी आसानी से सामाजिक घटनाओं में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग नहीं किया जा सकता। लेकिन केवल इन्हीं विचारों के आधार पर सामाजिक घटनाओं के अध्ययन को वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग से वंचित नहीं किया जा सकता है। यह सही है कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति उलझी हुई है और इसलिए तुलनात्मक रूप से इसमें कठिनाई जरूर है। परंतु जैसे–जैसे हम इन घटनाओं का गहराई से अध्ययन करते हैं वैसे–वैसे जटिलताएं कम होती चली जाती हैं। जैसे एक सामान्य व्यक्ति के लिए कम्प्यूटर एक मशीन है। वह इसकी क्रियाविधि को जटिल समझता है परंतु प्रशिक्षण लेने के पश्चात उसके लिए यह आसान हो जाता है। इसी प्रकार सामाजिक व्यवहार के आधारों को समझ लेने के

पश्चात उसके लिए सामाजिक क्रियाओं को समझना आसान हो जाता है। इस प्रकार सामाजिक घटनाओं में जटिलता होते हुए भी इनमें वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है। सामाजिक घटनाओं की संरचना अमूर्त होती है परंतु विज्ञान की विकसित तकनीकों से पूर्वाग्रह रहित अध्ययन संभव हो सकता है। इसके अतिरिक्त विज्ञान के प्रयोग से सामाजिक व्यवहार तथा परंपराओं का अध्ययन वस्तुनिष्ठ रूप से किया जा सकता है अर्थात सामाजिक घटनाएं चाहे कितनी भी अमूर्त हों इनका अध्ययन वैज्ञानिक विधि से किया जा सकता है। इसी प्रकार सामाजिक घटनाओं में वस्तुनिष्ठता कभी भी इनके वैज्ञानिक अध्ययन में किसी तरह का अवरोध पैदा नहीं करती है। कई सामाजिक घटनाएं समानता लिए होती हैं। उन्हीं समान तथ्यों के आधार पर इन सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करना संभव है। वर्तमान युग विज्ञान का युग है और यह हर क्षेत्र में अपनी पहुंच बनाए हुए है। अतः वर्तमान सामाजिक क्षेत्र में बहुत से ऐसे अध्ययन हो रहे हैं जिनके संदर्भ में भविष्यवाणी की जा सकती है। अतः यह कहना कि सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती निराधार है। विज्ञान गतिशील अथवा स्थिर सभी तरह की घटनाओं के स्वरूपों की व्याख्या स्पष्टता से करता है। यह सही है कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति सार्वभौमिक नहीं होती परंतु इनके भिन्न–भिन्न स्वरूपों को भी वास्तविक रूप में जाना जा सकता है। इनका भी वैज्ञानिक प्रक्रिया से अध्ययन किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि कुछ भौतिक गतिविधियां अथवा घटनाएं भी गतिशील होती हैं। जब इनका अध्ययन वैज्ञानिक तरीके से किया जा सकता है तो सामाजिक घटना का अध्ययन भी अवश्य ही किया जा सकता है। सभी सामाजिक घटनाओं की प्रकृति गुणात्मक होती है। सामाजिक विज्ञान का अध्ययन भी अवलोकन, परीक्षण, विवेचना व विश्लेषण के आधार पर किया जा सकता है। इसके अलावा विज्ञान की अनेक शाखाओं के अध्ययन में गणनात्मकता के साथ–साथ गुणात्मकता का गुण भी पाया जाता है। यह सही है कि सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे शोध कम हुए हैं जिनकी अध्ययन प्रणाली में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग हुआ हो। परंतु वैज्ञानिक प्रक्रिया के चरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है। लुंडबर्ग इत्यादि विद्वानों ने भी इस बात की पुष्टि की है कि अनेक सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक पद्धति सामाजिक घटना व सामाजिक शोध के क्षेत्र में भी उपयोगी है।

सामाजिक घटना : शोध की प्रक्रिया के आधार

अनुसंधान अथवा शोध का अर्थ केवल पुनः खोज करना ही नहीं है बल्कि किसी प्रघटना या समस्या के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना या उपलब्ध ज्ञान में किसी प्रकार का परिवर्तन करना भी है। सामाजिक शोध के संदर्भ में इसका अर्थ सामाजिक घटनाओं या तथ्यों के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना या प्राप्त ज्ञान में वृद्धि करना तथा जिन सिद्धांतों एवं नियमों का निर्माण किया गया है उनमें किसी प्रकार का संशोधन करना

है। सामाजिक विज्ञान के गुणों से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि इसकी प्रकृति और विज्ञान में अन्योन्याश्रय संबंध है। इसके लिए निम्न आधार बिंदु हैं—

1. **सामान्यीकरण** — सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक अध्ययन का मुख्य चरण सामान्यीकरण है। शोध के प्रारंभिक चरण में परिकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है एवं उसकी सत्यता की जांच शोध प्रक्रिया के अंतिम चरण में की जाती है। सामाजिक शोध में भी संकलित की गई सामग्री का सारणीकरण, विभाजन तथा विश्लेषण किया जाता है। तत्पश्चात उसका उपकल्पना से मिलान किया जाता है और अंत में सिद्धांत का रूप दिया जाता है। कभी—कभी नये तथ्य प्रकाश में आ जाते हैं अर्थात नूतन सिद्धांत का निर्माण भी हो जाता है। इस तरह शोध और अध्ययन द्वारा ही सामाजिक विज्ञान को विज्ञान का दर्जा प्राप्त होता है।

2. **कारणों का अध्ययन** — जिस प्रकार विज्ञान घटना के कारणों पर जोर देता है एवं क्या है? क्यों है? की खोज करता है उसी प्रकार सामाजिक विज्ञान में भी किसी घटना का अध्ययन करते समय उसके कारणों को खोजा जाता है और क्या है? क्यों है? एवं क्या होगा? आदि का ध्यान रखते हुए घटना का उल्लेख, अध्ययन एवं व्याख्या की जाती है। इस संबंध में रामकृष्ण मुखर्जी लिखते हैं, "सामाजिक विज्ञान में सत्यता को जानने हेतु शोध अध्ययन में निम्न पांच मौलिक सवालों का जवाब देना आवश्यक है।"

   1) क्या है? 2) कैसे है? 3) क्यों है? 4) क्या होगा? 5) क्या होना चाहिए? अतः हम कह सकते हैं कि समाज विज्ञान भी वैज्ञानिक अध्ययन का ही एक प्रकार है।

3. **वैज्ञानिक कार्य पद्धति का उपयोग** — वैज्ञानिक कार्य पद्धति का प्रयोग सामाजिक शोधों में किया जाता है। सामाजिक संबंधों, राज्य, समाज, सामाजिक, घटनाओं, राज्य व्यवस्थाओं, सामाजिक व्यवस्थाओं आदि का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत किया जाता है। उक्त के अध्ययन में समस्त वैज्ञानिक चरणों का प्रयोग भी किया जाता है। शोधकर्ताओं, विद्वानों व विचारकों द्वारा सामाजिक अध्ययनों में वैज्ञानिक यंत्रों व प्रक्रिया का उपयोग संभव हो जाने के कारण इसकी प्रकृति वैज्ञानिक मानी जाती है।

4. **कार्यकारण संबंधों की व्याख्या** — सामाजिक शोध के वैज्ञाानिक होने का एक प्रमुख आधार कार्यकारण संबंधों की व्याख्या करना है। इसके अंतर्गत किसी घटना के होने के कारणों का अध्ययन व विश्लेषण के बाद व्याख्या की जाती है। घटना के परिणामों के कारणों की खोज की जाती है; जैसे— भारत में संयुक्त परिवारों की परंपरा नष्ट होकर एकल परिवार का बनना, भारत में बेकारी की बढ़ती हुई समस्या। इन समस्याओं के पीछे कोई कारण अवश्य होता है। सामाजिक घटनाओं के कारणों को समझने में इनका अध्ययन वैज्ञानिक होने का आधार दर्शाता है।

5. **सिद्धांतों का निर्माण** – सामाजिक शोध में समस्या के अध्ययन में आंकड़ों का संकलन, उपकल्पनाओं का निर्माण, संकलित तथ्यों अथवा आंकड़ों का वर्गीकरण, सारणीकरण, विश्लेषण एवं व्याख्या की जाती है और अंततः सिद्धांत का निर्माण किया जाता है। साधारणतः वैज्ञानिक सिद्धांत में अनुभाविकता, कार्यकारण सिद्धांत एवं सार्वभौमिकता तथा वस्तुनिष्ठता का गुण होता है। यही नियम सामाजिक शोध के अध्ययन पर भी लागू होते हैं। जनसंख्या बढ़ती हुई बेकारी का कारण है। इस सिद्धांत की किसी भी देश, काल और परिस्थिति में परीक्षा की जा सकती है। अतः प्रख्यात समाजशास्त्रीय विचारकों के प्रतिपादित सिद्धांतों के सम्यक अवलोकन यह बताते हैं कि समाजशास्त्र के वैज्ञानिक नियमों के निर्माण ही इसका आधार हैं।

6. **सिद्धांतों का परीक्षण** – जिस प्रकार विज्ञान के नियम सार्वभौमिक और सार्वदेशिक होते हैं उनकी परीक्षा और पुनः परीक्षा की जा सकती है। उसी प्रकार अपरिवर्तित परिस्थितियों में इसके नियम भी परिवर्तित नहीं होते। वे सभी देश और सभी कालों में समान रूप से लागू होते हैं। रूसो द्वारा बताए गए प्रजातंत्र के तीनों आधारों–स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व ऐसे सार्वभौमिक राजनीतिक मूल्य हैं जिन्हें किसी भी प्रजातंत्र के आधार के रूप में परीक्षित किया जा सकता है। इसी तरह कार्ल मार्क्स ने अपने कई नियमों का परीक्षण किया तथा सिद्धांतों की पुष्टि भी की। अतः समाजशास्त्र भी अन्य विज्ञानों की तरह वैज्ञानिक अध्ययन प्रक्रिया रखता है।

7. **सिद्धांतों की सार्वभौमिकता**–सामाजिक सिद्धांत समान व निश्चित परिस्थितियों में कारकों के आपसी कार्यकारण प्रभाव से संबंधों का विश्लेषण करते हैं। यदि परिस्थितियों व कारणों के गुण नहीं बदलते तो ये सिद्धांत सत्य और प्रमाणित होते हैं। सामाजिक सिद्धांत समाज के सिद्धांत हैं यदि समाज की परिस्थिति न बदले तो समाज के नियम भी नहीं बदलते। जैसे जनसंख्या वृद्धि और साधनों की कमी से बेकारी, अशिक्षा, निर्धनता में बढ़ोतरी होगी। यह सिद्धांत हर समाज और हर देश पर लागू होगा। ये सिद्धांत समस्या के सभी पहलुओं का अध्ययन करके गठित किए जाते हैं। इनकी जांच करना भी संभव है। इस तरह यह पता चलता है कि समाजशास्त्रीय अध्ययन भी वैज्ञानिक अध्ययन की भांति सार्वभौमिक सिद्धांत प्रस्तुत कर सकते हैं।

8. **अवलोकन**–सामाजिक विज्ञानों के शोध के लिए अध्ययन विषय से संबंधित तथ्य अवलोकन प्रक्रिया की सहायता से संकलित किए जाते हैं। अवलोकन प्रक्रिया के भी विभिन्न चरण व प्रकार होते हैं। अपने शोध के लिए कौन से चरण व प्रकार अपनाने हैं यह विषय सामग्री पर निर्भर करता है। समाज शास्त्रीय शोध अथवा अध्ययनों में अवलोकन पद्धति के माध्यम से चरणबद्ध एवं व्यवस्थित तौर पर संग्रहित तथ्यों का वर्गीकरण किया जाना इसके वैज्ञानिक अध्ययन का आधार है।

9. **पहलुओं का विश्लेषण** – विज्ञान तथ्यों का गुणों के आधार पर विभाजन कर उनका विश्लेषण करता है। सामाजिक अध्ययनों में भी तथ्यों को कार्यकारण के आधार पर भिन्न–भिन्न समूहों में विभाजित किया जाता है तथा इस विभाजन में इनके परस्पर गुणों का उल्लेख किया जाता है। राजनीति विज्ञान के अध्ययनों में वैज्ञानिक अध्ययन की भांति समस्त नियमों का प्रतिपादन किया जाता है।
10. **वास्तविक घटनाओं का अध्ययन** – राजनीति विज्ञान घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। इनमें क्या है और क्या होना चाहिए, का वर्णन किया जाता है। सामाजिक परिस्थितियां जिस रूप में है अथवा समाज में जो तथ्य जिस रूप में विद्यमान हैं रा.वि. उनका ठीक उसी रूप में अध्ययन करता है। रा.वि. अपने अध्ययन में न तो कल्पनाओं का और न ही अफवाहों का अध्ययन करता है। वह तो तथ्यों को जिस रूप में देखता है उनका उसी रूप में अध्ययन कर तथ्यों का संग्रह तथा वर्गीकरण करता है और इन्हीं के आधार पर नियमों का निर्माण करता है। अतः रा.वि. के अध्ययन यथार्थवादी होते हैं।
11. **भविष्यवाणी की क्षमता** – जिस प्रकार विज्ञान में क्या है, के आधार पर क्या होगा, की ओर संकेत किया जाता है उसी प्रकार रा.वि. में समाज की वर्तमान राजनीतिक दशा का अध्ययन कर आने वाले समय में राजनीतिक समाज क्या होगा इसकी उपकल्पना की जाती है। रा.वि. में सामाजिक बदलाव के संदर्भ में कई भविष्यवाणियां की जा सकती हैं; जैसे संसदीय प्रणाली में होने वाले वर्तमान परिवर्तनों (त्रिशंकु, लोकसभा, गठबंधन, सरकार) के आधार पर भविष्य में भारत में सरकारों का स्वरूप क्या होगा इसकी भविष्यवाणी शोधकर्ता कर सकता है। उक्त बात की पुष्टि करते हुए कोहेन ने कहा है कि ''समाजविज्ञान भी कुछ सीमा तक भविष्यवाणी करने की योग्यता रखता है।'' उपर्युक्त तथ्यों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक अध्ययन प्रक्रिया की भांति सामाजिक विज्ञान में भी तथ्यों का एकत्रीकरण, विवेचन, विभाजन तथा सामान्यीकरण किया जाता है। अतः समाजिक विज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है।

सामाजिक घटना : वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग संबंधी समस्या

सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक है। इस कथन की पुष्टि के लिए विद्वानों ने अनेक तर्क दिए हैं; जैसे इसमें वास्तविक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है, यह वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है, इसके नियम सार्वभौमिक हैं, यह सिद्धांतों का निर्माण, परीक्षण एवं तथ्यों का अवलोकन कर सिद्धांतो का निर्माण करता है, इनमें भी भविष्यवाणी करने की योग्यता होती है आदि। वहीं कुछ विद्वानों ने इन तर्कों का खंडन भी किया है। इसकी वैज्ञानिक प्रकृति की आलोचना की है। इसके लिए अनेक प्रमाण भी दिए हैं। दोनों तरह की विचारधाराएं आज भी सामाजिक विज्ञान में प्रचलित हैं। इन दोनों में से किस रूप को सही माना जाए इस संबंध में निर्णय देना कठिन है। यहां हमारा उद्देश्य यह जानना नहीं है कि सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक है अथवा नहीं अपितु यह जानना है कि सामाजिक शोध में वैज्ञानिक पद्धति का

प्रयोग किया जा सकता है अथवा नहीं। इसके प्रयोग में किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस संबंध में लुंडबर्ग ने कुछ कारणों का वर्णन किया है। शोधकर्ता का एक वर्ग यह मानता है कि वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग सामाजिक शोध में नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग में सामाजिक शोध के बाधक होने के निम्न कारण प्रमुख हैं–

1. **सामाजिक घटनाओं की जटिलता** – सामाजिक घटनाओं में जटिलता होती है। इस कारण शोध में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करना कठिन प्रतीत होता है। सामाजिक घटनाओं में क्रम, व्यवस्था और नियम आपस में इस प्रकार गुथें होते हैं कि इनको आसानी से समझा नहीं जा सकता। अतः लुंडबर्ग ने लिखा है कि सामाजिक घटनाएं जो अधिक जटिल होती हैं उन्हें अधिक गहराई से समझने एवं उन पर विचार करने की आवश्यकता होती है। इससे उनमें भी नियमितता, व्यवस्था और क्रमबद्धता के समावेश का पता चल जाता है और ऐसी घटनाओं में भी निश्चित रूप से वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग कर अध्ययन किया जा सकता है। इसके अलावा इस प्रकार एक व्यक्ति जिसे हवाई जहाज उड़ाना नहीं आता उसके लिए इसे उड़ाना जटिल कार्य है। वहीं एक प्रशिक्षित पायलट को इसे उड़ाना आसान लगता है। तात्पर्य यह है कि हमारे पास पर्याप्त जानकारी नहीं है तो हमें कोई घटना जटिल लगती है। वहीं पर्याप्त जानकारी के द्वारा वही घटना हमें सरल लगती है। अतः अज्ञानता भी तथ्यों को और जटिल बना देती है। इसलिए सामाजिक संरचना के संबंध में हमें अपना ज्ञान बढ़ाने और गहन अध्ययन करने से सभी सामाजिक घटनाएं अथवा तथ्य सरल प्रतीत होने लगेंगे। उक्त के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक घटनाओं में जटिलता होने के बाद भी सामाजिक शोध में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग आसानी से किया जा सकता है।

2. **सामाजिक घटनाओं में अमूर्तता** – सामाजिक घटनाओं व सामाजिक संबंधों में हम अमूर्तता का अध्ययन करते हैं अर्थात इन्हें छुआ नहीं जा सकता है। जबकि प्राकृतिक विज्ञान में हम जिन वस्तुओं का अध्ययन करते हैं उन्हें देखा जा सकता है और छुआ भी जा सकता है। अतः सामाजिक घटनाओं में अमूर्तता का होना इसमें वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग में बाधा उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति के व्यवहार को जाना नहीं जा सकता क्योंकि व्यवहार अमूर्त है जबकि व्यक्ति की लंबाई, मोटाई, उसका वजन नापा या मापा जा सकता है क्योंकि यह मूर्त है इसके अलावा विघटित मूल्यों (राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैयक्तिक, नैतिक) को मापने का कोई भी मापदंड नहीं हो सकता क्योंकि ये भी सामाजिक तथ्य होने के साथ–साथ अमूर्त हैं। इन सभी कारणों से सामाजिक शोध में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

3. **सामाजिक घटनाओं में तटस्थता का अभाव** – साधारणतया प्राकृतिक विज्ञान में हम जिन वस्तुओं का अध्ययन करते हैं उनसे हमारा कोई विशेष लगाव नहीं होता। अतः उनका तटस्थ रहकर तथा वस्तुनिष्ठ रहकर अध्ययन करना सरल एवं संभव होता है। इसके विपरीत सामाजिक शोध के शोधकर्ता ऐसे विषय का अध्ययन करते हैं जिसका हिस्सा वे स्वयं भी हो सकते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज का अध्ययन करने में यह असंभव है कि वे अपने को समाज से अलग कर सकें। अतः सामाजिक अध्ययनों में तटस्थता का अभाव भी वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग में बाधा उत्पन्न करता है।

4. **सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति** – सामाजिक घटनाओं की प्रकृति गणनात्मक कम गुणात्मक ज्यादा होती है। गुणात्मक तथ्यों का मापन नहीं किया जा सकता। जो अमूर्त है, जिसे केवल महसूस किया जा सके देखा या छुआ नहीं जा सके उसकी माप कैसे हो सकती है। ऐसे में सामाजिक पद्धति का प्रयोग कठिन प्रतीत होता है। अतः यह आवश्यक है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करते समय समान विज्ञान की प्रविधियों का उपयोग कर इन गुणात्मक तथ्यों की परिमाणात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें जिससे वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग संभव हो सके। इसके अलावा परिमाणात्मक तथ्य के साथ–साथ गुणात्मक तथ्य भी वस्तु विशेष की गहन व्याख्या करने में सहायक होते हैं। अतः यह कहना कि सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति हमेशा आलोचना का विषय होती है और इनमें वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग नहीं हो सकता, निराधार है।

5. **सामाजिक घटनाओं की परिवर्तनशीलता** – बदलाव समाज का नियम है। अर्थात समाज परिवर्तनशील अवस्था में रहता है इसमें समय–समय पर विविधता और परिवर्तनशीलता का गुण देखा जा सकता है और इसी परिवर्तनशीलता के कारण शोधकर्ता वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग अपने अध्ययन में नहीं कर पाता है क्योंकि घटनाओं के संदर्भ में बनाए गए नियम या सिद्धांत भविष्य की घटना या समस्याओं में सहयोगी होंगे। इसकी संभावना कम हो जाती है। उक्त तर्क को अस्वीकार करने के दो तर्क हो सकते हैं– पहला यह है कि सामाजिक घटनाएं जब परिवर्तित होती हों तो इनके परिवर्तन एक व्यवस्थित और नियमित क्रम में होते हैं अर्थात परिवर्तन एकदम से नहीं होता इसमें क्रमबद्धता और नियमितता होती है और इस कारण इसे समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती है। हालांकि प्राकृतिक घटनाओं में भी गत्यात्मकता और परिवर्तनशीलता का गुण होता है। दूसरा तर्क यह है कि समाज की गत्यात्मकता या परिवर्तनशीलता की दर बहुत कम है और इस कारण शोध के आधार पर बनाए गए आज के नियम कल के लिए बिल्कुल सही नहीं होंगे। यह स्वीकार योग्य नहीं है क्योंकि परिवर्तन एकदम से बहुत ज्यादा नहीं होता और इनमें मौलिक परिवर्तन आने में बहुत लंबा समय लग जाता है। इस कारण सामाजिक घटनाओं की गत्यात्मकता वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग में बाधक नहीं हो सकती।

6. **पूर्वानुमान की क्षमता का अभाव** – किसी अध्ययन के वैज्ञानिक होने का आधार यह है कि उस अध्ययन के आधार पर भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। ऐसा केवल प्राकृतिक विज्ञान के साथ ही संभव है। ऐसा अनेक विद्वान मानते हैं। विचारकों का यह वर्ग मानता है कि सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में पूर्वानुमान अथवा भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि प्राकृतिक घटनाओं की तुलना में सामाजिक घटनाओं का पूर्वानुमान अपेक्षाकृत कठिन है पर असंभव नही। जॉन मेन ने इस संबंध में लिखा है कि काम्टे और स्पेन्सर से लेकर वर्तमान समय के वैज्ञानिक एवं विचारक इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि भौतिक और प्राकृतिक घटना की तुलना में मानवीय या सामाजिक व्यवहार की भविष्यवाणी करना अधिक कठिन है। इसका मुख्य कारण है कि सामाजिक घटनाओं एवं मानव व्यवहार की प्रकृति अपेक्षाकृत जटिल और परिवर्तनशील होती है। इसके अलावा पूर्वानुमान का सही होना और पूर्वानुमान की क्षमता होना दोनों बातें यदि अलग–अलग हैं तो प्राकृतिक विज्ञान भी कभी–कभी अपने पूर्वानुमानों को सिद्ध नहीं कर पाते हैं। उदाहरणार्थ मौसम विभाग के पूर्वानुमान अक्सर सटीक या गलत साबित नहीं होते हैं। इसका कारण परिस्थितियों में कोई मौलिक अंतर आना हो सकता है। ऐसी परिस्थितियां प्राकृतिक एवं सामाजिक दोनों के विज्ञानों में आ सकती हैं। अतः कहा जा सकता है कि पूर्वानुमान करने की क्षमता विषय वस्तु पर निर्भर नहीं करती अपितु अध्ययन पद्धति की विकसित अवस्था पर निर्भर करती है।

उक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज विज्ञानों का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से किया जा सकता है। फिर भी यह कहना गलत नहीं होगा कि सामाजिक घटनाओं में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग उतने प्रभावकारी ढंग से नहीं किया जा सकता जितना कि प्राकृतिक विज्ञानों में। इसका एक कारण यह है कि प्राकृतिक विज्ञान की वैज्ञानिक पद्धति विकसित है तथा सामाजिक विज्ञान की वैज्ञानिक पद्धति अभी अपनी बाल्यावस्था में है। अतः समाज विज्ञानों में वैज्ञानिक पद्धति को तभी प्रभावकारी रूप से प्रयोग किया जा सकता है जब इन्हें और अधिक उन्नत और विकसित कर सकें।

अपनी प्रगति जांचिए

3. सामाजिक घटनाओं में किसका अभाव होता है?
   (क) जटिलता (ख) परिवर्तनशीलता
   (ग) निश्चित भविष्यवाणी (घ) उपर्युक्त सभी।
4. सामाजिक घटनाओं में हम किसका अध्ययन करते हैं?
   (क) अमूर्तता (ख) वस्तुनिष्ठता
   (ग) तार्किकता (घ) संशयात्मकता

टिप्पणी

1.4 सामाजिक शोध (अनुसंधान) की प्रकृति, क्षेत्र और महत्व

संसार के विभिन्न प्राणियों में से केवल मानव ही ऐसा प्राणी है जो प्रारंभ से ही अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक एवं जिज्ञासु रहा है। इसकी यह प्रवृत्ति प्राचीनकाल से चली आ रही है तथा चलती रहेगी। आदिकाल से अध्ययनरत होते हुए ही वह वर्तमान वैज्ञानिक युग में विचरण करने लगा है। यह सब मानव की बुद्धि, विवेक एवं कार्यक्षमता की ही देन है कि उसने आज चांद पर तक अपनी पकड़ प्राप्त कर ली है। मनुष्य के पास ज्ञान का अपार भंडार है। वह इस अपार भंडार के माध्यम से ही ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित कर अज्ञानता को समाज से दूर भगा रहा है। मानव का यह प्रयत्न कभी भी शांत नहीं हो सकता बल्कि निरंतर आगे बढ़ता जाएगा। सत्य तक पहुंचने के लिए अध्ययनकर्ता को कठिन से कठिन परिश्रम करना पड़ता है। समाज से संबंधित विषयों में अध्ययनकर्ता को सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब वह निष्पक्ष होकर अध्ययन करे। मानव आज ऐसे अन्वेषण व परीक्षण करने लगा है जिनकी कभी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। कोई भी कार्य चाहे वह प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में हो या समाज विज्ञान के क्षेत्र में अगर उसका व्यवस्थित ढंग तथा वस्तु विशेष की महत्ता को समझकर अध्ययन किया जाए तो उसके परिणाम सदैव ठीक निकलते हैं। यदि अध्ययनकर्ता अपने कार्य के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है तो उसके द्वारा संपादित कार्यों में कोई गलती की संभावना नहीं रह जाती है। इसके अभाव में वास्तविकता सामने नहीं आ सकती है। यही कारण है कि सामाजिक अनुसंधानकर्ता सामाजिक अनुसंधान की मदद से ही समाज में व्याप्त हर स्थिति/परिस्थिति का अध्ययन कर वास्तविकता को समाज के सम्मुख प्रकट करने में सक्षम होता है। इसलिए सामाजिक घटनाओं के संबंध में सत्य की खोज ही सामाजिक शोध है।

सामाजिक शोध : अर्थ एवं परिभाषाएं

मानव ने आज तक का संपूर्ण ज्ञान वैज्ञानिक शोध के द्वारा ही प्राप्त किया है। इसी के द्वारा मनुष्य ने अपने संपूर्ण सामाजिक संगठन, अपने पर्यावरण, अनेक प्रचलित नियमों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। प्रत्येक शोध को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है केवल वही शोध वैज्ञानिक होगा जिसमें इसके दो आवश्यक तत्त्व– 1. निरीक्षण 2. कारण दर्शाना सम्मिलित हों।

यह कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध वह क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन विधि है जिसके आधार पर सामाजिक घटनाओं के संबंध में हम नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं या पहले से प्रतिपादित नियमों की पुनः परीक्षा करते हैं तथा साथ ही तथ्यों के कार्य कारण को स्पष्ट करते हैं। सामान्यतः यह माना जाता है कि सामाजिक शोध, सामाजिक अनुसंधान का ही एक रूप है क्योंकि इसमें संपूर्ण ज्ञान

वैज्ञानिक पद्धति (निरीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग, निष्कर्षीकरण) द्वारा प्राप्त किया जाता है और इसी पद्धति के द्वारा पूर्व स्थापित सिद्धांतों की पुनर्परीक्षा की जाती है व सत्यता की जांच की जाती है। वैज्ञानिकों ने सामाजिक अनुसंधान की निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं :

पी. वी. यंग (P. V. Young) के अनुसार, "सामाजिक शोध एक वैज्ञानिक योजना है, जिसका उद्देश्य तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों का अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों का पुनर्परीक्षण एवं उनमें पाए जाने वाले अनुक्रमों (Sequences), अंतर्संबंधों; कारण सहित व्याख्याओं तथा उनको संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।"

मोसर (Moser) ने लिखा है कि "सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के संबंध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए किए गए व्यवस्थित अनुसंधान को हम सामाजिक शोध कहते हैं।"

बोगार्डस (Bogardus) के अनुसार, "एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रियाशील अंतर्निहित प्रक्रियाओं का अनुसंधान ही सामाजिक शोध है।"

ह्विटने (Whitney) का कथन है, "समाजशास्त्रीय शोध में मानव–समूह के संबंधों का अध्ययन होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि सामाजिक शोध वास्तव में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय में अध्ययन करने की एक वैज्ञानिक योजना है। चूंकि यह वैज्ञानिक है अतः इसके अंतर्गत समस्त अनुसंधान–कार्य वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही होता है। इसमें असंबद्ध तरीकों का कोई भी स्थान नहीं हैं। यह तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों पर निर्भर है और इन्हीं पद्धतियों के द्वारा यह सामाजिक जीवन व घटनाओं के विषय में अन्वेषण करता है। पुराने सिद्धांतों की पुनः परीक्षा करता है तथा विभिन्न सामाजिक तथ्यों के बीच पाए जाने वाले अंतर्संबंधों व अनुक्रमों को दर्शाता है।

1.4.1 सामाजिक शोध की प्रकृति एवं उद्देश्य

सामाजिक अनुसंधान की उपर्युक्त परिभाषाओं में वैज्ञानिकों के द्वारा व्यक्त अनेक लक्षण और विशेषताएं उभर कर समाने आती हैं, जो इसकी प्रकृति को भी स्पष्ट करती हैं। वे इस प्रकार हैं :

1. **प्राक्कल्पना की जांच** : सामाजिक अनुसंधान प्राक्कल्पना के निर्माण से प्रारंभ होता है तथा इसका मुख्य उद्देश्य समाज से संबंधित प्राक्कल्पनाओं की जांच करना होता है।
2. **व्यावहारिक एवं शुद्ध अनुसंधान** : गुडे एवं हाट ने लिखा है कि सामाजिक अनुसंधान समाज से संबंधित दो प्रकार के अनुसंधान होते हैं–

   (1) शुद्ध अनुसंधान, तथा (2) व्यावहारिक अनुसंधान।

शुद्ध अनुसंधान पुस्तकालय में उपलब्ध विषय से संबंधित सामग्री का क्रमबद्ध संकलन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके शुद्ध सिद्धांत का निर्माण करना है। व्यावहारिक अनुसंधान वास्तविक समस्या से संबंधित क्षेत्र से तथ्य एकत्र करके प्राक्कल्पना का परीक्षण करता है।

3. **कार्य–कारण संबंध का अध्ययन** : सामाजिक अनुसंधान प्राक्कल्पना अथवा अध्ययन की समस्या से संबंधित तथ्यों के परस्पर कारण–प्रभाव संबंध का अध्ययन करता है। प्राक्कल्पना में वर्णित समीकरण की जांच कारण–प्रभाव के संदर्भ में करता है।
4. **वैज्ञानिक चरणों का पालन** : सामाजिक अनुसंधान में अनुसंधानकर्ताओं द्वारा वैज्ञानिक शोध के चरणों (प्राक्कल्पना का निर्माण, तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण तथा निष्कर्ष) का कठोरता से पालन किया जाता है।
5. **तथ्यों की खोज** : सामाजिक अनुसंधान में समाज, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक अनुसंधान संगठन आदि से संबंधित नवीन तथ्यों की खोज की जाती है तथा पुराने तथ्यों की जांच की जाती है।
6. **सिद्धांतों का परीक्षण** : सिद्धांत कई प्रकार के होते हैं जैसे– विश्लेषणात्मक, आदर्शात्मक, तत्वमीमांसीय आदि। सामाजिक अनुसंधान जब प्राक्कल्पना अथवा सिद्धांत का परीक्षण करके निर्माण करता है तो वह वैज्ञानिक सिद्धांत कहलाता है। वैज्ञानिक सिद्धांतों की जांच नवीन तथ्यों द्वारा समय–समय पर उनकी प्रमाणिकता, विश्वसनीयता तथा सत्यता के लिए होती रहनी चाहिए। यह कार्य सामाजिक अनुसंधान करता है। सामाजिक अनुसंधान वैज्ञानिक सिद्धांतों का परीक्षण करके उन्हें पुनः स्थापित, खण्डित, संशोधित करता है अथवा त्याग देता है।
7. **नवीन प्रविधियों की खोज** : सामाजिक अनुसंधान में प्राक्कल्पना की जांच, तथ्यों का संकलन, सिद्धांतों की सत्यता आदि से संबंधित अध्ययन करने के अतिरिक्त नवीन प्रविधियों की खोज भी की जाती है। अनेक ऐसी प्राक्कल्पनाएं हैं जिनकी जांच करने तथा उनके संबंधित तथ्य–संकलन की प्रविधियां विज्ञान में नहीं होती हैं। ऐसी प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए सामाजिक अनुसंधान सर्वप्रथम नवीन प्रविधि की खोज करता है। सामाजिक शोध की प्रकृति के संबंध में अंतिम बात यह है कि यह सामाजिक जीवन व घटनाओं पर अधिकाधिक नियन्त्रण पाने का प्रयत्न करता है। यहां नियंत्रण का अर्थ यह नहीं है कि समाज के सदस्यों को डरा–धमकाकर अपने वश में कर लेता है। यहां नियंत्रण से तात्पर्य यह है कि अपने अनुसंधान–कार्य में प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग करने के लिए कुछ सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित करके उसी प्रकार की अन्य सामाजिक घटनाओं पर विभिन्न कारकों के प्रभावों को देखना है। इस प्रकार का नियंत्रण विषय के संबंध में शोधकर्ता के उत्तरोत्तर ज्ञान पर निर्भर होता है। सामाजिक जीवन व घटनाओं के संबंध में अधिकाधिक ज्ञान द्वारा उन पर अधिक नियंत्रण पाना सामाजिक शोध का प्राथमिक लक्ष्य है।

सामाजिक शोध के उद्देश्य

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम सामाजिक शोध के निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख कर सकते हैं; परंतु यहां प्रारंभ में ही यह कह देना उचित होगा कि सामाजिक शोध के उद्देश्यों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– प्रथम, सैद्धांतिक अथवा ज्ञान संबंधी उद्देश्य और द्वितीय, व्यावहारिक अथवा प्रयोगवादी उद्देश्य। उपर्युक्त परिभाषाओं में विशेषतया उद्देश्य पर बल दिया गया है; परंतु यह भी उल्लेखनीय है कि इन विद्वानों द्वारा सामाजिक शोध के व्यावहारिक (Applied) पक्ष की भी अवहेलना नहीं की गई है जैसा कि निम्नलिखित विवेचना के स्पष्ट होगा :

1. **सैद्धांतिक उद्देश्य** : सैद्धांतिक अनुसंधान के उद्देश्य और भूमिकाएं सामाजिक विज्ञानों में बहुत महत्वपूर्ण हैं। सामाजिक विज्ञानों में सिद्धांत, ज्ञान तथ्य–संकलन, अनुसंधान की दिशा (अभिविन्यास), तथ्यों का पूर्वानुमान, ज्ञान में कमी को बताना आदि अनेक उद्देश्य सैद्धांतिक अनुसंधान के हैं। इतना ही नहीं सामाजिक अनुसंधान में अवधारण के विकास की प्रक्रिया तथा वर्गीकरण का महत्वपूर्ण कार्य भी सैद्धांतिक अनुसंधान करता है। इन उपर्युक्त कार्यों, उद्देश्यों तथा भूमिकाओं का उल्लेख गुडे एवं हाट ने किया है–

   (क) **अनुसंधान की दिशा निर्धारण** : अनुसंधान का प्रमुख सैद्धांतिक उद्देश्य विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में अध्ययन का क्षेत्र, विषय–सामग्री, अध्ययन का दृष्टिकोण आदि को निश्चित करना है। फुटबाल का कई परिप्रेक्ष्यों के अनुसार अध्ययन कर सकते हैं। सैद्धांतिक अनुसंधान तय करेगा कि किस सामाजिक विज्ञान में इसका अध्ययन किन प्रभावों को ध्यान में रखकर किया जाए। सैद्धांतिक अनुसंधान इस बात की परिभाषा करने में मदद करता है कि किस प्रकार के तथ्य संबंधित कारक हैं और कौन–से नहीं हैं।

   (ख) **संक्षिप्तीकरण** : सैद्धांतिक अनुसंधान का दूसरा और महत्वपूर्ण उद्देश्य उस समस्त ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करना है जो किसी अध्ययन के संबंध में उपलब्ध है। इस ज्ञान के संक्षिप्तीकरण को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (1) आनुभविक सामान्यीकरण, और (2) विभिन्न प्रस्थापनाओं के संबंधों की व्यवस्था। तथ्यों को विज्ञान में जिस दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए वह सैद्धांतिक अनुसंधान प्रदान करता है तथा ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करता है।

   (ग) **ज्ञान की कमी बताना** : गुडे एवं हाट का कहना है कि जब सैद्धांतिक अनुसंधान उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करता है तथा यह भी निर्देश देता है कि किन तथ्यों को एकत्र करना है तथा कौन–कौन से तथ्य एकत्र किए जा चुके हैं तो वह यह भी बताता है कि अभी और कौन–कौन से तथ्यों को एकत्र करना शेष है तथा कौन–कौन से अध्ययन करने शेष हैं। इसके द्वारा विशिष्ट सामाजिक विज्ञान में कौन–कौन से अध्ययन नहीं हुए

टिप्पणी

हैं का भी पता चल जाता है। जहां उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण हो चुका है उससे यह भी पता चल जाता है कि कौन–से तथ्य वर्गीकृत तथा संगठित नहीं किए गए हैं।

(घ) **तथ्यों का पूर्वानुमान**: सैद्धांतिक अनुसंधान का एक प्रमुख उद्देश्य विज्ञान में तथ्यों की भविष्यवाणी अथवा पूर्वानुमान प्रस्तुत करना है। सैद्धांतिक अनुसंधान का कर्तव्य है कि वह स्पष्ट करे कि कौन–कौन से तथ्यों के घटने की संभावना है। वह यह निर्देश देता है कि कौन से तथ्य एकत्र करने हैं और कौन–से तथ्य नहीं।

(ङ) **तथ्यों का वर्गीकरण** : सैद्धांतिक अनुसंधान विज्ञान में उपलब्ध ज्ञान, तथ्यों आदि का वर्गीकरण, सारणीयन आदि करता है। इसके द्वारा सामाजिक वैज्ञानिकों को विषय की पूर्ण जानकारी हो जाती है कि कौन–कौन से अध्ययन के क्षेत्र शेष हैं जिनका अध्ययन करना बाकी है। इस अनुसंधान का यह उद्देश्य तथा कार्य विशेष महत्वपूर्ण है।

(च) **समस्याओं के कारणों की खोज** : सैद्धांतिक अनुसंधान का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक अनुसंधान व्यावहारिक समस्याओं के केंद्रीय कारकों का पता लगाना है। मान लीजिए कि विभिन्न प्रजाति के समुदाय खेल के मैदान में लड़ते हैं। इस समस्या का तत्काल समाधान यह कर दिया जाता है कि अलग–अलग प्रजाति समूहों को अलग–अलग समय में खेल का मैदान खेलने को दिया जाए। परंतु सैद्धांतिक अनुसंधान इनका समाधान प्रस्तुत करेगा कि उन्हें समाजीकरण, सामाजिक अंतःक्रिया, समूह के मानदंड आदि बचपन से सिखाए जाएं तो बड़े होकर वे परस्पर मित्रतापूर्वक रहेंगे। सैद्धांतिक अनुसंधान सामान्य ज्ञान से कहीं अधिक दूर की जानकारी देता है।

(छ) **समस्याओं का समाधान** : सैद्धांतिक अनुसंधान अनेक विकल्पों तथा समाधानों का विकास करता है जिसके परिणामस्वरूप समस्याओं के अनेक समाधान उपलब्ध हो जाते हैं। समाधान से समस्याओं के निराकरण की लागत कम हो जाती है। गुडे एवं हाट का कहना है कि सिद्धांतों के विकास के द्वारा अनेक व्यावहारिक समस्याओं का समाधान संभव है।

(ज) **प्रशासन को व्यवस्थित करना**: अनुसंधान प्रशासन को व्यवस्थित रूप से चलाने में सहायता पहुंचाता है। सरकारी तथा व्यापारिक संगठनों ने अनुसंधान केंद्रों से सूचनाएं एकत्र करके उनका उपयोग करना शुरू कर दिया है। सामाजिक सैद्धांतिक अनुसंधान, उपकरणों तथा तकनीकों का मूल्यांकन करते हैं, जिनका पुरानी तथा नई समस्याओं के समाधान में उपयोग किया जाता है। गुडे एवं हाट के अनुसार सैद्धांतिक अनुसंधान का एक प्रमुख उद्देश्य समस्याओं का समाधान प्रदान करना है जो प्रशासन को मानकात्मक पद्धति प्रदान करता है।

2. **व्यावहारिक उद्देश्य** : सामाजिक शोध के दूसरे उद्देश्य की प्रकृति व्यावहारिक है। इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक शोध सामाजिक जीवन तथा विभिन्न घटनाओं के संबंध में हमें जो जानकारी प्रदान करता है उसका उपयोग हम अपने व्यावहारिक जीवन में भी कर सकते हैं। और भी स्पष्ट रूप से सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के संबंध में हमारे ज्ञान का एक महत्वपूर्ण शोध है। वह ज्ञान हमें सामाजिक समस्याओं को हल करने व सामाजिक जीवन को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए आवश्यक योजना बनाने में मदद कर सकता है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक शोध के व्यावहारिक उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते है :

   (क) **ज्ञान का विकास** : अनुसंधान का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान का विकास करना है। सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं, सामाजिक जीवन, सामाजिक परिवर्तन आदि के संबंध में ज्ञान का विकास करना है। यह अनुसंधान समाज की संरचना और उसके कार्यों की व्याख्या तथा वर्णन करता है। यह हर क्षेत्र में ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि करता है। उपलब्ध ज्ञान को एकत्र करके क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित करता है। संचयित ज्ञान के आधार पर आगे अनुसंधान करता है। नवीन तथ्यों की खोज करता है।

   (ख) **प्रकार्यात्मक अध्ययन** : व्यावहारिक अनुसंधान सामाजिक घटनाओं तथा अध्ययन की सामग्री से संबंधित तथ्यों का प्रकार्यात्मक अध्ययन करता है। तथ्यों में परस्पर एक–दूसरे के बीच कारण–प्रभाव का क्या संबंध है? सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए, संबंधित तथ्यों के गुण और प्रभाव का अध्ययन आवश्यक है। सामाजिक अनुसंधान इस कार्य को क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित रूप से करके हमारे सामने प्रस्तुत करता है कि तथ्यों के क्या–क्या गुण, दोष, प्रभाव आदि हैं। विभिन्न तथ्य दूसरे तथ्यों से कैसे प्रभावित होते हैं तथा किस प्रकार से उनको प्रभावित करते हैं। इससे सामाजिक व्यवस्थाओं तथा अन्य सामाजिक घटनाओं को समझने में सुगमता रहती है। समाज के सन्तुलन, गतिशीलता, निरंतरता तथा व्यवस्था आदि के लिए इन सबका ज्ञान आवश्यक है, जो सामाजिक अनुसंधान, समाजशास्त्रियों, सामाजिक वैज्ञानिकों, समाज सुधारकों, योजनाकारों आदि को उपलब्ध कराते हैं। गुडे एवं हाट ने भी लिखा है कि बाल–अपराध, निर्धनता, बेकारी आदि सामाजिक समस्याओं को समझने में यह ज्ञान उपयोगी रहता है।

   (ग) **सिद्धांतों की खोज** : व्यावहारिक अनुसंधान का एक प्रमुख उद्देश्य नए–नए सिद्धांतों की खोज करना है। सिद्धांत तथ्यों का परस्पर संबंध बताते हैं। सिद्धांत तथ्यों का संक्षिप्तीकरण करते हैं। सिद्धांतों की खोज करना तथा निर्माण करना व्यावहारिक अनुसंधान के विभिन्न चरणों में से अंतिम चरण, नियमों अथवा सिद्धांतों का निर्माण, जांच, संशोधन आदि है।

सामाजिक घटना से संबंधित तथ्यों का संकलन करने के बाद व्यावहारिक अनुसंधान तथ्यों के आधार पर उनके परस्पर संबंधों को कथन के रूप में प्रस्तुत करता है। ये कथन प्रयोग–सिद्ध तथ्यों पर आधारित होते हैं। व्यावहारिक अनुसंधान सिद्धांतों के द्वारा सामाजिक संगठन की व्याख्या तथा पूर्वानुमान करता है। इसके द्वारा घटनाओं का अनुमान लगाना सरल हो जाता है।

(घ) **अवधारणाओं का विकास** : व्यावहारिक अनुसंधान के अनेक चरण हैं। यह कहना तो बहुत कठिन है कि कौन–सा चरण अधिक महत्वपूर्ण है और कौन–सा कम; परंतु प्रत्येक चरण के अंतर्गत कोई–न–कोई उद्देश्य अवश्य निहित होता है। इसमें एक चरण अवधारणाओं की व्याख्या, स्पष्टीकरण तथा संक्षिप्तीकरण का होता है। अवधारणाएं तथ्यों की व्याख्या करती हैं। जब नए–नए तथ्य अनुसंधान द्वारा खोजे जाते हैं तो उनकी व्याख्या करने वाली अवधारणाओं की भी पुनः परीक्षा करनी होती है। नए तथ्यों के संदर्भ में पुरानी अवधारणाओं की पुनः व्याख्या करना, स्पष्टीकरण करना, सुनिश्चित करना आदि कार्य सामाजिक अनुसंधान को करना आवश्यक हो जाता है। बदली हुई परिस्थितियों में अनुसंधान नए–नए तथ्यों, अवधारणाओं और सिद्धांतों की खोज करता है, निर्माण करता है, इनकी स्थापना करता है। तथा इनमें आवश्यक होता है तो संशोधन भी करता है।

उपरोक्त विवेचन से यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि सामाजिक शोधकर्ता ही ज्ञान को व्यावहारिक अथवा सैद्धांतिक रूप प्रदान करता है। वह केवल ज्ञान प्राप्त करता है तथा तथ्यों के आधार पर सिद्धांतों को स्थापित करता है। श्रीमती यंग लिखती हैं कि सामाजिक शोध का उद्देश्य केवल सामाजिक जीवन को समझकर उस पर अधिक नियन्त्रण स्थापित करना होता है।

1.4.2 सामाजिक शोध का क्षेत्र

समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। स्वाभाविक है कि सामाजिक शोध का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक होता है। सामाजिक शोध के विस्तृत क्षेत्र को कार्ल पियर्सन (1937 : 16) के इस कथन से आसानी से समझा जा सकता है कि, ''सामाजिक शोध का क्षेत्र वस्तुतः असीमित है, और शोध की सामग्री अन्तहीन। सामाजिक घटनाओं का प्रत्येक समूह सामाजिक जीवन का प्रत्येक पहलू, पूर्व और वर्तमान विकास का प्रत्येक चरण सामाजिक वैज्ञानिक के लिए सामग्री है।'' पी.वी. यंग (1977 : 34–98) ने सामाजिक शोध के क्षेत्र की व्यापक विवेचना करते हुए विविध विद्वानों के अध्ययनों यथा कूले, मीड थॉमस, नैनकी, पार्क, बर्गेस, लिण्डस्, सी. राट मिल्स, एंगेल, कोमोरोस्की, मर्डाल, स्टॉफर, मर्डोक, मर्टन, गौर्डन, आलपोर्ट, ब्लूमर, बेल्स, मैज का विवरण प्रस्तुत किया है।

एक समाजशास्त्री सामाजिक जीवन की किसी विशिष्ट अथवा सामान्य घटना का शोध हेतु चयन कर सकता है। सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत मानव

समाज व मानव जीवन के सभी पक्ष आते हैं। समाजशास्त्र की विविध विशेषीकृत शाखाओं यथा– ग्रामीण समाजशास्त्र, नगरीय समाजशास्त्र, औद्योगिक समाजशास्त्र, वृद्धावस्था का समाजशास्त्र, युवाओं का समाजशास्त्र, चिकित्सा का समाजशास्त्र, विचलन का समाजशास्त्र, सामाजिक आन्दोलन, सामाजिक बहिष्करण, सामाजिक परिवर्तन, विकास का समाजशास्त्र, जेण्डर स्टडीज, कानून का समाजशास्त्र, दलित अध्ययन, शिक्षा का समाजशास्त्र, परिवार एवं विवाह का समाजशास्त्र इत्यादि से सामाजिक शोध का व्यापक क्षेत्र स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

सामाजिक शोध के उपरोक्त विस्तृत क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में यह कहना कदापि गलत न होगा कि एक विस्तृत सामाजिक क्षेत्र के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करके सामाजिक शोध अज्ञानता का विनाश करता है। जब हम वृद्धों की समस्याओं, मजदूरों के शोषण और उनकी शोचनीय कार्यदशाओं, बाल मजदूरी, महिला कामगारों की समस्याओं, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, बेकारी इत्यादि पर सामाजिक शोध करते हैं, तो उसके प्राप्त परिणामों से न केवल समाज कल्याण के क्षेत्र में सहायता प्राप्त होती है अपितु सामाजिक नीतियों के निर्माण के लिए भी आधार उपलब्ध होता है। विविध सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित शोध कार्य कानून निर्माण की दिशा में भी योगदान करते हैं। सामाजिक शोध से सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक समझ विकसित होती है, कार्य–कारण सम्बन्ध ज्ञात होते हैं और अन्ततः विषय की उन्नति होती है। सामाजिक शोध न केवल सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होता है, अपितु सामाजिक शोध साामाजिक–आर्थिक प्रगति में भी सहायक होता है। सूचना क्रान्ति के इस युग में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने समाजशास्त्रीय शोध के क्षेत्र को बढ़ा दिया है। पुराने विचार और सिद्धान्त अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। नवीन परिस्थितियों ने जटिल सामाजिक यथार्थ को नये सिद्धान्तों एवं विचारों से समझने के लिए बाध्य कर दिया है। सामाजिक शोध के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक महत्व का ही परिणाम है कि आज नीति निर्माता, कानूनविद्, पत्रकारिता जगत, प्रशासक, समाज सुधारक, स्वैच्छिक संगठन, बौद्धिक वर्ग के लोग इससे विशेष अपेक्षा रखते हैं।

1.4.3 सामाजिक शोध का महत्व

सामाजिक शोध जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, सामाजिक जीवन और घटनाओं को जानने का प्रयास है। संसार अनेक रहस्यों से भरा पड़ा है। मानव जिज्ञासु प्राणी है, जो इन रहस्यों का उद्घाटन करना चाहता है। सामाजिक जीवन और घटनाओं को उद्घाटित करना सामाजिक शोध की मूल आत्मा है। अनुसन्धान हमारी आर्थिक प्रणाली में लगभग सभी सरकारी नीतियों के लिए आधार प्रदान करता है। अनुसन्धान के माध्यम से हम वैकल्पिक नीतियों पर विचार और इन विकल्पों में से प्रत्येक के परिणामों की जांच कर सकते हैं। शोध जिज्ञासा मूल प्रवृत्ति (Curiosity Instinct) की संतुष्टि करती है। शोध से व्यावहारिक समस्याओं का समाधान होता है। शोध से व्यक्ति का बौद्धिक विकास होता है। यह एक तरह का औपचारिक प्रशिक्षण है। अनुसन्धान नई शैली और रचनात्मकता के विकास के लिए हो सकता है। सामाजिक अनुसंधान का महत्व इस प्रकार है–

1. **अज्ञानता का नाश**– अनुसंधान विभिन्न सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान देकर उन घटनाओं के सम्बन्ध में हमारे अज्ञान को दूर करता है।

2. **ज्ञान की प्राप्ति**— सामाजिक अनुसंधान से नवीन ज्ञान मिलता है। इससे न केवल जिज्ञासाओं का समाधान होता है, वरन् इससे प्रगति के रास्ते पर आगे बढ़ना सम्भव होता है। यह नवीन ज्ञान के पुनर्निर्माण में सहायक होता है।
3. **वैज्ञानिक अध्ययन**— सामाजिक अनुसंधान का तीसरा महत्व सामाजिक समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण से सम्बंधित है। आधुनिक युग विज्ञान का युग है। इस युग में प्रत्येक अध्ययन को तब तक स्वीकार नहीं किया जाता, जब तब कि वह वैज्ञानिक आधार पर न हो।
4. **भविष्यवाणी करने में सहायक**— सामाजिक अनुसंधान भविष्यवाणी करने में सहायक होता है। कभी—कभी समाज को भविष्य के बारे में जानकारी नहीं होती है। इस कारण समाज को आगे बढ़ाने में कठिनाई का अनुभव होता है। जिस प्रकार से वैज्ञानिक जीवन और जगत की घटनाओं के आधार पर संकेत देते हैं, ठीक इसी प्रकार का संकेत समाजशास्त्री भी कर सकते हैं।
5. **समाज कल्याण**— समाज कल्याण आधुनिक समाज की जरूरत है। सामाजिक संरचना में विद्यमान तत्व ही विभिन्न समस्याओं के वास्तविक कारण होते हैं। सामाजिक शोध द्वारा इन तत्वों का ज्ञान प्राप्त करके समाज को संगठित कर सकते हैं।
6. **समाज सुधार में सहायक**— सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग समाज सुधारक और प्रशासक करते हैं। इससे सामाजिक सुधार एवं प्रशासन के संचालन में सामाजिक शोध महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करता है। शोध मानव ज्ञान को दिशा प्रदान करता है तथा ज्ञान भण्डार को विकसित एवं परिमार्जित करता है।
7. **सामाजिक जीवन से सम्बंधित**— सामाजिक शोध सामाजिक जीवन से सम्बंधित होता हैं। सामाजिक शोध के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के समस्त पहलुओं का अध्ययन किया जाता है।
8. **पारस्परिक सम्बन्धों की खोज**— समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक घटनाएं अलग—अलग दिखाई देती हैं, किन्तु आन्तरिक दृष्टि से ये घटनाएं अन्तःसम्बंधित हैं। सामाजिक शोध में इन्हीं अन्तःसम्बंधित कारकों की खोज की जाती है।
9. **विश्वसनीय ज्ञान की प्राप्ति**— सामाजिक अनुसंधान में हमें नवीन ज्ञान तो प्राप्त होता ही है, साथ ही ऐसा ज्ञान भी प्राप्त होता है, जिस पर विश्वास किया जा सके।
10. **सामाजिक प्रगति में सहायक**— समाज में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों से समाज का विकास होना तो स्वाभाविक है, किन्तु समाज की प्रगति तभी सम्भव है, जब विकास को सामाजिक कल्याण की दृष्टि से किया जाये और प्रगति का मूल्यांकन किया जा सके।
11. **नवीन और प्राचीन तथ्यों की खोज**— सामाजिक शोध के माध्यम से सामाजिक जीवन से सम्बंधित तथ्यों की खोज की जाती है। तथ्यों को दो भागों

में विभाजित किया जा सकता है। प्राचीन और नवीन समाजशास्त्र के अन्तर्गत व्यक्ति और समाज का अध्ययन किया जाता है। ये दोनों ही गतिशील हैं। इस गतिशील प्रकृति के कारण प्राचीन तथ्यों को नवीन परिस्थितियों में लागू करना पड़ता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. "समाजशास्त्रीय शोध में मानव–समूह के संबंधों का अध्ययन होता है," उपर्युक्त कथन किस समाजशास्त्री का है?

   (क) पी.वी. यंग (ख) ह्विटने

   (ग) मोसर (घ) बोगार्डस

6. सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्यों को मूलतः किन दो भागों में बांटा जा सकता है?

   (क) सैद्धांतिक व ज्ञान संबंधित (ख) सैद्धांनिक एवं व्यावहारिक

   (ग) व्यावहारिक एवं प्रयोगवादी (घ) इनमें से कोई नहीं।

1.5 सामाजिक कार्य अनुसंधान : प्रकृति, उद्देश्य और प्रकार्य

सामाजिक कार्य एक ऐसा व्यवसाय है जिसके द्वारा व्यक्ति की अधिक से अधिक सहायता, विकास एवं उन्नति करने का प्रयास किया जाता है। इसके अन्तर्गत सिद्धांतों, तरीकों, विधियों, निपुणताओं और प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। अतः इन क्षेत्रों में प्रतिदिन नवीनीकरण एवं परिवर्तन की आवश्यकता होती है क्योंकि मनुष्य एक परिवर्तनशील एवं विकासशील प्राणी है। समाज कार्य अनुसंधान इस आवश्यकता को पूर्ण करता है। वह नए–नए तरीकों की खोज करता है, सिद्धांतों का सत्यापन एवं पुनर्स्थापन करता है तथा नए ज्ञान की खोज करता है। यह आवश्यकतानुसार कार्य–कारण में संबंध भी स्पष्ट करता है। सामाजिक कार्यो का व्यक्तियों की समस्याओं से संबंध होता है। अतः समाज कार्य अनुसंधान में भी इनसे संबंधित सिद्धांतों, अवधारणाओं, प्रविधियों तथा निपुणताओं इत्यादि के विषय में खोज की जाती है। इसके अन्तर्गत उपचार तथा सेवा प्रदान करने की विविध प्रणालियों, उनकी आवश्यकताओं और उनसे संबंधित नवीन साधनों की खोज की जाती है।

अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य सभी वैज्ञानिक क्षेत्रों में ज्ञान का विकास और वृद्धि करना है। सामाजिक कार्य अनुसंधान एक ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा सामाजिक कार्य को नवीन ज्ञान प्राप्त होता है। प्रारंभ में सामाजिक कार्य सामाजिक विद्वानों के अनुसंधान के तरीकों को अपनाने में हिचकिचाता था। अतः सामाजिक कार्य अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति को प्रमाणित नहीं किया गया।

प्रारंभिक सामुदायिक अध्ययन सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा सामाजिक समस्याओं, संस्थागत कार्यक्रमों, संरचना, कार्य पद्धति तथा सामाजिक कार्य का इतिहास, भौतिक

तथा उपचारात्मक अवलोकन इत्यादि खोजों ने केवल नयी सामाजिक सेवाओं पर बल दिया। इस प्रकार के अध्ययन ने सामुदायिक समाज कल्याण योजना को सुगम बनाया परन्तु मानव प्रकृति, व्यवहार और सम्बन्धों के वैज्ञानिक ज्ञान को गहरा नहीं बनाया। इन अध्ययनों ने सामाजिक कार्य के तरीकों की आवश्यकता को सिद्ध किया। नवीन ज्ञान एवं तरीकों के विकास के साथ–साथ अनुसंधान का क्षेत्र अब और भी बढ़ता जा रहा है। परन्तु सामाजिक अनुसंधान और सामाजिक कार्य अनुसंधान में अन्तर है क्योंकि सामाजिक अनुसंधान सामाजिक मूल्यों, धारणाओं और कार्य–कारण के सम्बन्धों को निरपेक्ष भाव से देखता है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्राप्त निष्कर्षों का व्यावहारिक परिणामों से सम्बन्ध हो ही। अतः ऐसा अनुसंधान विशुद्ध अनुसंधान होता है। सामाजिक कार्य अनुसंधान सामाजिक शक्तियों का अध्ययन व्यक्ति के सन्दर्भ में करता है। उसका उद्देश्य व्यक्ति की सामाजिक समस्याओं का समाधान करना है। वह यह देखता है कि नये अनुसंधान किस प्रकार व्यक्ति, समूह तथा सम्पूर्ण समुदाय की सेवाओं में सुधार ला सकते हैं।

सामाजिक कार्य अनुसंधान की परिभाषा

सामाजिक कार्य अनुसंधान एक ऐसी खोज है जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके ऐसे उपायों की खोज की जाती है जिनसे व्यक्ति, समूह, समुदाय तथा सम्पूर्ण समाज को अच्छे ढंग से सेवा प्रदान की जा सके और समस्याओं का समाधान एवं व्यक्ति का सर्वोन्मुखी विकास सम्भव हो सके।

सामाजिक कार्य अनुसंधान को कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–

फ्रीडलैन्डर के अनुसार, "समाज कार्य शोध का अर्थ है, समाज कार्य के संगठन, कार्य एवं प्रणालियों की वैधता का आलोचनात्मक अन्वेषण और वैज्ञानिक जाँच जिससे उन्हें प्रमाणित किया जा सके, उनका सामान्यीकरण किया जा सके और समाज कार्य के ज्ञान और निपुणता में वृद्धि की जा सके।"

वेब्स्टर शब्द–कोष के अनुसार, "सामाजिक शोध एक अध्ययन–परायण अन्वेषण है जो सामान्यतः आलोचनात्मक और अत्यन्त विस्तृत जाँच या परीक्षण के रूप में होता है और जिसका उद्देश्य स्वीकृति–प्राप्त परिणामों के विषय में नवीन सूचनाओं के आधार पर पुनः विचार करना है।"

सोशल वर्क इयर बुक, सन् 1949 ई. के अनुसार, "समाज कार्य शोध का अर्थ है समाज कार्य के कार्यों और प्रणालियों की वैधता की वैज्ञानिक जाँच।"

फ्लेचर (Joan Fletcher) ने समाज कार्य में अनुसंधान को 'समाज कार्य के कार्यों एवं प्रणालियों की वैधता की वैज्ञानिक जांच' कहकर परिभाषित किया है।'

क्लीन (Klien) के अनुसार, "ज्ञान का संग्रह जो समाज कार्य में चेतन प्रयोग के लिए और अभ्यासकर्ताओं में निपुणता के विकास के लिए उपलब्ध है वह कुछ तो सामाजिक एवं प्राणीशास्त्रीय विज्ञानों से लिया गया है और कुछ कार्य क्रियाओं के वास्तविक संपादन से, इस प्रकार किये हुए तथ्यों को जब संगठित एवं नियमबद्ध किया जाता है तो समाज कार्य के विज्ञान का निर्माण होता है। जब यह तथ्य ज्ञात किये जाते हैं तो संकेत एवं ज्ञान इन नियमों द्वारा नियमबद्ध किये जाते हैं और उन्हें सामान्य सिद्धांतों का रूप दिया जाता है तब समाज कार्य अनुसंधान की उत्पत्ति होती है।"

मैक्डोनाल्ड (Mac Donald) के अनुसार, "समाज कार्य अनुसंधान के अंतर्गत वे प्रश्न सम्मिलित होते हैं जो समाज कार्य सेवाओं के नियोजन या प्रशासन के बीच उठते हैं, जो समाज कार्य तत्वावधानों के अंतर्गत अन्वेषण के लिए उपयुक्त होते हैं।"

फ्रीडलैण्डर (Friedlander) के अनुसार, "समाज कार्य में अनुसंधान समाज कार्य ज्ञान एवं निपुणता की जांच, सामान्यीकरण और विस्तार करने के लिए समाज कार्य संगठन, कार्य एवं प्रणालियों की वैधता की आलोचनात्मक पूछताछ एवं वैज्ञानिक परीक्षण है।"

सामाजिक कार्य के साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सामाजिक अनुसंधान ही मात्र एक बंटवारा था जो प्रयोग में लाया जाता था। 1922 में मैरी रिचमण्ड ने सामाजिक कार्य इयर बुक में, सामाजिक अनुसंधान शब्द का प्रयोग किया है। 1933 में प्रकाशित समाज कार्य इयर बुक में 'समाज कार्य' अनुसंधान शब्दावली का प्रयोग किया गया। काफी लम्बी अवधि तक सामाजिक कार्य अनुसंधान तथा सामाजिक कार्य दोनों अवधारणाएं बदल–बदल कर प्रयोग में लाई जाती रहीं। परंतु अब सामाजिक कार्य अनुसंधान को एक अधिक विस्तृत अवधारणा मान लिया गया है। ईवान क्लेग के अनुसार, 'सामाजिक कार्य में अनुसंधान' तथा सामाजिक अनुसंधान प्रायः एक–दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाए गए हैं, और दोनों शब्दों का प्रयोग इतनी ढिलाई के साथ किया गया है कि उनकी विषय वस्तु अनिश्चित परिलक्षित हो रही है। अमेरिका में एक वर्कशॉप 'वर्कशॉप ऑन रिसर्च सोशल वर्क' आयोजित की गई जिसमें जनवरी 1948 में कहा गया था कि समाज कार्य और सामाजिक अनुसंधान 'मौलिक सामाजिक विज्ञानों में से किसी गति की ओर निर्देशित होता है जबकि समाज कार्य में अनुसंधान व्यावसायिक कार्यकर्ताओं एवं समुदाय द्वारा समाज कार्य करते समय अनुभव की जाने वाली समस्याओं से संबंधित है।' वर्कशॉप प्रतिवेदन में 'सामाजिक अनुसंधान' और 'समाज विज्ञान अनुसंधान' अवधारणाओं को समानार्थक समझा गया है जो उपयुक्त नहीं है। इसी बात को और भी अधिक स्पष्ट किया जा सकता है–

1. सामाजिक अनुसंधान शब्द से अभिप्राय है– ज्ञान की वृद्धि, सुधार अथवा जांच करने के लिए सामान्यीकरण के उद्देश्य से सामाजिक घटनाओं पर 'अनुसंधान' अर्थात् वैज्ञानिक प्रणालियों और कार्यविधियों के प्रयोग से है, चाहे वह ज्ञान सिद्धांत के निर्माण या कला के प्रयोग में सहायता प्रदान करे। इस प्रकार सामाजिक शोध शब्द को अधिक विस्तृत मानना चाहिए, क्योंकि समाज विज्ञान शोध और समाज कार्य शोध दोनों ही इसमें सम्मिलित हैं।
2. 'अनुसंधान' में अर्थपूर्ण प्रश्नों और समस्याओं का उत्तर या समाधान ढूंढ़ने के लिए वैज्ञानिक प्रणालियों तथा कार्यविधियों का प्रयोग किया जाता है।

सामाजिक कार्य अनुसंधान के उद्देश्य

समाज कार्य शोध का प्रमुख कार्य सामाजिक कार्य के उद्देश्यों को पूर्ण करने, नए ज्ञान की खोज करने और सेवार्थियों की समस्याओं के कारणों आदि को जानने में समाज कार्य की सहायता करना है। सामाजिक कार्य के अंतर्गत शोध को सामाजिक कार्य

व्यवसाय की प्रकृति के कारण ही ऐसा ज्ञान अवश्य प्रस्तुत करना चाहिए जिसे सामाजिक कार्य समस्याओं के साथ कार्य करते हुए प्रयुक्त किया जा सके। इस आधार पर समाज कार्य शोध के निम्नलिखित उद्देश्यों का वर्णन किया जा रहा है–

1. वैयक्तिक एवं सामाजिक विघटन के कारणों की खोज करना एवं संगठनात्मक शक्तियों को प्रोत्साहित करना।
2. सामाजिक कार्य की प्रणालियों में अधिकतम सहयोग की स्थापना एवं विकास हेतु समन्वय के क्षेत्रों की खोज करना तथा इनके योगदान की स्पष्ट व्याख्या करना।
3. सामाजिक नीतियों, क्रियाओं एवं विधानों को सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के समाधान से संबंधित करना।
4. सामाजिक कार्य शोध का उद्देश्य समाज कार्य के सिद्धांत और व्यवहार में संबंध स्थापित करना।
5. सामाजिक कार्य की अवधारणाओं का परीक्षण करना एवं मान्यता प्राप्त अवधारणाओं का विकास करना।
6. नए ज्ञान की प्राप्ति और विकास करना, समाज कार्य के क्षेत्र में इसका उपयोग करना ताकि व्यक्ति, समूह और समुदाय लाभान्वित हो सकें।
7. विभिन्न अनुसंधान प्रविधियों को अधिक परिष्कृत एवं परिमार्जित करना।

सामाजिक कार्य अनुसंधान के अन्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक कार्य सेवा की आवश्यकताओं की खोज तथा प्रदान की जाने वाली समाज कार्य सेवा का गुणात्मक एवं परिमाणात्मक विश्लेषण करना और उन्हें दिशा प्रदान करने का सुझाव देना।
2. सामाजिक कार्य के लिए आवश्यक ज्ञान के स्रोत को आगे बढ़ाना तथा उसके उद्देश्यों, निपुणताओं एवं दर्शन संबंधी पुनर्विचार करने की दिशा में पहल करना।
3. भिन्न–भिन्न सामाजिक परिस्थितियों के लिए विभिन्न नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों आदि का मूल्यांकन करना और उन्हें लागू करने के लिए समाज कार्य के विभिन्न ढंगों के गुणों एवं दोषों का पता लगाकर उनमें आवश्यक संशोधन करना।
4. सामाजिक कार्य अवधारणाओं का परीक्षण करते हुए मान्यता प्राप्त समाज कार्य शब्दावली का विकास करना।

सामाजिक कार्य अनुसंधान की प्रकृति एवं प्रकार्य

सामाजिक कार्य शोध का प्रमुख उद्देश्य सेवा करने वाले को उनकी संस्कृति एवं पर्यावरण से पृथक किये बिना उनको अपनी सामाजिक परिस्थितियों में ही समायोजित करने में सहायता प्रदान करना है।

समाज कार्य शोध को कला एवं विज्ञान दोनों के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। इसकी वैज्ञानिकता का परीक्षण क्रमबद्ध सुव्यवस्थित विधि से किया जा सकता है तथा इसकी कला उत्तरदाताओं से पूछे जाने वाले प्रश्नों की विधि से स्पष्ट होती है। मुख्यतः समाज कार्य शोध इन दोनों को अपने में समाहित किए हुए हैं।

वैज्ञानिक विधि का उपयोग किसी भी शोध को अत्यधिक प्रभावशाली बनाने, स्पष्ट एवं नए ज्ञान की खोज के लिए किया जाता है। सामाजिक कार्य शोध विशेषतया मनुष्य एवं उसके सामाजिक पर्यावरण के मध्य अन्तःसंबंधों को विकसित करने एवं नयी जानकारी प्राप्त कराने का एक प्रयास है, जोकि सेवा करने को उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता प्रदान करता है। साथ ही शोध कार्यों के माध्यम से सामाजिक समस्याओं के कारणों की खोज करते हुए उनको हल करता है। हम इस दृष्टिकोण से सामाजिक कार्य के शोध का क्षेत्र उन सामाजिक परिस्थितियों, घटनाओं एवं समस्याओं को मान सकते हैं जोकि वैयक्तिक एवं संपूर्ण समाज के विकास में अवरोधक हैं।

सामाजिक अनुसंधान के प्रकार्य

ग्रीन वुड ने सामाजिक कार्य शोध को दो भागों में वर्गीकृत किया है जोकि निम्नलिखित हैं–

1. मौलिक सामाजिक कार्य शोध
2. परिचालनात्मक सामाजिक कार्य शोध

ग्रीन वुड के अनुसार, 'सामाजिक कार्य ज्ञान का ऐसा शोध जो तत्कालीन लाभ हेतु कम उपयोगी है, को मौलिक समाज कार्य शोध कह सकते हैं।' सामान्यतः सामाजिक कार्य शोध व्यावहारिक एवं परिचालनात्मक है, इसकी सापेक्ष मौलिकता है।

1. मौलिक सामाजिक कार्य शोध (Fundamental Social Work Research)

(क) समाज कार्य संस्कृति

(ख) समाज कार्य दर्शन

(ग) परिमापन सिद्धांत

(घ) प्रयोग सिद्धांत या अभ्यास सिद्धांत

(ङ) समाज कार्य इतिहास

(च) ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय ज्ञान

2. परिचालनात्मक शोध (Operational Research)

(अ) विवरणात्मक सांख्यिकी

(ब) नियोजन संबंधी सूचना

(स) प्रशासकीय सूचना

समाज कार्य शोध के विभिन्न क्षेत्रों का वर्गीकरण अमेरिका की वेस्टर्न रिजर्व यूनिवर्सिटी के स्कूल आफ अप्लाईड सोशल साइंसेज द्वारा 1947 में कराई गई 'वर्कशॉप ऑन रिसर्च इन सोशल वर्क' के प्रतिवेदन द्वारा निम्नलिखित रूप में किया गया–

(1) प्रशासकीय उद्देश्यों के लिए शोध

(क) विकास हेतु जन–सामान्य के संबंधों की समस्याएं

(ख) कर्मचारीगण

(ग) सेवा के प्रकार एवं सीमा का परिमापन

(घ) सेवा लेखा

(ङ) वित्तीय अभिलेखों के स्वरूप एवं कार्यरीतियां

(च) कोष एकत्रीकरण के ढंगों की निपुणता

(छ) नीति के कार्यान्वयन से संबंधित समस्याएं

(ज) धन का व्यय

(2) नियोजन संबंधी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शोध

(क) निजी एवं सार्वजनिक संस्थाओं के मध्य कार्यों का विभाजन

(ख) मौलिक अनुसंधान

(ग) मनो–सामाजिक समस्याओं की प्रकृति, निदान एवं उपचार की प्रक्रिया

(घ) परीक्षण की आवश्यकता सुनिश्चित करने वाली समाज कार्य अभ्यास की मान्यताएं

(ङ) शोध प्रणालियां

उपरोक्त वर्गीकरणों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक कार्य शोध के क्षेत्र सामाजिक कार्य के क्षेत्रों से भिन्न नहीं है वरन् लगभग एक समान ही हैं क्योंकि सामाजिक कार्य शोध का उद्देश्य सामाजिक कार्य की प्रभावपूर्णता में विकास करना है। ऊपरवर्णित वर्गीकरण के आधार पर सामाजिक कार्य शोध के कुछ अन्य क्षेत्रों को निम्न रूप से वर्गीकृत किया गया है–

(क) सेवार्थियों यथा व्यक्ति, समूह या समुदाय के मूल्यों, परंपराओं एवं मनो–सामाजिक समस्याओं का अन्वेषण।

(ख) विभिन्न समाज विज्ञानों से प्राप्त अवधारणाओं एवं सिद्धांतों का अन्वेषण

(ग) शोध पद्धतियों एवं उपकरणों का निर्माण

(घ) समस्या–समाधान के लिए आवश्यकताओं का निर्धारण

(ङ) समाज कार्य की अवधारणाओं एवं सिद्धांतों की वैधता का अन्वेषण

(च) आवश्यकताओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन

(छ) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वांछित क्षमता की खोज।

सामाजिक कार्य शोध के क्षेत्रों को सुगत दास गुप्ता ने निम्नलिखित रूपों में प्रस्तुत किया है–

1. बाल कल्याण,
2. निराश्रितों का कल्याण,
3. विकलांगों का कल्याण,
4. चिकित्सकीय समाज कार्य,
5. श्रम परिस्थितियां,
6. जनजातीय कल्याण,

7. कर्मचारीगण प्रबंध एवं औद्योगिक मनोविज्ञान,
8. सामुदायिक संगठन,
9. ग्रामीण सामुदायिक विकास,
10. नगरीय सामुदायिक विकास,
11. समाज कार्य एवं आर्थिक कल्याण,
12. समाज कार्य एवं कल्याण सेवाएं
13. मनोचिकित्सकीय समाज कार्य, तथा
14. अपराध शास्त्र, बाल अपराध एवं सुधारवादी प्रशासन,
15. संस्थाओं का सर्वेक्षण।
16. परिवार कल्याण,
17. महिला कल्याण,
18. शोषित समूहों का कल्याण।

अमेरिकन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी

अमेरिकन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी (American Sociological Society) ने सामाजिक शोध के क्षेत्र के अंतर्गत निम्नलिखित अध्ययन विषयों को सम्मिलित करने के पक्ष में राय दी है–

1. संगठन तथा संस्थाओं का अध्ययन।
2. जनसंख्या एवं प्रादेशिक समूहों का अध्ययन, जिनके अंतर्गत एक क्षेत्र विशेष में निवास करने वाली जनसंख्या तथा उस क्षेत्र में विद्यमान सामुदायिक परिस्थितियों का अध्ययन सम्मिलित है।
3. मानव प्रकृति तथा व्यक्तित्व का अध्ययन।
4. परिवार की प्रकृति, अन्तर्निहित नियम, संगठन एवं विघटन का अध्ययन।
5. जनसमूह तथा सांस्कृतिक समूह का अध्ययन।
6. ग्रामीण समुदायों का अध्ययन, इसके अंतर्गत ग्रामीण जनसंख्या, ग्रामीण परिस्थितियां, ग्रामीण व्यक्तित्व एवं व्यवहार–प्रतिमानों और उनमें अंतर्निहित धारणाओं तथा नियमों एवं ग्रामीण संगठन और संस्थाओं का अध्ययन सम्मिलित है।
7. सामाजिक समस्याओं, सामाजिक व्याधियों तथा सामाजिक अनुकूलन के अध्ययन के अंतर्गत निर्धनता तथा अपराध व बाल अपराध, स्वास्थ्य, मानसिक व्याधि स्वास्थ्य रक्षा इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।
8. सामूहिक व्यवहारों के अध्ययन के अंतर्गत समाचार पत्र, मनोरंजन, त्योहारों का मनाना, प्रचार, पक्षपात, जनमत, चुनाव, युद्ध आदि सामूहिक व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।
9. सिद्धांतों तथा पद्धतियों में नए सामाजिक नियमों की खोज, पुराने सिद्धांतों तथा विधियों का पुनः परीक्षण, सामाजिक जीवन में अंतर्निहित सामान्य नियम व

प्रक्रियाएं तथा नयी पद्धतियों की खोज शामिल है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज कार्य का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है।

10. समूहों में पाए जाने वाले संघर्ष तथा व्यवस्थापन का अध्ययन, इसके अंतर्गत धर्म का समाजशास्त्र, शिक्षा तथा अधिनियम, सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक विकास का अध्ययन किया जाता है।

सामाजिक कार्य अनुसंधान में कमी के कारण

सामाजिक कार्य अनुसंधान की वर्तमान स्थिति को इसलिए संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि कुछ ही समाज कार्य के विश्वविद्यालय ऐसे हैं जो पीएच. डी. की उपाधि के लिए पाठ्यक्रमों का आयोजन ढंग से कर रहे हैं। प्रबन्धों में भी अधिकतर अन्वेषणात्मक एवं विवरणात्मक ही होते हैं। अतः प्रयोगात्मक रचना का प्रयोग करते हुए पूर्ण किये गये अनुसंधान नहीं के बराबर हैं।

अधिकतर सामाजिक कार्य के विद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी एक परियोजना रिपोर्ट तैयार करता है जो प्रायः पहले से किये गये कार्यों से मिलती–जुलती होती है।

सामाजिक कल्याण संस्थाओं द्वारा भी सामाजिक कार्य अनुसंधान को उचित प्रोत्साहन नहीं प्रदान किया जाता है क्योंकि निजी क्षेत्र की समाज कल्याण संस्थाओं की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। सार्वजनिक समाज कल्याण संस्थाओं में नियम एवं कार्यरीतियाँ इतनी कठोर हैं कि अनुसंधान के लिए आवश्यक स्वतंत्र वातावरण उपलब्ध नहीं हो पाता है।

सामाजिक कार्य अनुसंधान में पिछड़ेपन के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

- प्रजातांत्रिक समाजवाद के लक्ष्य का दम भरने के बावजूद हमारी राष्ट्रीय समाज कल्याण नीति समाज कल्याण को उचित प्रोत्साहन एवं संरक्षण देने वाली नहीं रही है। फलतः केवल कुछ विश्वविद्यालय एवं वैज्ञानिक तथा निजी संस्थाओं को छोड़कर संघीयसूची के अन्तर्गत स्वास्थ्य, शिक्षा तथा समाज कल्याण को सम्मिलित नहीं किया गया है।
- सरकार की ओर से समाज कार्य की स्नातकोत्तर डिग्री को समाज कल्याण सेवाओं के लिए अनिवार्य शर्त के रूप में भी पूर्ण स्वीकृति प्राप्त नहीं है। परिणामतः समाज कार्य अनुसंधान तथा समाज कार्य व्यवसाय के विकास को गम्भीर रूप से क्षति हुई है।
- विशेषज्ञ आई.ए.एस. तथा पी.सी.एस. अधिकारी समाज कार्य को सही रूप में पहचानने में असमर्थ रहते हुए राजकीय संस्थाओं के सहयोग से होने वाले समाज कार्य अनुसंधान में बाधक बनते हैं।
- सार्वजनिक समाज कल्याण संस्थाओं में नियमों एवं कार्यरीतियों पर अधिक बल देने से समाज कार्य अनुसंधान की सही स्थापना नहीं हो पाती है।
- शिक्षार्थी अनुसंधान कार्य मध्यम स्तर का करके येन केन प्रकारेण मात्र उपाधि प्राप्त करना चाहते हैं।

- शोध निर्देशन करने वाले अधिकतर शिक्षकों का सांख्यिकी में उच्च स्तरीय ज्ञान तथा विशेष रूप से समाज कार्य अनुसंधान में सांख्यिकी के प्रयोग से संबंधित ज्ञान की कमी का अनुभव होता है।
- स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाले समाज कार्य स्कूल के पास से प्राप्त होने वाली सहायता उपयुक्त एवं आवश्यकता अनुरूप नहीं मिल पाती है।
- समाज कार्य स्कूल को विभिन्न सहायता प्रदान करने वाली संस्थाओं द्वारा निर्धारित परियोजनायें इन संस्थाओं के अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण समुचित रूप से नहीं चल पाती हैं।
- व्यक्तिगत क्षेत्र में पाई जाने वाली संस्थायें कुछ गिने चुने चंद सदस्यों द्वारा कथित ऐच्छिक समाज सेवियों के साथ में हैं जो इसका उपयोग अपने स्वार्थ हेतु ज्यादा करते हैं।
- समाज कल्याण संस्थाओं में समाज कार्य में अप्रशिक्षित कर्मचारियों के सेवारत होने के कारण समाज कार्य अनुसंधान के लिए आवश्यक अभिमुखीकरण नहीं हो पाता है।

सामाजिक कार्य अनुसंधान के विकास हेतु सुझाव

सामाजिक कार्य अनुसंधान हेतु विकास के लिए निम्न सुझाव दिए गए हैः

1. समाज कल्याण कार्यक्रमों के आयोजन का अधिकतम उत्तरदायित्व स्वयं वहन करे तथा योजनाओं के अन्तर्गत धनराशि का प्रर्याप्त रूप से बड़ा प्रतिशत कल्याण कार्यक्रमों के लिए निर्धारित किया जाये।
2. विशेषीकृत समाज कल्याण संस्थानों में केवल प्रशिक्षित समाज कार्यकर्ताओं को नियुक्त किया जाए।
3. समाज कल्याण विभागों में सर्वोच्च अधिकारी के रूप में आई.ए.एस. तथा पी.सी. एस. अधिकारियों की नियुक्ति न करके समाज कार्य व्यवसाय में प्रशिक्षित समाज कार्यकर्ताओं को नियुक्त किया जाना चाहिए।
4. सार्वजनिक समाज कल्याण संस्थाओं के तत्वावधान में लिये जाने वाले समाज कार्य अनुसंधान के लिए नियमों एवं कार्यरीतियों को लचीला बनाया जाना चाहिए, जिससे स्वतन्त्र वातावरण की स्थापना हो सके।
5. समाज कल्याण के क्षेत्र को अधिक विस्तृत एवं व्यापक रूप देना आवश्यक है, जिससे समाज कार्य के विद्यार्थियों को सेवायोजन के अवसर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने के साथ—साथ उन्हें उच्च स्तरीय अनुसंधान के लिए आवश्यक प्रेरणा मिल सके।
6. विश्वविद्यालय के अधीन कार्य करने वाले समाज कार्य विभागों को अपने विषय में नीतियों के निर्धारण के क्षेत्र में विभागों की तुलना में अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिए।
7. स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले सहायता प्राप्त समाज कार्य विभाग को वित्तीय सहायता उपयुक्त समय पर प्रदान की जाए।

8. प्राइवेट सेक्टर कार्यरत संस्थाओं को अनुदान देने की एक अनिवार्य शर्त के रूप में इस बात का प्राविधान किया जाय कि इनकी कार्यकारिणी के अन्तर्गत आधे से अधिक प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता अवश्य हों तथा कर्मचारियों के रूप में नियुक्त केवल समाज कार्य व्यवसाय में प्रशिक्षित समाज कार्य के कार्यकर्ता ही होने चाहिए।
9. समाज कार्य स्कूल एवं समाज कल्याण संस्थाओं के बीच प्रभावपूर्ण संचार का विकास किया जाना आवश्यक माना जाए।
10. समाज कार्य अनुसंधान को अधिक से अधिक विषयात्मकता के साथ संचालित करते हुए अनुसंधान समस्या से सम्बन्धित यथासम्भव सभी तथ्यों को एकत्रित किया जाये।
11. समस्याओं का चुनाव पर्याप्त सोच विचार के पश्चात व्यवसाय के विकास को दृष्टि में रखते हुए किया जाना चाहिए तथा अनावश्यक रूप से अन्य विषय विशेषज्ञों में अपनी कुशलता को प्रमाणित करने हेतु अनुसंधान कार्य नहीं किया जाए।
12. स्पष्ट रूप से एवं सूक्ष्मता के साथ परिभाषित समाज कार्य शब्दावली का विकास आवश्यक है।
13. अमेरिकी काउन्सिल ऑफ सोशल वर्क एजूकेशन (Council of Social Work Education) की भाँति अखिल भारतीय स्तर पर भारतीय समाज कार्य शिक्षा परिषद की स्थापना की जाए जो सलाहकारी एवं समन्वयकारी संस्था में सक्रिय हो सके।
14. समाज कार्य अनुसंधान की प्रशासकीय व्यवस्था पर्याप्त रूप से लचीली तथा अनुसंधान को प्रोत्साहन प्रदान करने वाली होनी चाहिए।
15. विभिन्न समाज कार्य विद्यालयों को अपने–अपने क्षेत्र में कार्य करने वाली समाज कल्याण संस्थाओं को उनकी सामान्य क्रिया तथा विशेष रूप से समाज कार्य अनुसंधान के क्षेत्र में सलाह प्रदान करनी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

7. सामाजिक कार्य अनुसंधान में किसको प्रमाणित नहीं किया गया है?
   (क) सामाजिक पद्धति (ख) वैज्ञानिक पद्धति
   (ग) दार्शनिक पद्धति (घ) मनोवैज्ञानिक पद्धति
8. मैरी रिचमण्ड ने किस सन् में 'सामाजिक कार्य इयर बुक' में सामाजिक अनुसंधान शब्द का प्रयोग किया?
   (क) सन् 1920 (ख) सन् 1921
   (ग) सन् 1922 (घ) सन् 1923

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ख)
3. (घ)
4. (क)
5. (ख)
6. (ख)
7. (ख)
8. (ग)

1.7 सारांश

विज्ञान अनुसंधान कार्य का अनिवार्य हिस्सा विज्ञान का कार्य तथ्यों का वर्गीकरण, इनके कर्मों की स्वीकारोक्ति और सापेक्षिक महत्व को जानना है।

सामान्यतया प्राकृतिक घटनाएं एक दूसरे से पृथक घटित न होकर निश्चित व्यवस्था और क्रम के अनुसार घटित होती हैं।

विज्ञान का कार्य मात्र तथ्यों की व्याख्या करना, नियमों की रचना करना एवं उन्हें अमूर्तता प्रदान करना नहीं है वरन वह अपने नियमों के आधार पर भविष्य में होने वाली घटनाओं की व्याख्या में भी सक्षम है।

किसी भी शोध में विषय वस्तु का विश्लेषण करने के लिए शोधकर्ता के लिए विज्ञान की प्रकृति को समझना आवश्यक है। मनुष्य वैसे तो स्वभाव से जिज्ञासु प्रवृत्ति का है उसकी इस प्रवृति ने ही उसे प्राकृतिक घटनाओं को सकारण समझने हेतु प्रेरित किया है।

सामाजिक शोधों में अध्ययन का विषय सामाजिक समस्याएं और सामाजिक घटनाएं होती हैं अर्थात सामाजिक शोधों में इन घटनाओं और समस्याओं का अवलोकन कर तथ्यों को खोजना और प्राप्त तथ्यों की तुलनात्मक व्याख्या कर नियमों का निर्माण किया जाता है।

सामाजिक विज्ञानों के शोध के लिए अध्ययन विषय से संबंधित तथ्य अवलोकन प्रक्रिया की सहायता से संकलित किए जाते हैं। अवलोकन प्रक्रिया के भी विभिन्न चरण व प्रकार होते हैं।

सामाजिक अध्ययनों में भी तथ्यों को कार्यकारण के आधार पर भिन्न–भिन्न समूहों में विभाजित किया जाता है तथा इस विभाजन में इनके परस्पर गुणों का उल्लेख किया जाता है।

सामाजिक घटनाओं की प्रकृति गणनात्मक कम गुणात्मक ज्यादा होती है। गुणात्मक तथ्यों का मापन नहीं किया जा सकता।

सामाजिक शोध वह क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन विधि है जिसके आधार पर सामाजिक घटनाओं के संबंध में हम नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं या पहले से प्रतिपादित नियमों की पुनः परीक्षा करते हैं तथा साथ ही तथ्यों के कार्य कारण को स्पष्ट करते हैं।

सैद्धांतिक अनुसंधान विज्ञान में उपलब्ध ज्ञान, तथ्यों आदि का वर्गीकरण, सारणीयन आदि करता है।

सामाजिक शोध सामाजिक जीवन तथा विभिन्न घटनाओं के संबंध में हमें जो जानकारी प्रदान करता है उसका उपयोग हम अपने व्यावहारिक जीवन में भी कर सकते हैं। और भी स्पष्ट रूप से सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के संबंध में हमारे ज्ञान का एक महत्वपूर्ण शोध है।

समाज कल्याण आधुनिक समाज की जरूरत है। सामाजिक संरचना में विद्यमान तत्व ही विभिन्न समस्याओं के वास्तविक कारण होते हैं। सामाजिक शोध द्वारा इन तत्वों का ज्ञान प्राप्त करके समाज को संगठित कर सकते हैं।

सामाजिक कार्य अनुसंधान एक ऐसी खोज है जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके ऐसे उपायों की खोज की जाती है जिनसे व्यक्ति, समूह, समुदाय तथा सम्पूर्ण समाज को अच्छे ढंग से सेवा प्रदान की जा सके और समस्याओं का समाधान एवं व्यक्ति का सर्वोन्मुखी विकास सम्भव हो सके।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **विज्ञान** : विज्ञान का अभिप्राय ऐसे ज्ञान से है जिसका संचय व्यवस्थित अथवा क्रमबद्ध तरीके से किया जाता है।
- **अमूर्तता** : अमूर्तता से तात्पर्य उन कारकों से है जो किसी घटना के घटित होने के जिम्मेदार होते हैं।
- **वस्तुनिष्ठता** : किसी तथ्य अथवा प्रमाण की निष्पक्षतापूर्वक जांच करने की इच्छा एवं योग्यता।
- **सामाजिक शोध** : सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के संबंध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए किए गए व्यवस्थित अनुसंधान।
- **समाज कार्य** : समाज कार्य एक ऐसा व्यवसाय है जिसके द्वारा व्यक्ति की अधिकाधिक सहायता करने तथा विकास एवं उन्नति करने का प्रयत्न किया जाता है।
- **वैज्ञानिक** : जो बातें विज्ञान से संबंधित और विज्ञान पर आश्रित हैं वैज्ञानिक कहलाती हैं।
- **पद्धति** : किसी कार्य को संपादित करने के तरीकों या विधियों को पद्धति कहते हैं।

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

टिप्पणी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शोध की वैज्ञानिक पद्धति से आप क्या समझते हैं?
2. वैज्ञानिक पद्धति के आगमन और निगमन सिद्धांत पर एक लघु टिप्पणी लिखिए।
3. सामाजिक शोध की वैज्ञानिक प्रक्रिया के आधार के मुख्य कारक बताइए।
4. वैज्ञानिक पद्धति के चरण पर एक लघु टिप्पणी लिखिए।
5. सामाजिक शोधों में वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रयोग कैसे किया जा सकता है। संक्षेप में बताइए।
6. शोध की वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग में कौन–कौन सी समस्याएं आती हैं। बताइए।
7. सामाजिक कार्य अनुसंधान से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वैज्ञानिक पद्धति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं को विस्तार से समझाइए।
2. वैज्ञानिक पद्धति के शोध में प्रयोग किए जाने वाले चरणों और स्तरों को विस्तार से बताइए।
3. सामाजिक शोधों में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग एवं उसमें आने वाली समस्याएं कौन–कौन सी हैं। चर्चा कीजिए।
4. सामाजिक शोधों में वैज्ञानिक पद्धति क्यों आवश्यक है ? वे कौन–कौन से साधन हैं जिनसे शोध में वैज्ञानिकता लाई जा सकती है। समझाइए।
5. सामाजिक कार्य अनुसंधान को समझाते हुए इसके उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
6. सामाजिक कार्य अनुसंधान के पिछड़े होने के कारणों का वर्णन कीजिए।
7. सामाजिक कार्य अनुसंधान के विकास हेतु आवश्यक सुझावों का उल्लेख कीजिए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutledgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

टिप्पणी

इकाई 2 सामाजिक सर्वेक्षण, अनुसंधान और आंकड़ा संकलन की प्रविधियां

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान के प्रकार
2.2.1 सामाजिक सर्वेक्षण के प्रकार
2.2.2 सामाजिक अनुसंधान के प्रकार
2.3 सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान के चरण
2.3.1 सामाजिक सर्वेक्षण के चरण
2.3.2 सामाजिक अनुसंधान के चरण
2.4 आंकड़ा संकलन की विधियां और प्रविधियां
2.4.1 आंकड़ा संकलन की विधियां
2.4.2 आंकड़ा संकलन की प्रविधियां
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

सामाजिक सर्वेक्षण के द्वारा संकलित किए जाने वाले तथ्य समाज से संबंधित विभिन्न समस्याओं के विषय में जानकारी प्रदान करते हैं क्योंकि ये प्रत्यक्षतः प्राथमिक स्रोतों तथा द्वितीयक स्रोतों से संकलित किए जाते हैं। इसलिए ये काल्पनिक अथवा अनुमानपरक न होकर यथार्थ अर्थात सत्य होते हैं। यही कारण है कि सर्वेक्षण के संकलित तथ्य विश्वसनीय होते हैं। इस कारण इन तथ्यों का उपयोग विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं के विस्तार और प्रभाव को जानने के लिए किया जाता है। सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक समस्याओं के विषय में जानकारी प्रदान करता है। समाज यद्यपि संबंधों की व्यवस्था है। परंतु संबंधों का विकास समूह में मनुष्यों की अंतःक्रियाओं से होता है। समय स्थान और परिस्थितियों के अनुसार समूह, उप समूह और वर्गों की रचना और उनमें परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। अतः किसी समय में किसी स्थान पर कार्यरत समूह में उप समूह और वर्गों के विषय में जानकारी सामाजिक सर्वेक्षण के माध्यम से प्राप्त होती है।

सामाजिक सर्वेक्षण से अनेक व्यावहारिक लाभ भी प्राप्त होते हैं। जैसे व्यापारी तथा व्यवसायी ग्राहकों की अभिवृत्तियों का पता लगाने के लिए सामाजिक सर्वेक्षण का सहारा लेते हैं, तथा ग्राहकों की अभिवृत्तियों के अनुकूल ही वे वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। सामाजिक सर्वेक्षण के माध्यम से सामाजिक संस्थाओं के स्वरूप, उनके प्रभाव, उनके महत्व, उनकी उपयोगिता, उनमें परिवर्तन या परिवर्धन की आवश्यकता आदि के विषय में जानकारी मिलती है। सामाजिक सर्वेक्षण के द्वारा अलग–अलग समाजों की

सामाजिक आर्थिक दशाओं संबंधों का स्वरूप सामाजिक विकास आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसके निष्कर्ष अपेक्षाकृत अधिक प्रमाणिक तथा विश्वसनीय होते हैं क्योंकि इसके अंतर्गत सर्वेक्षक सामाजिक तथ्यों का स्वयं अवलोकन करता है। सामाजिक सर्वेक्षण प्रणाली में किसी विषय के प्रति विशेष सुझाव की संभावना कम हो जाती है। अतः इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ होते हैं।

सामाजिक सर्वेक्षण के द्वारा जहां लघु या वैयक्तिक स्तर पर सीमित समूह या समुदाय का अध्ययन किया जाता है। वहीं विस्तृत और विशाल क्षेत्र तथा जनसंख्या का अध्ययन भी संभव होता है। इस हेतु अनेक व्यक्तियों की सहायता ली जाती है। इस प्रकार सर्वेक्षण के क्षेत्र का विभाजन अथवा अध्ययन किए जाने वाले पक्षों का अलग–अलग सर्वेक्षणकर्ताओं मे विभाजन कर अध्ययन किया है। सामाजिक अनुसंधान का संबंध सामाजिक वास्तविकता से है, इसका उद्देश्य सामाजिक वास्तविकता को क्रमबद्ध व वस्तुनिष्ठ रूप से समझना तथा ज्ञान प्राप्त करने के साथ–साथ ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में पाई जाने वाली समस्याओं के समाधान के लिए प्रयुक्त करना है। सामाजिक अनुसंधान का अभिप्राय उस अनुसंधान से है, जिसमें तर्क प्रधान व क्रमबद्ध विधियां प्रयुक्त करके सामाजिक घटना से संबंधित नवीन ज्ञान प्राप्त किया जाता है। सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य, विशिष्ट समस्याओं का समाधान करना तथा सामाजिक वास्तविकता के संबंध में विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करना व सिद्धांतों को विकसित तथा विस्तृत करना है।

इस इकाई में सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान के प्रकार, चरण तथा आंकड़े संकलन की विधियों और प्रविधियों को विस्तार से समझाया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक अनुसंधान के प्रकारों से परिचित हो पाएंगे;
- सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक अनुसंधान के चरणों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- आंकड़ों के संकलन की विधियों की विवेचना कर पाएंगे;
- आंकड़ों के संकलन की प्रविधियों का विश्लेषण कर पाएंगे।

2.2 सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान के प्रकार

सामाजिक सर्वेक्षण से केवल एक सामाजिक समस्या से संबंधित आंकड़ों के संकलन का ही बोध नहीं, बल्कि एक पद्धति का बोध होता है। मोर्स के शब्दों में, "सामाजिक सर्वेक्षण विशेष सामाजिक स्थिति, समस्या अथवा समष्टि से संबंधित उद्देश्य हेतु व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक विश्लेषण की एक विधि है।"

इसी प्रकार हैरिसन के अनुसार, "सामाजिक सर्वेक्षण एक ऐसा सहकारी उपक्रम है, जो विशेष भौगोलिक सीमाओं व दशाओं के अंतर्गत प्रचलित तथा संबंधित सामाजिक समस्याओं व स्थितियों के अध्ययन तथा विश्लेषण में वैज्ञानिक पद्धति की प्रयुक्ति करता है।"

वैज्ञानिक कठोरता के इस युग में अब साधारण सर्वेक्षण को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। अब सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन में प्रतिचयन प्रक्रिया (Sampling Procedure) को विशेष महत्व दिया जाता है। प्रक्रिया के अंतर्गत अध्ययन के लिए संभाव्यता सिद्धांत (Probability Theory) के आधार पर केवल एक समष्टि के प्रतिदर्श द्वारा ही एक सामाजिक अथवा शैक्षिक क्षेत्र से संबंधित एक समस्या अथवा स्थिति के विषय में ऐसे प्रतिनिधि आंकड़े (Representative Data) संकलित किए जा सकते हैं, जो कि संबंधित समष्टि के स्वरूप को लगभग पूर्णरूपेण प्रतिबिम्बित (Reflect) करते हैं। ऐसे वैज्ञानिक प्रतिचयन पर आधारित सर्वेक्षण को प्रतिदर्श–सर्वेक्षण पर आधारित अध्ययनों को सर्वेक्षण अनुसंधान (Survey Research) कहते हैं।

करलिंगर के अनुसार, "सर्वेक्षण अनुसंधान सामाजिक वैज्ञानिक अन्वेषण की वह शाखा है, जिसके अंतर्गत व्यापक तथा कम आकार वाली जनसंख्याओं अथवा समष्टियों का अध्ययन उनमें से चयनित प्रतिदर्शों के आधार पर इस आशय से किया जाता है ताकि उनमें व्याप्त सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक चरों के घटनाक्रमों, विवरणों तथा पारस्परिक अंतःसंबंधों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।"

सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषाएं

बोगार्ड्स के अनुसार, ''एक सर्वेक्षण में किसी विषय क्षेत्र के लोगों के रहन–सहन तथा कार्य करने की दशाओं से संबंधित तथ्य एकत्रित किए जाते हैं।''

अब्रामस के अनुसार, ''एक सामाजिक सर्वेक्षण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक समुदाय की संरचना एवं प्रक्रिया के सामाजिक क्रियाओं के बारे में संख्यात्मक तथ्य एकत्र किए जाते हैं।''

2.2.1 सामाजिक सर्वेक्षण के प्रकार

सामाजिक सर्वेक्षण को विषय–सामग्री, उद्देश्यों व विधियों के आधार पर अलग–अलग रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है। विषय–सामग्री के आधार पर मोसर ने सामाजिक सर्वेक्षण का अधोलिखित वर्गीकरण किया है–

1. **जनसंख्यात्मक सर्वेक्षण**– इसके अंतर्गत संबंधित जनसंख्या का अध्ययन विभिन्न विशेषताओं के आधार पर किया जाता है; जैसे–जनसंख्या में पुरुषों व स्त्रियों की संख्या, विवाहितों व अविवाहितों की संख्या, जन्म–मरण के आंकड़े, शिक्षा, आय व आयु के विभिन्न स्तरों पर संख्या तथा अन्य ऐसी ही पारिवारिक समस्याओं के अध्ययन का इसमें समावेश रहता है।
2. **सामाजिक पर्यावरण संबंधी सर्वेक्षण**– इस प्रकार के सर्वेक्षण के अंतर्गत विभिन्न सामाजिक व आर्थिक कारकों के जन–समुदाय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत विभिन्न वर्गों की आय, उनके रहन–सहन, शिक्षा व स्वास्थ्य के स्तरों पर प्रभावों आदि का आकलन किया जाता है।
3. **सामाजिक क्रियाओं से संबंधित सर्वेक्षण**– इसमें एक जनसंख्या की उन सामाजिक क्रियाओं के अध्ययन पर बल दिया जाता है, जिनका संबंध व्यक्तियों

के मनोरंजन की विधियों, व्यावसायिक कार्य के पश्चात आराम के समय को व्यतीत करने की विधियों, खेल–कूद, रेडियो व संगीत में रुचियों, समाचार–पत्रों व पत्रिकाओं के पढ़ने की आदतों आदि का अध्ययन सम्मिलित रहता है।

4. **विचार तथा अभिवृत्ति संबंधी सर्वेक्षण**– इसके अंतर्गत एक संबंधित जनसंख्या का उसकी सामाजिक समस्याओं, विवाद–विषयों व ऐसे ही महत्वपूर्ण विषयों के प्रति विचारों तथा अभिवृत्तियों का अध्ययन करना होता है; जैसे व्यक्तियों के दहेज–प्रथा, छुआछूत उन्मूलन, परिवार नियोजन, चोरबाजारी व मुनाफाखोरी आदि के प्रति क्या विचार हैं।

सर्वेक्षण के सामान्य प्रकार

सर्वेक्षण के सामान्य प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. **सामान्य तथा विशिष्ट सर्वेक्षण**– सामान्य सर्वेक्षण का उद्देश्य सामान्य जानकारी प्राप्त करना होता है जबकि विशिष्ट सर्वेक्षण में उद्देश्य निश्चित व स्पष्ट रहता है। इसमें यथासंभव एक परिकल्पना की रचना का भी समावेश रहता है, जिससे सर्वेक्षण को एक विशिष्ट रूप प्रदान होता है।
2. **नियमित तथा यथावसर सर्वेक्षण**– नियमित से अभिप्राय मुख्य सर्वेक्षण से है तथा यथावसर सर्वेक्षण का अर्थ यहां अग्रगामी अध्ययन (Pilot Study) से है। प्रायः मुख्य सर्वेक्षण से पूर्व अग्रिम अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है, जिससे मुख्य सर्वेक्षण में आने वाली कठिनाइयों व अन्य बाधाओं का पूर्व ज्ञान उपलब्ध हो सके। कभी–कभी प्रश्नावली के प्रश्नों की रचना में बोधगम्यता व भाषा–संबंधी तथ्यों की जानकारी के लिए भी अग्रगामी अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है।
3. **अंतिम तथा आवर्तिपूर्ण सर्वेक्षण**– जिन सर्वेक्षणों के आधार पर प्रायः एक बार के अध्ययन से ही अंतिम निर्णय ले लिया जाता है, उन सर्वेक्षणों को अंतिम सर्वेक्षण कहते हैं। इसके विपरीत, कुछ सर्वेक्षण इस प्रकार के होते हैं, जिनके द्वारा समय–समय पर निरंतर सूचना ज्ञात करनी होती है। ऐसे सर्वेक्षणों को आवर्तिपूर्ण सर्वेक्षण कहा जाता है।
4. **संगणना तथा प्रतिदर्श सर्वेक्षण**– संगणना के अंतर्गत एक समाज की समस्त इकाइयों का अध्ययन किया जाता है परंतु प्रतिदर्श सर्वेक्षण के अंतर्गत संपूर्ण समष्टि में से कुछ गिनी–चुनी इकाइयों के आधार पर ही अध्ययन किया जाता है। सामाजिक अनुसंधानों में संगणना सर्वेक्षण का उपयोग कम होता जा रहा है और प्रतिदर्श सर्वेक्षण के उपयोग में निरंतर वृद्धि होती जा रही है।

विशिष्ट उद्देश्यों के आधार पर सर्वेक्षण के प्रकार

विशिष्ट उद्देश्यों के आधार पर सर्वेक्षण के निम्नलिखित प्रकार हैं–

1. **मूल्यांकनात्मक सर्वेक्षण**–इसके अंतर्गत एक समस्या से संबंधित विभिन्न कारकों व पक्षों का एक साथ मूल्यांकन किया जाता है– जैसे पूर्वाग्रहों (Prejudice) की उत्पत्ति के सापेक्षिक कारणों का अध्ययन।

2. **प्रसंगात्मक सर्वेक्षण**– ऐसे सर्वेक्षण का ध्येय एक समस्या से संबंधित एक विशेष पक्ष का अध्ययन होता है– जैसे शिक्षा के विभिन्न स्तरों का पूर्वाग्रहों की उत्पत्ति पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन। आवश्यक वस्तुओं की स्थिति को जानने हेतु बाजार सर्वेक्षण (Market Survey), स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के लिए स्वास्थ्य सर्वेक्षण (Health Survey) आदि।

3. **कार्य–विश्लेषण संबंधी सर्वेक्षण**– इस प्रकार के सर्वेक्षण का ध्येय किसी एक विशेष कार्य के विभिन्न अंगों का विश्लेषण इस आशय से किया जाना है कि उस कार्य के संपन्न करने में जिन आवश्यक तत्वों, अनुभवों, कुशलताओं व योग्यताओं की आवश्यकता पड़ती हो, उनके स्वरूप का ठीक–ठीक आकलन किया जा सके। और इस प्रकार प्राप्त ज्ञान के आधार पर उपयुक्त व्यक्ति का उपयुक्त कार्य (Right man at the right job) के लिए चयन व मार्ग दर्शन किया जा सके।

4. **सहकारी सर्वेक्षण**– जब कभी एक समस्या का अध्ययन विभिन्न स्तरों के व्यक्तियों द्वारा सम्मिलित रूप से किया जाता है, तब ऐसे सर्वेक्षण को संयुक्त सर्वेक्षण (Co-operative Survey) कहा जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में जब एक समस्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन प्रबंधकों, श्रमिकों व मनोवैज्ञानिकों के संयुक्त व सहकारी प्रयास से किया जाता है, तब इस प्रकार के अध्ययन को सहकारी सर्वेक्षण कहते हैं।

5. **व्याख्यात्मक सर्वेक्षण**– जब एक–सर्वेक्षण का उद्देश्य एक घटना से संबंधित विभिन्न अंगों में साहचर्यात्मक (Associative) संबंध अथवा कार्य कारण (Cause and Effect) के संबंधों का पता लगाना होता है, तब ऐसे सर्वेक्षण को व्याख्यात्मक सर्वेक्षण कहते हैं। जैसे बाल–अपराध के व्यवहार में परिवेश संबंधी अनुशासन के प्रभाव व अभाव का अध्ययन, फेफड़े के कैंसर तथा सिगरेट पीने में साहचर्यात्मक संबंध का अध्ययन।

6. **आवृत्ति सर्वेक्षण**– ऐसे सर्वेक्षण का ध्येय किसी एक सामाजिक, शैक्षिक व राजनीतिक समस्या के प्रति जन–समुदाय की प्रतिक्रियाओं, भावनाओं, आवृत्तियों व विचारों का अध्ययन करना होता है। जैसे सह–शिक्षा (Co-education) या फिर, प्रेम विवाह के प्रति अभिभावकों, किशोर बालकों व बालिकाओं की भावनाओं को जानना व देश की विदेश नीति के प्रति जन–साधारण की प्रतिक्रियाओं को जानना आदि।

7. **उपनति सर्वेक्षण**– इस प्रकार के सर्वेक्षण का उद्देश्य सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक व सामाजिक आदर्शों, प्रतिमानों, विचारधाराओं के प्रति समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों, उनकी दिशाओं (Vectors) अथवा उपनतियों (Trends) का अध्ययन करना होता है। स्पष्टतः ऐसे अध्ययन में परिवर्तन की उपनति जानने हेतु पहले एक आधार–रेखा (Base line) को ठीक–ठीक निश्चित कर लेना अनिवार्य होता है, जिसके संदर्भ में ही उपनति का अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ, जब जन–साधारण की भावनाओं का, परंपरागत सामाजिक

टिप्पणी

संस्थाओं के परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है, तब यहां अध्ययन की आधार–रेखा (Base line) स्वतंत्रता प्राप्ति का वर्ष 1947 माना जा सकता है। इसके पश्चात 1977 में जन–साधारण की भावनाओं में अनेक कारणों से परिवर्तन आना सहज रूप से तर्कसंगत जान पड़ता है। ऐसे परिवर्तन की दिशा जानना ही उपनति सर्वेक्षण होता है।

शैक्षिक क्षेत्र के आधार पर सर्वेक्षण के प्रकार

शैक्षिक क्षेत्रों के संदर्भ में सर्वेक्षणों के निम्न प्रकार हैं–

1. **विद्यालयी सर्वेक्षण**– इसका संबंध विद्यालयी जीवन के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों से होता है, जिनके मुख्य पक्ष हैं–
   - विद्यालयों के भवन की स्थिति, रचना, विभिन्न कक्षाओं की व्यवस्था व भौतिक वातावरण की उपयुक्तता।
   - प्रशासन संबंधी समस्याएं तथा कठिनाइयां।
   - वित्तीय व्यवस्था तथा नीतियां।
   - शैक्षिक पाठयक्रम व उसके उद्देश्य।
   - प्रचलित शिक्षण–पद्धति का अध्ययन।
   - विद्यार्थियों की निष्पत्ति तथा संप्राप्ति का अध्ययन।
   - विद्यार्थियों की मानसिक योग्यताओं, अभिक्षमताओं व अभिरुचियों आदि का अध्ययन।
   - कर्मचारी वर्ग की योग्यताओं, कुशलताओं व मनोबल का अध्ययन।
   - सामान्य अनुशासन, समायोजन व मनोरंजन–सामग्री का अध्ययन।
   - विद्यालय–प्रशासन तथा उसमें निहित मानवीय तत्वों का मूल्यांकन।

   इस प्रकार यहां स्पष्ट है कि विद्यालयी सर्वेक्षण के अंतर्गत अनेक महत्वपूर्ण विषय–सामग्रियों के अध्ययन की आवश्यकता रहती है। भौतिक स्तर पर विद्यालय की स्थिति, स्थान, भवन–रचना, विभिन्न कक्षाओं, प्रयोगशालाओं व अन्य भौतिक सुविधाओं के अध्ययन का आकलन करना होता है। विद्यालय में प्रशासन–संबंधी तथा वित्तीय–स्थिति संबंधी अनेक समस्याएं समय–समय पर उत्पन्न होती रहती हैं। उनके समझने तथा समाधान में सामयिक सर्वेक्षणों से महत्वपूर्ण सहायता उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त, सर्वेक्षणों के माध्यम से विद्यालय के उद्देश्यों व पाठयक्रमों का भी अध्ययन किया जाता है। विद्यार्थियों की निष्पत्ति, संप्राप्ति व शिक्षण पद्धति का मूल्यांकन किया जाता है तथा उपयुक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा उनकी मानसिक योग्यताओं, अभियोग्यताओं, अभिरुचियों, अनुशासन व समायोजन के स्तरों आदि का मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही साथ, विद्यालय के कर्मचारी–वर्ग की योग्यताओं, कुशलताओं व मनोबल का भी

सर्वेक्षण किया जाता है तथा विद्यालय के परिवेश, प्रबंध, संगठन व प्रशासन में मानवीय तत्वों व संबंधों का भी निरीक्षण किया जाता है।

2. **प्रलेखी सर्वेक्षण**– ऐसे सर्वेक्षण में अनेक प्रकार के अभिलेखों (Records) व प्रलेखों का अध्ययन रहता है। कुछ प्रलेख ऐसे होते हैं, जिनमें पाठ्यक्रमों की विविधताओं व विशेषताओं का वर्णन रहता है। दूसरे कुछ अभिलेख ऐसे होते हैं, जिनमें विद्यार्थियों की पूर्व निष्पत्तियों, वर्तमान की संप्राप्तियों तथा उपलब्धियों के विवरण होते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ अभिलेख ऐसे होते हैं, जिनमें विद्यालय के पिछले वर्षों के वार्षिक प्रतिवेदनों तथा वित्तीय स्थितियों का लेखा–जोखा प्रस्तुत होता है। विद्यालय संबंधी ऐसे विभिन्न विषयों के अध्ययन के लिए अन्य शासकीय प्रतिवेदनों के अभिलेखों, उनके प्रारूपों, डायरी (Diaries) सूचियों, प्रपत्रों व पत्रिकाओं के अध्ययन की आवश्यकता होती है।
3. **अनुवर्ती सर्वेक्षण**– इसका ध्येय शिक्षा संबंधी ऐसी घटनाओं, समस्याओं, कठिनाइयों तथा स्थितियों का अध्ययन करना होता है, जिनसे शैक्षिक प्रगति तथा उन्नति प्रभावित होती है। इसके लिए शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया जाता है तथा प्रचलित पठन–पाठन विधियों, शिक्षण–पद्धतियों, विभिन्न चयन उपक्रमों, पदोन्नति नियमों, शिक्षकों के त्यागपत्रों आदि का अनुवर्ती अध्ययन इस प्रयोजन से किया जाता है, ताकि शिक्षा–जगत की इन गतिविधियों व कार्यकलापों के स्वरूप का ठीक–ठीक मूल्यांकन किया जा सके तथा भविष्य में इन अनुभवों के आधार पर उपयुक्त सुधार किया जा सके व भावी शैक्षिक नियोजन व नीति–निर्धारण में अतीत की त्रुटियों से मार्गदर्शन उपलब्ध हो सके तथा इस संबंध में वर्तमान स्थिति की उपयुक्तता व अनुपयुक्तता का आकलन किया जा सके।
4. **मूल्यांकन सर्वेक्षण**– पाठ्यक्रम, विद्यालय, विद्यार्थी, शिक्षण–पद्धति व शिक्षक आदि शिक्षा से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण तत्व ऐसे होते हैं, जिनके मूल्यांकन की समय–समय पर निरंतर आवश्यकता पड़ती रहती है, ताकि शैक्षिक उपलब्धियों व उपनतियों (Trends) का यथार्थ व विशुद्ध ज्ञान सतत रूप से उपलब्ध होता रहे। ऐसे सर्वेक्षण में अधिकतर मानवीय तत्वों के मापन व मूल्यांकन पर अधिक बल रहता है। ऐसे अध्ययन के लिए व्यक्तित्व अनुसूचियों, चिह्नांकन सूचियों (Check Lists), पदांकन (Ranking) विधियों, निर्धारण मापनियों (Rating Scales) व अभिवृत्ति–मापनियों आदि का व्यापक उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययनों से शैक्षिक प्रगति के संबंध में पूर्वकथन किया जा सकता है तथा वर्तमान स्थिति के विषय में आकलन किया जा सकता है।

विधियों के उपयोग के आधार पर सर्वेक्षणों के प्रकार

विधियों के उपयोग के आधार पर सर्वेक्षणों के प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. **व्यक्तिगत साक्षात्कार सर्वेक्षण**– व्यक्तिगत साक्षात्कार सर्वेक्षण सूचना संकलन की प्रधान विधि है परंतु इस विधि के उपयोग के लिए आवश्यक है कि इसके

लिए अनुसूची अथवा प्रश्नावली का प्रयोग किया जाए। उसका निर्माण अत्यधिक धैर्य व सावधानी से किया जाना चाहिए, जिससे संबंधित समस्या के विषय में व्यापक तथा यथार्थ संरचना उपलब्ध हो सके। सर्वेक्षण की यह विधि सापेक्षिकतः अधिक खर्चीली है परंतु यह एक ऐसी विधि है, जिसके माध्यम से अत्यधिक विस्तृत तथा गहन जानकारी उपलब्ध होती है। इसके माध्यम से अध्ययनकर्ता को उत्तरदाता के विषय में केवल अधिक ज्ञान ही प्राप्त नहीं होता बल्कि उसके साथ मैत्रिक–भावना (Rapport) स्थापित करने में भी विशेष सहायता मिलती है।

इसमें अध्ययन–संबंधी समस्या के विषय में और भी गहन जानकारी मिलने की संभावना में वृद्धि होती है और अधिक व्यक्तिगत सूचना ज्ञात करने में सुविधा होती है। व्यक्तिगत साक्षात्कार सर्वेक्षण के माध्यम का एक सबसे बड़ा गुण यह है कि इसके माध्यम से अध्ययनकर्ता को सूचनादाता के विश्वासों, भावों, विचारों व अभिवृत्तियों संबंधी ज्ञानात्मक पदों को ठीक–ठीक समझने में विशेष सुविधा रहती है। साथ ही साथ अध्ययनकर्ता को इस विधि से उत्तरदाता की परीक्षा लेने, उसकी इच्छाओं, आवश्यकताओं व मान्यताओं को जानने में भी सहायता मिलती है। इन कारणों से अध्ययनकर्ता को व्यक्तिगत साक्षात्कार के उपयोग से गहन अध्ययन से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

2. **डाक प्रश्नावली सर्वेक्षण**– जब सर्वेक्षण इसके माध्यम से किया जाता है, तब इससे अनुसंधानकर्ता को प्रायः अनेक सुविधाएं सुलभ रहती हैं। जैसे इसके द्वारा दूर–दूर के स्थानों से डाक द्वारा सरलतापूर्वक तथा कम खर्च पर ही आवश्यक सूचना प्राप्त हो सकती है। इसमें व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा सर्वेक्षण से संबंधित अध्ययनकर्ता के वेतन, दैनिक भत्ते, यात्रा भत्ते व अन्य खर्चों का झंझट नहीं रहता है। इस विधि के अंतर्गत अध्ययनकर्ता को केवल डाक खर्च ही करना पड़ता है। परंतु इस विधि का एक बड़ा दोष यह है कि सभी उत्तरदाता डाक से भेजी गई प्रश्नावली को भर कर वापस नहीं करते। लगभग 50 प्रतिशत या 60 प्रतिशत उत्तरदाता ही ऐसा करते हैं और वापस हुई प्रश्नावलियों में भी कुछ प्रश्नावलियां ऐसी होती हैं, जो कि अपूर्ण रहती हैं और जिनका अनुसंधान कार्य में कोई उपयोग नहीं हो सकता।

समस्त उत्तरदाताओं द्वारा प्रश्नावली को भर कर वापस न करने से अनुसंधान में प्रतिदर्श का स्वरूप दोषपूर्ण व पक्षपातपूर्ण हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्रश्नावली उन्हीं व्यक्तियों के पास भेजी जाती है, जिनका चयन यादृच्छिक प्रतिचयन (Random Sampling) के आधार पर किया जाता है। परंतु जब इस प्रकार चयन किए गए सभी व्यक्तियों से उत्तर प्राप्त नहीं होते, तब यादृच्छिक प्रतिचयन का स्वरूप दूषित और अपर्याप्त हो जाता है। इस स्थिति में वह अपना समष्टि (Representative) नहीं रहता और ऐसे दोषपूर्ण प्रतिदर्श पर आधारित निष्कर्ष भी प्रायः दोषपूर्ण ही रहते हैं।

डाक प्रश्नावली के इस दोष को दूर करने के लिए यह आवश्यक होता है कि उत्तर न भेजने वाले व्यक्तियों को अनुवर्ती प्रश्नावलियां (Follow-up Questionnaires) फिर भेजी जाएं। ऐसी स्थिति में असहयोगी उत्तरदाताओं का यादृच्छिक (Random) आधार पर साक्षात्कार करना भी उपयोगी रहता है और उसके द्वारा इस प्रकार प्राप्त सूचना का विश्लेषण किया जाना चाहिए। इससे असहयोगी उत्तरदाताओं (Non-Respondents) की विशेषताओं के विषय से महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध हो सकती है।

3. **दूरभाष सर्वेक्षण**– इस प्रकार के सर्वेक्षण की विशेषता कम व्यय पर तथा तीव्र गति से सूचना प्राप्ति होती है परंतु साथ ही साथ, ऐसे सर्वेक्षण की परिसीमाएं भी स्पष्ट हैं। इसका उपयोग केवल उस विशेष वर्ग के व्यक्तियों तक ही सीमित रहता है, जिनके यहां टेलीफोन होते हैं। अन्य व्यक्तियों पर इसका उपयोग उपयुक्त नहीं रहता। दूसरे, इस प्रकार के सर्वेक्षण में भी असहयोगी– उत्तरदाताओं की संख्या प्रचुर मात्रा में रहती है और जिन व्यक्तियों से उत्तर प्राप्त भी होते हैं, उनके उत्तरों का स्वरूप बहुत ही ऊपरी (Superficial), साधारण (Simple) और औपचारिक (Formal) ही होता है। ऐसे सर्वेक्षण से प्रायः गहन, विस्तृत तथा आवश्यक जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती।

4. **सामयिक सर्वेक्षण**– इसका उद्देश्य किसी एक समस्या, विवाद–विषय योजना व सामाजिक परिवर्तन आदि के प्रति व्यक्तियों के समय–समय पर बदलते हुए विचारों, भावों तथा अभिवृत्तियों के स्वरूप का अध्ययन करना होता है। इन विषयों के प्रति व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएं प्रायः परिवर्तित होती रहती हैं। अतः उन परिवर्तित भावों व विचारों के अध्ययन के लिए सामयिक (Panel) सर्वेक्षण की आवश्यकता होती है।

2.2.2 सामाजिक अनुसंधान के प्रकार

सामाजिक अनुसंधानकर्ता सामाजिक अनुसंधान की मदद से ही समाज में व्याप्त हर स्थिति / परिस्थिति का अध्ययन कर वास्तविकता को समाज के सम्मुख प्रकट करने में सक्षम होता है। सामाजिक घटनाओं के संबंध में सत्य की खोज ही सामाजिक शोध है।

सामाजिक अनुसंधान या शोध मुख्य रूप से तीन प्रकार के हो सकते हैं, जो निम्नलिखित हैं :

1. **मौलिक या विशुद्ध शोध** : इस प्रकार के सामाजिक शोध में सामाजिक जीवन व घटनाओं के संबंध में मौलिक सिद्धांतों व नियमों का अनुसंधान किया जाता है और इस अनुसंधान का उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति व वृद्धि तथा पुराने ज्ञान की पुनर्परीक्षा द्वारा उसका शुद्धिकरण करना होता है। इस प्रकार की खोज में नवीन तथ्यों व घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। इस बात की भी जांच की जाती है कि जो प्रचलित पुराने सिद्धांत व नियम हैं वे वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में ठीक हैं या नहीं। हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों में भी पुराने नियम व

सिद्धांत खरे उतरें, पर यह भी हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों के अनुसार उनमें कुछ आवश्यक सुधार या हेरफेर करना जरूरी हो जाए। यह भी हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों की मांग नवीन सिद्धांत व नियम हों।

मौलिक शोध के अंतर्गत नए सिद्धांतों व नियमों की खोज नवीन परिस्थितियों तथा समस्याओं के उत्पन्न होने पर की जाती है। ऐसा इस उद्देश्य से किया जाता है कि इन नवीन सिद्धांतों का वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों के साथ अधिकाधिक मेल बैठ जाए और हम उनके संबंध में अपने नवीनतम ज्ञान के सहारे विद्यमान परिस्थितियों की चुनौती का सामना अधिक सफलतापूर्वक कर सकें। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि मौलिक शोध की प्रकृति आधारभूत रूप में सैद्धांतिक है क्योंकि इसका एकमात्र उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति, वृद्धि तथा शुद्धिकरण होता है। सत्य की खोज करना इसका प्रमुख लक्ष्य है और इसीलिए समस्त घटनाओं के अनुसंधान में यह केवल इसी लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति सजग व प्रयत्नशील रहता है। जब यह किसी घटना का अध्ययन करता है तो उसके संबंध में उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। जब वह नवीन घटनाओं के संबंध में अनुसंधान करता है तो विद्यमान ज्ञान की वृद्धि होती है और जब वह परिवर्तित परिस्थितियों के संदर्भ में पुराने नियमों तथा सिद्धांतों की फिर से जांच करता है तो उनके संबंध में उसके ज्ञान में आवश्यक सुधार या हेर–फेर हो जाता है।

इस प्रकार फिर हम इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि अपने अनुसंधानों के द्वारा जो सामाजिक शोध ज्ञान की प्राप्ति, परिमार्जन व परिवर्द्धन को अपना लक्ष्य मानता है उसे मौलिक शोध कहते हैं।

2. **व्यावहारिक शोध** : पी. वी. यंग के मत में खोज का एक निश्चित संबंध लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा उनके कल्याण से होता है। वैज्ञानिकों की मान्यता यह है कि समस्त ज्ञान सारभूत रूप से उपयोगी इस अर्थ में है कि वह एक सिद्धांत के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में सहायक होता है। सिद्धांत तथा व्यवहार आगे चलकर बहुधा एक–दूसरे में मिल जाते हैं। इसी मान्यता के आधार पर सामाजिक शोध का जो दूसरा प्रकार प्रकट होता है उसे ही हम व्यावहारिक शोध कहते हैं।

व्यावहारिक शोध का संबंध सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से होता है। वह सामाजिक समस्याओं के संबंध में ही नहीं अपितु सामाजिक नियोजन, सामाजिक अधिनियम, स्वास्थ्य, रक्षा संबंधी नियम, धर्म, शिक्षा, न्यायालय, मनोरंजन आदि विषयों के संबंध में भी अनुसंधान करता है। इनके संबंध में वह कारण–सहित व्याख्या व तर्कयुक्त ज्ञान से हमको समृद्ध करता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यावहारिक शोध का कोई संबंध समाज–सुधार से, सामाजिक व्याधियों के उपचार से या सामाजिक नियोजनों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने से होता है। वह स्वयं यह सब कुछ नहीं करता है; यह काम तो समाज–सुधारक, राष्ट्रीय

नेता, प्रशासकों तथा अधिकारियों का होता है। व्यावहारिक शोध का काम केवल व्यावहारिक जीवन से संबंधित विषयों तथा समस्याओं के संबंध में हमें यथार्थ ज्ञान देना है।

टिप्पणी

सामाजिक जीवन में व्यावहारिक शोध के महत्व को दर्शाते हुए स्टाउफर (Stouffer) ने लिखा है कि यदि सामाजिक–विज्ञान को अपना महत्व बढ़ाना है तो उसको अपने व्यावहारिक पक्ष पर बल देना होगा। उदाहरणार्थ, यदि समाज–विज्ञान स्पष्ट रूप से यह दर्शा सके कि एक परामर्श देने वाली व्यवस्था (Counselling System) सार्वजनिक स्कूलों में किस भांति सर्वाधिक प्रभावपूर्ण हो सकती है तो यह स्पष्ट है कि समाज–विज्ञान के महत्व की सार्वजनिक स्वीकृति बढ़ जाएगी। व्यावहारिक शोध में भी अनुसंधान के उन्हीं उपकरणों का उपयोग किया जाता है जिनका कि मौलिक या 'विशुद्ध विज्ञान' में। इसीलिए इसके द्वारा प्रस्तुत व्यावहारिक ज्ञान बड़े महत्व का और साथ ही यथार्थ सिद्ध होता है।

व्यावहारिक शोध हमारे व्यावहारिक जीवन में आने–जाने वाली समस्याओं तथा अन्य घटनाओं पर नियन्त्रण प्राप्त करने या उनका उपाय करने के लिए आवश्यक सिद्धांतों के विषय में हमारी चिंतन–प्रक्रिया को उभार सकता है। इसका कारण है, बहुधा यह देखा गया है कि एक आश्चर्यजनक प्रयोग सिद्ध व्यावहारिक खोज की व्याख्या या विश्लेषण करने के दौरान शोधकर्ता ऐसे व्यावहारिक सुझावों को प्रस्तुत करता है या ऐसी बातों को कहता है जो कि अनेक सामाजिक समस्याओं के उपचार में सहायक सिद्ध होते हैं। स्टाउफर (Stouffer) के मतानुसार सामाजिक विज्ञान के व्यावहारिक शोध के तीन महत्वपूर्ण योगदान हैं :

(क) कतिपय सामाजिक तथ्य किस भांति समाज के लिए उपयोगी हैं, इसके संबंध में विश्वसनीय प्रमाणों को प्रस्तुत करना।

(ख) इस प्रकार की प्रविधियों का उपयोग व विकास करना जो कि मौलिक शोध के लिए भी उपयोगी सिद्ध हों।

(ग) इस प्रकार के तथ्यों तथा विचारों को प्रस्तुत करना जो कि निष्कर्षीकरण या सामान्यीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर सकें।

3. **क्रियात्मक शोध** : क्रियात्मक शोध व्यावहारिक शोध से अनेक अर्थ में मिलता–जुलता है क्योंकि इसका भी संबंध सामाजिक जीवन की ऐसी समस्याओं तथा घटनाओं से होता है जिनका कि व्यावहारिक या क्रियात्मक महत्व हो। जब सामाजिक शोध अध्ययन के निष्कर्षों को क्रियात्मक रूप देने के लिए किसी तत्कालीन अथवा भावी योजना से संबंद्ध होता है तो उसे क्रियात्मक शोध कहा जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि क्रियात्मक शोध वह अनुसंधान है जो किसी सामाजिक समस्या या घटना के क्रियात्मक पक्ष पर अपना ध्यान केंद्रित करता है और साथ ही अनुसंधान के निष्कर्षों का उपयोग

विद्यमान सामाजिक अवस्थाओं में परिवर्तन लाने की योजना के एक भाग के रूप में करता है।

गुडे तथा हाट (Goode and Hatt) के अनुसार, "क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का अंश होता है जिसका लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है; चाहे वह गंदी बस्ती की अवस्थाएं हों या प्रजातीय तनाव व पक्षपात हों या एक संगठन की प्रभावशीलता हो।" उदाहरणार्थ, यदि एक शोधकार्य में इस उद्देश्य को सामने रखते हुए सामाजिक अनुसंधान किया जा रहा है कि उसके निष्कर्षों को गंदी बस्तियों की सफाई के कार्यक्रम के उपयोग में लाया जाएगा अर्थात उन गंदी बस्तियों में इस समय रहने वाले व्यक्तियों के जीवन में और गंदी बस्तियों की सामान्य अवस्थाओं में परिवर्तन लाने की किसी भावी योजना में उस शोध से प्राप्त निष्कर्ष उपयोगी सिद्ध होगा, तो उसे क्रियात्मक शोध कहेंगे।

इसी प्रकार देश की वर्तमान शिक्षा–प्रणाली व संगठन में अमूल परिवर्तन लाने के लिए कोठारी कमीशन की नियुक्ति की गई थी। उसने देश की शिक्षा–प्रणाली के प्रत्येक पक्ष से संबद्ध इतने भरोसेमंद प्रमाणों व तथ्यों को एकत्रित कर आवश्यक सुधार व परिवर्तन लाने के संबंध में व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किया कि उस कमीशन की रिपोर्ट भी क्रियात्मक शोध का एक उज्ज्वल उदाहरण बन गई है।

अपनी रिपोर्ट को पेश करने से पूर्व इस कमीशन ने, जिसमें स्वदेश तथा विदेश के प्रख्यात विशेषज्ञ सम्मिलित थे, सारे देश का दौरा किया, हर जगह शिक्षा–प्रणाली की वास्तविक क्रियाशीलता को देखा, निरीक्षण के द्वारा तथ्यों को एकत्रित किया, संबद्ध शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, उपकुलपतियों, कुलपतियों, शिक्षा संघ के प्रतिनिधियों तथा अन्य क्रियात्मक एजेन्सियों से साक्षात्कार किया; उनके लिखित व मौखिक विचारों, मांगों तथा सुझावों का विश्लेषण किया और अन्य देशों में प्रचलित शिक्षा–प्रणालियों का भी अध्ययन किया। इसके पश्चात फिर कहीं समस्त वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्तमान शिक्षा–प्रणाली के वास्तविक स्वरूप का चित्रण किया। उसमें घर किए हुए गंभीर दोषों का विश्लेषणात्मक विवरण कारण सहित प्रस्तुत किया और उन्हें दूर करने तथा शिक्षा–व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए व्यावहारिक सुझावों को प्रस्तुत किया।

इस सबका उद्देश्य यही था कि कमीशन के निष्कर्ष तथा सुझाव इस देश की शिक्षा–प्रणाली की वर्तमान अवस्था में परिवर्तन लाने के लिए बनने वाली किसी भावी योजना का अंग बन सकें। वास्तव में यही हुआ है। यद्यपि कोठारी कमीशन क्रियात्मक शोध का कोई वास्तविक उदाहरण नहीं है, फिर भी इसके कार्यक्रमों से क्रियात्मक शोध की प्रकृति स्पष्ट होती है।

क्रियात्मक शोध में शोधकर्ता को प्रारंभ से ही कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना पड़ता है। ये इस प्रकार हैं–

(अ) अध्ययनकाल में घटना/समस्या के वास्तविक क्रिया–पक्ष पर ध्यान : इसका तात्पर्य यह है कि जिस घटना का अध्ययन शोधकर्ता कर

रहा है उसमें अंतर्निहित मानवीय क्रियाओं, उनके कारणों, आधारों व नियमों के प्रति वह अत्यधिक सचेत रहता है। यदि वह प्रजातीय पक्षपात का अध्ययन कर रहा है तो वह यह जानने का प्रयत्न करेगा कि श्वेत प्रजाति के लोग श्याम प्रजाति के सदस्यों के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं और उनके उन व्यवहारों का क्या कारण व आधार है। साथ ही, शोधकर्ता उस समस्या से संबद्ध क्रियात्मक एजेन्सियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। समस्या के चुनाव के संबंध में, उस समस्या से संबद्ध प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने, उस घटना की वास्तविक क्रियाशीलता को मालूम करने, यहां तक कि तथ्यों के संकलन में भी क्रियात्मक एजेन्सियों का प्रयोग अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध होता है।

(ब) **समस्या या घटना के संबंध में ज्ञान** : इसका तात्पर्य यह है कि क्रियात्मक शोध में शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसे समस्या या घटना के संबंध में कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य ही हो। यदि ऐसा न हुआ तो उस घटना या समस्या में अंतर्निहित किसी भी क्रियात्मक पक्ष का यथार्थ अनुसंधान उसके लिए संभव न होगा। अतः इस प्रकार के शोधकार्य में शोधकर्ता संपूर्ण घटना या समस्या को तथा उसमें भाग लेने वाले व्यक्तियों या मानव–समूहों के व्यवहार–प्रतिमान को समझने का प्रयत्न करता है।

(स) **सहयोग की प्राप्ति** : इसका तात्पर्य यह है कि शोधकर्ता को निरंतर इस बात का प्रयत्न करना पड़ता है कि उसे अपने कार्य में कम से कम विरोध का सामना करना पड़े। क्रियात्मक शोध का प्राथमिक उद्देश्य, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, विद्यमान अवस्थाओं में परिवर्तन लाना होता है। हो सकता है कि उस समाज या समूह में इस प्रकार के कुछ लोग या स्वार्थ–समूह हों जो कि इस परिवर्तन के पक्ष में न हों; क्योंकि परिवर्तन होने से उनके स्वार्थ को ठेस पहुंचेगी। इस कारण वे परिवर्तन का विरोध कर सकते हैं जिससे शोधकार्य में बाधा उत्पन्न हो सकती है। अतः शोधकर्ता को इस प्रकार की परिस्थितियों को उत्पन्न करना होता है जिससे कि विरोध की संभावनाएं न्यूनतम हों।

(द) **रिपोर्ट को आरंभ में ही अंतिम रूप न देना** : इसका तात्पर्य यह है कि क्रियात्मक शोध की रिपोर्ट को एकदम अंतिम रूप देकर प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। पहले एक अंतरिम रिपोर्ट (Interim Report) प्रस्तुत करनी चाहिए जिससे कि उससे प्रभावित होने वाले व्यक्तियों अथवा समूहों की प्रतिक्रियाओं को जाना जा सके। उन प्रतिक्रियाओं के आधार पर अंतिम रिपोर्ट में आवश्यक सुधार करने की गुंजाइश सदैव रहनी चाहिए। तभी वह अंतिम रिपोर्ट वास्तव में उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

अतः सामाजिक अनुसंधान, वर्तमान समय में बदलती हुई परिस्थितियों व बदली हुई जन समस्याओं जैसे– गरीबी, बेकारी आदि के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है और

टिप्पणी

इसके द्वारा ही इन सामाजिक समस्याओं का हल हो सकता है। इसलिए सामाजिक अनुसंधान पर सरकार व प्रशासन के ध्यानाकर्षण की जरूरत है। इससे मानव जीवन को सरल बनाया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. औद्योगिक क्षेत्र में समस्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन जब प्रबंधकों, श्रमिकों व मनोवैज्ञानिकों के संयुक्त प्रयास से किया जाता है तब वह कौन सा सर्वेक्षण कहलाता है?

   (क) प्रसंगात्मक सर्वेक्षण (ख) सहकारी सर्वेक्षण

   (ग) आवृत्ति सर्वेक्षण (घ) व्याख्यात्मक सर्वेक्षण

2. सामाजिक अनुसंधान मुख्यतः कितने प्रकार के होते है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

2.3 सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान के चरण

सामाजिक सर्वेक्षण की प्रक्रिया कई चरणों से होकर गुजरती है जिससे प्रत्येक चरण में कई शोध क्रियाएं संपादित की जाती हैं। सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। वैज्ञानिक प्रकृति से तात्पर्य है कि इसमें समस्या विशेष का अध्ययन एक व्यवस्थित पद्धति के अनुसार किया जाता है। सर्वेक्षण की संपूर्ण प्रक्रिया विविध सोपानों से गुजरती है। अतः इन्हें सामाजिक सर्वेक्षण के चरण भी कहा जाता है। एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करते हुए अध्ययन को आगे बढ़ाया जाता है। सामाजिक सर्वेक्षण में कितने चरण होते है, इसमें विद्वानों में एक मत नहीं है। यहां पर हम सामाजिक सर्वेक्षण के महत्वपूर्ण चरणों की विवेचना करेंगे।

2.3.1 सामाजिक सर्वेक्षण के चरण

सामान्य अनुसंधान प्रक्रम के विविध चरणों का वर्णन न करके प्रसंगानुरूप शोध के उन चरणों का वर्णन किया जा रहा है जिनका संबंध विशेषतः सामाजिक सर्वेक्षण अनुसंधान से है।

करलिंगर के अनुसार, सर्वेक्षण अनुसंधान के लिए पहले एक निश्चित योजना (Flow-plan) तैयार करनी होती है। इस योजना के अंतर्गत अनुसंधान कार्यक्रम की पूर्ण रूपरेखा (Blue-print) की रचना की जाती है। इस रूपरेखा के मुख्य निम्नांकित 6 चरण होते हैं–

1. सर्वेक्षण अनुसंधान समस्या को निश्चित तथा स्पष्ट रूप प्रदान करना –

   (अ) समस्या का स्पष्टीकरण।

   (ब) समस्या के उद्देश्यों का निर्माण।

टिप्पणी

(स) समस्या के अध्ययन हेतु उपयुक्त उपकरण का चयन–जैसे साक्षात्कार अनुसूची अथवा डाक–प्रश्नावली आदि।

(द) अनुसंधान प्रतिमान की रचना।

2. प्रतिचयन योजना–

(अ) समष्टि के स्वरूप को सीमाबद्ध करना।

(ब) प्रतिचयन की व्याख्या।

(स) यादृच्छिक प्रतिदर्श के उपयोग का महत्व।

3. साक्षात्कार अनुसूची व डाक अनुसूची की रचना।

4. आंकड़ों का संकलन–

(अ) घटनास्थल पर अध्ययन।

(ब) क्रमबद्ध रूप से क्षेत्र कार्यकर्ताओं के अध्ययन की जांच करना।

(स) असहयोगी उत्तरदाताओं से संपर्क करना।

5 प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण–

(अ) अनुक्रियाओं का संकेतीकरण।

(ब) अंतर्वस्तु विश्लेषण।

(स) अनुक्रियाओं का सारणीयन।

6. प्रतिवेदन प्रस्तुतीकरण।

सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य एवं गुण–दोष

सामाजिक सर्वेक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं–

1. सामाजिक समस्याओं से संबंधित आवश्यक तथा तर्क–संगत आंकड़ों का संकलन।
2. व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए उपयोगी तथ्यों की जानकारी।
3. प्रचलित विवाद–विषयों, संस्थाओं व योजनाओं के प्रति जन–साधारण की भावनाओं तथा अभिवृत्तियों का अध्ययन।
4. विभिन्न सामाजिक घटनाओं में साहचर्यात्मक (Associative) व संभावित कार्य–कारण के संबंधों की जांच।
5. सामाजिक तथ्यों की खोज।
6. परिकल्पना की रचना में सहायता।
7. पूर्व–स्थापित समाजिक तथ्यों का पुष्टीकरण।
8. नियोजन तथा नीति–निर्धारण में मार्गदर्शन।

9. सामाजिक परिवर्तनों की दिशा व सूचना देना।
10. मुख्य अनुसंधान के लिए अग्रगामी अध्ययन (Pilot Study) की सुविधा प्रदान करना।
11. पूर्व–स्थापित योजनाओं तथा नीतियों का मूल्यांकन।
12. सामाजिक व्याधियों से संबंधित लक्षणों की जांच।
13. सामाजिक घटनाओं के पूर्व सामान्यतः कथन की क्षमता प्रदान करना।

गुण

सामाजिक सर्वेक्षण के प्रमुख गुण निम्नांकित हैं–

1. **व्यापक तथा विस्तृत अध्ययन का अवसर**–सर्वेक्षण द्वारा विशेषतः डाक प्रश्नावली के माध्यम से सामाजिक तथा व्यावहारिक समस्याओं से संबंधित व्यापक तथा अत्यधिक विस्तृत क्षेत्रों का भी सुविधापूर्वक अध्ययन किया जाता है।
2. **प्रत्यक्ष तथा निकट संपर्क का अवसर**– सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन के अंतर्गत जब अध्ययनकर्ता घटनास्थल पर प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदाता के संपर्क में आता है, तब उसे उसके मनोभावों, विचारों तथा अध्ययन से संबंधित अन्य तत्वों का निकट से अध्ययन करने का अवसर मिलता है।
3. **परिशुद्ध, वस्तुपरक व विश्वसनीय आंकड़ों का संकलन**–आधुनिक सर्वेक्षण पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति है। अतः आधुनिक सामाजिक सर्वेक्षणों में विशेषतः वैज्ञानिक सर्वेक्षण में अध्ययन का आधार प्रायः यादृच्छिक प्रतिचयन (Random Sampling) रहता है, जिससे समष्टि से संबंधित परिशुद्ध, वस्तुपरक व विश्वसनीय आंकड़ों के संकलन में सहायता मिलती है। यादृच्छिक प्रतिचयन उपयोग में प्राप्त आंकड़ों के प्रतिदर्श की मानक त्रुटि (Standard Error) की भी सरलतापूर्वक गणना की जा सकती है और परिशुद्ध सीमाओं के विषय में विश्वस्त आकलन (Esistmate) लगाया जा सकता है। इस प्रकार सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन सामाजिक जीवन का एक प्रकार से शुद्ध व सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है।
4. **अधिक मितव्ययी तथा अधिक सुविधाजनक अध्ययन**– सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन प्रयोगशाला आधारित अध्ययनों से अधिक मितव्ययी (Economical) रहते हैं क्योंकि सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन में अधिक सूचना सापेक्षिकतः कम खर्च पर तथा कम समय में उपलब्ध होती है।

दोष

सामाजिक सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन में निम्नांकित दोष परिलक्षित होते हैं–

1. सर्वेक्षण द्वारा केवल साधारण व व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन ही उपयुक्त रहता है। गंभीर तथा गहन अध्ययन इसकी परिधि के अंतर्गत नहीं आते।
2. सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन का क्षेत्र प्रायः व्यापक व विस्तृत होता है। अतः इसके द्वारा किए गए अध्ययन सूक्ष्म व गहन नहीं होते हैं। सामान्य अध्ययनकर्ता को उत्तरदाता जो उत्तर देते हैं, उनका स्वरूप प्रायः ऊपरी व कृत्रिम ही रहता है।

3. सर्वेक्षण अनुसंधान में यादृच्छिक प्रतिचयन (Random Sampling) के उपयोग से अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां सामने आती हैं। विस्तृत क्षेत्रों से चयन की गई इकाइयों से संपर्क करना कभी–कभी अत्यधिक असुविधाजनक और कठिन रहता है।
4. साक्षात्कार का प्रक्रम इतना सरल नहीं होता। अतः अपरिचित व विभिन्न मनोवृत्तियों वाले व्यक्तियों से संपर्क करने व उनको आवश्यक सूचना देने को अभिप्रेरित करने के लिए क्षेत्र अध्ययनकर्ता में विशेष योग्यता व व्यवहार कुशलता की आवश्यकता होती है। अप्रशिक्षित व अपरिपक्व अध्ययनकर्ताओं के लिए सफल साक्षात्कार करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां आती हैं।
5. आधुनिक सर्वेक्षण का स्वरूप तकनीकी आधार पर अत्यधिक विषम होता जा रहा है। साधारण अनुसंधानकर्ता को प्रायः ऐसे तकनीकी ज्ञान के अभाव में प्रत्यक्ष में एक कठिन स्थिति का सामना करना पड़ता है।
6. सर्वेक्षण अनुसंधान में विशेषतः टेलीफोन व साक्षात्कार द्वारा आयोजित अध्ययनों में अध्ययनकर्ता के स्वयं के अपने मतों, पूर्वाग्रहों, विचारों व आस्थाओं के कारण अध्ययन में पक्षपात होने की पर्याप्त संभावना रहती है। ऐसा इसलिए कि कभी–कभी साक्षात्कार के अंतर्गत वार्तालाप में अध्ययनकर्ता अपनी मनोभावनाओं से उत्तरदाता के भावों व विचारों को भी अप्रत्यक्ष व अचेतन रूप से प्रभावित करता रहता है।

2.3.2 सामाजिक अनुसंधान के चरण

शोध प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के अंतर्गत किसी शोध कार्य को संपन्न करने के लिए उन्हें क्रमबद्ध तरीके से सम्मिलित किया जाता है। जैसे– 1. समस्या का निर्धारण, 2. साहित्य सर्वेक्षण, 3. परिकल्पना का निर्माण, 4. अनुसंधान– अभिकल्प तैयार करना, 5. समकों का संग्रहण एवं संपादन, 6. प्रतिदर्शज अभिकल्प का निर्धारण, 7. समकों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण 8. परिकल्पना परीक्षण, 9. सामान्यीकरण व निर्वचन तथा 10. शोध कथासार तैयार करना। यहां पर प्रमुख चरणों को संक्षेप में समझाया जा रहा है–

1. **समस्या का निर्धारण**– समस्त सामाजिक शोध प्रश्न या समस्या के निर्धारण से आरंभ होते हैं। सर्वप्रथम किसी कठिनाई का अनुभव किया जाता है, जिससे समस्या की पहचान होती है। इसके बाद समस्या का निर्धारण होता है। यह एक कठिन कार्य है लेकिन किसी भी शोधकर्ता को इस चुनौती को स्वीकार करना पड़ता है। समस्याएं तीन प्रकार की होती हैं–(अ) आनुभविक समस्याएं, (ब) विश्लेषणात्मक समस्याएं तथा, (स) मानवीय समस्याएं।

   आनुभविक समस्याओं के समाधान तथ्यात्मक अनुभव के आधार पर ढूंढे जाते हैं। विश्लेषणात्मक समस्याएं अवधारणाओं से संबंधित होती हैं। मानवीय समस्याएं

मूल्यात्मक निर्णयों पर निर्भर होती हैं। मानवीय समस्याओं के दो रूप हो सकते हैं।

(अ) **मूल्यांकनात्मक**– उदाहरण के लिए भारत में उच्च शिक्षा का स्तर श्रेष्ठ है।

(ब) **निर्देशात्मक**– उदाहरण के लिए देश में उच्च शिक्षा का स्तर श्रेष्ठ होना चाहिए।

2. **साहित्य सर्वेक्षण**– समस्या का निर्धारण होने के पश्चात एक शोधकर्ता को समस्या से संबंधित विषय पर उपलब्ध विषय सामग्री यथा पुस्तकों, पत्रिकाओं, प्रतिवेदनों तथा अन्य पाठ्य–सामग्री का गहन अध्ययन करना चाहिए। इसी प्रकार यदि इस विषय से संबंधित कोई शोध प्रकाशित अथवा अप्रकाशित हो तो उनका भी विशद अध्ययन करना चाहिए। इसके बिना शोधकर्ता अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाएगा। आजकल इंटरनेट की सुविधाएं भी हर जगह पर उपलब्ध हैं। अतः शोधकर्ता को इसकी अधिक से अधिक सहायता लेकर उच्च कोटि का अध्ययन करके संबंधित विषय सामग्री को अपने शोध में सम्मिलित कर उसे उपयोगी बनाना चाहिए।

3. **परिकल्पना का निर्माण**– वैज्ञानिक अनुसंधान में परिकल्पनाओं का निर्माण बहुत आवश्यक है। परिकल्पना को प्राक्कल्पना, पूर्व–कल्पना, उपकल्पना आदि नामों से भी जाना जाता है। यह एक काम चलाऊ सामान्यीकरण है, जिसकी शोध के दौरान जांच की जाती है। यह सत्य भी सिद्ध हो सकता है अथवा असत्य भी सिद्ध हो सकता है। गुडे एवं हाट के शब्दों में, "परिकल्पना ऐसी मान्यता है, जिसका परीक्षण करने के लिए प्रयोगात्मक जांच की जाती है। बोगार्डस के अनुसार, "परीक्षित किए जाने वाले प्रस्तावों को परिकल्पना कहा जाता है।"

वेबस्टर्स न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज के अनुसार, ''परिकल्पना एक विचार, दशा या सिद्धांत होती है, जो संभवतः बिना किसी विश्वास के स्वीकार कर ली जाती है, जिससे उसके तार्किक परिणाम निकाले जा सकें और ज्ञात या निर्धारित किए जाने वाले तथ्यों की सहायता से इस विचार की सत्यता की जांच की जा सके।" इस प्रकार तात्कालिक सामान्यीकरण अथवा निष्कर्ष को परिकल्पना कहते हैं। इसकी आरंभिक अवस्था में यह कल्पना, अनुमान अथवा अन्तःप्रेरणा हो सकती है लेकिन अंततः यह शोध की आधारशिला है। एक परिकल्पना स्पष्ट, सरल, उपलब्ध तकनीक से संबंधित, अनुभवसिद्ध, वस्तुनिष्ठ तथा विषय के निर्धारित सिद्धांतों के अनुरूप होनी चाहिए।

4. **अनुसंधान– अभिकल्प तैयार करना**– शोध कार्य करने की योजना या शोध प्रक्रिया की रूपरेखा को ही अनुसंधान अभिकल्प अथवा शोध संरचना कहते हैं। एफ.एन. कलिंजर के शब्दों में अनुसंधान अभिकल्प अन्वेषण की योजना, संरचना

एवं रणनीति है, जिसकी रचना इस प्रकार की जाती है कि शोध प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो सकें तथा प्रसरण को नियंत्रित किया जा सके। यह एक ऐसी संपूर्ण रूपरेखा है, जिसमें वे सभी रूपरेखाएं होती हैं जो एक शोधकर्ता की परिकल्पनाओं के निर्माण से लेकर समकों के अंतिम विश्लेषण तक विद्यमान रहती हैं।

अनुसंधान अभिकल्प में शोध का विषय, अध्ययन की प्रकृति, विषय का परिचय, उद्देश्य, अवधारणाएं, चरों एवं परिकल्पनाओं का वितरण, समयावधि समक एकत्रीकरण का आधार व प्रविधियां, वर्गीकरण, सारणीयन, विश्लेषण तथा निर्वचन तकनीकों का विवरण, शोध सीमाएं तथा संदर्भ ग्रंथों की सूची आदि विषयवस्तु सम्मिलित होती है।

अनुसंधान अभिकल्प लचीला होना चाहिए, जिससे उसे आवश्यकतानुसार संशोधित एवं परिवर्तित किया जा सके क्योंकि एक अनुसंधान अभिकल्प को प्रभावित करने वाले विविध घटक होते हैं, जैसे समकों की अपर्याप्तता, समयाभाव, साधनों की उपलब्धता, अनुसंधानकर्ता की योग्यता तथा असामान्य कारक जैसे आर्थिक, राजनीतिक तथा प्राकृतिक घटनाएं।

अनुसंधान अभिकल्प की विषयवस्तु

अनुसंधान अभिकल्प की विषयवस्तु को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **शोध–विषय का शीर्षक**– शोध का शीर्षक बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके आधार पर अध्ययन किए जाने वाले विषय की प्रकृति व क्षेत्र का ज्ञान होता है। शीर्षक यथासंभव संक्षिप्त होना चाहिए लेकिन साथ ही उसके द्वारा विषय का पर्याप्त ज्ञान भी संभव होना चाहिए।
2. **अध्ययन की प्रकृति**– एक शोधकर्ता अन्वेषणात्मक, निदानात्मक, प्रयोगात्मक अथवा विवरणात्मक आदि कौन–सा अध्ययन कर रहा है, यह भी एक अनुसंधान अभिकल्प में स्पष्ट होना चाहिए। भिन्न प्रकार के अध्ययन के लिए भिन्न प्रकार की तकनीक का प्रयोग आवश्यक है। अतएव शोध संरचना में अध्ययन की प्रकृति का स्पष्ट होना आवश्यक है।
3. **अध्ययन का उद्देश्य**– एक शोध संरचना में अध्ययन का उद्देश्य अवश्य लिखा जाना चाहिए। ये वाक्यों अथवा प्रश्नों के रूप में भी होते हैं। प्रमुख उद्देश्यों के साथ सहायक उद्देश्यों का उल्लेख भी आवश्यक है। एक शोधकर्ता को शोध–संरचना लिखते समय उद्देश्यों का ध्यान रखना आवश्यक है।
4. **अध्ययन का क्षेत्र**– अध्ययन को अर्थपूर्ण बनाने के लिए इसके क्षेत्र के बारे में ज्ञान होना अपरिहार्य है। इससे अध्ययन संक्षिप्त या उद्देश्यानुकूल हो जाता है। क्षेत्र का निर्धारण समय, धन तथा समकों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ– लोक उपक्रमों में इस्पात की उत्पादकता विषय का अध्ययन करते समय लोक उपक्रमों में देश अथवा विदेश के क्या सभी इस्पात उपक्रमों को लिया

टिप्पणी

जाएगा अथवा केवल कुछ चुने हुए उपक्रमों को लिया जाएगा। इस्पात में इस्पात को अथवा इस्पात से निर्मित वस्तुओं को सम्मिलित किया जाएगा अथवा नहीं। उत्पादकता में केवल श्रम उत्पादकता की चर्चा की जाएगी अथवा इसमें सभी आगतों जैसे सामग्री, संयंत्र आदि की उत्पादकता भी सम्मिलित है। अतः यदि अध्ययन का क्षेत्र स्पष्ट नहीं किया जाता तो एक शोधकर्ता शोध करते समय भटक सकता है।

5. **साहित्य सर्वेक्षण**– एक शोधकर्ता को अनुसंधान अभिकल्प में साहित्य सर्वेक्षण के संदर्भ में स्पष्ट करना आवश्यक है। साहित्य सर्वेक्षण के अंतर्गत एक शोधकर्ता को यह बताना होता है कि जिस विषय पर वह शोध कर रहा है, उससे संबंधित क्या–क्या साहित्य उपलब्ध है और विभिन्न विद्वानों द्वारा संबंधित विषयों पर क्या–क्या शोध किया गया है तथा कौन–सा ऐसा अनुत्तरित प्रश्न है, जिसका शोध करना उसके लिए आवश्यक है। यदि साहित्य सर्वेक्षण न किया जाए तो संपूर्ण शोध कार्य निरर्थक हो सकता है। क्योंकि हो सकता है कि पर्याप्त धन तथा श्रम का अपव्यय करने के पश्चात जो निष्कर्ष उसने निकाले हैं, वे निष्कर्ष पहले से ही कोई शोधकर्ता निकाल चुका हो।
6. **परिकल्पना परीक्षण**– अवधारणा तथा चर सुपरिभाषित होने चाहिए। उदाहरण के लिए, कार्यकुशलता एक अवधारणा है। एक अनुसंधान अभिकल्प के अंतर्गत शोध में प्रयुक्त की जाने वाली अवधारणाओं को परिभाषित करना आवश्यक है क्योंकि बिना सुस्पष्ट परिभाषा के यह भय सदैव बना रहेगा कि कोई शब्द कहीं अलग–अलग अर्थों में प्रयुक्त न हो जाए। उदाहरणार्थ, कार्यकुशलता श्रमिकों की भी हो सकती है अथवा मशीनों की भी। श्रमिकों की कार्यकुशलता में निर्माणी श्रमिक सम्मिलित हो सकते हैं अथवा प्रबंधक वर्ग भी। इसी प्रकार चरों की भी सुस्पष्ट व्याख्या होनी आवश्यक है जैसे शुद्ध लाभ अनुपात। यहां यह अनुपात शुद्ध लाभ तथा विक्रय दो चरों के मध्य संबंध स्थापित करता है।

अब प्रश्न उठता है कि शुद्ध लाभ पूर्व से है अथवा नहीं या शुद्ध लाभ परिचालन लाभ है या इसमें अपरिचालन आय तथा व्यय का भी समायोजन किया गया। इसी प्रकार विक्रय केवल नकद बिक्री है अथवा कुल बिक्री है। क्या विक्रय में ऐसा माल, जो ग्राहक को स्वीकृति के लिए भेजा गया है, सम्मिलित किया गया है अथवा नहीं? इसका भी उल्लेख होना आवश्यक होता है।

सामाजिक अनुसंधान के गुण व दोष :

शोधात्मक गतिविधियों के अनेक गुण हैं। प्रमुख गुण निम्न प्रकार से हैं–

1. **ज्ञान की प्राप्ति** : शोध के द्वारा किसी विषय एवं प्रकरण का अध्ययन गहराई से किया जा सकता है। इससे यह लाभ होता है कि संबंधित विषय में नए आयाम जुड़ते हैं और विषय के क्षेत्र में वृद्धि के साथ–साथ उसे बौद्धिक जगत में मान्यता भी मिलती है।

2. **वैज्ञानिक सोच का विकास** : शोध से वैज्ञानिक सोच का विकास होता है। इसलिए कि अनुसंधान में आलोचनात्मक एवं तर्कपूर्ण चिंतन किया जाता है। इससे वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा मिलता है। वैज्ञानिक सोच ही मानवता को प्रगति और अभ्युदय की ओर ले जाती है।

   सामाजिक शोध सामाजिक जीवन और घटनाओं को जानने का प्रयास है। संसार अनेक रहस्यों से भरा पड़ा है। मानव जिज्ञासु प्राणी है, जो इन रहस्यों का उद्‌घाटन करना चाहता है। सामाजिक जीवन और घटनाओं को उद्‌घाटित करना सामाजिक शोध की मूल आत्मा है।

3. **अज्ञानता का नाश** : अनुसंधान विभिन्न सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान देकर उन घटनाओं के सम्बन्ध में अज्ञान को दूर करता है।

4. **ज्ञान की प्राप्ति** : सामाजिक अनुसंधान से नवीन ज्ञान मिलता है। इससे न केवल जिज्ञासाओं का समाधान होता है, अपितु यह नवीन ज्ञान के पुनर्निर्माण में सहायक होता है।

5. **भविष्यवाणी करने में सहायक** : सामाजिक अनुसंधान भविष्यवाणी करने में सहायक होता है। कभी–कभी समाज को भविष्य के बारे में जानकारी नहीं होती है। इस कारण समाज को आगे बढ़ाने में कठिनाई का अनुभव होता है। जिस प्रकार से वैज्ञानिक जीवन और जगत की घटनाओं के आधार पर संकेत देते हैं, उसी प्रकार का संकेत समाजशास्त्री भी कर सकते हैं।

6. **समाज कल्याण** : समाज कल्याण आधुनिक समाज की जरूरत है। सामाजिक संरचना में विद्यमान तत्व ही विभिन्न समस्याओं का वास्तविक कारण होते हैं। सामाजिक शोध द्वारा इन तत्वों का ज्ञान प्राप्त करके समाज को संगठित कर सकते हैं।

दोष

सामाजिक अनुसंधान के दोष निम्नलिखित हैं–

1. **सामाजिक नियंत्रण के लिए प्रभावशाली** : सामाजिक नियंत्रण की समस्या प्रत्येक विकासशील देश के सम्मुख नए रूप में सामने आती है, क्योंकि सामाजिक नियंत्रण के प्रचलित साधन नई परिस्थितियों में इतने प्रभावशाली नहीं रहते हैं। प्राचीन भारतीय समाज में प्रथाएं परंपराएं रूढ़ियां, धर्म, ग्राम पंचायत के साथ–साथ संयुक्त परिवार और जाति व्यवस्था भी सामाजिक नियंत्रण में महत्वपूर्ण योगदान देती थी। परंतु औद्योगिक एवं नागरीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण परिवर्तित परिस्थितियों में अब ये नियंत्रण के साधन अपना प्रभाव खो रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में समाज में अनुशासनहीनता में वृद्धि हो रही है। सामाजिक शोध के द्वारा ही इन साधनों को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

2. **सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिये** : विकासशील समाज में परिवर्तन की गति तेज रहती है। परिवर्तनशील समाज संक्रमण कालीन अवस्था से गुजरने

वाला समाज होता है। ऐसे समाजों में नए प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। साथ ही परिवर्तन किस समय हो रहा है, यदि यह मालूम न हो तो वह समाज अपने लक्ष्यों से भटक सकता है। भारतीय समाज के साथ वर्तमान में यही घटित हो रहा है। पुरानी संस्थाएं खत्म हो रही हैं और नई संस्थाएं उत्पन्न हो रही हैं। क्या छोड़ें? क्या पकड़ें? क्या करें? इस दुविधा में सामान्य जन फंसे हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें सही मार्गदर्शन की आवश्यकता है। सामाजिक शोध के द्वारा परिवर्तन की सही दिशा का आकलन कर जन सामान्य का उसके प्रति मार्गदर्शन किया जा सकता है। ताकि वे सही दिशा का चुनाव कर सकें। इस प्रकार भारत में सामाजिक शोध का लोकव्यापीकरण आवश्यक प्रतीत होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. सामाजिक सर्वेक्षण के अंतर्गत कितने चरण आते हैं?
   (क) तीन (ख) चार
   (ग) पांच (घ) छह
4. तथ्यात्मक अनुभव के आधार पर किन समस्याओं के समाधान ढूंढे जाते हैं?
   (क) आनुभविक (ख) विश्लेषणात्मक
   (ग) मूल्यात्मक (घ) निर्देशात्मक

2.4 आंकड़ा संकलन की विधियां और प्रविधियां

अनुसंधानकर्ता का स्वयं का अनुभव उपकल्पना के निर्माण का स्रोत बन जाता है। यह उसके समस्या के प्रति दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। अवधारणाएं वास्तविकता को स्पष्ट करने के लिए वैज्ञानिक द्वारा काम में लाई जाती हैं। परन्तु कई बार ऐसा होता है कि वह वास्तविकता के उन पहलुओं को उपेक्षित कर देता है, जिनकी वह वैज्ञानिक जानकारी चाहता है। यह तभी होता है जब जल्दी में, बिना सोचे समझे ऐसे संप्रत्ययों का त्रुटिपूर्ण चयन कर लिया जाता है। अतः वैज्ञानिक को चाहिए कि वह ऐसी परिस्थितियों से बचने का प्रयत्न करे। एक प्रारंभिक इकाई अथवा केवल एक इकाई तत्व अथवा तत्वों का एक ऐसा समूह है जिस पर पर्यवेक्षण किए जा सकते हैं अथवा जिससे एक सुपरिभाषित सांख्यिकीय कार्यरीति के अनुसार अपेक्षित सांख्यिकीय सूचना प्राप्त की जा सकती है। इकाइयों के उदाहरण हैं व्यक्ति, परिवार, फार्म, कारखाने इत्यादि। एक सूचना प्रदान करने वाली इकाई वह इकाई है जो वास्तव में आवश्यक सांख्यिकीय सूचना प्रदान करती है अथवा जिससे सूचना सरलतापूर्वक प्राप्त की जा सकती है।

2.4.1 आंकड़ा संकलन की विधियां

किसी सामाजिक–आर्थिक समस्या को समझने, विश्लेषण करने और व्याख्या करने के लिए आंकड़ों का संकलन करना आवश्यक होता है। जब हम आंकड़ों का संकलन

करके समस्या का विश्लेषण करते हैं तो हम उन समस्याओं के कारणों को समझने के साथ–साथ उनके समाधान को भी खोजते हैं। आंकड़ा एक ऐसा साधन है जो सूचनाएं प्रदान कर समस्या के समझने में सहायक होता है। अतः आंकड़ों के संग्रह का उद्देश्य किसी समस्या के स्पष्ट एवं ठोस समाधान के लिए साक्ष्य को जुटाना है। इसलिए सामाजिक अनुसंधान के लिए आंकड़ों का संकलन सबसे प्रथम एवं प्रमुख कार्य है। आंकड़े निम्नलिखित विधियों से संकलित किए जाते हैं जैसे– (1) प्राथमिक आंकड़े (2) द्वितीयक आंकड़े।

प्राथमिक आंकड़े

''किसी भी शोध या अनुसंधान में आंकड़ों के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। वे अनुसंधान के अंतरंग भाग हैं, लेकिन साथ ही वे स्रोत भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं जहां से एक अनुसंधानकर्ता समस्या के विश्वसनीय अध्ययन के लिए सूचना संग्रहित करता है। तथ्य सामग्री विश्वसनीय स्रोतों पर निर्भर है जो कि अनुसंधानकर्ता के बोझ को महत्वपूर्ण रूप से हल्का कर देते हैं।''

एक अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान में तथ्य–सामग्री को आधार मानकर चलता है। तथ्य सामग्री के अभाव में वह अनुसंधान–कार्य संचालित नहीं कर सकता। केवल कल्पनाओं और आदर्शों को सामने रखकर वह विश्वसनीय, वैज्ञानिक एवं तार्किक परिणामों को प्राप्त नहीं कर सकता। जब तक तथ्य–सामग्री उसे उपलब्ध नहीं होगी, वह न तो उनका विश्लेषण कर सकता है और न अपने अध्ययन विषय का उपयोग ही। आधुनिक युग में जब सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में अनुसंधान की प्रकृति काफी वैज्ञानिक एवं उससे संबंधित साधन भी तकनीकी प्रकृति के होते जा रहे हैं, तथ्य–सामग्री का स्वरूप भी उनके अनुकूल होता जा रहा है। अनुसंधान की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि आंकड़ों के स्रोत विश्वसनीय हैं या नहीं। विश्वसनीय स्रोतों के अभाव में आंकड़ों के संकलन में भी दोष प्रवेश कर जाते हैं। अनुसंधानकर्ता को अनुसंधान–कार्य शुरू करने से पूर्व, तथ्य–सामग्री के भेद तथा स्रोतों के विभिन्न प्रकारों का ज्ञान होना अनिवार्य है। सामाजिक अनुसंधान में तथ्यों के विभिन्न प्रकार एवं उनके विविध स्रोत हैं। जिन आंकड़ों का अनुसंधान में विशेष महत्व है, उन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है–प्राथमिक आंकड़े (Primary Data) और द्वितीयक आंकड़े (Secondary Data)।

प्राथमिक आंकड़े (Primary Data) उन्हें कहते हैं, जिनके अंतर्गत अनुसंधानकर्ता स्वयं घटना स्थल पर जाकर या संबंधित व्यक्तियों से साक्षात्कार कर प्रश्नावली और अनुसूची द्वारा आंकड़े प्राप्त करता है। इन्हें प्राथमिक इसलिए कहा गया है क्योंकि अनुसंधानकर्ता पहली बार सामग्री को मूल स्रोतों से प्राप्त करता है। इस सामग्री को क्षेत्रीय सामग्री की भी संज्ञा दी जाती है क्योंकि अध्ययनकर्ता स्वयं उस क्षेत्र में जाकर निरीक्षण करता है और संबंधित लोगों से संपर्क स्थापित करता है। श्रीमती यंग के शब्दों में, ''प्राथमिक तथ्य–सामग्री प्रथम स्तर पर इकट्ठी की जाती है एवं इसके संकलन तथा प्रकाशन का उत्तरदायित्व उस अधिकारी पर रहता है जिसने मौलिक रूप में उन्हें एकत्र किया था।''

प्राथमिक आंकड़ों को एकत्र करने के दो स्रोत हैं–

(1) **समस्या से संबंधित व्यक्ति**– ये व्यक्ति न केवल भूत की बातों का ज्ञान कराते हैं बल्कि अपने अनुभव के आधार पर उन घटनाओं का भविष्य भी बता सकते हैं। ये संबंधित व्यक्ति व्यवसायी, समाजसेवी तथा सामुदायिक नेता हो सकते हैं।

(2) **प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा**– अनुसंधानकर्ता स्वयं किसी समूह या संगठन के संबंध में तथ्यों का निरीक्षण कर उन्हें एकत्र करता है।

- **सावधानियां**

(1) अनुसंधानकर्ता अनावश्यक सामग्री को एकत्रित न करे।

(2) प्रत्यक्ष निरीक्षण द्वारा जिन तथ्यों को एकत्र किया जाता है, उनके प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया न अपनाएं।

(3) सामग्री अव्यवस्थित ढंग में एकत्र न की गई हो।

(4) जो प्राथमिक सामग्री–तथ्य एकत्र किए गए हैं, उनमें कोई बड़ा परिवर्तन न हो।

(5) सामूहिक जीवन का निरीक्षण करते समय अनुसंधानकर्ता सामने वाले व्यक्ति को यह महसूस न होने दे कि उस पर निरीक्षण किया जा रहा है।

द्वितीयक आंकड़े

द्वितीयक तथ्य–सामग्री कम महत्व की नहीं होती। द्वितीयक तथ्य जो अध्ययनकर्ता प्रकाशित या अप्रकाशित प्रलेखों, पत्र, डायरी, पाण्डुलिपि आदि से प्राप्त करता है, द्वितीयक तथ्य सामग्री में आते हैं। श्रीमती यंग के शब्दो में, ''द्वितीयक तथ्य सामग्री वह है जिसे मौलिक स्रोतों से एक बार प्राप्त करने के बाद एकत्रित किया गया है तथा प्रकाशित अधिकारी उनसे अलग है, जिसने प्रथम स्तर पर इकट्ठी सामग्री को नियंत्रित किया था।''

द्वितीयक तथ्य–सामग्री के दो मुख्य स्रोत हैं–

(1) व्यक्तिगत प्रलेख जिनमें व्यक्तिगत डायरियां, पत्रों तथा संस्मरणों को सम्मिलित किया जाता है।

(2) सार्वजनिक प्रलेख जिनमें पुस्तकें, रिपोर्ट, रिकॉर्ड, शिलालेख आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

- **सावधानियां**

(1) जिस सामग्री का संकलन किया जा रहा है, वह वर्तमान अध्ययन के लिए उपयोगी है या नहीं, इस पर अनुसंधानकर्ता को ध्यान देना चाहिए।

(2) वह जिस द्वितीयक सामग्री को एकत्र कर रहा है, वह उसके अध्ययन विषय के लिए पर्याप्त होनी चाहिए।

(3) उसे यह भी देखना चाहिए कि इकाइयां सजातीय हैं या नहीं।

आंकड़ों के स्रोत

तथ्य–सामग्री को एकत्र करने के लिए अनेक स्रोतों को काम में लाया जाता है। यह अनुसंधानकर्ता पर निर्भर करता है कि वह किन–किन स्रोतों से अपने अध्ययन से संबंधित तथ्य–सामग्री को एकत्र करना चाहता है। अतः अनुसंधान की आवश्यकता पर निर्भर करता है कि कौन–कौन से स्रोत आवश्यक हैं या अनावश्यक, संगत हैं या असंगत। उसे इस बात पर ध्यान अवश्य देना चाहिए कि सामग्री का स्रोत विश्वसनीय तथा सुलभ हो ताकि वह अंधेरे में न भटकता रहे।

विभिन्न विद्वानों और लेखकों ने तथ्य–सामग्री के इन स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया है। श्रीमती यंग के अनुसार, ''सामान्यतः स्रोतों को प्रलेखनीय और क्षेत्रीय स्रोतों में विभाजित किया जाता है।'' प्रलेखनीय स्रोतों में प्रकाशित और अप्रकाशित प्रलेख, रिपोर्ट, सांख्यिकी, पाण्डुलिपि, पत्र, डायरियां आदि सम्मिलित हैं। क्षेत्रीय स्रोतों में उन जीवित व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है जिनको सामाजिक परिस्थितियों के बारे में ज्ञान तथा उनमें हुए परिवर्तन की जानकारी हो।

लुंडबर्ग के अनुसार दो प्रमुख स्रोत ये हैं –

(1) ऐतिहासिक स्रोत (Historical Sources): जिनमें प्रलेख, शिलालेख, खुदाई से प्राप्त वस्तुएं एवं भूतत्वीय स्तर आदि सम्मिलित हैं।

(2) क्षेत्रीय स्रोत (Field Sources): जिनमें जीवित व्यक्तियों से प्राप्त सूचनाएं एवं क्रियाशील व्यवहार का प्रत्यक्ष अवलोकन शामिल है।

प्रोफेसर बेगले के अनुसार दो प्रमुख स्रोत ये हैं –

(1) प्राथमिक स्रोत, जिनके अंतर्गत समस्या से संबंधित व्यक्ति तथा निरीक्षण आते हैं।

(2) द्वितीयक स्रोत, जिनके अंतर्गत सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं, प्रकाशित या अप्रकाशित प्रलेखों आदि को सम्मिलित किया जाता है।

स्पष्ट है कि तथ्य–सामग्री के प्रमुख स्रोत दो ही हैं– प्राथमिक एवं द्वितीयक।

(अ) प्राथमिक स्रोत

प्राथमिक स्रोत उन स्रोतों को कहते हैं जिनके द्वारा अनुसंधानकर्ता स्वयं प्रथम बार तथ्यों अथवा विभिन्न सूचनाओं को संकलित करता है। वह इन तथ्यों को अपनी आवश्यकतानुसार एकत्र करता है। तथ्यों को एकत्र करने में उसका व्यक्तिगत लगाव (Personal Attachment) भी काफी महत्वपूर्ण रोल अदा करता है। जिस संबंध में तथ्यों का संकलन करना है उनका भली–भांति निरीक्षण करके वह व्यर्थ को छोड़, उपयोगी सामग्री को प्राप्त करने की कोशिश करता है। पीटर एच.मैन के शब्दो में, ''प्राथमिक स्रोत हमें प्रथम स्तर पर संकलित की गई तथ्य–सामग्री प्रदान करते हैं, अर्थात जिन लोगों ने उनको इकट्ठा किया है उनके द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री के ये मौलिक स्वरूप हैं।''

प्राथमिक स्रोतों के प्रकार

श्रीमती यंग के अनुसार प्राथमिक स्रोतों में जिनको सम्मिलित किया जाता है, वे ये हैं–प्रत्यक्ष निरीक्षण, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली तथा अन्य व्यक्ति। हम अपनी सुविधा की दृष्टि से इनके दो भाग कर सकते हैं –

1. प्रत्यक्ष स्रोत (Direct Sources), तथा
2. अप्रत्यक्ष स्रोत (Indirect Sources)

1. प्रत्यक्ष स्रोत (Direct Sources)–अनुसंधानकर्ता स्वयं अध्ययन–स्थल पर जाकर अपनी समस्या से संबंधित घटनाओं तथा व्यवहारों का निरीक्षण करता है। वह समुदाय के विभिन्न लोगों से संपर्क स्थापित कर उनसे सामग्री प्राप्त करता है। वह घटना स्थल का स्वयं की आंखों से निरीक्षण करता है। वह सामाजिक घटनाओं और कार्यक्रमों में स्वयं कहां तक भाग ले सकता है, या केवल दर्शक के रूप में बना रहता है, यह निरीक्षण या अवलोकन के विभिन्न प्रकारों पर निर्भर करता है।

निरीक्षण को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है–

(i) सहभागी निरीक्षण : इसमें निरीक्षणकर्ता समूह में अपनत्व का अनुभव करता है। उसकी भावनाएं और दृष्टिकोण, समूह की भावनाओं और दृष्टिकोण से मिल जाते हैं। इसका लाभ यह है कि वह समूह के रीति रिवाजों, व्यवहारों को बहुत नजदीक से समझ पाता है। वह केवल मात्र दर्शक ही नहीं रहता बल्कि एक सक्रिय निरीक्षणकर्ता बन जाता है। समुदाय के लोगों को पता ही नहीं चलता कि निरीक्षणकर्ता उनके व्यवहार, रीति रिवाजों का अध्ययन कर रहा है, अतः उसके अध्ययन में उन लोगों के स्वाभाविक व्यवहार के कारण पक्षपात–दोष नहीं आ सकता।

(ii) असहभागी निरीक्षण : इसके अंतर्गत अनुसंधानकर्ता स्वयं सक्रिय भाग न लेकर तटस्थ भाव से कार्यक्रमों का निरीक्षण करता है। वह समूह के कार्यक्रमों, व्यवहारों से पृथक रहकर ही निरीक्षण करता है।

(iii) अर्द्ध–सहभागी निरीक्षण : इस प्रकार के निरीक्षण में सहभागी और असहभागी दोनों निरीक्षणों के गुण पाए जाते हैं। इसमें अनुसंधानकर्ता कुछ कार्यों में भाग लेता है, परंतु अनेक कार्यो में तटस्थ निरीक्षणकर्ता के रूप में समूह का अध्ययन करता है।

प्रत्यक्ष स्रोत में निरीक्षण के अलावा, अनुसंधानकर्ता कभी–कभी समस्याओं के बारे में जानकारी समुदाय के लोगों से सीधी बातचीत के द्वारा भी प्राप्त करता है। इसके दो तरीके अपनाए जाते हैं–(क) साक्षात्कार (Interview) (ख) अनुसूचियां (Schedule)

(क) साक्षात्कार : प्राथमिक सूचना प्राप्त करने का यह प्रमुख स्रोत है। इसमें अनुसंधानकर्ता स्वयं स्थानीय लोगों से संपर्क स्थापित करके बातचीत द्वारा सम्बन्धित तथ्यों को प्राप्त करता है। चूंकि स्थानीय लोगों का स्थानीय समस्याओं से घनिष्ठ संबंध रहता है तथा उनसे संबंधित अन्य स्रोतों का भी ज्ञान होता है, अतः उनसे निजी स्तर पर वार्तालाप द्वारा विश्वसनीय और लाभप्रद सामग्री प्राप्त की जा सकती है। यदि किसी ऐतिहासिक स्थल के बारे में जानकारी प्राप्त करनी

हो तो, अनुसंधानकर्ता, बुजुर्गों, स्थानीय जानकारों, संबंधित पुजारियों, पादरियों तथा मठाधीशों से साक्षात्कार द्वारा संबंधित तथ्यों को प्राप्त करता है। अनुसंधानकर्ता को यह अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति साक्षात्कार स्वीकार करने में मना करता है तो उस पर इस संबंध में दबाव नहीं डालना चाहिए क्योंकि वह बिना दिलचस्पी के परेशान होकर विश्वसनीय और संगतपूर्ण जानकारी नहीं देगा। अतः स्थान, परिस्थितियां, समुदाय के लोगों की प्रकृति आदि को ध्यान में रखते हुए उसे इस पद्धति को अपनाना चाहिए।

(ख) **अनुसूचियां** : अनुसूची में प्रश्न तथा खाली सारणियां दी हैं। अनुसंधानकर्ता स्वयं सूचनादाताओं के पास जाकर उनसे प्रश्न पूछकर उत्तर इन अनुसूचियों में भर देता है। अनुसूची का उद्देश्य सूचनादाताओं से उत्तर पाकर, अनुसंधान में वैषयिकता (Objectivity) लाना है। यह पद्धति बड़ी ही लाभप्रद और उपयोगी है। इसमें प्रश्नों को तोड़ मरोड़कर नहीं पूछा जा सकता। प्रश्नों का क्रम एक सा रहता है। प्रश्न लिखित रूप में होने के कारण अनुसंधानकर्ता को अनावश्यक रूप से इन्हें याद नहीं करना पड़ता, अन्यथा वह कुछ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना भूल भी सकता है। साक्षात्कार की विधि बड़ी जटिल सी लगती है उत्तरदाता प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो जाता है। इस प्रकार के दोष अनुसूची पद्धति में नहीं पाए जाते हैं। अनुसूचियों से प्राप्त सूचना निष्पक्ष होने के कारण बड़ी उपयोगी रहती है। यह स्रोत तभी लाभप्रद हो सकता है जब अध्ययन क्षेत्र बहुत विस्तृत न हो। इस स्रोत द्वारा अनुसंधानकर्ताओं ने बड़ी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की है। यह स्रोत काफी लोकप्रिय होता जा रहा है। इसके द्वारा अशिक्षित लोगों से भी सूचना प्राप्त करने में कठिनाई नहीं रहती। स्थानीय भाषा के कारण थोड़ी कठिनाई आ सकती है जिसका निवारण वहां के स्थानीय पढ़े लिखे लोगों के द्वारा किया जा सकता है।

2. अप्रत्यक्ष स्रोत (Indirect Sources) : इसमें अनुसंधानकर्ता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदाताओं से संपर्क स्थापित नहीं कर पाता। अप्रत्यक्ष स्रोत में मुख्यतः प्रश्नावलियों (Questionnaire) को तथा अति गोपनीय मामले जैसे मत पत्रों को सम्मिलित किया जाता है।

प्रश्नावली : अनुसंधानकर्ता विषय से संबंधित जानकारी प्रश्नावली द्वारा आसानी से प्राप्त कर सकता है। जब अनुसंधान का क्षेत्र व्यापक होता है अथवा सूचनादाता दूर–दूर बिखरे होते हैं, तो प्रश्नों की एक सूची डाक द्वारा उसके पास पहुंचा दी जाती है। सूचनादाता उस प्रश्नावली को भरकर अभीष्ट जानकारी अनुसंधानकर्ता को देता है। यह विधि उन अनुसंधानों में तो और भी लाभप्रद है, जहां सूचना को बार–बार प्राप्त करना होता है। प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचना में डाकखर्च तथा पहली बार की गई छपाई के अलावा अधिक व्यय भी नहीं होता। यह स्रोत तभी लाभप्रद हो सकता है जब उत्तरदाता पढ़े लिखे हों और उनमें सहयोग की भावना हो, अन्यथा प्रश्नों के जबाव उनसे न तो दिए जा सकेंगे और न समय पर प्रश्नों के उत्तर ही मिल पाएंगे। इसका प्रयोग गंभीर महत्वपूर्ण अनुसंधानों में नहीं किया जाता क्योंकि प्रश्नावलियों द्वारा सूचना भ्रमपूर्ण

एवं असत्य हो सकती है। हमारे देश में यह स्रोत अधिक प्रमाणित सिद्ध नहीं हो पाया है। मिल्डे पार्टन ने, अप्रत्यक्ष स्रोतों में निम्नलिखित साधनों का उल्लेख किया है–

दूरभाष साक्षात्कार : इसके अंतर्गत अनुसंधानकर्ता दूरभाष के माध्यम से उत्तरदाताओं से संबंध स्थापित कर सामग्री प्राप्त करता है। यह विधि बड़े–बड़े शहरों में अनुसंधानकर्ता अपनाता है, जहां समय का अभाव है। इससे न केवल समय की बचत होती है बल्कि कई कठिनाइयां दूर हो जाती हैं। जैसे प्रायः साक्षात्कार स्वीकृत करने में लोग हिचकिचाते हैं तथा अनुसंधानकर्ता स्वयं भी आमने–सामने साक्षात्कार में झेंप जाते हैं। यही विधि जहां आंकड़े प्राप्त करने हों, अनुपयुक्त रहती है।

रेडियो अपील : रेडियो सूचना प्रसारण का एक अच्छा साधन है। रेडियो द्वारा कई प्रकार के प्रोग्राम समय–समय पर प्रसारित किए जाते हैं जो श्रोताओं एवं दिलचस्पी लेने वाले विभिन्न व्यवसायों के लोगों को आकर्षित करते हैं। इससे रेडियो श्रोता अध्ययनकर्ता को संबंधित जानकारी दे भी सकते हैं। परंतु यह स्रोत विश्वसनीय नहीं है क्योंकि श्रोता जो अपनी राय पत्रों द्वारा भेजते हैं, उसमें कई अनर्गल बातें भी होती हैं।

पैनल पद्धति : इस पद्धति के अंतर्गत कुछ लोगों का पैनल (दल) बना दिया जाता है जो अनुसंधानकर्ता को जनता के रूख, रुचि एवं वैचारिक भावनाओं की सूचना–सामग्री प्रदान करते हैं। यह स्रोत काफी विश्वसनीय है। इसका दोष यह है कि पैनल में कार्य करने वाले सदस्यों में मनमुटाव एवं वैमनस्य की भावना बढ़ती है जिससे वे एक दूसरे की निंदा करते हैं, आरोप–प्रत्यारोप लगाते हैं। इसका कुप्रभाव अनुसंधानकर्ता पर पड़ता है और उसे निष्पक्ष जानकारी नहीं हो पाती।

प्राथमिक स्रोतों के गुण व दोष

प्राथमिक स्रोतों के गुण निम्न प्रकार हैं–

(1) **स्वाभाविकता** : इन स्रोतों के अंतर्गत, अनुसंधानकर्ता उत्तरदाताओं से घनिष्ठ संबंध स्थापित कर सकता है अतः जो जानकारी लोगों से उसे व्यक्तिगत संपर्क से प्राप्त होगी, उसमें कृत्रिमता प्रवेश नहीं करेगी। उदाहरणार्थ जब अनुसंधानकर्ता सहयोगी निरीक्षणकर्ता के रूप में, भाग लेकर जो सामग्री प्राप्त करता है वह निष्पक्ष होगी क्योंकि समुदाय के लोग स्वाभाविक रूप में अपने कार्यक्रम को प्रस्तुत करते हैं।

(2) **वास्तविकता** : इस स्रोत द्वारा किसी भी तथ्य के बारे में वास्तविकता का ज्ञान होता है। जब अनुसंधानकर्ता समुदाय के व्यक्तियों के साथ बहुत घुल–मिल जाता है तो वे व्यक्ति भी अनुसंधानकर्ता में अपनत्व की झलक देखते हैं। दोनों के मध्य मानो कोई अंतर ही नहीं है। ऐसे वातावरण में वे मनोवैज्ञानिक रूप से नियंत्रित न होकर, अधिक स्वतंत्र हो जाते हैं जिससे कई महत्वपूर्ण तथा गोपनीय मामलों की भी सही स्थिति का पता लग जाता है।

(3) **वैषयिकता** : प्राथमिक स्रोतों में वैषयिकता का पाया जाना एक बड़ा गुण है, वे वैषयिकता लाने में सहायक हैं। उदाहरण के लिए अनुसूची पद्धति द्वारा अनुसंधानकर्ता लिखित प्रश्नों के उत्तर उत्तरदाता से प्राप्त करता है। इसमें कोई

ऐसी बात नहीं है कि उत्तरदाता पक्षपातपूर्ण होकर उनका उत्तर देगा। सिर्फ सावधानी यह बरतनी पड़ती है कि प्रश्न स्पष्ट हों टेढ़े–मेढ़े और भ्रामक न हों।

(4) विश्वसनीयता : प्राथमिक स्रोतों में अधिकांश सामग्री निकट संबंध स्थापित करके प्राप्त की जाती है, अतः वह काफी विश्वसनीय होती है। अनुसंधानकर्ता को स्वयं पर भी विश्वास होता है कि उसने जो जानकारी प्राप्त की है, वह स्वाभाविक रूप में है न कि किसी दबाव के फलस्वरूप प्राप्त की गई है। बहुत नजदीक से किए हुए अध्ययन में धोखे की गुंजाइश नहीं रहती है।

(5) कम खर्चीला : इन स्रोतों में सामग्री कम खर्च होती है। अनुसूचियों के द्वारा वह दूर–दूर स्थानों पर निवास करने वाले लोगों से संपर्क स्थापित कर सामग्री को प्राप्त कर सकता है। जब बार–बार सूचना को प्राप्त करना होता है तो प्रश्नावली पद्धति श्रेष्ठ रहती है। इसमें अनुसंधानकर्ता के घटना स्थल पर जाने या व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती। इससे समय की भी बचत होती है।

दोष

प्राथमिक स्रोतों के दोष निम्न प्रकार हैं–

(1) अनुसंधानकर्ता के सामने यह कठिनाई आती है कि वह साक्षात्कार लेते वक्त अपनी अभिनति पर किस प्रकार नियंत्रण प्राप्त कर सके।

(2) अनुसूची द्वारा जो तथ्य सामग्री प्राप्त की जाती है, इसमें कई कठिनाइयां आती हैं। अनपढ़ इसका महत्व नहीं समझते अतः या तो वे उत्तर देने में संकोच करेंगे या अधिक जोर दिया गया तो ऊटपटांग जबाब दे देंगे।

(3) अनुसंधानकर्ता, प्राथमिक स्रोतों से सामग्री प्राप्त करने में स्वतंत्र होने के कारण, उनका दुरुपयोग करता है। यदि उसे अधिक स्वतंत्रता नहीं मिलती तो वह शायद इसका प्रयोग बड़ी सावधानी से करता।

(ब) द्वितीयक स्रोत

'द्वितीयक स्रोत' (Secondary Sources) शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि इनका महत्व नहीं है। अनुसंधानकर्ता केवल प्राथमिक स्रोतों पर ही अपने अनुसंधान की सामग्री के लिए निर्भर नहीं रह सकता। ''द्वितीयक स्रोत भी उसे मूल्यवान महत्वपूर्ण एवं आवश्यक सामग्री प्रदान करते हैं तथा उसके अनुसंधान के बचे हुए या अधूरे कार्य को पूरा करने में सहायक हैं।'' द्वितीयक स्रोत वे स्रोत हैं जिनमें प्रकाशित या अप्रकाशित प्रलेख या समस्त लिखित सामग्री सम्मिलित है।

प्राचीन युग में प्राथमिक स्रोतों का ही अधिक प्रचलन था। अनुसंधानकर्ता इसको ही महत्वपूर्ण एवं प्रमाणिक मानकर चलता था, परंतु अब द्वितीयक स्रोतों की जैसे–जैसे उसको जानकारी मिलती रहती है, वह अपनी अनुसंधान सामग्री के लिए इन स्रोतों पर पर्याप्त निर्भर होता जा रहा है।

द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत आने वाले ऐतिहासिक प्रलेखों, जीवन इतिहासों ऐतिहासिक डायरियों का महत्व कम नहीं है। इतिहास की उपेक्षा सामाजिक अनुसंधानों

में नहीं की जाती। जॉन ए. मेज का मत है, ''ऐतिहासिकता को समाजशास्त्र की श्रेणी से बाहर कर देना कोई बुद्धिमता का कार्य नहीं है, केवल नाम मात्र के समाजशास्त्री ही प्रलेखों के उपयोग का त्याग करते हैं, चाहे वे सामाजिक हों अथवा प्राचीन।'' अतः पूर्व इतिहास के बिना किसी घटना के महत्व को नहीं समझ सकते। यदि सामाजिक संस्थाओं, घटनाओं का अध्ययन करना है तो ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक होगा।

द्वितीयक स्रोत को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :

(क) व्यक्तिगत प्रलेख (Personal Document)

(ख) सार्वजनिक प्रलेख (Public Document)

(क) व्यक्तिगत प्रलेख (Personal Document)

व्यक्तिगत प्रलेख वह लिखित सामग्री है जिसमें एक व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं के बारे में या सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक घटनाओं के बारे में वर्णन अपने दृष्टिकोण से किया हुआ हो। व्यक्तिगत प्रलेखों में सामान्यतः लेखक स्वयं के विचार, मनोवृत्तियों, आवेग, भावनाओं एवं दृष्टिकोण का समावेश करता है। स्वयं के निजी कार्यों, अनुभवों एवं विश्वासों का एक स्वतः लिखित प्रथम पुरुष वर्णित है। इससे स्पष्ट होता है कि (1) व्यक्तिगत प्रलेख द्वारा व्यक्ति स्वयं लिखे हुए होते हैं या यों कहिये उसकी स्वयं की रचना होती है, (2) इन प्रलेखों में उनकी मनोवृत्तियों और किसी घटना विशेष के बारे में दृष्टिकोण का पता चलता है, (3) ये रचनाएं व्यक्ति के स्वयं के अनुभवों पर निर्भर होती हैं, एवं (4) इसमें उसके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है।

व्यक्तिगत प्रलेखों का आज फैशन ही चल रहा है। इनको लिखने वाले महान व्यक्ति–लेखक, दार्शनिक, उच्चकोटि के नेता, साहित्यकार, कवि, कूटनीतिज्ञ आदि होते हैं। इन प्रलेखों में विस्तृत सामग्री मिल जाती है, जिससे अनुसंधानकर्ता को यह सुविधा और स्वतंत्रता रहती है कि वह जितनी सामग्री अर्थपूर्ण एवं उपयोगी समझे, उनका संकलन कर सके। क्योंकि ये प्रलेख व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं। अतः हमें लेखक के आन्तरिक भावों का पता चलता है कि उसका दृष्टिकोण किसी भी घटना के संबंध में एक विशेष प्रकार का क्यों हो रहा है? उसकी आंतरिक गहराइयों में छानबीन करने का हमें सुअवसर मिलता है, जो शायद हमें अन्य स्रोतों से नहीं मिलता। जेर के अनुसार, ''व्यक्तिगत प्रलेख अपने बिना मांगे रूप में बहुत मूल्यवान होते हैं। किसी विशेष सामाजिक सर्वेक्षण में भी वे उसकी प्रारंभिक खोज तथा प्राक्कल्पना निर्माण के साधन के रूप में अच्छा मार्गदर्शन कर सकते हैं।''

व्यक्तिगत प्रलेखों को लिखने के कारण

आलपोर्ट ने प्रलेखों को लिखने के पीछे कतिपय निम्नलिखित मुख्य कारण बताए हैं –

1. कार्य के औचित्य को सिद्ध करने के लिए।
2. अपने दोष, बुराइयों को स्वीकार करने के लिए।
3. व्यक्तिगत अनुभवों को साहित्य का रूप देकर, आनन्द उठाने के लिए।

4. मानसिक तनावों और संघर्षों से छुटकारा पाने के लिए।
5. किसी सौंपे हुए कार्य की पूर्ति के लिए।
6. योग्यता प्रदर्शन के लिए।
7. धन व सम्मान पाने के लिए।
8. जनकल्याण की भावना द्वारा प्रेरित होकर।

व्यक्तिगत प्रलेखों के स्रोत

(1) जीवन–इतिहास (life-Histories)

(2) डायरियां (Diaries)

(3) पत्र (Letters)

(4) संस्मरण (Memories)

1. **जीवन–इतिहास** : जॉन मेजर के शब्दों में, ''जीवन इतिहास का सच्चे अर्थ में तात्पर्य विस्तृत आत्म कथा से है। सामान्य अर्थ में इसका प्रयोग ढीले–ढाले तौर पर होता है तथा किसी भी जीवन संबंधी सामग्री के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।''

   महापुरुषों द्वारा लिखी गई आत्म कथाओं में केवल व्यक्तिगत जीवन की ही झांकी नहीं मिलती है। जवाहर लाल नेहरू व गांधी जी द्वारा लिखित आत्मकथाएं भारतीय संस्कृति तथा स्वाधीनता संघर्ष की जीती–जागती आत्मकथाएं हैं जिनमें पता चलता है कि भारत वर्ष का कौन सा स्वर्णिम युग रहा, कौन सी विकट समस्याएं किन–किन युगों में आईं, उस समय देश की क्या राजनीतिक, आर्थिक स्थिति थी, आदि।

   जीवन के इतिहास के सामान्यतः तीन प्रकार हैं –

   (क) स्वतः प्रेरित आत्मकथाएं (Spontaneous Autobiography)–व्यक्ति अपनी इच्छा से जीवन के अनुभवों का स्मरण कर जीवन की घटनाओं का क्रमिक रूप से ब्यौरा लिखता है।

   (ख) इच्छित–आत्म लेखन प्रमाण (Volunteered Self-records)–ये प्रायः किसी प्रकाश, मित्रों, अनुसंधानकर्ता या सरकार से प्रेरणा मिलने या उनके कहने पर लिखे जाते हैं।

   (ग) संकलित जीवन इतिहास (Compiled Life-History)–ये वे जीवनियां हैं जिन्हें व्यक्ति स्वयं नहीं लिखता बल्कि उसके द्वारा दिए गए, भाषण, प्रकाशित लेख, साक्षात्कार, प्रेस स्टेटमेंट आदि में संकलित करके अन्य व्यक्ति उसके जीवन के इतिहास को तैयार करता है।

   इन जीवन कथाओं में न केवल विवरणात्मक सामग्री होती है बल्कि बड़े ही रोचक, हृदयस्पर्शी दृष्टांत पढ़ने को मिलते हैं जो प्रायः बड़े महत्व के होते हैं।

टिप्पणी

हमें इस प्रकार नैतिकता एवं आदर्शों का प्रशिक्षण भी मिलता है। यह तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक घटनाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करने का श्रेष्ठ साधन है।

इन जीवनियों का इतना महत्व होते हुए भी, इनकी कुछ सीमाएं हैं –

(1) इनमें लेखक के व्यक्तित्व के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है पर अन्य घटनाओं का वर्णन संक्षेप में ही मिलता है जिसे अनुसंधानकर्ता अनुसंधान सामग्री का आधार नहीं बना सकता।

(2) जीवनियों के प्रकाशन का उन्हें पहले से ही पता होता है, अतः वे कई बातों को छिपा देते हैं जिससे आत्म कथा या जीवनी का उद्देश्य विफल हो जाता है।

(3) लेखक का राजनीतिक सुझाव भी उसके मार्ग में बाधक हो जाता है जिसके कारण वह तथ्यों का उद्‌घाटन नहीं करना चाहता।

(4) प्रकाशन अपने स्वार्थवश उनके बारे में बढ़ा–चढ़ाकर लिखते हैं और घटनाओं को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत करते हैं।

(5) लेखक केवल उसी घटना को सम्मिलित करने की कोशिश करता है जो उसके दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

2. **डायरियां** : डायरियों में बहुत से लोग जीवन की विभिन्न घटनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इनमें घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं और भावनाओं का समावेश होता है। जीवन के कटु अनुभव, विशेष परिस्थिति में स्वयं की मनः स्थिति, प्रक्रियाएं, रोष, सुख–दुख, मनोभाव आदि का वर्णन अक्सर डायरियों में मिलता है। इनमें गोपनीय से गोपनीय बातों का भी जिक्र मिल जाता है। इस अर्थ में डायरियां आत्म कथाओं की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होती हैं। जॉन मेज के अनुसार, ''डायरियां सबसे अधिक रहस्योद्‌घाटन करने वाली होती हैं, क्योंकि जनता के समक्ष प्रस्तुत किए जाने का भय न होने के कारण, तथ्यों को तोड़ा–मरोड़ा नहीं जाता। ये डायरियां लेखक के अनुभवों तथा क्रियाओं का निष्पक्ष एवं स्पष्ट रूप से वर्णन करती हैं।'' डायरियां संबंधी स्रोतों में प्रायः निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं –

(क) अधिकांशतः जीवन के संघर्ष–पक्ष को बढ़ा–चढ़ाकर प्रकट किया जाता है तथा जीवन का सामान्य एवं शान्तिपूर्ण पक्ष प्रायः बिल्कुल ही छोड़ दिया जाता है।

(ख) स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता क्योंकि लेखक कई बार सांकेतिक भाषा में स्वयं के समझने के लिए लिख देता है।

(ग) घटनाओं में क्रमबद्धता नहीं रहती क्योंकि कई बार डायरियों को महीनों तक नहीं लिखा जाता। बीमारी, घरेलू समस्याएं, आपत्तियां उलझनें, अन्य व्यस्त कार्यक्रम आदि इतने हावी हो जाते हैं कि वह लिख नहीं पाता।

(घ) कभी–कभी इनमें भी कृत्रिमता आ जाती है क्योंकि डायरी लेखक सचेत रहते हैं कि एक दिन ये डायरियां प्रकाशित हो सकती हैं या होंगी। अतः इनमें निष्पक्षता नहीं आ पाती।

इन दोषों के बावजूद डायरियां अधिक प्रमाणित और विश्वसनीय मानी जाती हैं।

3. **पत्र** : चूंकि पत्र व्यक्तिगत होते हैं, अतः इनके माध्यम से लेखक के वास्तविक विचारों, भावनाओं एवं दृष्टिकोणों का पता आसानी से लग जाता है। सामाजिक जीवन जैसे विवाह, प्रेम, तलाक या यौन पर लिखे पत्र तो वास्तविकताओं का ही चित्रण करते हैं। राजनीतिज्ञ द्वारा लिखे गुप्त पत्र देश की विदेश नीति का रहस्योद्घाटन करते हैं। राष्ट्राध्यक्षों के मध्य पत्र व्यवहार से पता चल सकता है कि देशों के आपसी संबंध कैसे रहे हैं, मधुर या कटु। पत्र शिक्षा व परीक्षण के भी अच्छे साधन हैं जैसे नेहरू जी द्वारा इन्दिरा को लिखे गए पत्र।

   इनमें निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं– (1) गोपनीय होने के कारण ये आसानी से मिल नहीं पाते। (2) घटनाओं का क्रमिक रिकॉर्ड नहीं मिलता। (3) कई महत्वपूर्ण तथा अनुसंधान से संबंधित पत्र प्राप्त नहीं हो पाते क्योंकि कई तो गुम ही हो जाते हैं, कुछ बिल्कुल फटी हालत में होते हैं जिन्हें पढ़ा भी नहीं जा सकता। (4) कई बार भावनाओं में बहकर बहुत कुछ लिख दिया जाता है, बाद में अफसोस भी प्रकट किया जाता है। अतः क्षणिक भावनाओं पर आधारित ऐसे पत्र तथ्यों का उद्घाटन नहीं करते।

4. **संस्मरण** : कई बार लोगों द्वारा जीवन की घटनाओं विभिन्न यात्राओं तथा महत्वपूर्ण परिस्थितियों के संस्मरण, अनुसंधानकर्ता को महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं। संस्मरण किसी देश या समाज की आर्थिक, सांस्कृतिक, एवं शैक्षणिक परिस्थितियों के बारे में वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन काल में यात्रा वर्णनों, तथ्यों, संस्मरणों ने ऐतिहासिक महत्व की सामग्री प्रदान की है। ह्वेनसांग, फाहियान, इब्नबतूता, के वर्णन भारतीय संस्कृति के बारे में प्रथम स्तर की महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। इस प्रकार के विवरणों से हमें रीति–रिवाज, रहन–सहन, धर्म, वंश, भाषा एवं राजनीतिक परिस्थितियों तथा सामाजिक वातावरण के बारे में उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है। आज–कल बड़े–बड़े राजनेताओं के संस्मरण जैसे चर्चिल, नेहरू, इन्दिरा गांधी आदि के बड़े ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

दोष

संस्मरणों में निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं–

(1) संस्मरण अधिकांशतः व्यक्ति प्रधान होते हैं।

(2) कई बार घटनाओं का वर्णन बढ़ा चढ़ाकर किया जाता है।

(3) इनमें भी घटनाओं का क्रम नहीं है।

(4) साधारणतः भाषा की दृष्टि से सुंदर रूप प्रस्तुत किए जाने का प्रयत्न रहता है।

व्यक्तिगत प्रलेखों का महत्व

सामाजिक अनुसंधान में व्यक्तिगत प्रलेखों का काफी महत्व है। प्रलेखों के माध्यम से भावनाओं, आवेगों और दृष्टिकोणों का स्पष्ट रूप से पता चलता है। इनके द्वारा घटनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इनका महत्व तब और भी बढ़ जाता है जब ये प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे गए होते हैं। तुलनात्मक अध्ययन के लिए व्यक्तिगत प्रलेख बड़े महत्व के हैं।

व्यक्तिगत प्रलेखों की सीमाएं (Limitations)—व्यक्तिगत प्रलेखों की स्वयं की कुछ सीमाएं हैं—

(1) व्यक्तिगत होने के कारण इनको आसानी से उपलब्ध नहीं किया जा सकता। हर व्यक्ति की पहुंच बड़ी नहीं होती।

(2) व्यक्तिगत प्रलेख गोपनीय होते हैं अतः लेखक उनको देने में भी हिचकिचाता है क्योंकि उसे अपनी प्रतिष्ठा का बड़ा ख्याल रहता है।

(3) कई बड़े प्रलेखों में घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में नहीं लिखा जाता क्योंकि लेखक की अपनी सीमायें होती हैं। अतः हमें पता नहीं चल पाता कि वे किस संदर्भ में लिखी गई हैं।

(4) इनमें कल्पना एवं आदर्श को अधिक स्थान मिलता है जिससे वास्तविकता छुप जाती है।

(5) लेखक का स्वयं का दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण हो सकता है क्योंकि उसे यह चेतना रहती है कि इन्हें प्रकाशित किया जाएगा।

(6) कभी—कभी केवल मात्र विद्वता को दिखाने के लिए ये लिख दिए जाते हैं। अतः वास्तविक प्रयोजन गौण हो जाता है।

(7) व्यक्तिगत होने के कारण ये प्रयोग समूचे समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

अंत में यही कहा जा सकता है कि यदि अनुसंधानकर्ता स्वयं कुछ सावधानी बरते तो वह व्यक्तिगत प्रलेखों का महत्वपूर्ण उपयोग अपने अनुसंधान में कर सकता है।

(ख) सार्वजनिक प्रलेख

सार्वजनिक प्रलेख उन्हें कहते हैं जिन्हें कोई सरकारी या गैर—सरकारी संस्था तैयार करती है। उन्हें प्रकाशित या अप्रकाशित रूप में जनता के लाभ के लिए उपलब्ध कराया जाता है। देश में विभिन्न प्रकार के आयोजन या कार्यक्रम रखे जाते हैं, उनका फिर रिकॉर्ड सरकार अपने पास रखती है। योजनाएं जैसे परिवार नियोजन, प्रौढ़ शिक्षा, तकनीकी प्रगति तथा औद्योगिक विकास आदि के संबंध में कई कार्यक्रम समय—समय पर होते रहते हैं। इनके संबंध में आंकड़े, सूचनाएं सुरक्षित रखी जाती हैं। कुछ अर्द्ध या गैर सरकारी संस्थाएं भी अलग से आंकड़े और सूचनाएं रखती हैं।

टिप्पणी

सार्वजनिक प्रलेखों को भी दो भागों में विभाजित किया गया है –

(अ) प्रकाशित प्रलेख (Published Documents)

(ब) अप्रकाशित प्रलेख (Unpublished Documents)

(अ) प्रकाशित प्रलेख : केवल उन्हीं प्रलेखों को प्रकाशित किया जाता है जो आम जनता द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं। ये सार्वजनिक स्थानों जैसे सार्वजनिक वाचनालयों, स्कूल और कॉलेज पुस्तकालयों में उपलब्ध हो सकते हैं। सार्वजनिक प्रलेख मुख्यतः निम्न प्रकार के होते हैं––

(1) **रिकॉर्ड** : विभिन्न सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठन या संस्थायें अपनी आवश्यकताओं के लिए अनेक सूचनाओं का रिकॉर्ड रखती हैं जिनसे सामाजिक घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकती है पर क्या, बदनाम चरित्रों, समाज विरोधी तत्वों के रिकॉर्ड सरकार के पास रहते हैं? जिसकी जानकारी अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन हेतु प्राप्त कर सकता है। विभिन्न प्रकार की समितियां–सम्मेलन अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करते रहते हैं और कुछ का रिकॉर्ड ब्योरों से प्राप्त हो सकता है। प्राइवेट कम्पनी के डायरेक्टर (निर्देशक) अपनी–अपनी कम्पनियों की सभाएं बुलाते हैं, जिनमें लाभ, नुकसान का ब्योरा दिया जाता है। कई प्रस्ताव आते हैं, जो महत्व के होते हैं उनको रिकॉर्ड के रूप में रख लिया जाता है।

(2) **प्रकाशित आंकड़े** : सरकार तथा प्राइवेट संस्थाएं समय–समय पर आंकड़े प्रदान करती हैं। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर आंकड़े प्रकाशित किए जाते हैं जिनसे पता चलता है कि हमने विभिन्न क्षेत्रों में क्या उपलब्धियां प्राप्त की हैं, क्या हमारे उद्देश्य हैं तथा हम किस रफ्तार से प्रगति पथ पर चल रहे हैं। ''भारत'' 1973, 1974, 1975 हर साल प्रकाशित होता है जिससे लगभग सभी विषयों पर आंकड़ों का संकलन मिलता है।

(3) **पत्र व पत्रिकाओं की रिपोर्ट** : विभिन्न प्रकार की साप्ताहिक, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, अर्द्ध वार्षिक एवं वार्षिक पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं जिनमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा अंतर्राष्ट्रीय–घटनाओं का ब्योरा मिलता है। अनुसंधानकर्ता अपनी कार्य संबंधी सामग्री को इनके माध्यम से प्राप्त कर सकता है। इनमें संपादकीय लेख बहुत महत्व के होते हैं जिनसे जनमत का पता लगाया जा सकता है।

(4) **विविध सामग्री** : पत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों, उपन्यासों में विविध प्रकार की प्रकाशित सामग्री का लाभ अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान में उठा सकता है। कई उपन्यास जिनका उद्देश्य सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत कर उनका समाधान बताना होता है, वे सामाजिक अनुसंधानकर्ता के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। कई चलचित्र सामाजिक बुराइयों के भंडाफोड़ करने एवं उनमें सुधार करने के लिए किए गए प्रयत्नों को दर्शाते हैं, इनसे भी संबंधित जानकारी प्राप्त होने की सुविधा रहती है।

(ब) अप्रकाशित प्रलेख : इनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं –

(1) **गोपनीय रिकॉर्ड** : ये वे रिकॉर्ड होते हैं। जो सार्वजनिक होते हुए भी परिस्थितियोंवश प्रकाशित नहीं किए जा सकते। सार्वजनिक हित, सुरक्षा एवं व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इनका प्रकाशन नहीं किया जाता। न्यायालयों के रिकॉर्ड, सैनिक दफ्तरों के रिकॉर्ड, जो प्रतिरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बोर्ड तथा विश्वविद्यालयों के परीक्षाफल रिकॉर्ड विभिन्न कम्पनियों तथा बैंको के रिकॉर्ड जो गोपनपीय प्रकृति के होते हैं, उन्हें प्रकाशित नहीं किया जाता। संबंधित सूचनाएं उसी स्थिति में दी जा सकती हैं जब अधिकारी को स्वयं विश्वास हो जाता है कि प्राप्त सूचना का उद्देश्य केवल मात्र अनुसंधान कार्य के लिए है, या प्रमाणित प्रतिलिपियों जैसे– जन्म तिथि, संसद की कार्यवाही आदि के लिए इनकी आवश्यकता होती है।

(2) **दुर्लभ हस्तलेख** : कई हस्तलेख विद्वानों, विचारकों, लेखकों व प्रतिभाशाली साहित्यकारों द्वारा लिखे गए हैं पर किसी कारणवश (जैसे अकस्मात मृत्यु या प्रकाशक द्वारा मुद्रित न करना) अप्रकाशित रह जाते हैं। अनेक हस्तलेख स्वयं द्वारा लिखे हुए होने के कारण या तो पढ़ने योग्य नहीं होते या वे किसी कारण विकृत या बर्बाद हो जाते हैं। इन हस्तलेखों से बड़ी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है। कई दुर्लभ हस्तलेख विभिन्न संग्रहालयों में पाए जाते हैं जिनका प्रयोग अनुसंधान के संबंध में सूचना प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

(3) **शोध रिपोर्ट** : ये रिपोर्ट विद्यार्थियों द्वारा विश्वविद्यालयों में एम.ए. या पीएच. डी. डिग्री प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत की जाती हैं। इनका प्रकाशन बहुत मुश्किल से हो पाता है। व्यक्ति स्वयं इनका प्रकाशन आर्थिक परिस्थितियों के कारण नहीं करवा पाता और प्रकाशक को जब तक मुनाफा होता नहीं दिखाई देता, वह इन शोध कार्यों को प्रकाशित नहीं करता। परिणाम यह होता है कि इन प्रकाशित शोध रिपोर्टों का उपयोग विश्वविद्यालयों तक ही सीमित रहता है।

द्वितीयक स्रोतों के गुण, दोष एवं सावधानियां

द्वितीयक स्रोतों के गुण, दोष व सावधानियों को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

गुण

(1) भूतकालीन एवं ऐतिहासिक महत्व के तथ्य द्वितीयक स्रोतों से ही प्राप्त हो सकते हैं न कि प्राथमिक स्रोतों से।

(2) व्यक्तिगत डायरियों तथा संस्मरणों से व्यक्ति के मनोभाव, प्रकृति तथा आन्तरिक गहराइयों का पता स्पष्ट रूप से चलता है, अतः मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए इनसे प्राप्त सामग्री बहुत महत्वपूर्ण होती है।

(3) जो सूचना साधारणतः किसी अध्ययनकर्ता को नहीं मिल सकती, वह सरकारी रिकॉर्ड द्वारा आसानी से प्राप्त हो जाती है।

(4) आत्मकथाओं से प्राप्त सूचना, विश्वसनीय व लाभप्रद होती है क्योंकि इसके अंतर्गत विविध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पक्षों का वर्णन निष्पक्ष दृष्टि से किया जा सकता है।

(5) इन स्रोतों से प्राप्त सामग्री के फलस्वरूप समय और धन की बचत होती है।

दोष

(1) व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा प्राप्त सामग्री व्यक्तित्व के बारे में विस्तृत जानकारी देती है न कि विशेष रूप से सामाजिक घटनाओं की।

(2) व्यक्तिगत प्रलेखों में कई बार बातें बढ़ा–चढ़ा कर लिखी जाती हैं जो निष्पक्ष एवं विश्वसनीय नहीं हो सकती।

(3) निंदा व आलोचना के भय से लेखक सत्य का उद्घाटन अपनी आत्मकथाओं व पत्रों में नहीं करता, अतः इनसे वास्तविकता का पता लगाना मुश्किल है।

(4) अक्सर घटनाओं का जिक्र क्रमहीन होता है अतः वे विशेष उपयोगी नहीं हो सकती।

(5) सरकारी आंकड़ों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। कई बार आंकड़ों व वास्तविकता के बीच मेल नहीं खाता।

(6) कई गोपनीय रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं हो पाते, अतः अभीष्ट जानकारी मिलना दुर्लभ हो जाता है।

सावधानियां

अनुसंधानकर्ता को द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों का बड़ी सावधानी से प्रयोग करना चाहिए। आंकड़ों को प्रयोग में लाने से पहले उनकी विश्वसनीयता की जांच करनी चाहिए। सरकारी आंकड़ों को ज्यों का त्यों नहीं मान लेना चाहिए क्योंकि वे काल्पनिक हो सकते हैं अतः इनकी पुनर्परीक्षा कर लेनी चाहिए। डॉ. वाउले के शब्दों में, ''प्रकाशित आंकड़ों को बिना उनका अर्थ तथा सीमाएं समझे हुए ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना जोखिम से मुक्त नहीं है और यह सदैव जरूरी है कि उन पर आधारित किए जाने वाले तर्कों की आलोचना कर ली जाए।''

2.4.2 आंकड़ा संकलन की प्रविधियां

''प्रविधियों के अंतर्गत वे विशिष्ट तरीके सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा समाजशास्त्री अपने तथ्यों को, उनके तार्किक या सांख्यिकीय विश्लेषण के पूर्व, एकत्र तथा क्रमबद्ध करता है।''

सामाजिक अनुसंधान के आधार विश्वसनीय तथ्य हैं। अनुसंधानकर्ता अपनी समस्या से संबंधित स्रोतों का पता लगाने के पश्चात् तथ्यों का संकलन करना चाहता है। चूंकि तथ्य सामग्री के अभाव में उसका संपूर्ण अनुसंधान निरर्थक है, अतः वह यह निश्चित करता है कि किन–किन स्रोतों से सामग्री या सूचनाएं प्राप्त करने में आसानी रहेगी। सामग्री स्रोत प्राथमिक और द्वितीयक भी हो सकते हैं। स्रोतों के निर्धारण के बाद, वह उन प्रविधियों के बारे में सोचता है जिनके द्वारा संबंधित तथ्यों को संकलित किया जा सकता है। तथ्यों के संकलन में कोई एक प्रविधि प्रचलित नहीं है, कई प्रविधियां

प्रयोग में लाई जा सकती हैं। किन प्रविधियों को काम में लाया जाए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि जिन स्रोतों से सामग्री को प्राप्त करना है, वे प्राथमिक महत्व के हैं या द्वितीयक महत्व के। अब हम उन प्रविधियों का अध्ययन करेंगे, जिनके द्वारा तथ्य सामग्री का संकलन किया जाता है।

• सामग्री विश्लेषण

अनुसंधान कार्य में समूह संचारों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा प्रदान की गई सामग्री अनुसंधान की विभिन्न समस्याओं के समाधान में सहायक है। आधुनिक युग में संचार साधनों में अभिवृद्धि होने के कारण हमें जीवन के विभिन्न पक्षों के संबंध में सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। परंतु इन सभी सूचनाओं का प्रयोग किस ढंग से किया जाए, क्या वे तर्क संगत हैं या क्या वे सभी विषयो सें संबंधित हैं, इत्यादि बातें हमारे सामाजिक अनुसंधान में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। अतः एक विशेष प्रकार की प्रविधि, जिसे वस्तु विश्लेषण कहा गया है, का विकास किया गया है जो संचारों की सामग्री को व्यवस्थित रूप से वर्णित कर सके। चूंकि सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाएं गुणात्मक एवं अमूर्त होती हैं, अतः उनका विश्लेषण करना एक जटिल कार्य हो जाता है। सामग्री के उचित विश्लेषण के लिए उसे विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। इसका यह प्रयोजन है कि सामाजिक घटनाओं की सामग्री को वैज्ञानिक तथ्यों में परिवर्तित किया जाए ताकि वह समस्याओं के समाधान में सहायक हो सके और भविष्य में किए जाने वाले सामाजिक अनुसंधानों का मार्ग दर्शन भी कर सके।

सामग्री विश्लेषण प्रविधि के पूर्व भी, समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी संचार के रिकार्डों का प्रयोग विभिन्न प्रयोजनों के लिए करते थे। साहित्यिक आलोचक लेखकों की कृतियों का विभिन्न उद्देश्यों हेतु अध्ययन करते थे। उनकी शैली, उनके विचारों की गहनता एवं भाषा इत्यादि के संबंध में आलोचकों को विपुल सामग्री प्राप्त हो जाती थी। इसी प्रकार एक समाजशास्त्री, आदमकाल के लोगों के रहन–सहन, भाषा, रीति–रिवाज एवं विभिन्न प्रकार के पर्व और धार्मिक संस्कारों का पता लगाने के लिए प्राचीन रिकार्डों का प्रयोग किया करता था। कभी–कभी उसके सामने यह समस्या भी उत्पन्न हो जाती थी कि जो तथ्य उसके समक्ष आये हैं या उसने एकत्र किए हैं। क्या वे प्रमाणिक एवं सत्य हैं या नहीं। प्रमाणिकता एवं सत्यता का पता लगाने के लिए वह जिस प्रविधि को काम में लाता था उसे आज हम विषय विश्लेषण कहते हैं।

आधुनिक सामग्री–विश्लेषण (Content Analysis) द्वारा अनुसंधान क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया गया है। अनुसंधान के लिए संचार विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः इस क्षेत्र में नवीन प्रविधियों और परिपूर्ण यन्त्रों एवं साधनों का विकास किया गया है। नवीन पद्धतियों के अंतर्गत जिस एक नवीन तथ्य को जोड़ा गया है, उसे हम सामग्री विश्लेषण के नाम से पुकारते हैं।

इसकी कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं इस प्रकार दी गई हैं –

बेरलसन के अनुसार, ''विषय विश्लेषण (Content Analysis), संचार की व्यक्तिगत सामग्री के वैषयिक, व्यवस्थित और कलात्मक विवरण हेतु एक अनुसंधान प्रविधि है।''

केपलॉन के शब्दों में, ''सामग्री विश्लेषण, एक दी हुई सामग्री के अंग के, अर्थों की एक व्यवस्थित एवं मात्रात्मक ढंग से व्याख्या करने की कोशिश है।''

जेमिस के शब्दो में, ''चिह्न वाहनों को केवल निर्णयों के आधार पर वर्गीकरण करने की प्रविधि, विश्लेषण के परिणाम, चिह्नों या चिह्नों के वर्गों के घटने की आवृत्ति को प्रकट करते हैं।'' कर्लिंग के मतानुसार, ''वस्तुविश्लेषण चरों को मापने के लिए संचारों के व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ और मात्रात्मक ढंग से अध्ययन और विश्लेषण करने की पद्धति है।''

सामग्री विश्लेषण की इन परिभाषाओं के आधार पर निम्नलिखित विशेषताएं हैं –

1. इसका संबंध संचार वाहनों के प्रभावों के निर्धारण से है।
2. यह मात्रात्मक होती है।
3. इसका प्रयोग सामान्यीकरणों के लिए किया जा सकता है।
4. इसमें वस्तुनिष्ठता का गुण है।
5. इसमें क्रमबद्धता का गुण है।

अधिकांशत: चरों (Variables) को मापने के लिए वस्तुविश्लेषण पद्धति प्रयुक्त नहीं की गई है। इसका प्रयोग विभिन्न संचार घटनाओं की सापेक्षिक आवृत्ति (Frequency) के लिए किया गया है। बरलिंगा के विचारानुसार, यह एक अवलोकन एवं मापन की विधि है। वस्तुविश्लेषण निश्चित रूप से विश्लेषण की पद्धति से कुछ अधिक है। इसके अंतर्गत अनुसंधानकर्ता लोगों के व्यवहार का प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण न कर या साक्षात्कार कर, उनके संचारों को प्राप्त करता है और उन्हीं संचारों के प्रश्नों को पूछता है। हालांकि एक तरीके से हम अवलोकन, साक्षात्कार कर रहे हैं, परंतु इस ढंग से करते हैं कि लोगों का व्यवहार स्वयं तक ही सीमित हो। इस पद्धति द्वारा हम चरों का निरीक्षण एवं मापन करते हैं। आधुनिक युग में कम्प्यूटरों की सेवाएं आसानी से उपलब्ध होने के कारण हम इस पद्धति का प्रयोग और भी सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। प्राक्षेपिक तरीकों द्वारा उसी सामग्री को प्रस्तुत किया जा सकता है जो अनुसंधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है जिसके द्वारा हम लोगों द्वारा दिए गए उत्तरों का विश्लेषण कर, उनके व्यवहार का पता लगा सकते हैं।

सामग्री विश्लेषण की इकाइयां

सामग्री विश्लेषण की इकाइयां कई प्रकार की हो सकती हैं। ये इकाइयां प्रसंग, पात्र, शब्द, वाक्य, पैराग्राफ, स्थान आदि हैं। आजकल इन इकाइयों को काफी महत्व दिया जा रहा है। किसी विचारधारा के महत्व का विश्लेषण शब्दों के आधार पर किया जाता है। एक लेख में प्रयुक्त शब्दों को अलग–अलग गिना जा सकता है और उसके आधार पर बतलाया जा सकता है कि कौन सी विचारधारा कितनी महत्वपूर्ण है, उसका क्या औचित्य है और भविष्य में उसका क्या महत्व रहेगा। आजकल चुनाव भाषणों का शब्दों के आधार पर ही विश्लेषण किया जाता है। पत्र–पत्रिकाओं में किस अंश को महत्व दिया जाता है, इसका अध्ययन शब्दों की इकाई मानकर किया जा सकता है।

वाक्यों के आधार पर किसी भाषण या लेख आदि का विश्लेषण किया जा सकता है। वाक्यों के आधार पर बतलाया जा सकता है कि लेखक ने किसको महत्व दिया है। उदाहरणार्थ– ''प्रजातंत्र न केवल जन सहमति पर आधारित विचारधारा है बल्कि मूलतः एक आध्यात्मिक भावना पर आधारित विचारधारा है।'' समाजवाद एक टोपी के समान है जिसकी आकृति बिगड़ गई है क्योंकि हर व्यक्ति इसको पहनता है। ये वाक्य विश्लेषण इकाइयों के रूप में बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार पात्रों को, जो अक्सर नाटक, उपन्यास, सिनेमा व रेडियो कार्यक्रम में आते रहते हैं, सामग्री विश्लेषण की इकाइयों में सम्मिलित किया जा सकता है। शेक्सपीयर के नाटकों में फॉलस्टॉफ जैसे दिलचस्प पात्र आते हैं।

आजकल मदों को इकाइयों के रूप में बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है। उदाहरणार्थ एक समाचार मद रेडियो पर निर्मित भाग बन गया जिसे निश्चित समय के अनुसार प्रसारित किया जाता है।

सामग्री विश्लेषण की विभिन्न श्रेणियां

सामग्री विश्लेषण की विभिन्न श्रेणियां निम्नलिखित हैं–

1. **मूल्य भेद**–आध्यात्मिक, भौतिक संबंधी मूल्य, सामाजिक स्थिति संबंधी मूल्य।
2. **'स्तर भेद'**–नैतिक एवं अनैतिक, हर्ष व कष्ट, साहसी व डरपोक इत्यादि।
3. **सामग्री स्रोत**–चुनाव घोषणाएं, पार्टी बुलेटिन, रचनाएं, अंग्रेजी इत्यादि।
4. **कथन**–काल्पनिक, वास्तविक, तथ्यहीन, सार्थक।
5. **भाषण**–अध्यापकों हेतु भाषण, अधिकारियों, मजदूरों, अल्पमत समुदाय, उद्योगपतियों को दिए गए भाषण।
6. **विभिन्न प्रसंग**–प्रकृति, साहित्य, कला, समुदाय, वर्ग।
7. **व्यक्तित्व विशेषताएं**–अंतर्मुखी व बहिर्मुखी व्यक्तित्व।
8. सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक वातावरण व स्थिति से संबंधित वर्गीकरण।

इस सामग्री विश्लेषण पद्धति द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है। इसका प्रयोग छात्रों में बढ़ती अनुशासनहीनता, शिक्षास्तरों में गिरावट, नैतिकता का पतन, भ्रष्टाचार की व्यापकता, प्रशासनिक उदासीनता, तलाक, सामाजिक तनाव, आर्थिक विषमताओं, राजनीतिक दलों का, प्रजातांत्रिक संस्थाओं की सफलताओं व विशेषताओं इत्यादि का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर महत्वपूर्ण तथ्यों के संकलन हेतु किया जा सकता है, जो न केवल अनुसंधानकर्ता के स्वयं के लिए उपयोगी है बल्कि देश व समाज के लिए भी है। इन तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर कई विसंगतियों व समाज की बुराइयों को सदैव के लिए समूल नष्ट किया जा सकता है। सेंलटिंज, जहोदा, ड्यूस, और कुक के अनुसार, विश्लेषण को 'सुनिश्चित नियंत्रणों के अंतर्गत संचालित किया जाता है ताकि वह

व्यवस्थित तथा वैषयिक हो—(1) विश्लेषण की श्रेणियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है ताकि दूसरे अनुसंधानकर्ता या व्यक्ति उनको निष्कर्षों के प्रमाणीकरण के लिए प्रयुक्त कर सकें, (2) विश्लेषणकर्ता, सामग्री के चयन और रिपोर्ट करने में इतना स्वतंत्र नहीं है कि जो उसको दिलचस्पपूर्ण लगे उसको ही चुने, परंतु उसे अपने निदर्शन में समस्त संगत सामग्री को व्यवस्थित रूप से वर्गीकृत करना चाहिए, (3) मात्रात्मक प्रणाली को प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि हम पत्रों के संपादकीय लेखों के व्यवस्थित निदर्शन को लें और संपादकीय लेखों की सापेक्षिक संख्या को गिनें कि एक विदेशी राष्ट्र भाषा के प्रति उनका क्या दृष्टिकोण रहा है। इस प्रकार का जो तरीका हम अपना रहे हैं वह मात्रीकरण का एक सरल रूप है जो पर्याप्त रूप में व्यावहारिक एवं विश्वसनीय है।

वस्तु सामग्री विश्लेषण की अपनी कुछ कठिनाइयां, समस्याएं एवं सीमाएं भी हैं।

विषय–विश्लेषण द्वारा गुणात्मक सामग्री को वैषयिक तथ्यों में परिवर्तित किया जाता है। परंतु इस बात की क्या गारन्टी है कि वे तथ्य प्रमाणिक हैं। इनकी सत्यता की जांच कैसे की जाए? यह समस्या सामाजिक विज्ञानों में है। परंतु इनके समाधान के लिए यह सुझाया जा सकता है कि विश्लेषण की व्याख्या स्पष्ट हो, तथ्यों के वर्गीकरण के लिए श्रेणियों को स्थापित किया जाए, व्यवस्थित रूप से सारणीबद्ध हों, इत्यादि। इसके अतिरिक्त विश्लेषण के जिन आधारों को निर्मित किया जाए वे अनुसंधानकर्ता की सहमति पर हों ताकि प्रमाणिकता पर प्रतिकूल असर न पड़े।

एक अन्य समस्या सामान्यीकरण की यह है कि क्या सामान्यीकरण अध्ययन सब विषयों पर प्रयुक्त हो सकते हैं? क्या तथ्यों के आधार पर सब विषयों में सामान्यीकरण संभव होगा कि नही?

इस समस्या के समाधान के लिए यह हल सुझाया जा सकता है कि जिस सामग्री का विश्लेषण किया गया है उसमें समग्र के गुण मौजूद होने चाहिए ताकि समग्र के विषय में सामान्यीकरण करने में कठिनाई उत्पन्न न हो। इसके अतिरिक्त जिन परिस्थितियों में अध्ययन किया जा रहा है उनका स्पष्ट वर्णन भी सामान्यीकरण के समय अनिवार्य है।

विषय विश्लेषण की रूपरेखा के निर्माण में मुख्य चरण

विषय विश्लेषण की रूपरेखा के निर्माण में मुख्य चरण निम्नलिखित हैं—

(1) **उपयोगी तथ्यों का संकलन :** सर्वप्रथम समस्या से संबंधित तथ्यों का संकलन किया जाना चाहिए ताकि उनकी उपयोगी सारणी बनाई जा सके एवं व्यर्थ तथ्यों का संकलन नहीं किया जाना चाहिए ताकि उनकी उपयोगी सारणी बनाई जा सके एवं व्यर्थ तथ्यों के संकलन से बचा जा सके।

(2) **अध्ययन की इकाइयों का चयन** : संगतपूर्ण तथ्यों को एकत्र करने के बाद यह निर्णय लेना होता है कि किन इकाइयों को माना जाए। इकाइयों में अखबारों के संपादकीय लेख, पूर्ण पृष्ठ, पैराग्राफ, स्तंभ इत्यादि हो सकते हैं।

(3) **सारणीयन का निर्माण** : विषय विश्लेषण में सारणीयन का निर्माण पूर्व ही कर दिया जाना चाहिए ताकि तथ्यों के सारणीयन में किसी प्रकार की कठिनाई उत्पन्न न हो।

(4) **अध्ययन के स्वरूप की रूपरेखा** : अध्ययन के स्वरूप की रूपरेखा तैयार करने में चरों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। चरों की सूची तैयार कर ली जानी चाहिए जिनके आधार पर ही संकेत का कार्य संपादित किया जाता है। इनके आधार पर ही अध्ययन का प्रारूप तैयार किया जाता है।

(5) **श्रेणियों का निर्माण**: श्रेणियों का निर्माण चरों को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। श्रेणियां कितनी होनी चाहिए, इसके लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि क्या उन श्रेणियों में तथ्यों को सुगमतापूर्वक रखा जा सकता है। जितने चर हैं उनको अलग–अलग श्रेणियों में रखना चाहिए।

(6) **श्रेणियों की परीक्षा** : सामग्री विश्लेषण को वैषयिक बनाने के लिए यह परम आवश्यक है कि श्रेणियों की परीक्षा की जाए ताकि उनकी सार्थकता का पता लग सके।

(7) **सामग्री का विश्लेषणात्मक अध्ययन** : विभिन्न श्रेणियों मे रखी गई सामग्री का विश्लेषणात्मक वर्णन करना चाहिए।

(8) **प्रतिवेदन निर्माण** : प्रतिवेदन निर्माण में सभी चरणों का वर्णन किया जाता है। प्रतिवेदन में इस बात का ध्यान रखा जाए कि उसमें सारणियां होनी चाहिए ताकि पक्षपात का आरोप न लगाया जा सके। इसके अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण कथन, उदाहरण या नमूनों का वर्णन भी इसमें किया जा सकता है साथ ही अध्ययन की सीमाओं एवं कठिनाइयों का भी उल्लेख किया जाए। इसमें 'भविष्य की ओर संकेत' का भी समावेश किया जाए जिससे अन्य अनुसंधानकर्ताओं की कई कठिनाइयां स्वतः ही कम हो सकें।

• अवलोकन

भौतिक विज्ञान में सत्यता की जांच करने के लिए अवलोकन या निरीक्षण को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। एक वैज्ञानिक किसी भी तथ्य को तब तक स्वीकार नहीं करेगा, जब तक वह अपनी आंखों से न देख ले। वह निरीक्षण द्वारा कुछ संदेहों और भ्रांतियों को दूर कर, सत्य के निकट पहुंचने की कोशिश करता है। प्रो. गुडे एवं हाट के शब्दों में, "विज्ञान निरीक्षण से प्रारंभ होता है और इसके सत्यापन के लिए अंत में निरीक्षण पर ही लौटकर आना पड़ता है।"

प्राकृतिक विज्ञानों की भांति, सामाजिक विज्ञानों में भी अवलोकन के महत्व को कम नहीं किया जा सकता। निरीक्षण पद्धति का प्रयोग सामाजिक–वैज्ञानिकों द्वारा वर्ग, समुदाय, स्त्री–पुरुष, संस्थाओं के अध्ययन के लिए किया जा रहा है तथा अवलोकन पद्धति को उतना ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है। ऐसी अनेक पद्धतियों की खोज हुई है जिनके द्वारा निरीक्षण अधिक विश्वसनीय होता जा रहा है।

अवलोकन की परिभाषाएं

अवलोकन अंग्रेजी शब्द 'Observation' का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ 'निरीक्षण करना' है। अंग्रेजी शब्दकोष के अनुसार, ''कार्य–कारण अथवा पारस्परिक संबंध को जानने के लिए घटनाओं को ठीक अपने उसी रूप में देखना और उनका आलेखन करना, अवलोकन कहलाता है।''

सी. ए. मोजर के शब्दो में, ''ठोस अर्थ में अवलोकन का अर्थ कानों तथा वाणी की अपेक्षा आंखों का अधिक प्रयोग होना है।''

पी. वी. यंग के अनुसार, ''अवलोकन आंखों द्वारा विचारपूर्वक अध्ययन की प्रणाली के रूप में काम में लाया जाता है जिससे कि सामूहिक व्यवहार और जटिल सामाजिक संस्थाओं के साथ ही साथ संपूर्णता की रचना करने वाली पृथक इकाइयों का अध्ययन किया जा सके।''

अवलोकन की विशेषताएं

अवलोकन की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **मानव इंद्रियों का प्रयोग** : अवलोकन में मानव इंद्रियों का प्रयोग होता है। इसमें आंखों, कानों व वाणी का प्रयोग कर सकते हैं, विशेषकर नेत्रों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है। मोजर ने लिखा भी है, ''सच्चे अर्थ में अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा नेत्रों का उपयोग ही विशेष रूप से सम्मिलित है।''
2. **प्राथमिक सामग्री को प्राप्त करना** : अवलोकन की मुख्य विशेषता यह है कि घटना स्थल पर जाकर वस्तु स्थिति को देख, प्राथमिक सामग्री का संकलन करना होता है।
3. **सूक्ष्मता** : निरीक्षण में केवल मात्र देखना ही नहीं वरन घटना का गहरा एवं सूक्ष्म अध्ययन करना भी है। सूक्ष्म अध्ययन से अनुसंधानकर्ता उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो जाता है अन्यथा वह इधर–उधर भटकता रहेगा।
4. **कारण और परिणाम के संबंध में पता लगाना** : यहां शाब्दिक शब्द में अवलोकन का अर्थ देखने या निरीक्षण करने से है, वैज्ञानिक अर्थ में इसका उद्देश्य कारण परिणाम के संबंध में पता लगाना है। निरीक्षणकर्ता स्वयं घटना को देखकर आवश्यक कारणों तथा परिणामों के मध्य संबंध स्थापित करता है।
5. **व्यावहारिक या अनुभवाश्रित अध्ययन** : अवलोकन कल्पना पर आधारित न होकर अनुभव पर आधारित है। अनुभवाश्रित अध्ययन चाहे किसी भी संस्था या समुदाय का हो, सामाजिक अनुसंधान में बड़ा उपयोगी है।
6. **निष्पक्षता** : चूंकि अध्ययनकर्ता स्वयं अपनी आंखों से घटना का निरीक्षण करता है और भली–भांति उसकी जांच करता है, अतः उसका निर्णय दूसरों के निर्णय कहने सुनने पर आधारित नहीं होता। स्वयं का सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन उसे अभिनति से बचाता है।

अवलोकन या निरीक्षण के प्रकार

अवलोकन के प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. **सहभागी अवलोकन** : संक्षेप में इसका यह अर्थ है कि अनुसंधानकर्ता स्वयं किसी समूह का अंग बन जाता है। वह समूह की समस्त क्रियाओं में सक्रिय सदस्य होकर भाग लेता है और बारीकी से उसकी आदतों, व्यवहार और रीति–रिवाजों का निरीक्षण करता है। इस प्रकार के निरीक्षण द्वारा वह वास्तविक तथा निष्पक्ष तथ्यों का संकलन करता है।
2. **असहभागी अवलोकन** : इसके अंतर्गत निरीक्षणकर्ता, समुदाय की क्रियाओं में भागीदार न बन केवल दूर से निरीक्षण कर, गहराई तक पहुंचने की कोशिश करता है। इस पद्धति की यह विशेषता है कि निरीक्षणकर्ता स्वतंत्र और निष्पक्ष अध्ययन, एक तटस्थ के रूप में करता है।
3. **अर्द्ध–सहभागी निरीक्षण** : अर्द्ध–सहभागी अवलोकन पूर्व वर्णित निरीक्षण का मध्य मार्ग है। इसके अंतर्गत निरीक्षणकर्ता कुछ साधारण कार्यों में भाग लेता है और बाकी कार्यों का एक तटस्थ दृष्टा के रूप मे निरीक्षण करता है। विलियम हशइट का कथन है कि समाज की जटिलता के कारण पूर्ण एकीकरण अव्यावहारिक है। अतः अर्द्ध–तटस्थ नीति ही उत्तम है।
4. **अनियंत्रित अवलोकन** (Non-Controlled Observation)–इसके अंतर्गत घटना तथा अवलोकनकर्ता पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहता। प्रारंभ में इसी प्रणाली को काम में लाया जाता था और उसी के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते थे। सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति भी कुछ इस प्रकार की है कि सदैव नियंत्रित अवलोकन संभव नहीं हो सकता। घटना स्थल पर ही जाकर सामाजिक घटनाओं का सामान्यतः अध्ययन किया जाता है।
5. **नियंत्रित अवलोकन** (Controlled Observation)–अनियंत्रित अवलोकन के दोषों के कारण, नियंत्रित अवलोकन का विकास एवं प्रगति हुई है। इस प्रकार के निरीक्षण की यह विशेषता है कि न केवल निरीक्षणकर्ता पर नियंत्रण होता है बल्कि सामाजिक घटनाओं एवं कार्यक्रमों पर भी नियंत्रण स्थापित किया जाता है। अवलोकन की संपूर्ण योजना पहले से ही तैयार कर ली जाती है, बाद में निरीक्षण द्वारा सूचनाओं को एकत्र कर लिया जाता है। इस पद्धति का सुन्दर प्रयोग थाइलैंड के सरापी जिले के स्वास्थ्य की दशाओं के अध्ययन हेतु किया गया था।

   नियंत्रण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

   (i) **सामाजिक घटना का नियंत्रण** (Control Over Social Phenomenon)– जिस प्रकार भौतिक जगत की परिस्थितियों को प्रयोगशाला की नियंत्रित अवस्था में लाया जाता है, उसी प्रकार सामाजिक घटनाओं को भी नियंत्रित

अवस्था में लाने का प्रयत्न किया जाता है। अधिकांशतः सामाजिक घटनाएं प्रायोगिक विधि के उपर्युक्त नहीं होती, अतः इस प्रकार का नियंत्रण पाना काफी कठिन कार्य है। इसके अंतर्गत सफल प्रयोग केवल बालकों पर ही हो सकते हैं। इसके सफल प्रयोग के लिए अनुसंधानकर्ता को सूझ–बूझ एवं कुशलता से कार्य करना पड़ता है।

(ii) **अवलोकनकर्ता पर नियंत्रण** (Control Over Observer)—वैसे सामाजिक घटनाओं पर नियंत्रण रख सकना काफी कठिन कार्य है, पर निरीक्षणकर्ता स्वयं पर नियंत्रण रख सकता है। निरीक्षणकर्ता यदि पक्षपात पूर्ण और व्यक्तित्व के दोषों से बचना चाहता है तो स्वयं को नियंत्रण में आबद्ध करना होगा। यह नियंत्रण कुछ साधनों के प्रयोग से हो सकता है। निरीक्षण को यों ही न तैयार करके कैमरा, टेपरिकॉर्डर, डायरी, पैमानों आदि को प्रयोग में लाया जा सकता है। इससे परिणामों में निष्पक्षता व सत्यता अधिक होगी।

6. **सामूहिक अवलोकन** : यदि किसी एक ही सामाजिक घटना का विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं द्वारा निरंतर अलग–अलग परीक्षण किया जाता है तो उसे सामूहिक अवलोकन कहते हैं। सिंन पाओ यांग के शब्दों में, ''यह नियंत्रित और अनियंत्रित अवलोकन का सम्मिश्रण होता है। इसमें कई व्यक्ति मिलकर सामग्री को एकत्र करते हैं और तत्पश्चात् सब मिलकर उस पर विचार विमर्श करते हैं।'' इससे स्पष्ट होता है कि एक ही घटना का अनेक व्यक्तियों द्वारा अवलोकन किया जाता है। इस प्रकार के अवलोकन का यह लाभ है कि पुनरावृत्ति एवं कई व्यक्तियों के अध्ययन से पक्षपात की संभावना कम रहती है। संदेह एवं भ्रम को आसानी से दूर किया जा सकता है। इसका प्रयोग वे ही कर सकते हैं जो अधिक सामग्री, पैसा और समय काम में ला सकते हैं। अमेरिका और इंग्लैंड में इस पद्धति का अधिक प्रचलन है।

अवलोकन के गुण

अवलोकन के गुण निम्नलिखित हैं–

1. **वैषयिकता** : अवलोकन द्वारा अनुसंधानकर्ता स्वयं घटना की वस्तु स्थिति का पता लगाता है। वह अपनी ओर से कुछ नहीं मिलाता है, जो देखता है, जैसा देखता है उसका ही वह विवरण प्रस्तुत करता है। अतः अवलोकन द्वारा संकलित तथ्य सामग्री में अभिनति या पक्षपात प्रवेश नहीं कर पाता है।

2. **विश्वसनीयता** : इस पद्धति द्वारा, प्राप्त तथ्यों पर विश्वास किया जा सकता है क्योंकि घटना स्थल पर आंखों देखी स्थिति का वास्तविक ज्ञान होता है। प्रश्नावली या साक्षात्कार में अध्ययनकर्ता को सूचनादाता पर निर्भर होना पड़ता है, अतः इस विधि (प्रश्नावली) द्वारा प्राप्त सूचनाएं या तथ्य गलत भी हो सकते हैं। इस निरीक्षण पद्धति में वह स्वयं सब कुछ देखता है, अतः गलतियों की कम ही संभावना रहती है।

3. **सरलता** : अवलोकन विधि सबसे सरल मानी जाती है। अनुसंधानकर्ता को स्वयं भी दिलचस्पी होती है कि वह घटनाओं का अवलोकन स्वयं कर, निष्पक्ष एवं उपयोगी सामग्री प्राप्त करे। इसकी सरलता के कारण, समाजशास्त्री और वैज्ञानिक इसको काफी महत्व देते हैं।

4. **सत्यापनशीलता** : अवलोकन द्वारा तथ्यों की जांच हो सकती है। अनुसंधानकर्ता एक ही सामाजिक घटना का कई बार निरीक्षण करके घटना की सत्यापनशीलता परख सकता है।

अवलोकन की सीमाएं

पी.वी. यंग के अनुसार, ''समस्त घटनाएं निरीक्षण का अवसर नहीं देती, जो घटनाएं निरीक्षण का अवसर देती हैं उनमें अवलोकनकर्ता पास में नहीं होता इसलिए समस्त घटनाओं का अवलोकन पद्धतियों द्वारा अध्ययन नहीं होता।''

अवलोकन द्वारा जो तथ्य–सामग्री एकत्र की जाती है, उसके मुख्यतः निम्नलिखित दोष या सीमाएं हैं –

(i) **अवलोकनकर्ता का पक्षपात** : अवलोकनकर्ता अपने निरीक्षण व विचार में बहुत स्वतंत्र होता है, अतः वह घटनाओं को देखने में अपना दृष्टिकोण काम में लाता है। एक ही घटना स्थल पर यदि अलग–अलग लोग निरीक्षण करें तो उनके अध्ययन में भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण मिलेंगे। उदाहरण के लिए बांग्लादेश में नरसंहार, बलात्कार, हत्या व मौत की जो घटनायें घटित हुईं, उनका अवलोकन बी.बी.सी., अमेरिका और भारत के संवाददाताओं ने किया, परंतु इन सबके निरीक्षणात्मक दृष्टिकोण में इतना अंतर था कि कुछ भी निश्चित रूप से नहीं किया जा सकता था। अतः अवलोकन द्वारा भी संभव है कि तथ्य–सामग्री पूर्ण निष्पक्ष न हो पाए।

(ii) **सीमित क्षेत्र** : अवलोकन तो केवल छोटी सामग्री में ही उपयुक्त है। यदि विस्तृत सूचनायें प्राप्त करनी हों तो अवलोकन द्वारा उन्हें प्राप्त करना संभव नहीं। इसके अतिरिक्त काफी धन, समय, और श्रम खर्च करना पड़ता है जो हर किसी के लिए संभव नहीं है।

(iii) **विशिष्ट घटनाओं में अनुपयुक्त** : कुछ सामाजिक घटनायें विशिष्ट प्रकृति की होती हैं, अतः उनका अवलोकन नहीं किया जा सकता। जैसे सहानुभूति, सुझाव, क्रोध, कलह, संघर्ष आदि को अवलोकन द्वारा समझा नहीं जा सकता, यदि इस संबंध में तथ्य–सामग्री एकत्र भी की गई तो वह विश्वसनीय नहीं हो सकती।

अवलोकन के दोषों को दूर करने के उपाय

इन दोषों को दूर करने तथा अवलोकन को विश्वसनीय बनाने के लिए कुछ उपाय निम्नलिखित प्रकार से सुलझाये जा सकते हैं –

1. **निरीक्षण या अवलोकन योजना** : अनुसंधानकर्ता को एक विस्तृत अवलोकन योजना बनाकर तय कर लेना चाहिए कि किन–किन तथ्यों का निरीक्षण करना

टिप्पणी

है, कैसे करना है। यदि घटना के अनेक पहलू हों तो उसको कई पहलुओं में विभाजित कर लेना चाहिए ताकि प्रत्येक पहलू का अध्ययन भी विस्तार से और आसानी से हो।

2. **अनुसूची का प्रयोग** : यदि अवलोकनकर्ता अनुसूची की सहायता से अवलोकन करता है तो अवलोकन अधिक विश्वसनीय होगा। ये अनुसूचियां केवल विषय से संबंधित होनी चाहिएं तथा निरीक्षण की योजना भी इस प्रकार की हो कि पूर्ण सूचना प्राप्त करने में कठिनाई न हो। अनुसूची का प्रयोग वहीं लाभप्रद हो सकता है जहां अनेक कार्यकर्ता हों।
3. **आधुनिक यंत्रों का प्रयोग** : आजकल कई वैज्ञानिक यंत्रों को काम में लाया जाता है, जैसे कैमरा, टेपरिकॉर्डर आदि। इनके प्रयोग से व्यक्तिगत पक्षपात की कम संभावना रहती है। पर इनका प्रयोग बड़ी सावधानी या सतर्कता से करना चाहिए। यदि लोगों को यह पता चल जाता है कि उनके वार्तालाप को टेप किया जा रहा है या उनकी तस्वीरें ली जा रही हैं, तो ऐसी स्थिति में उनका व्यवहार कृत्रिम भी हो सकता है। अतः तथ्य–सामग्री को निष्पक्ष बनाने के लिए इनका प्रयोग सावधानी से करना चाहिए।
4. **समाजमितीय पैमानों का प्रयोग** : हाल ही में अनुसंधानों में समाजमितीय पैमानों का प्रयोग लोकप्रिय होता जा रहा है। इन पैमानों द्वारा गुणात्मक सामाजिक तथ्यों का सही माप तैयार कर लिया जाता है जिनके प्रयोग से अवलोकनकर्ता पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण नहीं अपना सकता।
5. **सामूहिक निरीक्षण** : सामूहिक निरीक्षण द्वारा प्राप्त तथ्यों पर विश्वास किया जा सकता है क्योंकि इसके अंतर्गत कई विशेषज्ञों द्वारा निरीक्षण किया जाता है।

यदि उपर्युक्त बिंदुओं को ध्यान में रखा जाए तो निरीक्षण द्वारा प्राप्त तथ्य सामग्री विश्वसनीय होने के कारण अनुसंधान में बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

- **साक्षात्कार**

क्षेत्रीय कार्य की पद्धति में साक्षात्कार पद्धति का स्थान सर्वोपरि है। व्यक्तियों की मनोवृत्तियों, भावनाओं और आन्तरिक विचारों का अध्ययन एवं विश्लेषण करने के लिए साक्षात्कार एक उपयोगी पद्धति है। इसमें अध्ययनकर्ता और सूचनादाता एक दूसरे के आमने–सामने संबंध स्थापित कर वार्तालाप करके अभीष्ट सामग्री प्राप्त करता है। इस पद्धति का प्रयोग सामाजिक विज्ञानों के अनुसंधानों में ही संभव है। भौतिक अनुसंधानों का संबंध जड़ पदार्थों से है, परंतु सामाजिक अनुसंधानों का संबंध जीवित वस्तुओं से है, अतः अनुसंधानकर्ता को व्यक्ति की भावनाओं तथा इच्छाओं का ज्ञान साक्षात्कार द्वारा करना पड़ता है।

"साक्षात्कार को एक क्रमबद्ध प्रणाली माना जा सकता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति उस दूसरे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में अधिक या कम कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है, जो उसके लिए सामान्यतः अपरिचित है।" —पी.वी. यंग

''औपचारिक साक्षात्कार जिसमें पूर्व निर्धारित प्रश्नों को पूछा जाता है, तथा उत्तरों को प्रमाणित रूप में संकलित किया जाता है, यह बड़े सर्वेक्षणों में निश्चित रूप से सामान्य है।''

''साक्षात्कार क्षेत्रीय कार्य की एक पद्धति है जो एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों के व्यवहार को देखने, कथनों को लिखने और सामाजिक अथवा समूह अंतःक्रिया के निश्चित परिणामों का निरीक्षण करने हेतु प्रयोग की जाती है। अतएव यह एक सामाजिक प्रक्रिया है। यह दो व्यक्तियों के बीच की अंतःक्रिया से संबंधित होती है।''

–सिन पाओ यंग

''साक्षात्कार मूल रूप से एक सामाजिक प्रक्रिया है।''–गुडे तथा हाट

''साक्षात्कार व्यक्तियों के आमने–सामने की कुछ बातों पर मिलना या एकत्र होना, कहा जा सकता है।'' –एम.एन. वसु

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम सामान्यतः साक्षात्कार की निम्नलिखित विशेषताएं पाते हैं –

(1) दो या दो से अधिक व्यक्तियों का वार्तालाप या निकट संपर्क होता है।

(2) इस पद्धति के अंतर्गत साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कारदाता में आमने सामने के प्राथमिक संबंध स्थापित होते हैं।

(3) आपसी विचारों के आदान–प्रदान का अच्छा साधन है।

(4) साक्षात्कार किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस पद्धति द्वारा सामग्री का संकलन किया जाता है।

साक्षात्कार : प्रकार एवं प्रक्रिया

साक्षात्कारों को अनेक भागों में विभाजित किया जाता है। यह वर्गीकरण सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है –

1. कार्यों के आधार पर वर्गीकरण

(अ) कारण परीक्षण साक्षात्कार : कारण परीक्षण साक्षात्कार उसे कहते हैं जब अनुसंधानकर्ता को किसी गंभीर घटना या समस्या के कारणों का पता लगाना हो। अतः इस साक्षात्कार का मुख्य उद्देश्य समस्या के कारणों की खोज करना है।

(ब) उपचार साक्षात्कार : अनुसंधानकर्ता समस्याओं के कारणों का पता लगाने के बाद उसके हल के लिए साक्षात्कार संचालित करता है। वह समस्या के निवारण के लिए संबंधित व्यक्तियों, संस्थाओं और संगठनों जैसे डॉक्टर, वकील, न्यायाधीश, शिक्षा संगठन से संपर्क स्थापित कर हल ढूंढ़ता है।

(स) अनुसंधान साक्षात्कार : गहन तथ्यों का पता लगाने के लिए जो साक्षात्कार आयोजित किए जाते हैं उसे अनुसंधान साक्षात्कार कहते हैं।

टिप्पणी

इसके अंतर्गत व्यक्ति के मनोभावों, मनोवृत्तियों और अभिरुचियों तथा इच्छाओं का पता लगाकर नए सामाजिक तथ्यों की खोज करनी होती है।

2. अनौपचारिकता और सूचनादाताओं की संख्या के आधार पर

(अ) अनौपचारिक साक्षात्कार: ऐसे साक्षात्कार को अनियंत्रित साक्षात्कार भी कहा जाता है। इसमें औपचारिक साक्षात्कार की भांति अनुसूची को तैयार नहीं किया जा सकता। साक्षात्कारकर्ता अपने विषय से संबंधित प्रश्न करता है साक्षात्कारदाता उनका उत्तर वर्णन या कहानी के रूप में दे सकता है। इसमें घटनाओं एवं भावनाओं के वर्णन में काफी स्वतंत्रता रहती है। इस वर्णन के आधार पर साक्षात्कारकर्ता अपने निष्कर्ष निकालता है।

(ब) व्यक्तिगत साक्षात्कार : व्यक्तिगत साक्षात्कार में एक समय में एक ही व्यक्ति से साक्षात्कार किया जाता है। साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता से प्रश्न करता है और वह उसका उत्तर एक–एक करके देता है। क्योंकि एक बार में एक ही व्यक्ति से आमने–सामने वार्तालाप हो सकती है, अतः सूचनादाता को भी प्रेरणा मिलती है।

गुण (Merits)–व्यक्तिगत साक्षात्कार को बहुत लाभदायक और उपयोगी माना गया है। इसके गुण संक्षेप में ये हैं–

(1) अधिक विश्वसनीय सूचना प्राप्त होती है।

(2) इसमें किसी संदेह का स्पष्टीकरण तुरन्त कर दिया जाता है।

(3) अनावश्यक प्रश्नों को छोड़कर उपयोगी और आवश्यक प्रश्न पूछे जाते हैं तथा अभीष्ठ उत्तरों की प्राप्ति होती है।

(4) व्यक्तिगत एवं संवेदनशील प्रश्नों के उत्तर पाने की संभावना होती है।

सीमाएं (Limitations)–

(1) एक व्यक्ति से एक ही समय साक्षात्कार करने में अधिक समय खर्च होता है।

(2) व्यक्तिगत अभिनति की संभावना बढ़ जाती है।

(3) इस पद्धति में आर्थिक व्यय भी अधिक होता है।

इन सीमाओं के बावजूद भी यह पद्धति अधिक प्रचलित है।

(स) सामूहिक साक्षात्कार : इसके अंतर्गत एक से अधिक लोगों का एक ही समय साक्षात्कार किया जाता है। साक्षात्कारकर्ता बिना क्रम से भी प्रश्न पूछ सकता है। वह समूह के समस्त व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए प्रेरित करता है। इनमें कुछ लोग एक साथ उत्तर देते हैं तो कुछ संकेतों द्वारा या हाव–भाव द्वारा उनके साथ हां में हां मिलाते हैं। कभी–कभी समुदाय का एक व्यक्ति भी अपना मत निश्चित रूप से व्यक्त करने की कोशिश करता

है। तो कुछ सदस्य उसके पक्ष का भी समर्थन करते हैं। इस प्रकार एक छोटी वाद–विवाद सभा का निर्माण हो जाता है।

गुण (Merits)–

(1) अधिक जनसंख्या में सामग्री संकलन का अच्छा साधन है।

(2) क्योंकि अधिक लोगों से साक्षात्कार किया जाता है अतः प्राप्त सूचना अधिक विश्वसनीय होती है।

(3) समय और धन दोनों की बचत व्यक्तिगत साक्षात्कार की अपेक्षा अधिक होती है।

(4) व्यक्तिगत पक्षपात की कम संभावना रहती है।

दोष (Demerits)–

(1) सभी प्रश्नों के उत्तर एक साथ सही नहीं दिए जा सकते।

(2) समूह के सदस्यों में आपसी मतभेद के कारण सही जानकारी नहीं मिल पाती तथा कभी–कभी छोटा विवाद बड़े विवाद में संघर्ष का रूप धारण कर सकता है।

(3) इसमें गोपनीयता का अभाव रहता है।

3. अध्ययन–पद्धति के आधार पर

(अ) **अनिर्देशित साक्षात्कार** : इस साक्षात्कार को अव्यवस्थित या असंचालित साक्षात्कार की भी संज्ञा दी जाती है। साक्षात्कारकर्ता कोई कठिन या गंभीर समस्या रख सकता है जिसका उत्तर, उत्तरदाता कहानी या संक्षिप्त अथवा लंबे विवरण के रूप में दे सकता है। साक्षात्कारकर्ता प्रश्न पूछने में स्वतंत्र होता है, परंतु सूचनादाता को बीच–बीच में टोकता नहीं है। जब उत्तरदाता अपनी ओर से जबाव देता है, उसके तुरन्त बाद साक्षात्कारकर्ता अपना प्रश्न रखता है। इस प्रकार बिना पूर्व नियोजित प्रश्नों के साक्षात्कारकर्ता प्रश्नों को पूछकर विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त करता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता के अपने–अपने मुख्य विषय से भटकने की आशंका बनी रहती है। यह साक्षात्कार मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में अधिक उपयोगी है।

(ब) **केंद्रित साक्षात्कार** : इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग सबसे पहले रॉबर्ट मर्टप ने किया था। उन्होंने रेडियो, फिल्म तथा संवेदवाहनों के साधनों का प्रभाव जानने के लिए इसका प्रयोग किया था। इसमें शर्त यह है कि साक्षात्कारदाता पहले से किसी विशेष स्थिति में, जो अनुसंधान का विषय है, रह चुका हो, उदाहरण के लिए रेडियो का सुनना। साक्षात्कारकर्ता अपना ध्यान इस बात पर केन्द्रित करता है कि उस परिस्थिति या घटना का उस पर क्या प्रभाव पड़ा। साक्षात्कारकर्ता उस घटना या परिस्थिति के हिसाब का अध्ययन कर लेता है। यह साक्षात्कार अधिक स्वतंत्र होता है।

(स) **पुनरावृत्ति साक्षात्कार** : इस पद्धति का प्रयोग लैजासैफील्ड ने किया था। यह साक्षात्कार समाज में परिवर्तन के प्रभावों के अध्ययन करने के लिए किया जाता है। अतः साक्षात्कार को बार–बार दोहराया जाता है और इसीलिए हम इसे पुनरावृत्ति साक्षात्कार कहते हैं। उदाहरणार्थ किसी कस्बे या गांव में शिक्षा व्यवस्था का प्रभाव जानने के लिए बार–बार साक्षात्कार किए जाएंगे क्योंकि शिक्षा का प्रभाव एकदम नहीं पड़ता।

उपर्युक्त साक्षात्कारों का वर्गीकरण करने से कई कठिनाइयां दूर हो गई हैं, परंतु व्यक्तिगत स्तर पर साक्षात्कार द्वारा सामग्री संकलन बहुत खर्चीला पड़ता है। अतः आजकल संस्थानों की स्थापना की जा रही है।

साक्षात्कार की प्रक्रिया

साक्षात्कार संपन्न करना एक कला है। इसके संचालन के लिए बहुत सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता रहती है। इसके परिणामों को विश्वसनीय एवं उपयोगी बनाने के लिए, इसे विधिवत योजना बनाकर संगठित किया जाना चाहिए। इसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के लिए समय–समय पर प्रयत्न किए जा रहे हैं। इस पर काफी साहित्य भी लिखा जा चुका है। साक्षात्कार पद्धति पर लिखने वालों में हर्बर्ट हाइमन, बिघम, वाल्टर एवं मूर, ओल्डफील आदि प्रमुख हैं। इन सुप्रसिद्ध लेखकों ने साक्षात्कार कैसे संचालित किया जाता है, साक्षात्कार का मनोविज्ञान, सामाजिक अनुसंधान में साक्षात्कार आदि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। साक्षात्कार की प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए इसे निश्चित चरणों पर संचालित किया जा सकता है, वे इस प्रकार हैं –

साक्षात्कार की तैयारी : ''एक दीर्घ साक्षात्कार के आयोजन के पूर्व, संबंधित दशाओं की विशेष परिस्थितियों के अनुसार सावधानीपूर्वक पहले ही विचार कर लिया जाना चाहिए।''

साक्षात्कार संचालित करने से पूर्व, साक्षात्कारकर्ता को प्रारंभिक तैयारी कर लेनी चाहिए। प्रारंभिक तैयारी में निम्नलिखित बातों को अनिवार्यतः शामिल किया जाना चाहिए–

(i) **समस्या से पूर्ण परिचित** : अध्ययनकर्ता को साक्षात्कार से पूर्व, समस्या के विभिन्न पहलुओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। वह इस स्थिति में होना चाहिए कि उत्तरदाताओं द्वारा पूछे गए प्रत्येक प्रश्न का उत्तर आत्मविश्वास के साथ दे सके। उसे उत्तरदाताओं द्वारा उठाई गई कई शंकाओं का निवारण करना होता है अतः समस्या के प्रत्येक पहलू, उसके महत्व एवं समस्या से उत्पन्न प्रभावों का ज्ञान अनुसंधानकर्ता को होना आवश्यक है यदि उसे पर्याप्त ज्ञान नहीं है तो उत्तरदाता भी संतोषजनक उत्तर देने में आनाकानी कर सकते हैं, अतः इस स्थिति से बचने के लिए उसे समस्या के बारे में बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए।

(ii) **साक्षात्कार निर्देशिका :** समस्या से पूर्ण परिचित होने के बाद, अध्ययनकर्ता को साक्षात्कार निर्देशिका को तैयार करना होता है। साक्षात्कार निर्देशिका में समस्या के विभिन्न पहलुओं पर आवश्यक निर्देश दिए होते हैं। इसमें अनुसूची तथा प्रश्नावली की तरह निश्चित प्रश्न नहीं होते, बल्कि एक संक्षिप्त योजना का ब्यौरा रहता है। इसमें समस्या से संबंधित इकाइयों की परिभाषाएं भी दी हुई होती हैं जिससे अनुसंधानकर्ता, सूचनादाताओं को उनका अर्थ भी स्पष्ट कर सके।

महत्व

(1) इसको तैयार करने में अध्ययन में एकरूपता आ जाती है। इस निर्देशिका का उपयोग अलग–अलग व्यक्ति भी कर सकते हैं क्योंकि इसमें स्पष्ट निर्देश रहते हैं जो सभी साक्षात्कारकर्ताओं के लिए सामान्य होते हैं।

(2) समस्या के समस्त पक्षों का समावेश होने के कारण कोई महत्वपूर्ण पक्ष छूट नहीं पाता।

(3) साक्षात्कार निर्देशिका में प्रश्नों को क्रमबद्ध तरीके से लिखा जाता है जिससे सूचनादाता सही सूचना देने में घबराते नहीं है। क्रमबद्धता के अभाव में कई छोटी मोटी परेशानियां खड़ी हो जाती हैं जिससे साक्षात्कारकर्ता को तो कठिनाई होती ही है, परंतु उत्तरदाता भी अपने को एक विचित्र स्थिति में पाता है।

(4) साक्षात्कार निर्देशिका होने से अनुसंधानकर्ता को व्यर्थ में स्मरण–शक्ति पर दबाव नहीं डालना पड़ता।

(iii) **साक्षात्कारदाताओं का चयन** : साक्षात्कारदाताओं का चयन बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्हीं पर अध्ययन निर्भर करता है। इनका चयन निदर्शन पद्धति द्वारा किया जा सकता है। ऐसे ही साक्षात्कारदाताओं का चयन करना चाहिए जिनका समस्या विशेष से संबंध हो तथा जो जानकारी देने में संकोच या किसी प्रकार का भय न करें क्योंकि कई साक्षात्कारदाताओं की आवश्यकता रहती है, अतः ऐसे लोगों की सूची तैयार कर लेनी चाहिए जो अनुसंधान के कार्यों में थोड़ी दिलचस्पी भी रखते हों। एम.एच. गोपाल के अनुसार साक्षात्कारदाताओं को निम्न श्रेणियों में रखा जाता है–(1) विशेष एवं (2) सामान्य व्यक्ति। इन साक्षात्कारदाताओं की संख्या लंबी नहीं होनी चाहिए। मोजर के शब्दो में, आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, इनमें से उचित निदर्शन समूहों का चयन भी किया जाता है।

(iv) **समय एवं स्थान का निर्धारण** : साक्षात्कार लेने से पूर्व, साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कारदाता से स्थान और समय निर्धारित कर लेना चाहिए जिससे सामने वाले को सहूलियत रहे और वह मन से अभीष्ट प्रश्नों का जबाव दे सके। कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात्कारकर्ता बिना समय निर्धारित

किए साक्षात्कारदाता के घर के दरवाजे खटखटाते हैं, उस समय साक्षात्कारकर्ता से पूछा जाता है, कहिए, कैसे आए, क्या काम है, क्या कोई आवश्यक काम है यह समय ठीक नहीं है, आपको मेरे काम में इस समय विघ्न नहीं डालना चाहिए था आदि या इन प्रश्नों के संवाद से साक्षात्कारकर्ता बड़ा निराश होकर लौटता है। अतः इस दुविधा जनक परिस्थिति से बचने के लिए उसे पहले ही सावधानी बरतनी चाहिए।

साक्षात्कारकर्ता : संचालन, गुण एवं सीमाएं

इन तैयारियों के पश्चात्, साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कारदाता से मिलने को जाता है। यह उसकी चतुरता और बुद्धिमानी पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार उसके साथ व्यवहार करे।

1. **साक्षात्कारदाताओं से संपर्क स्थापित करना** : साक्षात्कारकर्ता, निर्धारित स्थान और समय पर साक्षात्कार लेने के लिए पहुंचता है। प्रथम संपर्क में उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसकी पोषाक भड़कीली न हो, व्यवहार कृत्रिम न हो और न वह ऐसी बात प्रकट करे या ऐसा हाव भाव न प्रदर्शित करे जिससे सूचनादाता पहली मुलाकात में ही उसके बारे में गलत सोचने लग जाए। अतः साक्षात्कारकर्ता की पोशाक सीधी सादी और सौम्य होनी चाहिए। सर्वप्रथम विनम्रतापूर्वक अभिवादन कर, अपना परिचय दे, बाद में साक्षात्कार का प्रयोजन बतलाए।
2. **सहयोग की याचना** : अपना परिचय एवं प्रयोजन बताने के बाद, साक्षात्कारकर्ता को उसके सहयोग की प्रार्थना करनी चाहिए। उसको संतुष्ट करने के लिए यह कहना चाहिए कि अमुक अनुसंधान में उसकी (अर्थात साक्षात्कारदाता) जानकारी तथा अनुभव होने के कारण, उसको (साक्षात्कारदाता) चुना गया है। परंतु अधिक प्रशंसा और अतिशयोक्ति से भी साक्षात्कारकर्ता को सदैव बचना चाहिए, अन्यथा अगला व्यक्ति समझ जाएगा कि साक्षात्कारकर्ता उसे बेवकूफ समझ रहा है। साक्षात्कारकर्ता को यह पूर्ण आश्वासन देना चाहिए कि उसके द्वारा दी गई जानकारी वह गुप्त रखेगा।
3. **प्रश्न पूछना** : उपरोक्त बातों के पश्चात् साक्षात्कारकर्ता को अनुसूची के प्रश्नों को एक–एक करके पूछना चाहिए और उनके उत्तर लिखते जाना चाहिए। जहां तक हो सके, उसे अनुसूची के बाहर प्रश्न नहीं पूछना चाहिए। परंतु हो सकता है कि साक्षात्कारदाता के उत्तरों से ही कुछ ऐसे प्रश्न उत्पन्न हों जिनकी जानकारी उसके अनुसंधान के लिए बहुत उपयोगी हो, ऐसी स्थिति में उसे बड़ी चतुरता और विनम्रता से नए प्रश्नों को पूछकर उत्तर प्राप्त करने चाहिए। साक्षात्कारकर्ता को जटिल, घरेलू, व्यक्तिगत प्रश्न नहीं पूछने चाहिए जिनके उत्तर देने में साक्षात्कारदाता को संकोच या हिचकिचाहट हो। साक्षात्कारकर्ता को अपने आवेगों पर नियंत्रण रखना चाहिए कि वह ऐसा प्रश्न न कर बैठे जिससे 'तू–तू, मैं–मैं, की स्थिति पैदा हो जाए। साक्षात्कारदाता के मनोभाव और मानसिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए प्रश्न किए जाने चाहिए।

4. **साक्षात्कार का नियंत्रण एवं प्रमाणीकरण** : साक्षात्कार का नियंत्रण करने से यह अभिप्राय है कि सूचनादाता कहीं गलत, भ्रामक और असंगत जानकारी न दे दे। यदि उत्तरदाता वर्णात्मक या भावात्मक बातों में तल्लीन हो जाता है जिसका अनुसंधान से कोई संबंध नहीं है, तो प्रश्नकर्ता को चतुरता से उसका ध्यान ऐसी बातों से हटाकर, अन्य ऐसे प्रश्न करने चाहिए जिससे साक्षात्कार की प्रमाणिकता सिद्ध हो सके। प्रमाणीकरण से आशय है–साक्षात्कारदाता द्वारा दी गई जानकारी में विरोधाभास का पता लगाकर उसके कारणों को दूर करना। यदि उत्तरदाता ने कहीं झूठ बोला है, धोखा दिया है तो कम प्रश्न पूछकर सही सूचना प्राप्त करनी चाहिए।

5. **साक्षात्कार की समाप्ति** : साक्षात्कार की समाप्ति, मधुर एवं सौम्य वातावरण में होनी आवश्यक है। यह साक्षात्कारकर्ता की कुशलता पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार साक्षात्कार की समाप्ति करे जिससे सामने वाला यह महसूस न करे कि उसका समय व्यर्थ में गया, उसे परेशान किया गया या उससे गुप्त बातों की जानकारी प्राप्त की गई। यदि उत्तरदाता थकान महसूस कर रहा हो या साक्षात्कार को आगे जारी करने में अनिच्छुक हो तो मूल साक्षात्कार को तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। यदि कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न रह गए हों तो वह दूसरी बार साक्षात्कार कर उत्तर प्राप्त कर सकता है। साक्षात्कार की समाप्ति पर उसे सूचनादाता के प्रति आभार प्रदर्शित करना चाहिए और यह आश्वासन बड़ी विनम्रता के साथ देना चाहिए कि उसकी प्रत्येक बात को पूर्ण रूपेण गुप्त रखा जाएगा।

6. **रिपोर्ट** : साक्षात्कार करने के बाद, साक्षात्कारकर्ता को अपने घर या ऑफिस में आकर उसकी रिपोर्ट तुरन्त तैयार करनी चाहिए। इस कार्य में उसे आलस्य या उदासीनता नहीं दिखानी चाहिए क्योंकि उसके समस्त निष्कर्ष रिपोर्ट पर ही निर्भर करते हैं। यदि ऐसा नहीं किया गया तो कई बातों को वह भूल जाएगा, कई संदर्भ याद नहीं रहेंगे, और कई नई जानकारियों का स्मरण करने में कठिनाई रहेगी। रिपोर्ट लिखते समय उसे पक्षपात और वैयक्तिकता से बचना चाहिए। निष्पक्ष एवं प्रमाणिक रिपोर्ट ही अनुसंधान को महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय बनाती है।

साक्षात्कारकर्ता के गुण

साक्षात्कारकर्ता का साक्षात्कार में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। साक्षात्कार की सफलता या विफलता उसके व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है। एक अच्छे साक्षात्कारकर्ता में सहनशीलता, धैर्य, निष्पक्षता, बौद्धिक ईमानदारी और कुशलता कूट–कूटकर भरी होनी चाहिए। साक्षात्कारकर्ता को कई प्रकार के सूचनादाताओं से मिलना होता है। कोई साक्षात्कारदाता बड़ा उदार, ईमानदार तथा सौम्य स्वभाव का होता है तो कोई इसके विपरीत। कुछ सूचनादाता चालाक या धूर्त होते हैं, और उनमें किसी बात को बढ़ा चढ़ा कर कहने की प्रवृत्ति होती है। कोई साक्षात्कारदाता अपने अहम् को संतुष्ट करने के

लिए बड़ी–बड़ी डींग हांकता है। कहने का तात्पर्य है कि इन सब प्रकार के लोगों से साक्षात्कारकर्ता का पाला पड़ता है, अतः उनके साथ व्यवहार बड़ी कुशलता, होशियारी एवं आत्मविश्वास के साथ करना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण गुण उसमें पक्षपात हीनता, निष्पक्षता तथा बौद्धिक ईमानदारी का है क्योंकि साक्षात्कार की ये प्रमुख शर्तें हैं।

साक्षात्कार के गुण को इस प्रकार देखा जा सकता है–

1. जिन घटनाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन नहीं किया जा सकता, उनके अध्ययन के लिए साक्षात्कार एक उत्तम और उपयुक्त पद्धति है। व्यक्ति की धारणाओं, भावनाओं और संवेगों के अध्ययन के लिए साक्षात्कार सबसे प्रभावशाली साधन है।
2. समस्याओं की छानबीन एवं गहराई के लिए साक्षात्कार एक विश्वसनीय पद्धति है।
3. साक्षात्कार द्वारा विषय से संबंधित लगभग सभी प्रकार की सामग्री का संकलन किया जा सकता है।
4. इसके द्वारा बीते समय की घटनाओं और उनके प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है। ऐसी कई घटनाओं की पुनरावृत्ति संभव नहीं होती जिनका ज्ञान अनुसंधान के लिए बहुत आवश्यक है। ऐसी स्थिति में साक्षात्कार ही एकमात्र उपयोगी पद्धति है।
5. साक्षात्कार द्वारा मनोवैज्ञानिक अध्ययन आसानी से हो सकता है।
6. साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाओं की प्रमाणिकता सिद्ध की जा सकती है।
7. इसमें परस्पर बातचीत से नवीन तथ्य सामने आते हैं, जिनका उद्‌घाटन संभवतः अन्य विधि द्वारा होना बड़ा कठिन है।
8. साक्षात्कार द्वारा शिक्षित और अशिक्षित दोनों से अभीष्ट सूचना प्राप्त की जा सकती है। प्रश्नावली पद्धति का उपयोग केवल शिक्षित लोगों के लिए है, जबकि साक्षात्कार द्वारा अशिक्षित लोगों के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जा सकता है।

साक्षात्कार की सीमाएं

साक्षात्कार की सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कारदाता दोनों में व्यक्तिगत पक्षपात का समावेश होने की संभावना रहती है।
2. इसमें असत्य और अतिशयोक्तिपूर्ण बातें कहने के अवसर अधिक होते हैं। अक्सर साक्षात्कारदाता अपनी बात को वर्णात्मक ढंग से पेश करता है जिससे उसे बात बढ़ा चढ़ाकर कहने का मौका मिल जाता है।
3. इस पद्धति द्वारा प्राप्त सामग्री प्रायः कम विश्वसनीय होती है।

4. भावात्मक घटनाओं के संबंध में साक्षात्कारदाता से पहली बात तो सूचना प्राप्त करना मुश्किल है और यदि सूचना मिल भी गई तो वह अधिकांशतः विश्वसनीय नहीं हो सकती क्योंकि प्रत्येक उत्तरदाता अपने जीवन की कुछ बातों को छिपाना चाहता है।
5. प्रश्नकर्ता को पूर्णतया उत्तरदाता की दया पर निर्भर रहना पड़ता है, अतः उसके द्वारा दी गई गलत सूचना कभी–कभी खतरनाक सिद्ध हो सकती है।
6. साक्षात्कारकर्ता को अपनी स्मरण शक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है और कई बार ऐसा होता है कि साक्षात्कार के पश्चात् रिपोर्ट तैयार करते समय वह ऐसी कई बातों को लिखना भूल जाता है जो उसके अनुसंधान के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।
7. उत्तरदाता के प्रभावशाली व्यक्तित्व का प्रभाव साक्षात्कारकर्ता पर पड़ सकता है, ऐसी स्थिति में वह हीनभावना से दब जाता है। वह उसकी केवल हां में हां या ना में ना मिलाता जाएगा।
8. इस पद्धति में समय अधिक खर्च होता है। एक–एक व्यक्ति से साक्षात्कार करने में और उनके वर्णनात्मक उत्तर सुनने में बहुत समय लगता है।
9. एक कुशल, सुयोग्य मनोवैज्ञानिक एवं चतुर साक्षात्कारकर्ता को ढूंढ़ना मुश्किल है। यदि ये गुण उसमें नहीं पाए गए तो वह सफल साक्षात्कारकर्ता हो ही नहीं सकता।
10. उत्तरदाता द्वारा बतलाई गई सामग्री के सत्य असत्य की जांच करना कठिन कार्य है।

• जीवन–इतिहास का प्रयोग

जीवन–इतिहास के प्रयोग से अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। जीवन इतिहास में संपूर्ण जीवन का सार निहित होता है। जीवन इतिहास में व्यक्ति विशेष की महत्वपूर्ण घटनाएं, पारिवारिक जीवन की घटनाएं, प्रभावित करने वाले तत्व, विशेष परिस्थितियों का वर्णन, जीवन अनुभव, प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ संपर्क और उनका प्रभाव, मानसिक स्थिति, मनोभाव, आशा, निराशा आदि पक्षों पर सूचनाएं उपलब्ध होती हैं। जीवन इतिहास या तो व्यक्ति विशेष द्वारा लिखा जाता है या वह अनुसंधानकर्ता द्वारा लिखा जाता है। लेखक स्वयं जब अपनी लेखनी से जीवन अनुभवों एवं घटनाओं को लिखता है तो उनमें स्वयं के व्यक्तित्व की झलक अधिक स्पष्ट नजर आती है, अपेक्षाकृत इसके कि वह दूसरे को लिखने के लिए कहे।

ब्र्येस के शब्दों मे, ''क्योंकि जीवन इतिहास प्रलेख जटिल व्यवहार और स्थितियों के विस्तारपूर्वक अध्ययन में सहायक है, अतः उन्हें सामाजिक सूक्ष्म यंत्र माना जा सकता है।'' जीवन इतिहासों का 'सांस्कृतिक पृष्ठभूमि' से गहरा संबंध है। अतः सांस्कृतिक विश्लेषण करने के लिए जीवन इतिहास का सहारा लिया जा सकता है। कई सामाजिक

एवं राजनीतिक घटनाओं का व्यक्तित्व पर प्रभाव इनके जरिये आसानी से मालूम किया जा सकता हैं।

जॉन डुलार्ड ने जीवन इतिहास के लिए आधार की निम्नलिखित बातें बताई हैं–

1. जिसका इतिहास तैयार किया जा रहा है, उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि क्या है अर्थात किस संस्कृति का प्रतिनिधि है यह बताना चाहिए।
2. व्यक्तियों की भावनाओं और व्यवहारों में सामाजिक प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होना चाहिए।
3. व्यक्ति के जीवन पर उसके परिवार का जो प्रभाव पड़ा, दिखाया जाना चाहिए।
4. व्यक्ति के संबंध में एकत्रित सामाजिक तथ्य और उसके जीवन के व्यवहार के साथ संबंध कर तुलना की जानी चाहिए।
5. शैशवावस्था से वर्तमान समय तक के जीवन को अच्छे तरीके से लिखा जाना चाहिए।
6. घटना को घटित होने देने में सामाजिक कारकों की जांच करनी चाहिए।
7. जीवन इतिहास की सामग्री को व्यवस्थित ढंग से रखना चाहिए। डुलार्ड ने जीवन इतिहास के सांस्कृतिक पक्ष पर अधिक बल दिया है।

जीवन इतिहास के गुण

जीवन इतिहास के गुण निम्नलिखित हैं–

(1) जीवन इतिहास से व्यक्तित्व के निर्णायक तत्वों का पता लगाया जा सकता है।

(2) व्यक्ति के जीवन के क्रमिक विकास का बोध होता है।

(3) व्यक्तियों का या समूह भावनाओं, मनोवृत्तियों, आवेगों, व्यवहारों को जानने का, जीवन इतिहास एक प्रमुख अंग है।

(4) जीवन इतिहास व्यक्ति के न केवल सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ज्ञान करा कर उसकी प्रवृत्ति के बारे में बतला सकता है बल्कि उसके जटिल व्यवहार का भी ज्ञान कराता है।

(5) व्यक्ति के जीवन में जिन व्यक्तियों, तत्वों एवं परिस्थितियों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है उनकी विस्तृत जानकारी इसके द्वारा होती है।

(6) व्यक्ति विशेष द्वारा लिखे गए अनुभव विश्वसनीय होते हैं।

सीमाएं

(1) व्यक्तिगत पक्षपात के समावेश की संभावना रहती है।

(2) कभी–कभी व्यक्ति स्वयं अपने महत्व एवं अहम् के सन्तुष्टीकरण के लिए अपना संबंध महान या प्रभावशाली बात से जोड़ने की कोशिश करता है, अतः वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकता है।

टिप्पणी

(3) पारिवारिक जीवन की कई बातों को छिपाया जाता है और यदि अन्य कोई भी बड़े लोगों की जीवन गाथा लिखता है तो वह यह ख्याल रखता है कि उसके द्वारा सत्य उद्घाटन से वह नाराज न हो जाए।

(4) जीवन के किसी एक विशेष पक्ष का अध्ययन करना कठिन होता है।

इन सीमाओं के होते हुए भी, जीवन इतिहास से महत्वपूर्ण, उपयोगी एवं आवश्यक सामग्री प्राप्त की जा सकती है।

• अनुसूचियां

तथ्य–सामग्री को संकलित करने की एक और प्रविधि है–वह है अनुसूचियों का प्रयोग। अनुसूची प्रश्नों की एक लिखित सूची है जो अध्ययनकर्ता द्वारा अध्ययन विषयों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। इसमें अनुसंधानकर्ता स्वयं घर–घर जाकर प्रश्नों के उत्तर अनुसूचियों द्वारा प्राप्त करता है। एम.एच. गोपाल के शब्दों में, ''अनुसूची एक ऐसी प्रविधि है जिसे विशेष रूप से सर्वेक्षण प्रणाली के अंतर्गत क्षेत्रीय सामग्री एकत्र करने में प्रयोग किया जाता है।''

गुडे तथा हाट के अनुसार, ''अनुसूची उन प्रश्नों के एक समूह का नाम है जो साक्षात्कारकर्ता द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति से आमने–सामने की स्थिति में पूछे और भरे जाते हैं।''

बोगार्ड्स के शब्दों में, ''अनुसूची तथ्यों को प्राप्त करने के लिए एक औपचारिक पद्धति का प्रतिनिधित्व करती है जो वैषयिक रूप में है और सरलता से पता लगाने योग्य है। अनुसूची, अनुसंधानकर्ता स्वयं द्वारा स्वयं भरी जाती है।''

सी.ए. मोजन के अनुसार, ''चूंकि यह साक्षात्कारकर्ताओं द्वारा संचालित होती है, यह स्पष्टतया एक औपचारिक प्रलेख हो सकती है जिसमें आकर्षण की बजाए क्षेत्र संचालन की कुशलता में कार्यशील विचार है।''

अनुसूचियों के उद्देश्य

(1) प्रमाणिक अध्ययन : प्रमाणिक उत्तर पाने के लिए, अनुसंधानकर्ता स्वयं व्यक्तिगत रूप में व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। अनुसंधानकर्ता वही उत्तर पाने की कोशिश करता है जो उसकी दृष्टि में उपयोगी एवं सार्थक हैं। अतः उत्तरदाताओं को विभिन्न अर्थ लगाने का मौका नहीं मिलता। इससे अध्ययन में प्रमाणिकता आती है।

(2) अनुपयोगी संकलन से बचाव : अनुसूची का उद्देश्य विषय से संबंधित प्रश्नों का क्रमबद्ध उत्तर प्राप्त करना होता है। साक्षात्कार में निरर्थक बातों की जानकारी भी संभव होती है क्योंकि स्मरण शक्ति पर पूर्ण भरोसा नहीं किया जा सकता कि दिमाग में पहले से जो प्रश्न तय किए हैं, वे ही पूछे जाएंगे। अनुसूची में ऐसी कोई गलती नहीं हो सकती क्योंकि प्रश्न लिखित व क्रमबद्ध हैं। अतः वह केवल संबंधित तथ्यों को ही संकलित करेगा।

(3) **संख्यात्मक आंकड़ों के संकलन में उपयोगी** : यह प्रविधि संख्यात्मक सूचनाओं एवं आंकड़ों को एकत्र करने में अधिक उपयोगी है। विचारात्मक सूचनाओं या भावात्मक जानकारी के लिए यह प्रविधि उपयुक्त नहीं है।

अनुसूचियों के प्रकार एवं संपादन

(1) **अवलोकन अनुसूची** : इस प्रकार की अनुसूची के अंतर्गत अवलोकनकर्ता स्वयं अनुसूची को निरीक्षण के समय में अपने पास रखता है और स्वयं निरीक्षण कर तथ्यों को उसमें भर देता है।

(2) **मूल्यांकन अनुसूची** : उत्तरदाताओं की विषय से संबंधित प्रवृत्ति, रुचि और मत जानने के लिए इस सूची को प्रयोग में लाया जाता है।

(3) **साक्षात्कार अनुसूची**—क्रमबद्ध रूप में साक्षात्कार लेने के लिए इस सूची को काम में लाया जाता है।

(4) **प्रलेखीय अनुसूची** : इस प्रकार की अनुसूची को तब काम में लाया जाता है जब लिखित प्रलेखों जैसे डायरियों, पत्रों, आत्मकथाओं आदि से सूचना को एकत्र करना हो।

- **आवश्यक स्तर**

उपर्युक्त अनुसूचियों को तथ्यों के संकलन के लिए काम में लाया जाता है। अनुसूची सामग्री प्राप्त करने के लिए कुछ आवश्यक स्तरों से गुजरना पड़ता है, जिन्हें हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

(1) **उत्तरदाताओं का चयन** : अनुसूची के प्रयोग करने में सर्व प्रथम उत्तरदाताओं का चयन किया जाता है जिनसे कि सूचना एकत्र करनी है। इसके अंतर्गत दो प्रकार की प्रणालियों को अपनाया जा सकता है—संगणना पद्धति और निदर्शन पद्धति। जहां समूह के सभी व्यक्तियों से साक्षात्कर करके अनुसूची को भरा जाए, उसमें संगणना पद्धति को अपनाया जाता है। संगणना पद्धति को अपनाने से पूर्व अनुसंधानकर्ता देख लेता है कि अध्ययन समस्या की प्रकृति किस प्रकार की है। वह समूह को कई उप—समूहों में भी विभाजित कर सकता है। इसके बावजूद भी सबके उत्तरों को अनुसूची में स्थान नहीं दे सकता तो निदर्शन पद्धति को काम में लाया जाता है। निदर्शन पद्धति द्वारा कुछ उत्तरदाताओं का चयन करके उनका साक्षात्कार लिया जाता है और उनसे प्राप्त सूचनाओं को अनुसूचियों में भर दिया जाता है। चुने हुए व्यक्तियों का पूरा ब्यौरा अर्थात उनके बारें में प्रारंभिक जानकारी को तुरन्त ही लिख लिया जाना चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उत्तरदाता उपलब्ध होंगे अथवा नहीं। उनसे संपर्क बनाए रखना चाहिए।

(2) **जांचकर्ता का चयन एवं प्रशिक्षण** : जहां कुछ लोगों का साक्षात्कार करना है, वहां अनुसंधानकर्ता स्वयं जाकर उनसे अभीष्ट सूचना प्राप्त कर उसे अनुसूची में भर सकता है। यदि साक्षात्कारदाताओं की संख्या अधिक हो तो अनुसंधानकर्ता

टिप्पणी

कुछ ऐसे जांचकर्ताओं का चयन कर सकता है जो बड़ी ही कुशलता, सूझबूझ, धैर्य और होशियारी से अनुसूची में साक्षात्कार द्वारा सूचना को भर सकते हों। उनके चयन में अनुसंधानकर्ता को बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है क्योंकि बिना अनुभव वाले जिन जांचकर्ताओं का चयन किया जाता है वे यदि अनुपयुक्त सिद्ध होते हैं तो अनुसंधान कार्य सही रूप से संचालित नहीं हो सकता। अतः उन्हें विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उनके प्रारंभिक प्रशिक्षण शिविर होने चाहिए ताकि उन्हें अध्ययन की प्रकृति, क्षेत्र, उद्देश्य, अनुसूची को भरने के तरीके, साक्षात्कार के तरीके, कौन सी सूचनाओं को प्रारंभिकता देना है आदि बातों का पूरा ज्ञान हो सके।

(3) **तथ्य सामग्री का संकलन**: तथ्य सामग्री के संकलन के लिए अध्ययनकर्ता या जांचकर्ता को साक्षात्कार करने के लिए निश्चित स्थान पर पहुंचना पड़ता है। उत्तरदाताओं से सूचना प्राप्त करके उसे अनुसूची में भरना होता है, लेकिन इसके लिए एक क्रमिक प्रक्रिया अपनानी पड़ती है जो इस प्रकार है—

(क) **सूचनादाताओं से संपर्क** : साक्षात्कार द्वारा सूचना प्राप्त करने से पूर्व सूचनादाताओं से संपर्क करना होता है। इस संपर्क को स्थापित करने में क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं को कुशलता, चतुरता, धैर्य और शान्ति से काम लेना पड़ता है। यदि प्रारंभ में ही कार्यकर्ता, सूचनादाताओं को प्रभावित नहीं कर पाया तो उनसे सूचना प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। यदि सूचनादाता के मस्तिष्क में, कार्यकर्ता के प्रति कुछ गलत धारणाएं बैठ गई हैं या कोई संशय पैदा हो गया तो ऐसी स्थिति में सूचना प्राप्त करना बिल्कुल असंभव है। अतः कार्यकर्ता को चाहिए कि वह बड़े प्रभावशाली ढंग से अपना परिचय दे, अपनी मधुर वाणी और सौम्य स्वभाव से उसका ह्रदय जीत ले। उसे बड़े ही विनम्र ढंग से अभिवादन करके उसके स्वभाव, आदतों, एवं व्यवहार के साथ तारतम्य स्थापित करना चाहिए। अतः उसे ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए कि सूचनादाता स्वयं उत्साहित होकर सूचना को दे। इसीलिए कार्यकर्ता को उसके बारे में संक्षिप्त जानकारी पहले ही प्राप्त कर लेनी चाहिए कि उससे प्रश्न कब पूछे जाएं। यदि सूचनादाता किसी काम में व्यस्त हो गया हो तो उसके काम में विघ्न नहीं पहुंचाना चाहिए। उसे धैर्य रखकर समयानुसार परिस्थिति देखकर ही प्रश्न पूछने चाहिए।

(ख) **साक्षात्कार** : सूचनादाता से संपर्क स्थापित करने के पश्चात साक्षात्कार का कार्य शुरू किया जाता है। साक्षात्कार करना भी उतना ही कठिन है जितना कि सूचनादाताओं से संपर्क स्थापित करना। साक्षात्कार करते समय अनुसंधानकर्ता को यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह प्रश्नों की बौछार एकदम न कर दे। उसका उद्देश्य साक्षात्कार से अधिक विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करना होता है, यह तभी संभव हो सकता है जब अनुसंधानकर्ता एक स्वाभाविक वातावरण में सूचनादाताओं के मनोभाव

को ध्यान में रखते हुए, सूचना प्राप्त करता है। बीच में थोड़ा रुककर कुछ इधर–उधर की बातें करनी चाहिए ताकि सूचनादाता की अभिरुचि बनी रहे। साक्षात्कार को रोचक बनाने के लिए हंसी मजाक की बात भी कर लेनी चाहिए, ताकि सूचनादाता, साक्षात्कार को कोई बोझ न समझकर एक 'रुचिपूर्ण भेंट' समझे।

(ग) सूचना प्राप्त करना : साक्षात्कार करते समय यह समस्या पैदा हो जाती है कि सूचनादाता से किस प्रकार संगतपूर्ण एवं विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त की जाएं। साक्षात्कारकर्ता को अनुसूची में एक–एक करके प्रश्न कर सूचना प्राप्त करनी चाहिए। लेकिन साक्षात्कारदाता के दिमाग में यह आशंका पैदा न हो कि अनुसंधानकर्ता उससे कोई गुप्त जानकारी प्राप्त कर रहा है या उसे किसी उलझन में डाल रहा है। यदि उत्तरदाता सूचना देते समय मुख्य विषय से हट जाता है तो ऐसी स्थिति में बड़ी सावधानीपूर्वक उसका ध्यान मुख्य विषय की ओर केंद्रित करना चाहिए या उससे साक्षात्कार के बीच में कुछ अन्य बातें उससे करके उसे बंद कर देना चाहिए। यह भी संभव हो सकता है कि प्रश्नों के स्पष्ट न होने के कारण सूचनादाता उसका कुछ और ही अर्थ समझ बैठे जिसके फलस्वरूप वह मुख्य विषय से विचलित हो जाता हो। अतः अनुसंधानकर्ता या अध्ययनकर्ता को चाहिए कि वह सटीक एवं स्पष्ट प्रश्नों का निर्माण करे।

अनुसूचियों का संपादन

जब जांचकर्ता से सब अनुसूचियां प्राप्त हो जाती हैं तो उनका संपादन किया जाता है जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है –

(1) **अनुसूचियों की जांच** : सर्वप्रथम कार्यकर्ताओं द्वारा भेजी हुई अनुसूचियों की जांच की जाती है। वहां यह ध्यान रखा जाता है कि सभी अनुसूचियां प्राप्त हुई हैं अथवा नहीं। इसके पश्चात सूचियों का वर्गीकरण किया जाता है। यह वर्गीकरण कार्यकर्ताओं या जांचकर्ताओं के आधार पर किया जाता है प्रत्येक जांचकर्ता द्वारा भेजी गई अनुसूचियों की अलग–अलग फाइल तैयार की जाती है और उस फाइल पर चिट लगाकर कार्यकर्ता का नाम, क्षेत्र, सूचनादाताओं की संख्या आदि लिख दी जाती है।

(2) **प्रविष्टियों की जांच** : अनुसंधानकर्ता समस्त प्रविष्टियों की जांच करता है। यदि कोई खाना नहीं भरा गया हो या गलत खाने में उत्तर लिख दिया गया हो तो, उनके कारण पता लगाकर उस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि वह स्वयं गलती को ठीक कर सकता है तो उसे उसी समय ठीक कर देना चाहिए, अन्यथा अनुसूची को कार्यकर्ता के पास लौटा दिया जाए जिससे या तो वह स्वयं ही संशोधन कर दे या उत्तरदाता से पुनः मिलकर सही सूचना प्राप्त करे।

(3) **गंदी अनुसूचियां** : अनुसंधानकर्ता गंदी अनुसूचियों को अलग कर देता है। जो पढ़ने योग्य न हो या फट गई हो या अन्य किसी कारण से सूचना देने योग्य न हो, उन्हें वापस कार्यकर्ता के पास भेज दिया जाता है ताकि यथार्थ सूचना प्राप्त हो सके।

(4) **संकेत** : अनुसंधानकर्ता सारणीयन के कार्य में असुविधा दूर करने के लिए निश्चित संकेत कार्य में लाता है। वह सभी उत्तरों का निश्चित भागों में वर्गीकरण कर देता है तथा प्रत्येक वर्ग को संकेत संख्या प्रदान की जाती है।

अनुसूचियों के गुण एवं सीमाएं

अनुसूचियों के गुण

अनुसूचियों के गुणों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **प्रत्यक्ष संपर्क** : अनुसंधानकर्ता सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करता है जिससे वह महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त कर लेता है। यदि अनुसंधानकर्ता का व्यक्तिगत संपर्क न हो तो सूचनादाता स्वयं भी सूचनाएं भेजने में आलस्य करता है एवं उसकी अभिरुचि नहीं रहती। अनुसंधानकर्ता को सामने देखकर उसमें भी उत्साह की भावना होती है क्योंकि सूचनादाता स्वयं भी तो उसके बारे में जानने को इच्छुक रहता है।

2. **ठोस सूचनाएं प्राप्त करना** : अनुसूची प्रणाली का यह एक महत्वपूर्ण गुण है कि इनके द्वारा प्राप्त सूचनाएं ठोस होती हैं। अनुसंधानकर्ता की उपस्थिति से सूचनादाता के मन में यह रहता है कि वह कहीं गलत सूचना न दे। क्योंकि अनुसंधानकर्ता स्वयं उपस्थित होने के कारण उसके द्वारा दिए उत्तर की सत्यता सिद्ध कर सकता है। साथ–साथ अनुसंधानकर्ता अवलोकन द्वारा भी वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता रहता है। इससे तथ्यों की पुष्टि की जा सकती है।

3. **अधिकतम सूचनाओं की प्राप्ति** : ठोस सूचनाएं प्राप्त करने के अतिरिक्त, अनुसंधानकर्ता अनुसूची को भरकर अधिकतम सूचनाएं प्राप्त कर सकता है। यह सुविधा साक्षात्कार में नहीं है क्योंकि उसमें प्रश्न निश्चित नहीं होते। अनुसंधानकर्ता के समक्ष अनुसूची स्पष्ट रूप से होने के कारण उसका उद्‌देश्य अधिकतम सूचना प्राप्त करना होता है।

4. **सारणीयन में सहायक** : प्रश्नों को क्रमबद्ध और श्रेणियों में विभाजित करने से सारणीयन का कार्य आसान हो जाता है। इससे उत्तरों का प्रयोग सांख्यिकीय सूत्रो के अंतर्गत किया जा सकता है।

5. **अभिनति की संभावना नहीं** : अनुसूची के प्रश्न स्पष्ट एवं पूर्व निर्धारित होते हैं अतः उन्हीं प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने होते हैं, जिनका संबंध उसके अनुसंधान से है। साक्षात्कार में तो यह संभव है कि सूचनादाता उत्तर देते हुए कभी–कभी इतना भाव–विभोर हो जाए कि अपने विषय से हटकर स्वयं दृष्टिकोण को ही प्रस्तुत करने में संलग्न रहे। अनुसूची पद्धति में इसकी कोई

गुंजाइश नहीं रहती। अनुसंधानकर्ता स्वयं भी निष्पक्ष ही रहता है, क्योंकि उसको भी वे ही उत्तर प्राप्त करने हैं जो अनुसूची में हैं, अतः वह अपनी तरफ से इसमें कुछ हेर–फेर नहीं कर सकता।

6. **अवलोकन की गहनता में वृद्धि** : अलग–अलग इकाइयों का अलग–अलग अध्ययन करने से अवलोकन अधिक गहन एवं प्रमाणिक बनता है। क्योंकि अनुसंधानकर्ता विभिन्न सूचनादाताओं से उत्तरों को प्राप्त करता है अतः उसके अवलोकन में उतनी ही गहनता आती है।

लुंडबर्ग के अनुसार, ''अनुसूची एक समय में एक तथ्य को पृथक करने का तरीका है और इस प्रकार यह हमारे अवलोकन को गहन बनाती है।''

अनुसूची हमारे मार्गदर्शन एवं वैषयिक सूचना प्राप्त करने का एक उत्तम साधन है। इसके आधार पर अनुसंधान के क्षेत्र निश्चित किए जा सकते हैं। पी.वी. यंग के शब्दों में, ''अनुसूची को यह (अनुसंधानकर्ता) एक पथ प्रदर्शक, जांच के क्षेत्र को निश्चित करने का एक साधन, स्मरण शक्ति का संयंत्र, लेखबद्ध करने का तरीका बनाता है।''

अनुसूचियों की सीमाएं

अनुसूचियों की सीमाओं को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

(1) अनुसूची का प्रयोग छोटे क्षेत्र में किया जा सकता है। विस्तृत क्षेत्र में इसलिए अनुपयोगी रहता है कि उसमें कई व्यावहारिक कठिनाइयां जैसे, उत्तरदाता बिखरे हुए हों, आ जाती हैं।

(2) ऐसे सामान्य प्रश्नों का निर्माण नहीं किया जा सकता जिसको प्रत्येक व्यक्ति समझकर उत्तर दे सके।

(3) इसके परिणाम ज्ञात निदर्शन पर आधारित नहीं होते।

(4) विभिन्न संस्कृति, विभिन्न समुदाय, विभिन्न जीवन स्तर, एवं शिक्षा के कारण सभी प्रश्नों को एक समान लागू करना संभव नहीं है।

(5) अनुसंधानकर्ता द्वारा सूचनादाता को प्रेरित करने से अभिनति की संभावना रहती है। सूचनादाता समझ जाता है कि उसके अनुसंधान का प्रयोजन क्या है अतः वह ऐसे ही उत्तर देता है जो अनुसंधानकर्ता अपनी अनुसूची में भरना चाहता है।

(6) अनुसूची द्वारा प्राप्त सूचनाओं को एकत्र करने में काफी समय और धन व्यय होता है।

• प्रश्नावलियां

आधुनिक अनुसंधानों में प्रश्नावली का उद्देश्य अध्ययन–विषय से संबंधित प्राथमिक तथ्य–सामग्री को एकत्र करना है। प्रश्नावली का अर्थ उस सुव्यवस्थित तालिका से है जो विषय के संबंध में सूचनायें प्राप्त करने में सहयोग देती है। सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक सर्वेक्षणों में तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करने के लिए, प्रश्नावली को अत्यन्त महत्वपूर्ण पद्धति माना जाता है।

प्रश्नावली की परिभाषाएं

साधारणतः किसी विषय से संबंधित व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने के लिए बनाए गए प्रश्नों की सुव्यवस्थित सूची को प्रश्नावली की संज्ञा दी जाती है। इसे डाक द्वारा भेजकर सूचना प्राप्त की जाती है।

गुडे तथा हाट के शब्दों में, ''सामान्य रूप से, 'प्रश्नावली' शब्द प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की उस प्रणाली को कहते हैं जिसमें स्वयं उत्तरदाता के द्वारा भरे जाने वाले पत्रक का प्रयोग किया जाता है।''

लुंडबर्ग के शब्दों में, ''मौलिक रूप में प्रश्नावली, प्रेरणाओं का एक ऐसा समूह है जिससे कि शिक्षित लोगों के सम्मुख, उन प्रेरणाओं के अंतर्गत उनके मौखिक व्यवहारों का अवलोकन करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।''

विल्सन–गी के शब्दों में, ''यह (प्रश्नावली) बड़ी संख्या में लोगों से अथवा छोटे चुने हुए एक समूह से जो विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है, सीमित मात्रा में सूचना प्राप्त करने की एक सुविधाजनक प्रणाली है।''

बोगार्डस के अनुसार, ''प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए दी गई प्रश्नों की एक तालिका है।''

प्रश्नावली की प्रकृति

प्रश्नावली की प्रकृति तथा अन्य पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इस संबंध में कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं –

(1) **प्रश्नों का आकार** : प्रश्नावली का आकार बड़ा नहीं होना चाहिए क्योंकि उत्तरदाता बड़े आकार को देखते ही घबड़ा जाते हैं। अतः छोटी प्रश्नावलियां अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

(2) **भाषा की स्पष्टता** : प्रश्नावलियों की भाषा इतनी सरल और स्पष्ट होनी चाहिए कि एक साधारण उत्तरदाता उनके अर्थ और प्रयोग को समझ सके। भाषा को जटिल और मुहावरेदार नहीं बनाना चाहिए। किसी प्रकार की पारिभाषिक शब्दावलियों, अनेकार्थक शब्दों को जहां तक संभव हो सके, स्थान नहीं देना चाहिए। जितने प्रश्न सरल होंगे, उनके उत्तर उतने ही स्पष्ट होंगे।

(3) **इकाइयों की स्पष्टता** : अध्ययनकर्ता जिन इकाइयों को प्रयोग में ला रहा है, उनको स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए ताकि अलग–अलग उत्तरदाता अपन–अपने दृष्टिकोण से उनकी व्याख्या न करे।

(4) **उपयोगी प्रश्न** : प्रश्न उपयोगी होने चाहिए। अनर्गल प्रश्नों से उत्तरदाता स्वयं भी परेशान होता है और अनुसंधानकर्ता का स्वयं का भी उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता। अतः ऐसे प्रश्न पूछे जाने चाहिए जिनसे कि उत्तरदाता भी उनका जबाब निःसंकोच होकर दे सके।

(5) **विशिष्ट प्रश्नों से बचाव** : कुछ प्रश्नों का संबंध व्यक्तिगत जीवन, भावनाओं तथा रहस्यात्मक जीवन से होता है, अतः ऐसे प्रश्नों से बचना चाहिए। व्यंग्यात्मक

प्रश्न भी नहीं पूछे जाने चाहिए, क्योंकि इससे उत्तरदाता की भावनाओं को ठेस पहुंच सकती है। यदि इस प्रकार के प्रश्नों से नहीं बचा गया तो अनुसंधान का उद्‌देश्य ही विफल हो जाएगा।

प्रश्नावली की विशेषताएं एवं प्रकार

परिभाषाओं के आधार पर इसकी विशेषताओं को निम्नांकित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

(1) प्राथमिक सामग्री प्राप्त करने की अप्रत्यक्ष प्रणाली है।

(2) यह अधिकांशतः डाक द्वारा भेजी जाती है।

(3) इसे केवल उत्तरदाता स्वयं ही भरता है।

(4) इसका प्रयोग शिक्षित उत्तरदाताओं के द्वारा किया जाता है।

(5) इसमें प्रश्नों को सरल एवं स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

अच्छी प्रश्नावली की विशेषताएं

ए.एल. बॉउले के अनुसार अच्छी प्रश्नावली की निम्नलिखित विशेषताएं हैं –

(1) संख्या कम होनी चाहिए।

(2) प्रश्न ऐसे होने चाहिए जिनका उत्तर हां या नहीं में दिया जा सकता हो।

(3) प्रश्नों की संरचना ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्तिगत पक्षपात प्रवेश ही न कर पाये।

(4) प्रश्न सरल, स्पष्ट और अर्थ वाले होने चाहिए।

(5) प्रश्न एक दूसरे के पूरक हों।

(6) प्रश्नों की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए कि अभीष्ट सूचना को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त किया जा सके।

(7) प्रश्न अशिष्ट नहीं होने चाहिएं।

प्रश्नावली के प्रकार

लुंडबर्ग के अनुसार, इसके दो प्रकार हैं –

(1) तथ्य संबंधी प्रश्नावली– यह सामाजिक तथ्यों को एकत्र करने के लिए काम में लाई जाती है।

(2) मत तथा मनोवृत्ति संबंधी प्रश्नावली– यह उत्तरदाता की अभिरुचि से संबंधित सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए काम में लाई जाती हैं। इसके अलावा प्रश्नावली के कुछ और भी प्रकार हैं –

(क) खुली प्रश्नावली : जिन प्रश्नावलियों में उत्तरदाताओं को अपना उत्तर व्यक्त करने में पूर्ण स्वतंत्रता हो, उसे खुली प्रश्नावली कहते हैं। वह अपनी इच्छा से उत्तर दे सकता है, उस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता।

टिप्पणी

(ख) चित्रमय प्रश्नावली : चित्रमय प्रश्नावली में प्रश्नों के उत्तर चित्रों द्वारा दिखाये जाते हैं। उत्तरदाता के समक्ष अलग–अलग चित्र होते हैं। उदाहरण के लिए चित्र में आगे लिखा होता है कि क्या आप छोटे परिवार को पसंद करते हैं या बड़े परिवार को। इन चित्रों में परिवार को छोटा और बड़ा बताया जाता है, उत्तरदाता को सिर्फ उसके आगे निशान अंकित करना होता है। इस प्रश्नावली द्वारा बाद में लोगों के मतों का पता लगा लिया जाता है। यह प्रणाली विशेष रूप से कम पढ़े लोगों तथा बालकों के लिए बड़ी उपयोगी है।

(ग) मिश्रित प्रश्नावली : इसमें सभी प्रकार की प्रश्नावलियों को सम्मिलित किया जा सकता है। कुछ सामाजिक तथ्य इतने जटिल होते हैं कि उनके बारें में जानकारी किसी निश्चित प्रश्नावली द्वारा नहीं हो सकती, अतः सुविधा और उपयोग की दृष्टि से विभिन्न प्रश्नावलियों को सम्मिलित किया जाता है।

प्रश्नावली की विश्वसनीयता, गुण एवं दोष

अब प्रश्न यह उठता है कि उत्तरदाताओं ने जो कुछ सूचनायें दी हैं, वे कहां तक विश्वसनीय हैं। विश्वसनीयता का पता तभी लग जाता है जब अधिकतर प्रश्नों के अर्थ अलग–अलग लगाये गए हों, ऐसी स्थिति में शंका उत्पन्न हो जाती है।

(क) प्रश्नावली की विश्वसनीयता

प्रश्नावली में अविश्वसनीयता की समस्या निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न होती है –

(1) गलत एवं असंगत प्रश्न : जब गलत एवं असंगत प्रश्नों को प्रश्नावली में सम्मिलित किया जाता है तो उनके उत्तर उत्तरदाता अपने–अपने दृष्टिकोण से देते हैं। ऐसी स्थिति में उत्तरदाताओं द्वारा दी गई सूचनायें विश्वसनीय नहीं हो सकती।

(2) पक्षपातपूर्ण निदर्शन : निदर्शन का चयन करते समय यदि सावधानी नहीं बरती गई तो उसके परिणामों में विश्वसनीयता नहीं आ सकती है। यदि सूचनादाताओं के चयन में अनुसंधानकर्ता प्रभावित हुआ है तो निश्चित रूप से प्राप्त सूचना प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकती।

(3) नियंत्रित व पक्षपात पूर्ण उत्तर : प्रश्नावली प्रणाली द्वारा प्राप्त उत्तर बहुधा कम सही होते हैं। कुछ लोग गोपनीय एवं व्यक्तिगत सूचनायें देने से संकोच करते हैं और अपने हाथ से लिख कर देने से डरते हैं। अतः उनके उत्तरों में पक्षपात की संभावना होती है। उनके उत्तरों में या तो तीव्र आलोचना मिलेगी या पूर्ण सहमति। संतुलित उत्तर प्राप्त नहीं हो पाते।

(4) विश्वसनीयता की जांच : प्रश्नावलियों में दिए गए उत्तरों में विश्वसनीयता प्रायः कम पाई जाती है, इसलिए उनकी जांच कर लेनी चाहिए। इसके कतिपय तरीके निम्न हैं –

(i) **प्रश्नावलियों को पुनः भेजना** : विश्वसनीयता की परख के लिए प्रश्नावलियों को उत्तरदाताओं के पास पुनः भेज देना चाहिए। यदि उनके उत्तर इस बार भी पहले से मेल खाते हैं तो प्राप्त सूचना पर विश्वास किया जा सकता है। यह जांच तभी उपयोगी सिद्ध हो सकती है जब उत्तरदाता की सामाजिक, आर्थिक या मानसिक परिस्थिति में कोई परिवर्तन न हुआ हो।

(ii) **समान वर्गों का अध्ययन** : विश्वसनीयता की जांच के लिए वही प्रश्नावली अन्य समान वर्गों के पास भेजी जाए। यदि उनसे प्राप्त उत्तरों और पहले वाले वर्गों द्वारा दिए गए उत्तरों में समानता है तो दी गई सूचना पर विश्वास किया जा सकता है। यदि दोनों में काफी अंतर हो तो विश्वास नहीं किया जा सकता।

(iii) **उपनिदर्शन का प्रयोग करना** : यह जांच करने की एक महत्वपूर्ण विधि है। प्रमुख निदर्शन में से एक उपनिदर्शन का चयन कर प्रश्नावली की परख की जा सकती है। उपनिदर्शन से प्राप्त सूचनाओं और प्रमुख निदर्शन से प्राप्त सूचनाओं में यदि काफी अंतर पाया जाता है तो प्रश्नावली अविश्वसनीय समझी जाएगी। यदि दोनों में कम असमानता है तो इसे विश्वसनीय समझा जाएगा।

(iv) **अन्य तरीके** : प्रश्न पद्धति में साक्षात्कार, अनुसूची एवं प्रत्यक्ष निरीक्षण को सम्मिलित किया जा सकता है। इन विधियों द्वारा प्रश्नों के उत्तर लगभग समान हों तो प्रश्नावली को विश्वसनीय समझा जाएगा, अन्यथा नहीं।

(ख) प्रश्नावली के गुण

प्राथमिक तथ्यों को प्राप्त करने में प्रश्नावली–प्रणाली बहुत महत्वपूर्ण है। इसके गुणों के कारण तथ्यों को आसनी से एकत्र किया जा सकता है। कुछ प्रमुख गुण अग्रांकित हैं–

(1) **वृहत् अध्ययन** : इस पद्धति द्वारा विशाल जनसंख्या का अध्ययन सफलतापूर्वक हो सकता है। अन्य प्रणालियों में विशाल समूह के अध्ययन के लिए धन, समय, और परिश्रम अधिक खर्च होता है और साथ–साथ सूचनादाताओं के पास भटकना पड़ता है। इन समस्त समस्याओं से यह प्रणाली बची हुई है।

(2) **कम व्यय** : इस प्रणाली में क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं को नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं रहती, अतः व्यय की बचत होती है। केवल छपाई और डाक खर्च ही होता है।

(3) **सुविधाजनक** : इस प्रणाली की सबसे बड़ी सुविधा यह है कि सूचनाओं को कम समय के अन्दर ही प्राप्त कर लिया जाता है। प्रश्नावलियों को उत्तरदाताओं के पास भेज दिया जाता है और कुछ ही समय के भीतर इनको उत्तरदाता सूचना भेज देते हैं। अनुसूची, साक्षात्कार आदि प्रणालियों में अध्ययनकर्ता को स्वयं को

व्यक्तिगत रूप से जाना पड़ता है और सूचना एकत्र करनी पड़ती है। अतः इस दुविधा से बचने के लिए प्रश्नावली प्रणाली बड़ी ही सुविधाजनक है।

(4) **पुनरावृत्ति की संभावना** : अलग–अलग समय में प्रश्नावलियों को उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण का पता लगाने के लिए भेज दिया जाता है या कुछ ऐसे अनुसंधान होते हैं जिनमें निश्चित समय के बाद कई बार सूचना प्राप्त करनी होती है तो उसके लिए प्रश्नावली पद्धति बड़ी उपयोगी है।

(5) **स्वतंत्र एवं निष्पक्ष** : प्रश्नों के उत्तर देने में पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। इस प्रणाली में अनुसंधानकर्ता को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदाता के समक्ष नहीं आना पड़ता। अतः उत्तरदाता बिना संकोच और हिचकिचाहट के स्वतंत्र और निष्पक्ष सूचना देने का प्रयत्न करता है। अतः इस पद्धति द्वारा प्राप्त सूचना अधिक विश्वसनीय है।

(ग) प्रश्नावली के दोष

यह प्रणाली भी दोष रहित नहीं है। इसकी अपनी कुछ सीमाएं हैं, जो इस प्रकार हैं –

(1) **प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की संभावना नहीं** : क्योंकि प्रश्नावली का प्रयोग केवल शिक्षित व्यक्तियों से तथ्य सामग्री प्राप्त करने के लिए किया जाता है, अतः प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शनों का चयन नहीं हो सकता।

(2) **गहन अध्ययन के लिए अनुपयुक्त** : प्रश्नावली द्वारा केवल मोटे–मोटे तथ्यों को एकत्र किया जाता है। प्रश्न की गहराइयों तक नहीं पहुंचा जा सकता है। साक्षात्कार द्वारा मनुष्य के मनोभावों, प्रवृत्तियों, आवेगों तथा आन्तरिक मूल्यों का गहराई से अध्ययन हो सकता है जबकि प्रश्नावली द्वारा सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। पार्टन के शब्दो में, ''इसमें कोई संदेह नहीं कि सर्वोत्तम प्रश्नावली की अपेक्षा उत्तम साक्षात्कार द्वारा अधिक गहन अध्ययन किया जा सकता है।''

(3) **पूर्ण सूचना की कम संभावना** : प्रश्नावली के संबंध में यह कटु अनुभव है कि उत्तरदाता बहुत अधिक दिलचस्पी नहीं लेते क्योंकि पहली बात तो उनका अनुसंधानकर्ता से प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता और दूसरी बात उनका स्वयं का कोई प्रयोजन हल नहीं होता। अतः वे लापरवाही से जबाव देते हैं। शब्दों का अर्थ अलग–अलग लगाया जाता है, फलस्वरूप उनके उत्तर विश्वसनीय नहीं होते हैं।

(4) **उत्तर प्राप्ति की समस्या** : प्रश्नावली के उत्तर न तो समय पर आते हैं और न उनके उत्तर ही सही आते हैं। बार–बार याद दिलाने पर भी प्रश्नावली नहीं लौटाई जाती, अतः कई बार अनुसंधानकर्ता परेशान होकर उनको लिखना ही छोड़ देता है। ऐसी स्थिति में वास्तविकता का पता नहीं लग सकता।

अनेक दोषों के बावजूद भी प्रश्नावली द्वारा तथ्य–सामग्री को एकत्र करने में काफी सुविधा रहती है। जहां अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत होता है, प्रश्नावलियों द्वारा तथ्यों को एकत्र करने में अधिक सुविधा रहती है। इस पद्धति द्वारा प्राप्त सूचना या

टिप्पणी

सामग्री अनावश्यक प्रभावों से मुक्त होती है अनुसंधानकर्ता के बारे में सूचनादाताओं की अज्ञानता भी आन्तरिक सूचनाओं के प्राप्त होने में वरदान सिद्ध होती है। इसी कारण तथ्यों को संकलित करने के लिए इसको अधिक अपनाया जा रहा है।

प्रश्नावली और अनुसूची में भेद

प्रश्नावली और अनुसूची दोनों अनुसंधान कार्य में तथ्यों को एकत्र करने के महत्वपूर्ण साधन हैं। दोनों का ही उद्देश्य विश्वसनीय, संगतपूर्ण और उपयोगी तथ्यों को एकत्र करना है। दोनों ही अनुसंधानकर्ता के कार्य को संचालित करने में सहायता प्रदान करते हैं। इन दोनों में अनेक भेद हैं, जो निम्न हैं –

अनुसूची एवं प्रश्नावली

1. **प्रस्तुतीकरण**– अनुसूचियों को डाक द्वारा प्रेषित नहीं किया जाता है। अनुसंधानकर्ता स्वयं अनुसूची उत्तरदाताओं से एकत्र करता है।
2. **अनुसूचियों को भरना**– अनुसूचियों को शोधकर्ता स्वयं भरता है। वह उत्तरदाता से सूचना ग्रहण करके उसको अपनी अनुसूची में भर देता है।
3. **क्षेत्र**– अनुसूची का प्रयोग विस्तृत रूप में न किया जाकर सीमित स्तर पर किया जाता है।
4. **निरीक्षण**– अनुसूची प्रणाली में निरीक्षण को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। अनुसंधानकर्ता स्वयं उस स्थान पर उपस्थित होता है अतः उसे बड़े प्रश्नों को तैयार करने की आवश्यकता नहीं होती है। तथ्यों को एकत्र करने के साथ–साथ वह तथ्यों का निरीक्षण भी करता जाता है। वह प्राप्त तथ्यों के निरीक्षण द्वारा पुष्टि भी कर सकता है। अतः तथ्यों की प्रमाणिकता का पता आसानी से लगाया जा सकता है।
5. **प्रत्युत्तर**– जहां तक प्रत्युत्तर का प्रश्न है, अनुसंधानकर्ता स्वयं स्थान पर उपस्थित होता है अतः उसे समस्त जानकारी अपने रिकॉर्ड में रखने में सुविधा होती है।
6. **स्पष्टता**– अनुसूचियों में प्रत्येक छोटी–छोटी बात को स्पष्टरूप से लिखने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि अनुसंधानकर्ता स्वयं, स्थान पर मौजूद होता है। संदेह या भ्रांति की स्थिति में वह सूचनादाता के प्रश्न की स्पष्ट व्याख्या नहीं कर सकता है।
7. **प्रत्यक्ष संबंध**– संबंध अनुसूची प्रणाली में अनुसंधानकर्ता के उत्तरदाताओं से संबंध प्रत्यक्षरूप से होते हैं। वह अपने संपर्क द्वारा वांछित सूचना प्राप्त कर सकता है।
8. **उत्तरदाताओं का स्तर**– प्रणाली के अंतर्गत विभिन्न स्तर के उत्तरदाताओं से सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। अनुसंधान कर्ता उनके बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखते हुए वार्तालाप करेगा। इसमें यह लाभ होता है कि अनुसंधान से संबंधित वास्तविक जानकारी आसानी से प्राप्त की जा सकती है।

9. **अधिक महत्वपूर्ण एवं गहन सूचनाएं**— अनुसूची प्रणाली द्वारा अधिक महत्वपूर्ण एवं गहन सूचनाएं प्राप्त होती हैं। यदि अनुसंधानकर्ता स्वयं होशियार अनुभवी एवं बुद्धिमान है तो वह सूचनादाताओं से पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकता है। अनुसंधानकर्ता का संबंध प्रत्यक्ष होने के कारण वह उनकी मनोदशा, प्रकृति, भावनाओं का अध्ययन कर उसके अनुरूप व्यवहार कर महत्वपूर्ण और उपयोगी सूचनाएं प्राप्त कर सकता है।

10. **समय**— अनुसंधानकर्ता को स्वयं एक अनुसंधान क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाना होता है, इसमें काफी समय खर्च होता है। यदि अध्ययन क्षेत्र बहुत विस्तृत है तो उसके सामने और अधिक कठिनाई उत्पन्न होती है।

11. **व्यय**— अनुसंधानकर्ता को स्वयं हर स्थान पर जाना पड़ता है, अतः काफी व्यय हो जाता है। इसीलिए इस प्रणाली को कम अपनाया जाता है। प्रश्नावली के प्रस्तुतीकरण का तरीका भिन्न है, यह डाक द्वारा उत्तरदाताओं के पास भेजी जा सकती है। अध्ययनकर्ता के लिए स्वयं स्थान पर जाकर सूचना एकत्र करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रश्नावली को डाक द्वारा उत्तरदाताओं के पास भेजा जाता है, उत्तरदाता उसे वापस लौटाता है। प्रश्नावली द्वारा विस्तृत क्षेत्रों से सूचनाएं आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं, अतः अधिकांशतः इसका प्रयोग बड़े क्षेत्रों में किया जाता है। प्रश्नावली में निरीक्षण के लिए स्थान नहीं है। चूंकि अनुसंधानकर्ता स्वयं उपस्थित नहीं होता है, अतः इस पद्धति द्वारा प्राप्त उत्तर भी संक्षिप्त होते हैं। प्रश्नावली प्रणाली के अंतर्गत सूचनादाताओं का उत्तर, असंतोषजनक होता है। सूचनादाताओं के पास प्रश्नावलियों को भेजा जाता है पर उनमें से अधिकांश लौटकर नहीं आती हैं। प्रश्नावलियों को अनुसंधानकर्ता के पास लौटाना सूचनादाताओं पर निर्भर करता है। कुछ आलस्य एवं खर्च के कारण भी प्रश्नावलियों को नहीं लौटाया जाता है। प्रश्नावली के निर्माण के समय प्रत्येक बात को स्पष्ट लिखा जाना जरूरी है। जहां कहीं व्याख्या की आवश्यकता होती है, वहां व्याख्या भी दी जाती है जिससे सूचनादाता को प्रश्न के संबंध में किसी प्रकार की भ्रांति न रहे। इस प्रणाली में अनुसंधानकर्ता के संबंध अपने सूचनादाता से नहीं होते हैं। अनुसंधानकर्ता उसके व्यक्तित्व, व्यक्तिगत जीवन, उसके दर्शन एवं सिद्धांतों से बिल्कुल ही अनभिज्ञ होता है। वह केवल उसके बारे में केवल मात्र कल्पनाएं ही कर सकता है। प्रश्नावली प्रणाली का उपयोग केवल शिक्षित व्यक्ति ही कर सकते हैं। इसमें भी एक कठिनाई यह है कि शिक्षित व्यक्तियों का बौद्धिक स्तर अलग–अलग श्रेणी का होता है। कम पढ़े लिखे लोग प्रश्नावली की भाषाशैली को समझ नहीं सकते। यदि वह थोड़ा बहुत समझ भी पाएंगे तो भी उनके द्वारा दिए गए उत्तर विश्वसनीय नहीं हो सकते। प्रश्नावलियों को स्तर के अनुसार बदला नहीं जा सकता। प्रश्नावली प्रणाली में अनुसंधानकर्ता का संपर्क प्रत्यक्ष नहीं होता, अतः उसे उत्तरदाताओं द्वारा भेजी गई प्रश्नावलियों के उत्तर से संतुष्ट होना पड़ता है। कई सूचनादाता लापरवाही से प्रश्नावलियों को भरते हैं। उनकी विशेष दिलचस्पी नहीं होती, अतः उनके मस्तिष्क में जो बातें

उस समय आ जाती हैं उन्हें लिख देते हैं। प्रत्यक्ष संबंध न होने के कारण उत्तरदाता कई बातों को छिपा देता है और झूठे ही उत्तर लिख देता है। प्रश्नावली प्रणाली में समय अधिक खर्च नहीं होता चाहे अध्ययन क्षेत्र विस्तृत ही क्यों न हो। उसे डाक द्वारा विभिन्न स्थानों से सूचनाएं प्राप्त हो जाती है। वह एक साथ ही प्रश्नावलियों को भेजता है और थोड़े दिनों के अन्दर विभिन्न क्षेत्रों से सूचनाएं प्राप्त हो जाती हैं। इसमें थोड़े व्यय से सूचनाएं प्राप्त हो जाती हैं अतः यह अधिक लोकप्रिय है।

- **वैयक्तिक अध्ययन विधि (Case Study)**

मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा (Education) में केस विधि का प्रयोग आरंभ से ही किया जा रहा है। फलस्वरूप इन विज्ञानों के शोधों (Researches) में इसकी विशेष अहमियत मानी गयी है। सामाजिक शोध (Social Research) में केस अध्ययन विधि का उपयोग सबसे पहले फ्रेड्रिक ली प्ले (Fredric Le Play) द्वारा 1840 में पारिवारिक बजट (Family Budgets) के अध्ययन में किया गया।

केस अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिसमें किसी सामाजिक इकाई (Social unit) के जीवन (life) की घटनाओं का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इकाई के रूप में किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था, एक समुदाय घटना, नीति, संगठन आदि को लिया जा सकता है। स्पष्ट हुआ कि तब केस अध्ययन विधि में जो केस होता है उससे तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया या घटना से होता है जिसका एक आबद्ध संदर्भ होता है अर्थात केस में सम्मिलित की गयी घटना या इकाई की अपनी चहारदीवारी होती है।

इसी अर्थ में पी. वी. यंग ने केस अध्ययन विधि को इस प्रकार परिभाषित किया है– "केस अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा सामाजिक इकाई की जीवनी का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जा सकता है।"

गुडे तथा हाट के मत में यह एक ऐसी विधि है जिसके सहारे किसी भी सामाजिक इकाई का अध्ययन पूर्णरूपेण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इस विधि में किसी सामाजिक इकाई जो एक व्यक्ति हो सकता है या कोई अन्य सामाजिक समूह भी हो सकता है, के एकात्मक स्वरूप को बरकरार रखते हुए उसका अध्ययन किया जाता है। गुडे तथा हाट के शब्दों में केस अध्ययन विधि को इस प्रकार परिभाषित किया है– "केस अध्ययन सामाजिक आंकड़ों को संगठित करने का एक तरीका है ताकि अध्ययन किए जाने वाले सामाजिक वस्तु के एकात्मक स्वरूप को बनाकर रखा जा सके। थोड़े भिन्न ढंग से इसकी अभिव्यक्ति करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा उपागम है जिसमें किसी भी सामाजिक इकाई को पूर्णरूपेण ढंग से देखा जाता है। करीब–करीब हमेशा ही इस उपागम में इकाई को एक व्यक्ति, एक परिवार या अन्य सामाजिक समूह प्रक्रियाओं या संबंधों का एक सेट या संपूर्ण संस्कृति भी हो सकता है, का विकास सम्मिलित होता है।"

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें केस अध्ययन विधि के निम्न तथ्यों का पता चलता है–

1. केस अध्ययन विधि में किसी सामाजिक इकाई की विकासात्मक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है।
2. सामाजिक इकाई (Social unit) के रूप में एक व्यक्ति विशेष का भी अध्ययन किया जा सकता है या अन्य सामाजिक समूह (Social group) जैसे, परिवार या किसी संस्कृति (Culture) का भी अध्ययन किया जाता है।
3. केस अध्ययन विधि का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें सामाजिक इकाई (Social unit) के एकात्मक स्वरूप (Unitary character) को टूटने नहीं दिया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि अध्ययन की जाने वाली सामाजिक इकाई का संपूर्ण रूप से अध्ययन करने की कोशिश की जाती है।
4. केस अध्ययन विधि में अध्ययन के लिए चुनी गई सामाजिक इकाई के क्या तथा क्यों दोनों पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि के प्रकार एवं विशेषताएं

केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता किसी स्वतंत्र चर (Independent variable) में जोड़–तोड़ कर उसके प्रभाव का अध्ययन नहीं करता है बल्कि वह सिर्फ उस पहलू का अवलोकन करता है जो वर्तमान समय या बीते हुए समय में उपस्थित रहकर अध्ययन की जाने वाली सामाजिक इकाई (Social unit) में परिवर्तन लाता है। व्यवहारपरक वैज्ञानिकों ने केस अध्ययन के मुख्य दो उप प्रकार बताए हैं, जो निम्नांकित हैं–

(क) अपसरित केस विश्लेषण (Deviant case analysis), तथा

(ख) पृथक नैदानिक केस विश्लेषण (Isolated clinical case analysis)

(क) अपसरित केस विश्लेषण– केस अध्ययन के इस प्रकार में शोधकर्ता (Researcher) एक ही साथ दो ऐसे केसेज को लेता है जिनमें काफी समानता होते हुए भी भिन्नता होती है। जैसे, शोधकर्ता यदि एक एकांडी जुड़वा युग्म (One identical twin pair) जिसमें से एक सामान्य है तथा दूसरा मनोविदालिता (Schçophrenia) से ग्रसित है, का अध्ययन करता है तो यह अपसरित केस विश्लेषण (Deviant case analysis method) का एक अच्छा उदाहरण होगा। इस उदाहरण में दोनों बच्चे चूंकि एकांडी जुड़वा (identical twin) है, इसलिए उनमें काफी अधिक समानता है परंतु फिर भी इन दोनों में भिन्नता है– एक मानसिक रोग से ग्रसित है तथा दूसरा सामान्य है। शोधकर्ता इन दोनों बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुंचने की कोशिश करेगा कि वे कौन–कौन से कारक हैं जिनके कारण इन दोनों एकांडी जुड़वा बच्चों में इस तरह की भिन्नता हुई। इस तरह का केस विश्लेषण वारविक एवं ओशरसन (Warwick and Osherson, 1973) द्वारा काफी किया गया है।

(ख) पृथक नैदानिक केस विश्लेषण– इस प्रकार की केस विश्लेषण विधि में शोधकर्ता वैयक्तिक इकाइयों का विश्लेषण उसकी विश्लेषणात्मक समस्याओं के

आलोक में करता है। इस ढंग के केस अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति के बीते हुए दिनों के घटनाचक्रों का विस्तृत विश्लेषण किया जाता है और उसके आधार पर एक अंतिम नतीजे पर पहुंचा जाता है। इस विधि का प्रयोग मनोविश्लेषण में सर्वाधिक होता है। फ्रायड ने मानव आत्मिक अनुक्रिया सिद्धांत का प्रतिपादन अनेक पृथक नैदानिक केसेज के विश्लेषण से उत्पन्न तथ्यों के आधार पर किया है। अभी हाल में विक्सेन (Wixen, 1973) ने एक अध्ययन पृथक नैदानिक केस विश्लेषण द्वारा किया जिसमें 'ब्रीवर' (Brewer) नामक एक बच्चा जो एक काफी धनी माता–पिता की संतान था, का विश्लेषण किया गया। इस अध्ययन के आधार पर विक्सेन धनी परिवार के बच्चों की विशिष्ट समस्याओं से अवगत हुए और उन समस्याओं के समाधान करने के संभावित एवं उपयुक्त उपायों की भी खोज की।

केस अध्ययन विधि (Case study method) के दोनों प्रकार काफी लोकप्रिय हैं। अंतर इतना ही है कि पृथक नैदानिक केस विश्लेषण का प्रयोग नैदानिक परिस्थितियों में अधिक होता है जबकि अपसरित केस विश्लेषण का प्रयोग सामान्य अवस्थाओं में अधिक होता है।

स्टेक (Stake, 1994) ने भी अपने ही द्वारा की गयी समीक्षा के आधार पर बताया है कि केस अध्ययन विधि में चूंकि कई प्रकार के केस होते हैं, अतः केस अध्ययन भी कई तरह के हो सकते हैं। उन्होंने निम्नांकित तीन तरह के केस अध्ययन का वर्णन किया है।

(क) **आंतरिक केस अध्ययन**– यह ऐसा केस अध्ययन होता है जहां शोधकर्ता इसलिए अध्ययन प्रारंभ करता है क्योंकि वह लक्ष्य केस के बारे में गहराई से जानना चाहता है।

(ख) **साधनात्मक केस अध्ययन**– यह ऐसा केस अध्ययन होता है जहां शोधकर्ता किसी विशेष केस का अध्ययन इसलिए करता है क्योंकि उससे समस्या को समझने में विशेष समझ उत्पन्न होती है या किसी सिद्धांत को परिष्कृत करने में मदद मिलती है।

(ग) **सामूहिक केस अध्ययन**– यह एक ऐसा केस अध्ययन होता है जहां शोधकर्ता साधनात्मक केस अध्ययन का विस्तार कई केसेज का अध्ययन करने के लिए करता है तथा जिसमें घटना, सामान्य अवस्था तथा जीव संख्या के बारे में अधिक कुछ सीखने का प्रयास किया जाता है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि की प्रमुख विशेषताएं

केस अध्ययन की निम्नांकित चार प्रमुख विशेषताएं हैं–

1. **केस अध्ययन एक सीमाबद्ध विधि होती है**– केस अध्ययन एक सीमाबद्ध विधि होती है क्योंकि इसमें जिस केस का विश्लेषण किया जाता है। उसकी

सीमाएं होती हैं। यिन (Yin, 1984) के अनुसार संदर्भ (Context) तथा केस (Case) के बीच की सीमा हमेशा स्पष्ट नहीं होती है परंतु इस सीमा की वास्तविकता निश्चित रूप से होती है। शोधकर्ता विशेष प्रयास करके केस की सीमा की पहचान करता है तथा उसका वर्णन करता है।

2. **केस अध्ययन में केस किसी चीज का होता है**– केस अध्ययन में शोधकर्ता को यह पहचान करनी होती है कि केस किस चीज का केस है। इससे उसे विश्लेषण की इकाई के बारे में निर्धारण करने में सुविधा होती है।
3. **केस अध्ययन में केस की संपूर्णता, एकता तथा अखंडता को बचाकर रखने का स्पष्ट प्रयास किया जाता है**– केस अध्ययन के एक केस की संपूर्णता, एकता तथा उसकी अखंडता को बनाकर रखते हुए उसका अध्ययन किया जाता है। चूंकि शोधकर्ता यह जानता है कि एक ही केस में प्रत्येक भाग का अध्ययन संभव नहीं है, इसलिए वह केस के कुछ पहलुओं पर विशिष्ट ध्यान इस प्रकार देता है कि उसकी अखंडता पर कोई आंच न आए।
4. **केस अध्ययन में आंकड़ों के बहुत सारे स्रोतों तथा बहुत सी आंकड़ा संग्रह विधियों का उपयोग किया जाता है**– विशेषकर स्वाभाविक परिस्थितियों में किए जाने वाले केस अध्ययन में आंकड़ों के भिन्न–भिन्न स्रोतों तथा आंकड़े संग्रह की भिन्न–भिन्न विधियों का उपयोग होता है। बहुत से केस अध्ययनों में प्रेक्षण, साक्षात्कार, शाब्दिक रिपोर्ट आदि द्वारा आंकड़े संग्रहित किए जा सकते हैं। प्रश्नावली तथा संख्यात्मक आंकड़ों (Numerical data) का भी उपयोग किया जा सकता है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि के गुण एवं दोष

केस अध्ययन विधि का प्रयोग मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में अधिक किया गया है। इस विधि में कुछ गुण तथा कुछ दोष भी पाए गए हैं–

- **गुण**

1. केस अध्ययन विधि में दो विभिन्न केसेज को लेकर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
2. केस अध्ययन विधि द्वारा अध्ययन के लिए चयन किए गए केस का गहन रूप से अध्ययन संभव है क्योंकि इसमें एक समय में किसी एक केस या सामाजिक इकाई का ही अध्ययन किया जा सकता है।
3. केस अध्ययन विधि द्वारा किसी प्राक्कल्पना (hypothesis) के निर्माण में काफी मदद मिलती है।
4. केस अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिससे प्राप्त तथ्यों के आधार पर भविष्य में किए जाने वाले अध्ययनों में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को पहले से ही आंका जा सकता है तथा उसे दूर करने के उपायों का वर्णन किया जा सकता है।

टिप्पणी

5. इस विधि में चूंकि सामाजिक इकाई का गहन अध्ययन किया जाता है, इसलिए इसमें संबंधित इकाई के व्यावहारिक पैटर्न को पूर्णरूप से समझने में मदद मिलती है।
6. यह विधि सामाजिक इकाई के स्वाभाविक इतिहास के बारे में जानने में मदद करने के साथ–ही–साथ उसका संबंध वातावरण के अन्य सामाजिक कारकों से भी स्थापित करने में मदद करती है।
7. केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर संबंधित कार्य के लिए प्रश्नावली या अनुसूची (Schedules) बनाने में मदद मिलती है।
8. परिस्थिति की जरूरत के अनुरूप इस विधि में शोधकर्ता केस अध्ययन विधि में कई शोध प्रविधियों का उपयोग आसानी से कर लेता है।
9. केस अध्ययन विधि से शोधकर्ता की अनुभूतियां मजबूत होती हैं और इससे फिर उनमें परिस्थिति को समझने एवं विश्लेषण करने की क्षमता और भी अधिक तीक्ष्ण होती है।
10. केस अध्ययन विधि में चिकित्सीय एवं प्रशासनिक उद्देश्यों को अति महत्वपूर्ण समझा जाता है।

- **दोष**

1. केस अध्ययन विधि में आत्मनिष्ठता अधिक पाई जाती है जिसका प्रतिकूल प्रभाव अध्ययन के निष्कर्ष पर पड़ता है। इस विधि में शोधकर्ता तथा अध्ययन के लिए चुनी गई सामाजिक इकाई में अधिक घनिष्ठता तथा सौहार्द स्थापित हो जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि शोधकर्ता सामाजिक इकाई से प्राप्त तथ्य का सही–सही वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन नहीं कर पाता है।
2. केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता में निश्चितता का मिथ्या भाव उत्पन्न हो जाता है। शोधकर्ता अपने निष्कर्ष के बारे में इतना विश्वस्त हो जाता है कि वह अपने अध्ययन में सम्मिलित केसेज को प्रतिनिधि मानकर एक खास तरह के परिणाम के बारे में पूर्णतः निश्चित हो जाता है।
3. केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता पर पूर्ण जवाबदेही इस बात की भी दी जाती है कि वह किसी सामाजिक इकाई जैसे व्यक्ति या परिवार के इतिहास तैयार करे। ऐसा करने के लिए वह काफी प्रयास कर सामाजिक इकाई के बारे में बहुत सारी सूचनाओं की तैयारी करता है तथा उनका विश्लेषण करता है।
4. केस अध्ययन विधि द्वारा अध्ययन में समय काफी लगता है। शोधकर्ता को प्रत्येक केस के बारे में विस्तृत रूप से सूचनाएं तैयार करनी होती हैं।
5. केस अध्ययन विधि में चूंकि शोधकर्ता व्यक्ति से उनके गत अनुभूतियों एवं घटनाओं के बारे में पूछकर एक इतिहास तैयार करता है (जिसका बाद में विश्लेषण कर कोई निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है)। अतः इस बात की संभावना काफी अधिक बनी हुई रहती है कि व्यक्ति अपनी गत अनुभूतियों का विशेषकर

टिप्पणी

उन अनुभूतियों का जो काफी समय पहले घटित घटनाओं पर आधारित हैं, ठीक–ठीक नहीं बता पाए। ऐसी परिस्थिति में इस विधि द्वारा प्राप्त सूचनाएं बहुत अर्थपूर्ण नहीं रह जाती।

6. केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता किसी एक केस का अध्ययन कर निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच जाना चाहता है। अक्सर देखा गया है कि मात्र किसी एक केस के अध्ययन के आधार पर लिया गया निष्कर्ष सही नहीं होता है।
7. केस अध्ययन कई पूर्वकल्पनाओं पर आधारित होते हैं जो कभी–कभी वास्तविकता की कसौटी पर सही नहीं उतरते हैं। परिणामस्वरूप केस अध्ययन विधि से प्राप्त आंकड़े हमेशा शक के घेरे में होते हैं।
8. केस अध्ययन का उपयोग सीमित क्षेत्र में होता है। इसे बड़े समूह या समाज के अध्ययन के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है। इस विधि में प्रतिदर्शन का भी उपयोग संभव नहीं है।
9. केस अध्ययन विधि से प्राप्त आंकड़े संदूषित हो सकते हैं क्योंकि इसमें प्रयोज्य वही कहता है या लिखता है जो शोधकर्ता चाहता है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि के दोष निवारक उपाय

केस अध्ययन विधि में कई तरह के दोष हैं। इन दोषों को निम्न प्रकार से दूर किया जा सकता है–

1. कुछ वैज्ञानिकों जिनमें एरोन्सन (Aronson, 1980), गुडे तथा हाट प्रमुख हैं, का मत है कि शोधकर्ता को इस विधि द्वारा अध्ययन करने में एक प्रतिदर्श का निष्पक्ष चयन कर लेना चाहिए न कि सिर्फ किसी एक केस का गहन अध्ययन कर अपने आपको संतुष्ट कर लेना चाहिए। ऐसा करने से केस अध्ययन विधि की अधिकतर शिकायतें अपने आप दूर हो जाएंगी। जैसे, उपयुक्त प्रतिदर्श के चयन के बाद शोधकर्ता द्वारा गलत निर्णय पर पहुंचने की संभावना समाप्त हो जाएगी। उसके द्वारा सूचना भी अधिक वैध एवं विश्वसनीय होगी।
2. शोधकर्ता को चाहिए कि केस अध्ययन विधि में जब वह एक प्रतिदर्श का चयन कर रहा है, तो प्रतिदर्श जीवनसंख्या का सही–सही प्रतिनिधित्व करता हो। किसी प्रतिदर्श में जब प्रतिनिधित्व का गुण बढ़ता है, तो उससे प्राप्त आंकड़ों की विश्वसनीयता तथा वैधता में भी वृद्धि होती है।
3. यदि शोधकर्ता केस अध्ययन विधि से प्राप्त आंकड़ों का एक वस्तुनिष्ठ कोडिंग करता है, तो इससे सूचनाओं में किसी तरह के हेर–फेर करने की संभावना समाप्त हो जाती है। तब उसका उचित सांख्यिकीय विश्लेषण भी आसानी से हो पाता है।
4. केस अध्ययन विधि को उन्नत बनाने का एक तरीका यह भी है कि शोधकर्ता जो इस विधि द्वारा अध्ययन करने वाला है, को विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित किया जाए।

प्रशिक्षित शोधकर्ता के होने पर निश्चित रूप से इस विधि से प्राप्त आंकड़ों की विश्वसनीयता तथा वैधता काफी बढ़ जाएगी।

अपनी प्रगति जांचिए

5. अनुसंधानकर्ता के लिए उपकल्पना–निर्माण का स्रोत क्या बन जाता है?
   (क) पुस्तकालय (ख) स्वयं का अनुभव
   (ग) प्रयोगशाला (घ) चिकित्सालय
6. व्यक्तिगत प्रलेखों का स्रोत निम्न में से कौन सा है?
   (क) जीवन इतिहास (ख) डायरियां एवं पत्र
   (ग) शोध रिपोर्ट (घ) उपर्युक्त सभी

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ख)
3. (घ)
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)

2.6 सारांश

सामाजिक सर्वेक्षण से केवल एक सामाजिक समस्या से संबंधित आंकड़ों के संकलन का ही बोध नहीं, बल्कि एक पद्धति का बोध होता है।

सामान्य सर्वेक्षण का उद्देश्य सामान्य जानकारी प्राप्त करना होता है जबकि विशिष्ट सर्वेक्षण में उद्देश्य निश्चित व स्पष्ट रहता है।

पाठ्यक्रम, विद्यालय, विद्यार्थी, शिक्षण–पद्धति व शिक्षक आदि शिक्षा से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण तत्व ऐसे होते हैं, जिनके मूल्यांकन की समय–समय पर निरंतर आवश्यकता पड़ती रहती है, ताकि शैक्षिक उपलब्धियों व उपनतियों (Trends) का यथार्थ व विशुद्ध ज्ञान सतत रूप से उपलब्ध होता रहे।

सर्वेक्षण की यह विधि सापेक्षिकतः अधिक खर्चीली है परंतु यह एक ऐसी विधि है, जिसके माध्यम से अत्यधिक विस्तृत तथा गहन जानकारी उपलब्ध होती है।

"क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का अंश होता है जिसका लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है; चाहे वह गंदी बस्ती की अवस्थाएं हों या प्रजातीय तनाव व पक्षपात हो या एक संगठन की प्रभावशीलता हो।"

सामाजिक सर्वेक्षणों में विशेषतः वैज्ञानिक सर्वेक्षण में अध्ययन का आधार प्रायः यादृच्छिक प्रतिचयन (Random Sampling) रहता है, जिससे समष्टि से संबंधित

परिशुद्ध, वस्तुपरक व विश्वसनीय आंकड़ों के संकलन में सहायता मिलती है।

साहित्य सर्वेक्षण के अंतर्गत एक शोधकर्ता को यह बताना होता है कि जिस विषय पर वह शोध कर रहा है, उससे संबंधित क्या—क्या साहित्य उपलब्ध है और विभिन्न विद्वानों द्वारा संबंधित विषयों पर क्या—क्या शोध किया गया है तथा कौन—सा ऐसा अनुत्तरित प्रश्न है, जिसका शोध करना उसके लिए आवश्यक है।

व्यक्तिगत प्रलेख वह लिखित सामग्री है जिसमें एक व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं के बारे में या सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक घटनाओं के बारे में वर्णन अपने दृष्टिकोण से किया हुआ हो। व्यक्तिगत प्रलेखों में सामान्यतः लेखक स्वयं के विचार, मनोवृत्तियों, आवेग, भावनाओं एवं दृष्टिकोण का समावेश करता है।

डायरियों में बहुत से लोग जीवन की विभिन्न घटनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इनमें घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं और भावनाओं का समावेश होता है। जीवन के कटु अनुभव, विशेष परिस्थिति में स्वयं की मनः स्थिति, प्रक्रियाएं, रोष, सुख—दुख, मनोभाव आदि का वर्णन अक्सर डायरियों में मिलता है।

संस्मरण किसी देश या सामाज की आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक परिस्थितियों के बारे में वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन काल में यात्रा वर्णनों, तथ्यों, स्मरणों ने ऐतिहासिक महत्व की सामग्री प्रदान की है।

सार्वजनिक प्रलेख उन्हें कहते हैं जिन्हें कोई सरकारी या गैर—सरकारी संस्था तैयार करती है। उन्हें प्रकाशित या अप्रकाशित रूप में जनता के लाभ के लिए उपलब्ध कराया जाता है। देश में विभिन्न प्रकार के आयोजन या कार्यक्रम रखे जाते हैं, उनका फिर रिकॉर्ड सरकार अपने पास रखती है।

सामग्री विश्लेषण प्रविधि के पूर्व भी, समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी संचार के रिकार्डो का प्रयोग विभिन्न प्रयोजनों के लिए करते थे। साहित्यिक आलोचक लेखकों की कृतियों का विभिन्न उद्देश्यों हेतु अध्ययन करते थे।

व्यक्तियों की मनोवृत्तियों, भावनाओं और आन्तरिक विचारों का अध्ययन एवं विश्लेषण करने के लिए साक्षात्कार एक उपयोगी पद्धति है। इसमें अध्ययनकर्ता और सूचनादाता एक दूसरे के आमने—सामने संबंध स्थापित कर वार्तालाप करके अभीष्ट सामग्री प्राप्त करता है।

साक्षात्कार संपन्न करना एक कला है। इसके संचालन के लिए बहुत सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता रहती है। इसके परिणामों को विश्वसनीय एवं उपयोगी बनाने के लिए, इसे विधिवत् योजना बनाकर संगठित किया जाना चाहिए।

जीवन इतिहास में व्यक्ति विशेष की महत्वपूर्ण घटनाएं, पारिवारिक जीवन की घटनाएं, प्रभावित करने वाले तत्व, विशेष परिस्थितियों का वर्णन, जीवन अनुभव, प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ संपर्क और उनका प्रभाव, मानसिक स्थिति, मनोभाव, आशा, निराशा आदि पक्षों पर सूचनाएं उपलब्ध होती हैं।

तथ्य—सामग्री को संकलित करने की एक और प्रविधि है—वह है अनुसूचियों का प्रयोग। अनुसूची प्रश्नों की एक लिखित सूची है जो अध्ययनकर्ता द्वारा अध्ययन विषयों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **सामाजिक सर्वेक्षण** : सामाजिक सर्वेक्षण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक समुदाय की संरचना एवं प्रक्रिया को सामाजिक क्रियाओं के बारे में संख्यात्मक तथा एकत्र किया जाता है।
- **सामाजिक शोध** : सामाजिक शोध, सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के संबंध में नए ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण है।
- **प्राथमिक आंकड़े** : प्राथमिक आंकड़े उन्हें कहते हैं जिनके अंतर्गत अनुसंधानकर्ता स्वयं घटना स्थल पर जाकर या संबंधित व्यक्तियों से साक्षात्कार कर प्रश्नावली और अनुसूची द्वारा आंकड़े प्राप्त करता है।
- **व्यक्तिगत प्रलेख** : वह लिखित सामग्री जिसमें एक व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं के बारे में या सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक घटनाओं के बारे में वर्णन अपने दृष्टिकोण से किया गया हो।
- **सामग्री विशेषण** : वस्तु विश्लेषण चरों को मापने के लिए संचार के व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ और मात्रात्मक ढंग से अध्ययन और विश्लेषण की पद्धति है।

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक सर्वेक्षण से आप क्या समझते हैं?
2. व्यावहारिक शोध से क्या तात्पर्य है?
3. सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
4. सामाजिक अनुसंधान के गुण व दोषों को बताइए।
5. प्राथमिक आंकड़ों से आप क्या समझते हैं? प्राथमिक आंकड़ों को एकत्र करने के दो स्रोत बताइए।
6. सहभागी निरीक्षण, असहभागी निरीक्षण तथा अर्द्ध–सहभागी निरीक्षण में अंतर स्पष्ट कीजिए।
7. व्यक्तिगत प्रलेखों के लिखने के मुख्य कारण क्या है?
8. प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेख में क्या अंतर है?
9. अवलोकन के गुण व दोषों को स्पष्ट कीजिए।
10. अध्ययन विधि से क्या अभिप्राय है? अध्ययन विधि के दोष निवारक उपाय को किस प्रकार से दूर किया जा सकता है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक सर्वेक्षण को परिभाषित करते हुए इसके विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

2. क्रियात्मक शोध से क्या तात्पर्य है? क्रियात्मक शोध में शोधकर्ता को किन बातों का ध्यान रखना पड़ता है?
3. सामाजिक सर्वेक्षण के चरणों को बताते हुए इसके गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।
4. अनुसंधान अभिकल्प की विषयवस्तु पर प्रकार डालिए।
5. प्राथमिक स्रोतों के गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।
6. अवलोकन से आप क्या समझते हैं? अवलोकन की विशेषताओं और प्रकारों का उल्लेख कीजिए?
7. साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं? साक्षात्कार के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए?
8. साक्षात्कार की विभिन्न प्रक्रियाओं का वर्णन कीजिए।
9. प्रश्नावली से क्या तात्पर्य है? प्रश्नावली के गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।
10. अध्ययन विधि की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutledgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 3 निदर्शन और शोध प्रारूप

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 निदर्शन : प्रकार और प्रविधियां
  3.2.1 निदर्शन : परिभाषाएं एवं विशेषताएं
  3.2.2 निदर्शन के प्रकार एवं प्रविधियां
  3.2.3 निदर्शन के गुण एवं दोष
3.3 शोध प्रारूप के मुख्य प्रकार
  3.3.1 शोध प्रारूप : अर्थ, परिभाषाएं, विशेषताएं एवं उद्देश्य
  3.3.2 शोध प्रारूप के विभिन्न चरण एवं महत्व
  3.3.3 शोध प्रारूप के प्रकार
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

सामाजिक विज्ञानों में निदर्शन पद्धति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। निदर्शन की प्रक्रिया (संपूर्ण परिकल्पना या उपकल्पना या प्राक्कल्पना (Whole) या समग्र (Universe) में से उसके एक ऐसे अंश का चुनाव, जिसके आधार पर समग्र के बारे में परिणाम निकाले जाते हैं) का विकास शताब्दियों में हुआ है। ए. वुल्फ ने लिखा है कि "विज्ञान एवं दैनिक जीवन के अंतर्गत वास्तविक प्रयोग में हम उस बात का विश्वास करते हैं जिसे शुद्ध निदर्शनों का सिद्धांत माना जा सकता है।" हम अपने सामान्य दैनिक जीवन में निदर्शन का प्रयोग अनेकों बार करते हैं। उदाहरणार्थ, हम बाजार से राशन लेते समय, राशन की पूरी बोरी को उठाकर नहीं देखते वरन एक मुट्ठी भर राशन का निरीक्षण कर यह पता लगा लेते हैं कि राशन की गुणवत्ता कैसी है। गृहिणी खाना बनाते समय पूरे खाने को नहीं अपितु पूरे खाने में से एक चम्मच चखकर यह अनुमान लगा लेती है कि खाना कैसा पका है। फल खरीदते समय भी हम पूरे फल को नहीं खाते वरन पूरे ढेर में से एक फल को खाकर यह जान लेते हैं कि फल मीठा है अथवा नहीं। उपरोक्त सभी क्रियाओं में हमने निदर्शन पद्धति का प्रयोग किया है।

अनुसंधान के उद्देश्य के आधार पर संपूर्ण अध्ययन की व्यवस्थित संरचना ही अनुसंधान प्रारूप, संरचना अथवा अभिकल्प कहलाते हैं। साधारणतया अनुसंधान के प्रारंभिक स्तर पर ही शोध प्रारूप का निर्माण किया जाता है। इस दृष्टिकोण से अनुसंधान प्रारूप सामाजिक अनुसंधान का एक ऐसा प्रारूप है जो सामाजिक शोधकर्ता को दिशा प्रदान करता है तथा इसके माध्यम से शोध कार्य के विभिन्न आयामों तथा उसकी वास्तविक प्रकृति को सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है। इस संबंध में

अल्फ्रेड जेब कान्ह ने लिखा है कि ''अनुसंधान की आरंभिक स्थिति में प्रारूप का निर्माण, प्रस्तावित अध्ययन की उपयुक्तता को स्पष्ट करता है तथा अध्ययन संबंधी प्रमुख समस्याओं के समाधान में सहायता करता तथा सहायता पहुंचाता है।''

टिप्पणी

अनुसंधान समस्या के निरूपण के पश्चात अन्वेषणकर्ता का मुख्य कार्य अनुसंधान प्ररचना के निर्माण का रह जाता है। सामाजिक अनुसंधानकर्ता जिसका उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति या किसी समस्या का वैज्ञानिक ढंग से समाधान हो सकता है वह उस उद्देश्य को ध्यान में रखता हुआ अनुसंधान अध्ययन की योजना तैयार करता है। अनुसंधान प्ररचनाएं समान नहीं हो सकतीं। अनुसंधान प्ररचना निर्माण के संबंध में अनुसंधानकर्ता भिन्न–भिन्न मत रखते हैं। कम से कम प्ररचना के समर्थक कहते हैं कि अनुसंधान की विस्तृत प्ररचना व्यर्थ है। उपकल्पना एक सामयिक तथा काम चलाऊ सामान्यीकरण अथवा निष्कर्ष है जिसकी सत्यता की परीक्षा करना शेष रहता है। प्रारंभिक चरणों में उपकल्पना कोई मनगढंत, अनुमान, कल्पनापूर्ण विचार इत्यादि कुछ भी हो सकता है जो क्रिया अथवा अनुसंधान का आधार बन जाता है।

इस इकाई में निदर्शन का अर्थ, विशेषताएं प्रकार और उसकी प्रविधियां तथा शोध प्रारूप के विभिन्न प्रकारों को विस्तार से समझाया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- निदर्शन के अर्थ एवं परिभाषाओं को समझ पाएंगे;
- निदर्शन की विशेषताओं की विवेचना कर पाएंगे;
- निदर्शन के प्रकारों को समझ पाएंगे;
- निदर्शन की प्रविधियों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- शोध प्रारूप की विशिष्टताओं, स्वरूपों आदि से अवगत हो पाएंगे।

3.2 निदर्शन : प्रकार और प्रविधियां

निदर्शन पद्धति का अर्थ जानने से पूर्व आवश्यक है कि हम निदर्शन का अर्थ जान लें। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि समग्र में से चुने गए ऐसे "कुछ" को जोकि समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करता है, निदर्शन कहते हैं। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि निदर्शन किसी भी चीज या समूह का संपूर्ण भाग या समस्त इकाइयां नहीं होती हैं अपितु उस समग्र का एक छोटा भाग या केवल कुछ इकाइयां ही होती हैं, पर समग्र का कोई भी अंश इकाई निदर्शन नहीं है जब तक कि ये कुछ इकाइयां समग्र की आधारभूत विशेषताओं का उचित प्रतिनिधित्व न करें। इस अर्थ में समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करने वाली कुछ इकाइयों को निदर्शन कहा जाता है।

मिल्ड्रेड पार्टिन के मत में 1900 के पूर्व में निदर्शन के उपयोग के लिखित प्रमाण बहुत कम संख्या में उपलब्ध होते हैं। 1920 के उपरांत ही निदर्शन का प्रयोग आरंभ

हुआ माना जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की जनगणना ब्यूरो ने इसका सर्वप्रथम प्रयोग 1940 में किया है।

टिप्पणी

ए. एल. बाऊले ने लंदन में विभिन्न समूहों में से कुछ परिवारों का चयन करके उस अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत बड़ी मात्रा में उस स्थान की संपूर्ण जनसंख्या की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते थे। बाद में आगे चलकर चार्ल्स बूथ एक राउन्ट्री ने उसी समुदाय का व्यापक अध्ययन कर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत कुछ बाऊले के निष्कर्षों के समान थे, अतः सामाजिक विज्ञानों में बाऊले द्वारा प्रयुक्त निदर्शन प्रणाली की उपयोगिता इस बात को लेकर स्थापित हो गई कि निदर्शन के द्वारा न केवल बहुत अधिक धन व समय की बचत की जा सकती है, बल्कि अध्ययन के निष्कर्षों में विश्वसनीयता व उपयोगिता में भी कोई अंतर नहीं पड़ता, अतः निदर्शन पद्धति क्रमशः समस्त विज्ञानों में अत्यन्त लोकप्रिय होती गई।

अनुसंधान कार्य में भी यही बात लागू होती है। अनुसंधान में अधिकतर परिस्थितियां ऐसी आती हैं जिनमें हम केवल निदर्शन के आधार पर विश्वसनीय निष्कर्ष निकाल सकते हैं बशर्ते कि निदर्शन का चयन वैज्ञानिक ढंग से किया गया हो। अधिकतर अनुसंधान परिस्थितियों में निष्कर्ष निकालने के लिए केवल निदर्शन को लेना ही पर्याप्त नहीं होता किंतु समस्त स्थितियों का अध्ययन करना अनावश्यक होता है। समग्रतः अध्ययन करना केवल समय का अपव्यय है, क्योंकि निदर्शन के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष समस्त स्थितियों के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों से भिन्न नहीं होते। जब हम एक चम्मच चावलों के आधार पर यह पता लगा सकते हैं कि चावल पके हैं या नहीं, तो बर्तन के सब चावलों को देखना न तो आवश्यक ही है न संभव ही। साथ ही सब चावलों को यदि हम देख भी लें तो शायद हम उसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे जिस निष्कर्ष पर एक चम्मच चावलों को देखकर पहुंचे हैं।

अनुसंधान कार्य में कुछ परिस्थितियां अवश्य ऐसी हो सकती हैं जिसमें हमें समग्रतः अध्ययन करना पड़ता है केवल निदर्शन से काम नहीं चलता। उदाहरणार्थ, हमें यदि यह पता लगाना हो कि भारत में इस समय साक्षरता की क्या स्थिति है तो हमें संपूर्ण गणना करनी होगी केवल निदर्शन लेकर काम नहीं चलेगा। किंतु अधिकतर परिस्थितियों में हम निदर्शन के द्वारा निष्कर्ष निकाल सकते हैं। निदर्शन की प्रक्रिया अथवा समग्र या समष्टि से उसके ऐसे अंश का चुनाव, जिसके आधार पर समग्र या समष्टि के विषय में परिणाम निकाले जाने हैं, अत्यधिक प्राचीनकाल से अनुसंधान कार्यरीति के एक वैध एवं शीघ्रता के साथ कार्य करने के ढंग के रूप के प्रयोग में लाया जाता रहा है। आधुनिक निदर्शन कार्यरीति के इतिहास का पूर्ण वर्णन प्रस्तुत करते हुए स्टीफन ने यह बतलाया है कि "नियमित जनगणनाओं की स्वीकृति के पूर्व सदैव निदर्शन किए जाते रहे हैं।"

जानबूझकर निदर्शन के लिए बनाई गई योजनाओं के लिखित प्रमाण सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में सन् 1900 से पूर्व बहुत कम संख्या में उपलब्ध हैं। ए.एल. बाउले द्वारा लंदन में घरों को दैव निदर्शन प्राप्त करने के लिए बनाई गई योजना में सर्वप्रथम प्रतिदर्शन के लिए अपनाई गई अधिक कठोर कसौटियां दृष्टिगोचर होती हैं।

3.2.1 निदर्शन : परिभाषाएं एवं विशेषताएं

सर्वश्री गुडे एवं हाट (Goode and Hatt) ने लिखा है, "एक निदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है किसी विशाल संपूर्ण का छोटा प्रतिनिधि है।"

टिप्पणी

श्रीमती यंग के अनुसार, "एक सांख्यिकीय निदर्शन उस संपूर्ण समूह अथवा योग का एक अति लघुचित्र है जिसमें से कि निदर्शन लिया गया है।"

श्री फ्रैंक याटन के शब्दों में, "निदर्शन शब्द का प्रयोग केवल किसी समग्र चीज की इकाइयों के एक सेट या भाग के लिए किया जाना चाहिए जिसे इस विश्वास के साथ चुना गया है कि वह समग्र का प्रतिनिधित्व करेगा।"

श्री वाई.डी. केसकर (V.D. Keskar) के अनुसार, "निदर्शनात्मक अनुसंधान में हम समग्र समूह के संबंध में निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करते हैं यद्यपि संकलित तथ्य जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं समग्र के केवल एक भाग से संबंधित होता है।"

श्री बोगार्डस (Bogardus) के शब्दों में, "निदर्शनप्रविधि एक पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चुनाव है।"

श्री फेयरचाइल्ड (Fairchild) ने अपनी डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी में मिलड्रेड पार्टन के शब्दों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "एक निश्चित संख्या में व्यक्तियों, मामलों या निरीक्षणों को एक समग्र विशेष में से निकालने की प्रक्रिया या पद्धति अथवा अध्ययन के हेतु एक समग्र समूह में से एक भाग को चुनना निदर्शन पद्धति कहलाती है।"

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि निदर्शन पद्धति अनुसंधान की वह पद्धति है जिसमें अनुसंधान विषय के अंतर्गत सम्मिलित संपूर्ण सामग्री या इकाइयों में से अनुसंधानकर्ता सावधानीपूर्वक कुछ ऐसी इकाइयों को चुन लेता है जो कि संपूर्ण की आधारभूत विशेषताओं का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें।

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है निदर्शन–प्रविधि का केवल वैज्ञानिक अनुसंधान में ही नहीं बल्कि रोज के व्यावहारिक जीवन में भी प्रयोग किया जाता है। श्री टिप्पेट (Tippett) ने ठीक ही लिखा है कि "बड़े समूह में से एक छोटा भाग लेने की विधि सामान्यतया भली प्रकार समझी और विस्तृत रूप में काम में लाई जाती है। गृहस्वामिनी दुकान पर पनीर खरीदने से पहले उसका एक टुकड़ा नमूने के रूप में लेगी और एक रुई धुनने वाला व्यक्ति केवल रुई के टुकड़े को देखकर ही उस रुई की पूरी गांठ को खरीद लेगा।" इस प्रविधि की लोकप्रियता के कारणों की विवेचना हम इसी अध्याय में आगे चलकर करेंगे। उससे पहले यहां निदर्शन के आधार को समझ लेना आवश्यक होगा।

निदर्शन की विशेषताएं

निदर्शन जितना पक्षपात रहित होगा, अध्ययन विषय से संबंधित निष्कर्ष उतने ही महत्वपूर्ण होंगे। इस संबंध में पी.वी. यंग ने लिखा है कि "निदर्शन का आकार ही उसके

प्रतिनिधि होने की गारण्टी नहीं होता है, समुचित रूप से चुना गया अपेक्षाकृत छोटे आकार का निदर्शन दोषपूर्ण रूप से चुने गए बड़े आकार के निदर्शन से अधिक विश्वसनीय होता है।" निदर्शन का उत्तम होना अध्ययन की सफलता के लिए आवश्यक है। निदर्शन की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. निदर्शन को समग्र का प्रतिनिधि होना चाहिए—निदर्शन के लिए समग्र का प्रतिनिधि होना उसका सर्वप्रथम आवश्यक लक्षण है। निदर्शन का चुनाव विभिन्न ढंग से किया जा सकता है फिर भी हर अवस्था में प्रधान उद्देश्य प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चुनाव करना है। प्रतिनिधि निदर्शन दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है : (i) समग्र की इकाइयों में एकरूपता लाकर, (ii) निदर्शन के चुनाव की उपयुक्त प्रणाली अपनाकर। लुंडबर्ग ने लिखा है कि कोई निदर्शन प्रतिनिधि तभी हो सकता है जब अध्ययन से संबंधित इकाईयों में एकरूपता हो तथा निदर्शन की प्रणाली तटस्थ रूप से उपयोग में लाई गई हो।

2. पर्याप्त आकार का होना चाहिए : समुचित प्रणाली द्वारा चुने गए निदर्शन की थोड़ी मात्रा भी बड़ी मात्रा के निदर्शनों की अपेक्षा अधिक सही एवं विश्वसनीय परिणाम प्रदान कर सकती है। इस संबंध में पी.वी. यंग ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि, "निदर्शन के आकार की कोई आवश्यक सीमा नहीं है, सापेक्षिक रूप से उचित प्रकार से चुने गए छोटे निदर्शन अनुपयुक्त तरीके से चुने गए बड़े निदर्शन की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होते हैं।" फिर भी निदर्शन का एक समुचित मात्रा में होना आवश्यक है।

3. सभी प्रकार के पक्षपात से स्वतंत्र होना चाहिए : निदर्शन के लिए यह आवश्यक है कि किसी भी इकाई का चुनाव व्यक्तिगत इच्छा के आधार पर न किया जाए। अक्सर ऐसा देखा गया है कि निदर्शन का चुनाव करते समय हम समग्र से कुछ उल्लेखनीय व आकर्षक इकाइयों को जो कि हमारे आदर्श के अनुरूप हैं चुन लेते हैं। इस प्रकार चुने गए निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि अपने पक्षपात के कारण हो सकता है कि हम कुछ महत्वपूर्ण इकाइयों को न चुनें और कुछ महत्वहीन इकाइयों को केवल इसलिए चुन लें कि वे हमारी पसंद के अनुकूल हैं। दोनों ही स्थितियों में हमारा निदर्शन वास्तविक स्थिति के साथ हमारा परिचय करवाने में सफल नहीं हो सकता। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि निदर्शन सभी प्रकार के पक्षपात से स्वतंत्र हो। कभी–कभी ऐसा देखा गया है कि अध्ययनकर्ता जानबूझ कर पक्षपात को महत्व देता है। उदाहरण के लिए यदि भेजी गई प्रश्नावली भर कर वापस नहीं आई या आई भी है तो सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में अध्ययनकर्ता अपनी इच्छानुसार उन कमियों को पूरा करने की कोशिश करता है।

4. अध्ययन विषय के अनुरूप : निदर्शन का अध्ययन विषय के अनुरूप होना अत्यंत आवश्यक है। इस अनुकूलता के आधार पर ही निदर्शन की विश्वसनीयता की माप की जा सकती है। उदाहरणार्थ यदि अध्ययन का उद्देश्य एक विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों

में अनुपस्थित रहने की आदत के कारणों जानना है तो हमें अपने निदर्शन में उन्हीं विद्यार्थियों को शामिल करना होगा जो कि परीक्षा से अनुपस्थित रहने के आदी हैं।

टिप्पणी

5. सामान्य ज्ञान एवं तर्क का उपयोग : सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता निदर्शन आदि के नियमों का प्रयोग करता है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसे सामान्य ज्ञान एवं तर्क का आश्रय लेना छोड़ देना चाहिए। बिना सामान्य ज्ञान एवं तर्क के कोई भी अनुसंधानकर्ता अपने क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता है इसीलिए निदर्शनों को सही रूप देने के लिए सामान्य ज्ञान एवं तर्क का भी आश्रय लेना अधिक उपुयक्त होगा। निदर्शन की प्रविधियां चाहे कितनी भी विकसित क्यों न हों, लेकिन तर्क एवं सामान्य ज्ञान का उपयोग किए बिना अनुसंधानकर्ता एक अच्छा निदर्शन प्राप्त नहीं कर सकता है।

6. व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित : निदर्शन केवल तर्क पर ही आधारित नहीं होता बल्कि इसमें अनुसंधानकर्ता के व्यावहारिक अनुभवों का समावेश होना आवश्यक है। अधिकतर ऐसा अनुभव किया गया है कि निदर्शन के चयन में कुछ ऐसी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जिनका समाधान अनुभवों की मदद से ही किया जाता है। यह अनुभव अध्ययन–विषय की प्रकृति के संबंध में एक अंतर्दृष्टि को पनपाने में सहायक होता है और यह अंतर्दृष्टि प्रतिनिधिपूर्ण निदर्शनों के चुनावों में अत्यन्त मदद करती है। कोई भी व्यक्ति एक विषय पर तब तक अध्ययन नहीं कर सकता है जब तक कि उस विषय से संबंधित उसे कुछ व्यावहारिक ज्ञान न हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि निदर्शन में व्यावहारिक ज्ञान का होना आवश्यक है।

3.2.2 निदर्शन के प्रकार एवं प्रविधियां

प्रतिदर्श (Sample) अथवा नमूना चयन करने की अनेक विधियां हैं जिन्हें मुख्य रूप से दो प्रकार की विधियों में विभाजित किया जाता है– 1. प्रायिकता (संभावित) निदर्शन; 2. अप्रायिकता (असंभावित) निदर्शन। कई बार प्रतिदर्श के अंतिम स्तर तक पहुंचने के लिए कई चरणों पर प्रतिदर्श के चुनाव का निर्णय लिया जाता है। ऐसे में कुछ चरणों में प्रायिकता एवं कुछ चरणों में अप्रायिकता विधि का प्रयोग होता है। इसे मिश्रित विधि कहा जा सकता है।

प्रायिकता (संभावित) निदर्शन

प्रायिकता संभावित निदर्शन या (प्रतिदर्श) को सैद्धांतिक रूप से समझना एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। वास्तव में व्यावहारिक जीवन में शैक्षणिक शोधार्थी अथवा अन्य शोधार्थी सुविधाजनक प्रतिदर्श को यादृच्छ (Random) अथवा प्रायिकता (Probability) प्रतिचयन समझ लेते हैं।

प्रायिकता (संभावित) निदर्शन प्रतिचयन का अर्थ है ऐसा प्रतिचयन जिसमें आवश्यक रूप से इस नियम का पालन हो कि पूरी जनसंख्या की हर इकाई को प्रतिदर्श में चुनाव का समान एवं स्वतंत्र अवसर प्राप्त होगा। इसके कुछ त्वरित उदाहरण लॉटरी अथवा

फिशबाउल विधियां आदि हैं। प्रायिकता विधि किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह, निर्णय (judgement), प्रवृत्ति अथवा झुकाव आदि से परे होती है। इसीलिए इस विधि को यादृच्छ विधि भी कहा जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी कक्षा में 100 विद्यार्थी हैं एवं कोई अध्यापक अथवा अन्य शोधकर्ता अपने शोध के लिए उनमें से 10 विद्यार्थियों का चयन करना चाहता है और प्रायिकता विधि के अंतर्गत (लॉटरी विधि) वह 100 विद्यार्थियों के अनुक्रमांकों की पर्चियां बनाकर उनमें से 10 पर्चियां उठाता है तो इसे प्रायिकता विधि कहते हैं।

प्रायिकता निदर्शन की विशेषताएं

1. **हर इकाई को समान अवसर** : प्रायिकता विधि में जनसंख्या की हर इकाई को चयन का समान अवसर प्राप्त होता है। इसमें किसी भी इकाई अथवा इकाइयों के समूह से कोई पक्षपात नहीं किया जाता। प्रायिकता विधि के अंतर्गत आने वाली सभी विधियों में शोधकर्ता के पास सम्पूर्ण प्रतिचयन वृत्ति होती है एवं वह उस प्रतिचयन वृत्ति में शामिल सभी इकाइयों को समान महत्व देते हुए उन्हें प्रतिदर्श का हिस्सा बनने के लिए समान अवसर प्रदान करता है।
2. **चयन की स्वतंत्रता** : प्रायिकता विधि में किसी एक इकाई का चयन दूसरी इकाई के चयन पर निर्भर नहीं करता। हर इकाई अपने आप में स्वतंत्र रहती है और इससे शोध में किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं आता।
3. **वैज्ञानिक विधि में स्वीकृत** : वैज्ञानिक विधि में प्रायिकता विधि को ही मान्यता दी जाती है, क्योंकि बहुत सी सांख्यिकीय विधियां उन्हीं आंकड़ों पर प्रयोग की जा सकती हैं जो यादृच्छ अथवा प्रायिकता विधि से संकलित किए गए हों।
4. **विभिन्न उप प्रविधियों का प्रयोग** : प्रायिकता के आधार पर प्रतिचयन की कई विधियां हैं। इनका उपयोग प्रतिदर्श के आकार आदि के आधार पर किया जाता है। प्रतिचयन की ये विधियां– सरल यादृच्छ विधि (simple random sampling), व्यवस्थित यादृच्छ प्रतिचयन (systematic random sampling), स्तरवार प्रतिचयन (stratified sampling), गुच्छा प्रतिचयन (cluster sampling) आदि हैं।
5. **कम्प्यूटर की भूमिका** : आधुनिक युग में यादृच्छ तालिकाओं का प्रयोग सरल यादृच्छ विधि के प्रयोग के लिए किया जाता है जिसमें अक्सर कम्प्यूटर जनित तालिकाओं की भी सहायता ली जाती है। इस प्रकार प्रायिकता विधियां अधिक विश्वसनीय हो जाती हैं।

अप्रायिकता (असंभावित) निदर्शन

अप्रायिकता प्रतिचयन की विधियां वे विधियां हैं जिनमें जनसंख्या की हर इकाई को चयन का समान अवसर नहीं मिलता। अप्रायिकत (असंभावित) निदर्शन की क्रियाविधि विषयनिष्ठता की तुलना में मनुष्य के विवेक या व्यक्तिगत निर्णय पर अधिक निर्भर करती है। अप्रायिकता निदर्शन क्रियाविधि को बहुत अ–यादृच्छिक निदर्शन क्रियाविधि के रूप में भी देखा जाता है। अप्रायिकता निदर्शन के प्रत्येक समष्टि इकाई के लिए चयन की प्रायिकता पहले से पता नहीं होती है। इसलिए हम पूरी तरह सुनिश्चित नहीं

हो सकते है कि निदर्शन समष्टि का प्रतिनिधि होगा। इसके साथ–साथ हम चयन की प्रायिकता का निर्धारण नहीं कर सकते है। अनुभव के आधार पर शोधकर्ता के विषय विशेषज्ञता और निष्पादन या प्रतिदर्श के रूप में शामिल की जाने वाली इकाइयों की पहचान की जाती है। कभी–कभी इसमें व्यक्तिगत पक्षपात भी शामिल होता है। इसमें निर्णयात्मक (judgement sampling), कोटा प्रतिचयन (quota sampling), सुविधाजनक प्रतिचयन (convenience sampling) एवं स्नोबॉल (snowball sampling) आदि को शामिल किया जाता है।

अप्रायिकता की विशेषताएं

अप्रायिकता (असंभावित निदर्शन) की विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं–

1. **पक्षपात की संभावना :** अप्रायिकता निदर्शन विधि पूर्णतः वैज्ञानिक विधि नहीं होती। इसमें शोधकर्ता के व्यक्तिगत अनुभव एवं रुचि का अधिक प्रयोग होता है। अतः इस विधि में प्रतिचयन में चैतन्य (Conscious) अथवा अचेतन (Unconscious) किसी भी रूप में कहीं न कहीं शोधकर्ता पक्षपात कर ही देता है। वह उस राज्य को शोध में शामिल कर देता है जिससे वह संबंध रखता है, वह उस विद्यालय को प्रतिदर्श में चुन लेता है जिससे उसकी शिक्षा हुई है, इत्यादि।
2. **सुविधाजनक :** अप्रायिकता विधियां अधिक सुविधाजनक होती हैं। इन विधियों में शोधकर्ता को न तो प्रायिकता विधियों के सूत्रों का प्रयोग करना पड़ता है और न ही किसी कठोर प्रक्रिया का पालन करना पड़ता है। अप्रायिकता प्रतिचयन में शोधकर्ता का बहुत सा धन एवं समय भी बचता है।
3. **व्यावहारिक एवं विशिष्ट प्रयोग :** अप्रायिकता विधियों को हर प्रकार के शोध में हर जगह प्रयोग नहीं किया जा सकता हालांकि कुछ परिस्थितियों में इनका प्रयोग अधिक व्यावहारिक होता है एवं कुछ परिस्थितियों में आवश्यक। अतः इन विधियों का प्रयोग एक विशिष्ट प्रयोग है।
4. **विशेषज्ञों द्वारा प्रयोग :** वैसे तो प्रतिचयन का कार्य एक बहुत ही कठिन कार्य है परंतु प्रायिकता विधियों में प्रतिचयन के लिए पूर्व निर्धारित सूत्र एवं प्रक्रिया होती हैं। अतः एक कम अनुभव वाला शोधकर्ता भी इन विधियों का प्रयोग कर सकता है। जबकि अप्रायिकता विधियां केवल विशेषज्ञों द्वारा ही प्रयोग की जा सकती हैं, क्योंकि इनमें इकाई का चयन शोधकर्ता के ज्ञान, विवेक एवं अनुभव पर आधारित होता है।

निदर्शन की विधियां

समग्र से निदर्शन का चुनाव करने की कई पद्धतियां हैं जिन्हें हम निदर्शन के प्रकार कहते हैं। ये पद्धतियां या प्रकार, अध्ययन के उद्देश्य की आवश्यकता, आंकड़ों की प्रकृति, अध्ययन के उद्देश्य आदि पर निर्भर करती हैं तथा अध्ययनकर्ता इन पद्धतियों में से किसी का भी चयन करते समय इन्हीं बातों को ध्यान में रखता है। निदर्शन के चुनाव की प्रमुख प्रविधियां निम्नलिखित हैं-

टिप्पणी

1. यादृच्छिक निदर्शन (Random Sampling)
2. स्तरीकृत निदर्शन (Stratified Sampling)
3. उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)
4. बहुस्तरीय निदर्शन (Multi Stage Sampling)
5. गुच्छ निदर्शन (Cluster Sampling)
6. अभ्यंश निदर्शन (Quota Sampling)
7. व्यवस्थित निदर्शन (Systematic Sampling)
8. आकस्मिक निदर्शन (Accidental Sampling)

निदर्शन की प्रमुख प्रविधियों का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है–

1. यादृच्छिक निदर्शन (Random Sampling)–यादृच्छिक निदर्शन एवं संभावना निदर्शन को एक पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाता है। निदर्शन समग्र के एक अंश (अथवा निदर्शन) को निकालने का एक ऐसा ढंग है जो जनसंख्या अथवा समग्र के प्रत्येक सदस्य को चुनाव की ज्ञात संभाविता प्रदान करता है। यहां पर 'यादृच्छिक' शब्द चुनाव के एक विशिष्ट ढंग का विशेषण है, निदर्शन का नहीं। यदि निदर्शन इस प्रकार किया जाए कि समग्र के सभी तत्वों या इकाइयों के निदर्शन में चुने जाने की संभाविता समान हो तो उसे हम यादृच्छिक निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि हम किसी गोल बर्तन में कांच के 100 कंचे रखें और फिर उनमें से कोई एक कंचा निकालें तो प्रत्येक कंचे के चयन की संभाविता 1100 होगी। इस प्रकार चुने हुए निदर्शन में न केवल इकाइयों के चयन की संभाविताएं समान होती हैं बल्कि इनमें संयोगों के चयन की संभाविता भी बराबर होती है जैसे यदि यह मान लें कि समग्र में पांच व्यक्ति हैं अ, ब, स, द और ड, इनमें में अनुसंधानकर्ता दो का चयन करना चाहता है। दो का संयोग इस प्रकार का हो सकता है :

1-अ,ब, 2-अ,स, 3-अ,द, 4-अ,ड, 5-ख,स, 6-ख,ग, 7-ख,ड, 8-स,द, 9-स,ड, एवं 10-द,ड। यादृच्छिक निदर्शन के लिए आवश्यक है कि इन सभी संयोगों को चयन का बराबर–बराबर अवसर दिया जाए।

यादृच्छिक निदर्शन को भी अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है। यह अधिक उपयुक्त होगा कि हम यादृच्छिक निदर्शन की कुछ परिभाषाओं को देखें : गुडे एवं हाट ने लिखा है कि "यादृच्छिक निदर्शन में समग्र की प्रत्येक इकाई के चयन की समान संभावना रहती है।"

हार्पर ने लिखा है कि "एक यादृच्छिक निदर्शन वह निदर्शन है जिसके चयन यादृच्छिक में समग्र की प्रत्येक इकाई को सम्मिलित होने का समान अवसर प्राप्त हुआ हो।"

मिल्टन एंड पार्टन के अनुसार यादृच्छिक निदर्शन के प्रयोग में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए :

(क) समग्र की इकाइयां स्पष्ट होनी चाहिए एवं उनकी सूची तैयार की जानी चाहिए,
(ख) इकाइयों का आकार लगभग समान हो,

टिप्पणी

(ग) प्रत्येक इकाई एक–दूसरे से स्वतंत्र हो,

(घ) प्रत्येक इकाई को निदर्शन में चुनाव का समान अवसर दिया जाना चाहिए,

(ङ) निदर्शन चयन की विधि स्वतंत्र होनी चाहिए,

(च) अध्ययनकर्ता की प्रत्येक इकाई तक पहुंच सुलभ होनी चाहिए,

(छ) चुनी हुई इकाई को न तो छोड़ा जाना चाहिए और न ही उसका विकल्प प्रयुक्त करना चाहिए।

यादृच्छिक निदर्शन के अनेक प्रकार हो सकते हैं एवं उनके चुनने की प्रमुख प्रविधियां (Techniques) भी अनेक हैं उनमें से कुछ प्रमुख हैं :

(क) लॉटरी विधि (Lottery Method)]

(ख) कार्ड प्रणाली (Card Method)]

(ग) रेण्डम अंक या टिप्पेट प्रणाली (Random Number Method)]

(घ) नियमित अंकन प्रणाली (Regular Interval Method)]

(ङ) अनियमित अंकन प्रणाली (Irregular Interval Method)]

(च) ग्रिड प्रणाली (Grid Method)।

(क) लॉटरी विधि (Lottery Method): यादृच्छिक निदर्शन के चुनाव की यह विधि बहुत ही सरल है। कई अवसरों पर इसका प्रचलन जनसाधारण में भी देखने को मिलता है। इस विधि के अंतर्गत अनुसंधानकर्ता समग्र की प्रत्येक इकाई के लिए एक–एक कागज की पर्ची तैयार करता है। उस पर उस इकाई का नाम या संकेत लिख दिया जाता है। इस प्रकार बनाई गई पर्चियों के आधार पर कागज की गोलियां बना ली जाती हैं और उन्हें एक साथ ठीक से मिला दिया जाता है। ऐसा करने के बाद अनुसंधानकर्ता जिस संख्या में निदर्शन का चुनाव करना चाहता है उतनी गोलियां निकाल लेता है और उन पर जिन इकाइयों के नाम या संकेत होते हैं उन्हें निदर्शन मान लिया जाता है। इस विधि का उपयोग करने के लिए एक सावधानी यह रखनी पड़ती है कि सभी गोलियों का आकार बराबर हो।

मान लीजिए हमें 5,000 छात्रों की समष्टि में से 100 का यादृच्छिक निदर्शन लेना है। हम समष्टि के प्रत्येक सदस्य का नाम कागज की एक पर्ची पर लिख लेंगे। ये पर्चियां एक जैसी होनी चाहिए। फिर इन्हें मोड़ कर इनमें से गोलियां जैसी बना लेंगे और एक गोल बर्तन में अच्छी तरह मिला देंगे। फिर इनमें से एक निकाल कर बाकी को अच्छी तरह मिला देंगे। इस प्रकार एक–एक करके हम 100 पर्चियां निकाल लेंगे और इन पर लिखे नामों से हमारा निदर्शन बन जाएगा।

(ख) कार्ड प्रणाली (Card Method): यह प्रणाली लॉटरी प्रणाली से मिलती जुलती होती है। लॉटरी प्रणाली में कागज की पर्चियों के उपयोग के कारण उसका एक प्रमुख दोष यह है कि ये पर्चियां एक–दूसरे से चिपक सकती हैं। अतः कार्ड प्रणाली में पर्चियों की जगह कार्ड (Card) का उपयोग किया जाता है। सबसे पहले एक से आकार, रंग या बनावट के कार्डों या टिकटों पर जनसंख्या समग्र की समस्त इकाइयों

के नाम अथवा संख्या या कोई अन्य चिह्न अंकित कर दिया जाता है। सबको एकत्रित कर गोल तथा बड़े ड्रम में भर कर पचास बार घुमाया जाता है। प्रत्येक बार पचास बार घुमा कर एक कार्ड या टिकट निकाल लिया जाता है। जितनी इकाइयों का चुनाव करना होता है, उतनी बार पचास बार घुमाकर कार्ड निकाले जाते हैं। निकाले गए कार्डों वाली इकाइयों का शोधकर्ता द्वारा अध्ययन किया जाता है। इसमें (अ) शोध–कर्ता स्वयं या अन्य कोई आंखें बन्द करके तथा (ब) कोई भी आंखें खुली रखकर इकाइयों का चयन करता है। दोनों के मध्य इतना ही अंतर है।

(ग) रेण्डम अंक या टिप्पेट प्रणाली (Random Number Tippet Method): सरल यादृच्छिक निदर्शन के चयन की एक अन्य विधि को रेण्डम प्रणाली या टिप्पेट प्रणाली के नाम से जाना जाता है। इस प्रणाली को प्रो. टिप्पेट (Prof. Tippet) ने (1927) में गणितीय अंकों के आधार पर तैयार किया था। टिप्पेट की तरह ही फिशर एवं वेल्स (1936), केण्डल एवं स्मिथ (1939), रेण्ड कारपोरेशन (1955) राव–मित्रा, एवं मथाई (1966) ने भी निदर्शन सारणियां बनायी हैं लेकिन वर्तनाम समय में टिप्पेट सारणी का प्रयोग अधिक किया जाता है। टिप्पेट ने चार अंकों वाली 1040 संख्याओं की एक सूची बनायी। उन संख्याओं को यादृच्छिक निदर्शन का प्रयोग करने के लिए सुनिश्चित कर दिया गया। यह संख्या बिना किसी क्रम के कई पृष्ठों पर लिखी हुई है। शोधकर्ता आवश्यकतानुसार, जितनी इकाइयों का अध्ययन करना है उतनी इकाइयों को किसी भी पृष्ठ से लगातार लेता जाता है। उदाहरण के लिए, यदि 100 मजदूरों के समग्र से 10 मजदूरों की इकाइयों का अध्ययन करना है, तो उन 100 इकाइयों को क्रम से जमा कर टिप्पेट के क्रम से लेंगे। टिप्पेट प्रणाली में संख्याओं के चुनाव के दो प्रमुख तरीके हैं:

(i) प्रत्यक्ष चुनाव की विधि (Direct Selection Method)

(ii) अवशेष चयन की विधि (Remainder Selection Method)

(i) **प्रत्यक्ष चुनाव की विधि** : इस विधि के अंतर्गत हम किसी विशिष्ट प्रकार के तथा क्रमबद्ध संख्याओं की सारणी से संख्याओं को चुनते हैं और उन संख्याओं को स्वीकार करते हैं जो निदर्शन के आकार से अधिक नहीं होती। उदाहरण के लिए यदि हम 400 इकाइयों के समग्र से चुनाव करना चाहते हैं और हमने यह निश्चित कर रखा है कि हम संख्याओं के स्तंभों के आरंभ और अंत में दी गई संख्याओं का ऊर्ध्वरूप से तीन–तीन के समूहों में चुनाव करेंगे क्योंकि 400 में तीन अंक पाए जाते हैं। प्रायोगिक रूप से संपूर्ण स्थिति को निम्नांकित सारिणी की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है।

संख्याएं (Numbers)

42827 29280 70203 51213 78569

41519 73184 84612 26689 30877

38273 52677 33891 23027 33891

48225 48663 85998 02427 85998

56506 22635 27941 58903 56560

टिप्पणी

इस सारणी से ऊपरिलिखित क्रम में हम 443, 793, 275, 47, 783, 321, 522, 397, 733, 979 को प्राप्त करते हैं किंतु हम उन्हीं संख्याओं को निदर्शन के लिए स्वीकार करते हैं जो 400 से अधिक नहीं होती और इस दृष्टि से 275, 47, 321 तथा 397 को हम निदर्शन में सम्मिलित करते हैं और शेष सभी को छोड़ देते हैं। स्पष्ट है कि यहां पर हम आरंभिक रूप से चुनी गई 10 संख्याओं में से केवल 4 का उपयोग करने में समर्थ हुए हैं अर्थात हमारे समय, प्रयास एवं धन का पर्याप्त व्यय बेकार में ही हुआ है। इस बर्बादी पर काबू पान के लिए ही अवशेष वाले ढंग को प्रयोग में लाया जाता है।

(ii) **अवशेष चयन की विधि** : मान लीजिए कि उस समग्र में 150 इकाइयां हैं जिनसे हम अपने निदर्शन का चुनाव करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में हमें निम्न कार्य रीति का पालन करना पड़ेगा।

1. यादृच्छया हम संख्याओं को सारिणी के किसी भी स्तंभ अथवा पंक्तियों से आरंभ करें, हमें तीन अंकों वाले समूहों के रूप में संख्याओं का चुनाव करना होगा।
2. हमें यह ज्ञात करना पड़ेगा कि तीन अंकों वाली संख्याओं में 150 (समग्र में इकाइयों की संख्या) का अधिकतम गुणन क्या है? यहां स्पष्ट है कि 150 का अधिकतम गुणन 900 से कम है।
3. तीन–तीन के समूहों के रूप में चुनी गई विभिन्न संख्याओं में से हमें केवल उन्हीं को स्वीकार करना होगा जो 900 से कम हों।
4. स्वीकार की गई 150 से अधिक संख्याओं को 150 से विभाजित कर इनके अवशेष को ज्ञात करना होगा तथा इसे ही अंतिम रूप से निदर्शन में स्वीकार करना होगा।

उदाहरण के लिए, यदि उपयुक्त सारणी के आधार पर 443, 793, 275, 47, 783, 321, 522, 397, 733 तथा 979 को प्राप्त करते हैं तो हमें 979 को इसलिए छोड़ देना होगा क्योंकि यह 900 से अधिक है तथा 47 को अंतिम चुनाव के लिए स्वीकार कर लेना होगा। अन्य सभी अर्थात 443, 793, 275, 783, 321, 522, 397 तथा 733 को 150 से विभाजित कर अवशेष ज्ञात करने होंगे जो क्रमशः 143, 193, 125, 183, 21, 72, 97 तथा 133 होंगे। ये संख्याएं अंतिम रूप से निदर्शन में सम्मिलित की जाएंगी। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि जहां भी संख्याओं का प्रयोग किया जाए वहां स्रोत का नाम, पृष्ठ संख्या, स्तंभ, संख्या, पंक्ति संख्या और आरंभिक संख्या का अवश्य उल्लेख किया जाए।

(घ) नियमित अंकन प्रणाली : नियमित अंकन प्रणाली सरल यादृच्छिक निदर्शन की एक महत्वपूर्ण विधि मानी जाए या नहीं इस संबंध में दो विपरीत धारणाएं हैं किंतु इस विवाद की चर्चा करने से पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि नियमित अंकन प्रणाली क्या है? इस पद्धति के द्वारा अनुसंधानकर्ता जब निदर्शन का चुनाव करता है तब सबसे पहले वह वर्गान्तर की गणना करता है। इसके लिए निम्न सूत्र को काम में लिया जाता है –

$$\text{वर्गांतर} = \frac{\text{निदर्शन का आकार}}{\text{समग्र का आकार}}$$

टिप्पणी

इस प्रकार वर्गान्तर की गणना करने के पश्चात आरंभिक बिंदु का चुनाव किया जाता है और उसके लिए अनुसंधानकर्ता पहली संख्या तथा वर्गान्तर के बीच की किसी एक संख्या का चुनाव लॉटरी या रेण्डम अंक विधि से करता है। इस आरंभिक संख्या का चयन करने के बाद वह उसमें वर्गान्तर जोड़ता है। जो संख्या प्राप्त होती है उसमें पुनः वर्गान्तर जोड़ा जाता है और इसी प्रक्रिया को समग्र की अंतिम संख्या तक जारी रखा जाता है। इस प्रकार जो विभिन्न संख्यायें प्राप्त होती हैं उन पर समग्र की सूची में जिन इकाइयों के नाम होते हैं उन्हें निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाता है। एक उदाहरण से इस विधि को स्पष्ट किया जा सकता है। यदि हमें 10,000 के समग्र में से 500 व्यक्तियों का चयन इस विधि से करना है तो हम सर्वप्रथम इन 10,000 व्यक्तियों की सूची तैयार करेंगे। इसके बाद वर्गान्तर की गणना करेंगे जो कि इस उदाहरण के संदर्भ में 20 हैं। इस वर्गान्तर की गणना के बाद पहली संख्या व 20 के बीच किसी एक संख्या का चुनाव लॉटरी द्वारा करेंगे। उदाहरण के लिए हम यह मान लेते हैं कि वह संख्या 4 है। इस संख्या (4) को आरंभिक बिंदु कहा जाएगा। इसमें वर्गान्तर जोड़ने पर 24 की संख्या बनती है और इस प्रकार 4, 24, 44, 64, 84.... की संख्या हमें प्राप्त होती है। समग्र की सूची में इन अंकों पर जिन व्यक्तियों के नाम होंगे उन्हें निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाएगा।

(ङ) अनियमित अंकन प्रणाली : इसमें भी समग्र या जनसंख्या की समस्त इकाइयों की एक सूची बनायी जाती है। उस सूची में प्रथम और अंतिम अंक को छोड़कर शेष इकाइयों की क्रमसंख्या पर शोधकर्ता निशान लगाता चलता है। ये निशान उतनी ही इकाइयों पर लगाए जाते हैं, इस कारण इसमें पक्षपात का समावेश हो जाता है।

(च) ग्रिड प्रणाली : यह क्षेत्र या भौगोलिक आधार पर निदर्शन निर्माण की प्रणाली है। इसमें किसी विशाल भौगोलिक क्षेत्र का जहां से निदर्शन लेना है, नक्शा या मानचित्र लिया जाता है। उस मानचित्र पर सेल्यूलायड की पारदर्शक ग्रिड प्लेट रख दी जाती है। इस प्लेट में वर्गाकार चौकोर खाने कटे हुए तथा उन पर नम्बर लिखे हुए होते हैं। यह पहले ही निश्चित कर लिया जाता है कि किस आधार पर किन–किन अंकों वाली इकाइयों को अध्ययन का विषय बनाया गया है। इन अंकों का निर्णय आकस्मिक ढंग से किया जाता है। मानचित्र के जिन हिस्सों पर निर्धारित नंबरों के वर्गाकार खाने आते हैं, उनको चिह्नित कर अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है। इसे क्षेत्र निदर्शन भी कहते हैं किंतु वह थोड़ा–सा भिन्न प्रकृति का होता है।

• यादृच्छिक निदर्शन के लाभ

इसके निम्नलिखित लाभ हैं :

1. यादृच्छिक निदर्शन का प्रयोग किए जाने की स्थिति में समग्र की विशेषताओं अथवा इसके आवंटन का पूर्व ज्ञान आवश्यक नहीं है।

टिप्पणी

2. अनुसंधानकर्ता अपने परिणामों की यथार्थता का मूल्यांकन सरलतापूर्वक कर सकता है क्योंकि निदर्शन त्रुटियां संयोग के नियमों का पालन करती हैं।
3. यादृच्छिक निदर्शन की इकाइयां एक समग्र की परिवर्तनशीलता को अधिक अच्छे ढंग से स्पष्ट कर सकती हैं अपेक्षाकृत उस स्थिति को जिसमें समान संख्या में इकाइयों का चुनाव स्वेच्छापूर्वक किया गया हो।
4. जैसे–जैसे यादृच्छिक निदर्शन का आकार बढ़ाया जाता है वैसे–वैसे निदर्शन की प्रतिनिधित्वपूर्णता भी बढ़ती जाती है, तथा उस सीमा का निर्धारण संभाविता के नियमों के आधार पर किया जा सकता है जिस सीमा तक इसके ऊपर समग्र के प्रतिनिधि के रूप में विश्वास कर सकते हैं।

- **इससे कुछ प्रमुख हानियां निम्नलिखित हैं :**

1. पहले से ही समग्र के सूचीबद्ध रूप में उपलब्ध होने की आवश्यकता के कारण यादृच्छिक निदर्शन का प्रयोग करने के मार्ग में आने वाली कठिनाई।
2. निदर्शन के चुनाव के पूर्व प्रत्येक इकाई के लिए संख्याओं के निर्धारण कार्य में होने वाले समय, प्रयासों एवं धन का अतिरिक्त व्यय।
3. असंतोषजनक अथवा भ्रामक निदर्शन प्राप्त होने की संभावना। स्टीफन ने ठीक ही लिखा है–"यादृच्छिक निदर्शन में असंतोषपूर्ण चुनाव के शिकार को यह आश्वासन दिलाने में कि लंबी अवधि के दौरान चुनाव का यादृच्छिक तरीका एक दिशा में उतनी ही त्रुटियां प्रदान करेगा जितनी कि दूसरी दिशा में, बहुत कम सहायता एवं सुविधा प्रदान करता है।"
4. समान सांख्यिकीय विश्वसनीयता की प्राप्ति के लिए आवश्यक निदर्शन का आकार प्रायः स्तरीकृत निदर्शन की तुलना में, यादृच्छिक निदर्शन में अधिक होता है।
5. क्षेत्र अध्ययनों के अंतर्गत चुनी गई इकाइयों के विस्तृत क्षेत्र में फैले होने के कारण समय, प्रयास एवं धन का व्यय अधिक होता है।

2. स्तरीकृत निदर्शन (Stratified Sampling)–स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन वस्तुतः यादृच्छिक निदर्शन पद्धति का ही विकसित रूप है। स्तरीकृत निदर्शन के अंतर्गत सरल यादृच्छिक निदर्शन पद्धति के द्वारा ही निदर्शन का चयन किया जाता है। अनेक बार सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य विभिन्न वर्गों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना होता है अथवा ऐसी स्थिति में जबकि अध्ययनकर्ता अध्ययन से पूर्व यह तय कर लेता है कि निदर्शन में समग्र में पाए जाने वाले समस्त वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व हो तब स्तरीकृत निदर्शन का उपयोग किया जाता है। ये दोनों ही उद्देश्य सरल यादृच्छिक निदर्शन के द्वारा ही पूरे किए जा सकते हैं, और किए जाते भी हैं किंतु उसके प्रतिनिधि होने का पता तभी लग जाता है जब विभिन्न वर्गों में से कोई एक वर्ग अपेक्षाकृत बहुत छोटा हो तो सरल यादृच्छिक निदर्शन के द्वारा लिए गए निदर्शन में उस वर्ग का उतना प्रतिनिधित्व

टिप्पणी

नहीं हो पाता कि उसका दूसरे वर्गों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। ऐसी स्थिति में भी स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन एक उपयोगी पद्धति सिद्ध होती है। स्तरीकृत निदर्शन में हम सबसे पहले समग्र को विभिन्न स्तरों में बांट लेते हैं और फिर प्रत्येक स्तर में से स्वतंत्र निदर्शन ले लेते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि परिभाषा इस प्रकार दी जाए कि प्रत्येक तत्व (सदस्य) एक, ओर केवल एक ही स्तर में आये फिर प्रत्येक स्तर में से यादृच्छिक निदर्शन लिया जाए। स्वीकृत निदर्शन का यह सबसे सरल और सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाला ढंग है। यह हो सकता है कि सब स्तरों में से एक ही अनुपात में निदर्शन का अनुपात बराबर नहीं है।

स्तरीकृत निदर्शन को निम्नलिखित सारणी की सहायता के सोदाहरण समझाया जा सकता है।

एक विश्वविद्यालय के विभिन्न संकायों के स्तरीकृत निदर्शन

विवरण	स्तर संख्या तथा नाम			
	कला संकाय	विधि संकाय	वाणिज्य विज्ञान	विज्ञान
	1	2	3	4
प्रत्येक स्तर में इकाइयों की संख्या	8000	6000	4000	2000
विभिन्न संकायों में इकाइयों का का अनुपात निदर्शन के विभिन्न स्तरों में उन विद्यार्थियों का	.4	.3	.2	.1
अनुपात जो प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हैं प्रत्येक स्तर के	.35	.3	.15	.2
निदर्शन अनुपात की अनुमानित मानक त्रुटि	.02	.02	.03	.03

इस प्रकार स्तरीकृत निदर्शन के दो बड़े प्रकार किए जा सकते हैं :

(क) समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन : समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन में प्रत्येक निदर्शन की इकाइयां उसी अनुपात में ली जाती हैं जिस अनुपात में वे समग्र के अंतर्गत होती हैं, यदि विभिन्न स्तरों में भिन्न–भिन्न संख्या में इकाइयां पाई जाती हैं तो प्रत्येक स्तर के लिए समानुपातिकता बनाए रखना जरूरी है। प्रत्येक स्तर में से इकाइयों को एक स्थिर अनुपात में चुनते हैं एवं समानुपातिक निदर्शन अनुसंधानकर्ता को इस विषय में निश्चित होने की सामर्थ्य प्रदान करता है कि वह प्रत्येक स्तर से सही अनुपात में इकाइयों का चुनाव कर रहा है।

समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन के विषय में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं :

1. समानुपातिक निदर्शन सूक्ष्मता की सीमा को बढ़ा देता है क्योंकि प्रत्येक स्तर के निदर्शन के अंतर्गत समानुपातिक प्रतिनिधित्व होता है।

टिप्पणी

2. इसका प्रयोग करने पर गैर समानुपातिक निदर्शन की तुलना में प्रायः अधिक बचत होती है।
3. इसका प्रयोग अपेक्षतया सरल है और इसलिए प्रायः प्रयोग में लाया जाना संभव होता है।
4. इकाइयों के चुनाव की तुलना में गुच्छों का निदर्शन की इकाइयों के रूप में चुनाव अधिक लाभदायक होता है।
5. स्तरीकरण के लिए उपयुक्त चरों के निर्धारण एवं चनाव पर अधिक समय को व्यय नहीं किया जाता।
6. स्तरों की संख्या जितनी अधिक होती है, त्रुटि की संभावना उतनी ही कम होती है।

उदाहरण के लिए यदि, हम यह मान लें कि किसी समग्र में कुल एक हजार व्यक्ति हैं। इसमें से 600 हिंदू, 300 मुसलमान और 100 ईसाई हैं। अब यदि हमें 100 व्यक्तियों का निदर्शन चुनना है तो उसमें यादृच्छिक निदर्शन से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि इसमें 60 हिंदू, 30 मुसलमान एवं 10 ईसाइयों का चयन होगा। अतः यदि हम यह चाहते हैं कि विभिन्न धर्मों के लोग अपने ठीक अनुपात में निदर्शन में आयें तो हमें प्रत्येक स्तर का दसवां भाग (1/10) ले लेना चाहिए, दूसरे शब्दों में हमें हिंदुओं में से 6 मुसलमानों में से 3 एवं ईसाइयों में से 1 का प्रतिचयन कर लेना चाहिए। इसे ही समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन कहा जाता है। कभी–कभी यह ठीक समझ में नहीं आता कि स्तरीकरण किस आधार पर करना चाहिए। जैसे सरकारी कर्मचारियों के स्तर कई आधारों पर बनाए जा सकते हैं–पद, वरीयता, आयु, धर्म आदि। इसमें वही आधार लिया जा सकता है जो कि समष्टि सूची में स्पष्ट हो। जैसे यदि हमें लोगों की जाति मालूम न हो तो हम इस आधार पर स्तरीकरण नहीं कर सकते। स्तरीकरण का आधार यथासंभव अध्ययन के विषय से संबंधित होता है। यदि हमें ऐसा प्रतीत हो कि कर्मचारियों का मनोबल उनके वर्ग (या पद) से संबंधित है तब हम इस आधार पर स्तरीकरण करते हैं। यदि हम यह सोचते हैं कि मनोबल आयु से संबंधित है (जैसे यदि बड़ी आयु के लोगों का मनोबल छोटी आयु के लोगों की अपेक्षा कम या अधिक होने की संभावना है) तो हम आयु के आधार पर स्तरीकरण करेंगे। ऐसे में हम यह कर सकते हैं कि कर्मचारियों को दो स्तरो में बांट लें–20 वर्ष से 40 वर्ष की आयु वाले और 40 से 60 वर्ष की आयु वाले और फिर उनके अनुपात के अनुसार निदर्शन ले लें।

(ख) असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन : कभी–कभी असमानुपातिक परिकल्पना या उपकल्पना या प्राक्कल्पना स्तरीकृत निदर्शन का चयन करना पड़ता है। जहोदा के अनुसार असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन के कई कारण हो सकते हैं। कई परिस्थितियों में जिन स्तरों में कम संख्या होती है, उनसे अधिक इकाइयों का चुनाव किया जाता है जिससे विभिन्न स्तरों में तुलना संभव हो सके। कभी–कभी एक स्तर में किसी विशेषता के आधार पर अधिक विभिन्नताएं पाई जाती हैं और दूसरे स्तर में अधिक समानता होती

टिप्पणी

है। ऐसी स्थिति में पहले स्तर में से अधिक इकाइयों की आवश्यकता होगी और दूसरे स्तर में तुलनात्मक रूप में कई इकाइयों का चयन करना पड़ेगा। यदि अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि स्त्रियों की तुलना में पुरुषों के विचारों और मनोवृत्तियों में अधिक विभिन्नता है तो निदर्शन में पुरुषों की संख्या अधिक होनी चाहिए जिससे कि इन विभिन्नताओं का अध्ययन किया जा सके। इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं। कभी–कभी एक स्तर में से अधिक इकाइयों का चुनाव किया जाता है। क्योंकि उस स्तर को उपभागों में विभाजित करना होता है और इस हेतु विभिन्न उपभागों की तुलना करनी होगी क्योंकि इकाइयों की संख्या सीमित होगी। जहोदा के अनुसार विभिन्न स्तरों में से इकाइयों का चुनाव अध्ययन के उद्देश्य के अनुसार करना चाहिए। इस प्रकार असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन के अंतर्गत प्रायः प्रत्येक स्तर पर समान संख्या में इकाइयों को चुना जाता है तथा इस बात की चिंता नहीं की जाती कि विभिन्न स्तर समग्र का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। प्रत्येक स्तर से चुनी गई इकाइयों की संख्या योजना में पूर्व–निश्चित इकाइयों की संख्या के समान रखी जाती है।

इस प्रकार के निदर्शन को कभी–कभी नियंत्रित निदर्शन भी कहा जाता है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

(क) निदर्शन के आकार की दृष्टि से सभी समान रूप से विश्वसनीय होते हैं। प्रत्येक स्तर में समान संख्या में इकाइयों का चुनाव किए जाने के कारण विभिन्न स्तरों की तुलना संभव हो जाती है।

(ख) निदर्शन के इस प्रकार से बचत बहुत अधिक होती है क्योंकि इसके उत्तरदाता एक दूसरे से भौगोलिक सामीप्य की स्थिति में होते हैं। असमानुपातिक निदर्शन उस स्थिति में काम में लिया जाता है जब उपसमग्रों का निर्माण करने पर अनुसंधानकर्ता को यह लगे कि किसी एक उपसमग्र का आकार दूसरे उपसमग्रों की तुलना में बहुत छोटा है। इस स्थिति में यदि समानुपातिक निदर्शन का चुनाव किया जाएगा तो उस छोटे उपसमग्र में से जो निदर्शन आयेगा वह नगण्य होगा तथा तुलना के लिए सही आधार प्रस्तुत नहीं कर पाएगा। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्ता उस छोटे उपसमग्र में से अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में इकाइयों का चयन करता है और बड़े उपसमग्र का अनुपात थोड़ा–सा कम कर देता है। इस कारण इसे असमानुपातिक की संख्या दी जाती है। ऐसा करना वस्तुतः विशेष परिस्थितियों में आवश्यक हो जाता है, क्योंकि इसके बिना सही रूप से तुलना नहीं की जा सकती।

इस संपूर्ण प्रक्रिया को एक उदाहरण के रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। किसी एक सामाजिक अनुसंधान में अनुसंधानकर्ता को विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का अध्ययन करना है जिनकी कुल संख्या 10,000 है। अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन में मुख्य रूप में प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी तथा तृतीय श्रेणी प्राप्त विद्यार्थियों की परस्पर तुलना करना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह निदर्शन के चयन में स्तरीकृत

टिप्पणी

पद्धति को काम में लेना चाहता है। इसके लिए करना यह होगा कि वह सबसे पहले उन 10,000 में से प्रत्येक विद्यार्थी की श्रेणी ज्ञात करे और इस एक समग्र को तीन समग्रों में विभाजित करे। यदि प्रथम श्रेणी में 200 विद्यार्थी हैं, द्वितीय श्रेणी में 5,000 विद्यार्थी हैं तथा तृतीय श्रेणी में 4,800 विद्यार्थी हैं और अनुसंधानकर्ता को कुल मिलाकर 500 विद्यार्थियों का निदर्शन लेना है तो वह समानुपातिक निदर्शन के अनुसार प्रथम श्रेणी के दस, द्वितीय श्रेणी के 250 तथा तृतीय श्रेणी के 240 विद्यार्थियों का चयन करेगा। ऐसा करने में मुख्य कठिनाई यह है कि जहां द्वितीय व तृतीय श्रेणी में विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक है वहां प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों की संख्या निदर्शन के दृष्टिकोण से बहुत ही कम है। ऐसी स्थिति में कोई अर्थपूर्ण तुलना नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्ता के लिए उपयुक्त यह होगा कि वह असमानुपातिक निदर्शन के नियम को काम में ले अर्थात वह प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों का, प्राप्त अनुपात से अधिक संख्या में चयन करे और द्वितीय व तृतीय श्रेणी के विद्यार्थियों के चयन की संख्या को क्रमशः कम कर ले। इस प्रकार स्तरीकृत निदर्शन ही सामाजिक अनुसंधान में निदर्शन के चयन की अत्यन्त उपयुक्त पद्धति है लेकिन समान्यतः समग्र को स्तरों में स्तरीकृत करने के लिए चरों का चुनाव करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखा जाता है :

1. उपलब्ध सूचना की प्रकृति : यह आवश्यक है कि स्तरों के विषय में सूचना उपयुक्त, उचित, पूर्ण एवं संपूर्ण जनसंख्या पर लागू होने योग्य तथा अनुसंधानकर्ता को सरलतापूर्वक प्राप्त होने योग्य होनी चाहिए। अनेक चरों के साथ, नियंत्रक के रूप में प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि चरों की संख्या जितनी अधिक होती है स्तरीकरण में उतनी ही कठिनाई होती है।
2. संपूर्ण निदर्शन में स्तरों का आकार : सभी स्तरों का आकार इतना बड़ा होना चाहिए कि क्षेत्र में जाकर इसे तथा इसकी निर्माणकारी इकाइयों का पता सरलतापूर्वक लगाया जा सके।
3. स्तरों की आन्तरिक समता : समग्र की प्रत्येक निदर्शन इकाई को, निर्मित किए गए स्तरों में से एक और केवल एक में ही निदर्शन के चुनाव के पूर्व रखा जाता है ताकि सभी स्तरों में पाई जाने वाली इकाइयों का योग समग्र की इकाइयों के समान हो। एक विशिष्ट स्तर में निर्धारित की गई इकाइयो में से ही इस स्तरविशेष के लिए एक निदर्शन का चुनाव किया जाता है तथा प्रत्येक निदर्शन के आगणनों को अलग–अलग निकाला जाता है। प्रत्येक स्तर के लिए अलग–अलग निकाले गए इन आगणनों को सामूहिक रूप से एकत्रित करते हुए संपूर्ण समग्र के लिए आगणनों को निकाला जाता है।

• स्तरीकृत निदर्शन के प्रमुख लाभ

स्तरीकृत निदर्शन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

1. समग्र को पहले स्तरीकृत करने के बाद ही उनके प्रत्येक स्तर से स्तरीकृत निदर्श निकाला जाता है इसलिए समग्र के किसी भी महत्वपूर्ण समूह के, पूर्णरूपेण बाहर रह जाने की संभावना कम हो जाती है।

टिप्पणी

2. अधिक समरूपता वाले समग्र से केवल कुछ इकाइयों को ही निदर्श में सम्मिलित करने पर अधिक सूक्ष्म परिणामों की प्राप्ति की जा सकती है, जिसके परिणामस्वरूप आंकड़ों के संग्रह एवं संसाधन पर लगने वाली लागत कम हो जाती है।
3. यदि स्तरों का निर्माण करने तथा प्रत्येक स्तर के निदर्श का निर्धारण करने के पश्चात साक्षात्कारकर्ताओं से इकाइयों को चुनने को कहा जाए तो वे अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों को चुन सकते हैं, अपेक्षाकृत उस स्थिति के जिसमें उनसे पूर्णरूपेण अपना निर्णय लेते हुए इकाइयों के चुनाव करने को कहा जाए। इसका कारण यह है कि जब साक्षात्कारकर्ता के चुनाव की सीमा कुछ ऐसे समूहों तक सीमित हो जाती है जिनमें विषमता कम होती है तो उनके द्वारा किया चुनाव स्वतः अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण होता है।
4. ऐसे निदर्श जो स्वतः चुने गए होते हैं जैसे कि डाक प्रश्नावली से प्राप्त होने वाले प्रतिदान, वे कम पूर्वग्रहपूर्ण होते हैं किंतु स्तरीकरण का आश्रय लेते हुए निदर्श का चुनाव करने पर पूर्वग्रह कम होता है। इस संबंध में स्टीफन के विचार उल्लेखनीय हैं : "इस बात का प्रावधान करने पर कि निदर्शन का एक निश्चित अनुपात प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र अथवा आय समूह से होगा, स्तरीकरण स्वतः, निदर्शन द्वारा खोये गए व्यक्तियों को उसी स्तर के व्यक्तियों द्वारा पुनर्स्थापित कर देता है और इस प्रकार आंशिक रूप से वह पूर्वग्रह कम हो जाता है जो उस समय उत्पन्न हो सकता है जब व्यक्तियों का पुनर्स्थापन संभव न हो। न्यून प्रतिपादन की दर वाले स्तरों में व्यक्तियों को डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावली की संख्या को न्यूनदरों की क्षतिपूर्ति करने के लिए बढ़ाया जा सकता है ताकि प्रत्येक स्तर से प्राप्त किए गए प्रयोग प्रतिदानों की संख्या स्तर के आकार के समानुपाती हो सके। स्तरीकरण की व्यवस्था के अंतर्गत एक ऐसे वर्गीकरण का समावेश संभव हो सकता है जो अधिक क्षति के दरों वाले व्यक्तियों को कम क्षति की दरों वाले व्यक्तियों से प्रभावपूर्ण ढंग से अलग कर सकता है, जिसमें क्षति के कारण पूर्वाग्रह के एक बड़े हिस्से को नियंत्रित किया जा सकता है।"
5. यादृच्छिक निदर्शनों की तुलना में स्तरीकृत निदर्श भौगोलिक दृष्टिकोण से अधिक सीमित क्षेत्र में केंद्रित किए जा सकते हैं और इसके परिणामस्वरूप समग्र, प्रयास एवं धन के व्यय में पर्याप्त बचत संभव हो सकती है।

क्राक्सटन तथा काउडेनेनेन ने इस प्रणाली को, अन्य प्रणालियों की तुलना में अधिक उपयुक्त बताया है। विभिन्न वर्गों का विभाजन यदि सतर्कता से किया गया है तो थोड़ी इकाइयों का चयन करने पर भी संपूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व हो जाता है। जबकि यादृच्छिक निदर्शन में प्रतिनिधित्व का गुण तभी आ सकेगा जब इकाइयों की संख्या पर्याप्त हो। क्षेत्रीय दृष्टि से वर्गीकरण करने पर इकाइयों से संपर्क आसानी से स्थापित किया जा सकता है। इससे धन व समय की भी बचत होती है।

टिप्पणी

स्तरीकृत निदर्शन की प्रमुख हानियां

स्तरीकृत निदर्शन की प्रमुख हानियां निम्नलिखित हैं :

1. स्तरीकरण के लिए महत्वपूर्ण चरों का प्रयोग किए जाने के लिए यह आवश्यक है कि निदर्शन का कार्य आरंभ करने के पूर्व ही अनुसंधानकर्ता को अपने समग्र से संबंधित विभिन्न चरों एवं इनके सापेक्षिक महत्व की पर्याप्त जानकारी हो।
2. यदि स्तरीकरण के दौरान, विभिन्न स्तरों के लिए निदर्शों का निर्धारित किया गया आकार समानुपातिक नहीं होता है तो भारण की समस्या हमारे सामने आती है जिसके अंतर्गत हम विभिन्न स्तरों से प्राप्त किए गए परिणामों को इन स्तरों से निदर्श में सम्मिलित की गई इकाइयों की संख्या के अनुसार भार निर्धारित करते हैं। भारण के लिए समग्र के प्रत्येक स्तर में सापेक्ष बारम्बारता का ज्ञान आवश्यक होता है। भारण के दौरान कुछ विशेष प्रकार की समस्याएं हमारे सामने आती हैं। जैसे कि पहले भार प्रदान किए बिना विभिन्न स्तरों से आंकड़ों का एकत्रित किया जाना तथा इन आंकड़ों के आधार पर आगणनों का निकाला जाना, भारित तथा गैर–भारित आंकड़ों को अलग–अलग रखा जाना, आवश्यकतानुसार भारों में अतिरिक्त सूचना के समावेश का परिवर्तन किया जाना, इनमें अथवा दो खानों में दी गई सूचना को एक साथ प्रदर्शित करना।
3. विशेष विवरणों की दृष्टि से उपयुक्त इकाइयों का पता लगाने में क्षेत्रीय कार्य के दौरान पर्याप्त कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। जब तक इकाइयों का चुनाव यादृच्छिक रूप से अथवा प्रत्येक इकाई की सूची रखने वाले संपूर्ण समग्र से न किया जाए तब तक निदर्श में सम्मिलित की गई इकाइयों का पता लगाने में पर्याप्त समय लगता है जिसके परिणामस्वरूप अनुसंधान कार्य पर लगने वाली लागत भी बढ़ जाती हैं।
4. प्रत्येक स्तर से सरल यादृच्छिक निदर्शन की आवश्यकता के कारण प्रायोगिक कठिनाइयां बढ़ जाती हैं।
5. यदि समानुपातों की गणना करनी हो तो वे स्तरीकृत निदर्शन की सहायता से प्राप्त होते हैं।
6. प्रत्येक स्तर से आगणन किए जाने के परिणामस्वरूप क्रमबद्ध त्रुटि की संभावना बढ़ जाती है।
7. अध्ययन किए जाने वाले सभी चरों के संबंध में उपयुक्त परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते।

3. उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)–जब अनुसंधानकर्ता किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखकर जान–बूझकर समग्र में कुछ इकाइयों का चुनाव करता है तो उसे उद्देश्यपूर्ण या सविचार निदर्शन कहते हैं। इस प्रकार के निदर्शन के

चुनाव का मुख्य आधार यही है कि इसमें अनुसंधानकर्ता समग्र (Universe) की इकाइयों के लक्षणों से पूर्वपरिचित होकर विस्तारपूर्वक निदर्शनों का चुनाव करता है। चुनाव का आधार अध्ययन का उद्देश्य होता है और उद्देश्यों को सामने रखते हुए उसी के अनुरूप अनुसंधानकर्ता संपूर्ण क्षेत्र से सर्वाधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का चुनाव करता है। इस प्रकार अध्ययन के उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर हुए उद्देश्य की पूर्ति के उपयुक्त निदर्शनों का विचारपूर्वक चुनाव करने के कारण ही इसे उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन कहते हैं।

श्री एडोल्फ जेन्सन (Adolph Jenson) ने लिखा है, "सविचार निदर्शन से अर्थ है इकाइयों के समूहों की एक संख्या को इस प्रकार चुनना कि चुने हुए समूह मिलकर उन विशेषताओं के संबंध में यथासंभव वही औसत अथवा अनुपात प्रदान करें जो कि समग्र में हैं और जिनकी सांख्यिकीय जानकारी पहले से ही है।"

- **उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के लक्षण**

1. अनुसंधानकर्ता समग्र (Universe) की समस्त इकाइयों की विशेषता से परिचित हो ताकि उसे पहले से ही यह ज्ञान हो कि किन इकाईयों के क्या गुण हैं और उसी आधार पर किन इकाइयों को चुनने से अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति सरल हो सकेगी।
2. सविचार निदर्शन में निदर्शनों का चुनाव किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर ही किया जाता है। बहुधा सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस प्रकार के निदर्शन का लक्ष्य होता है।
3. इस प्रणाली में, अनुसंधानकर्ता द्वारा अपनी इच्छानुकूल निदर्शनों का चुनाव किया जाता है, इसलिए पक्षपात की संभावना भी अधिक होती है।

- **उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुण**

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के निम्नलिखित गुण हैं–

(क) उक्त विधि कम खर्चीली है क्योंकि इसमें निदर्शन का आकार बहुत बड़ा नहीं होता है। यदि निदर्शनों का चुनाव पक्षपात रहित होकर किया जाए तो अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन भी प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सकता है।

(ख) यह प्रणाली उन अनुसंधानों में अत्यन्त उपयोगी होती है जिनमें समग्र की कुछ इकाइयां विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती हैं और इसीलिए उनका चुना जाना आवश्यक होता है। इस आवश्यकता की पूर्ति यादृच्छिक निदर्शन से नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, यदि रुहेलखंड डिविजन की शिक्षा संस्थाओं का अध्ययन करना है तो बरेली कॉलेज को निदर्शन में सम्मिलित करना आवश्यक है। पर यदि हम यादृच्छिक निदर्शन–प्रणाली को अपना रहे हैं तो निदर्शन के चुनाव में बरेली कॉलेज का नाम आ भी सकता है और छुट भी सकता है। ऐसी दशा में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली ही उपयोगी सिद्ध होती है।

टिप्पणी

• उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के दोष

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुणों की अपेक्षा दोषों की ओर ही विद्वानों ने हमारा ध्यान अधिक आकर्षित किया है। श्री पार्टन (Parten) ने लिखा है, "एक वर्ग के रूप में सांख्यिकीशास्त्रियों को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के पक्ष में कुछ भी कहना नहीं है।"

प्रो. नेमैन (Neyman) ने इसको 'निरर्थक' बताया है। प्रो. सेंडेकोर (Sendecor) ने इसके निम्नलिखित तीन दोषों का उल्लेख किया है :

(अ) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में यह आवश्यक है कि अनुसंधानकर्ता को पहले से ही समग्र (Universe) का पूर्ण ज्ञान हो ताकि वह समझ सके कि किन इकाइयों को चुनने से अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति संभव होगी, पर कठिनाई यह है कि पहले से ही इस प्रकार का पूर्ण ज्ञान संभव नहीं होता।

(ब) इसमें अनुसंधानकर्ता किसी भी इकाई को निदर्शन के रूप में चुनने के लिए स्वतंत्र होता है और इस संबंध में उस पर कोई नियंत्रण न होने के कारण पक्षपात तथा पूर्वग्रह (Bias) के प्रवेश की पूर्ण संभावना है।

(स) निदर्शन संबंधी अशुद्धता का अनुमान जिन मान्यताओं पर किया जाता है उनमें से एक भी उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में नहीं पाई जाती।

4. बहुस्तरीय निदर्शन (Multistage Sampling)–किसी भी अनुसंधान में जब अनुसंधानकर्ता अध्ययन के लिए सरल यादृच्छिक निदर्शन या स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन विधि का उपयोग करता है तब उसके सामने निम्नलिखित कठिनाइयां मुख्य तौर पर आती हैं :

(क) सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि उसके पास समग्र की पूरी सूची पहले से ही मौजूद हो। स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन में तो यह भी जरूरी होता है कि जिस लक्षण के आधार पर हम समग्र का विभाजन कर रहे हैं समग्र की सभी इकाइयों के बारे में उस लक्षण से संबंधित जानकारी पहले से ही हमारे पास हो अन्यथा उनका विभाजन व समूहों में वर्गीकरण नहीं किया जा सकेगा। सामाजिक अनुसन्धान में कभी–कभी ऐसे भी अवसर आते हैं जब जिन इकाइयों के बारे में हम अध्ययन करना चाहते हैं उनसे संबंधित समग्र की पूरी सूची उपलब्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में यदि हम पहले समग्र की सूची का निर्माण न करें और उसके लिए संगणना का कार्य, जो कि अपने आप में बहुत अधिक समय लेने वाला होता है, न करें तब इन दोनों में से किसी भी पद्धति का उपयोग नहीं किया जा सकता। सूची निर्माण का कार्य तब और अधिक कठिन हो जाता है जब हमारा अध्ययनक्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो। इसे एक सरल उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। यदि अनुसंधानकर्ता घर में काम करने वाली नौकरानियों के बारे में कोई अध्ययन करना चाहे और उसके लिए सरल यादृच्छिक निदर्शन या स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन लेना चाहे तो उसके लिए यह जरूरी होगा कि ऐसी नौकरानियों की एक सूची उसके पास हो। ऐसी सूची

टिप्पणी

सामान्यतया उपलब्ध नहीं होती। ऐसे में अनुसंधानकर्ता के सामने एक ही विकल्प रहेगा कि प्रत्येक घर में जाकर यह पता लगाए कि उनके यहां कौन नौकरानी काम करती है और इस प्रकार नौकरानियों के समग्र की पूरी सूची तैयार करे। निश्चित रूप से यह कार्य अधिक समय लेगा जो कि अनुसंधानकर्ता के पास नहीं होता है।

(ख) जब कभी अनुसंधानकर्ता सरल यादृच्छिक निदर्शन या स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन का उपयोग करता है तो उसके सम्मुख एक कठिनाई यह आती है कि यदि अध्ययन क्षेत्र अधिक बड़ा हो तो चुनी गई इकाइयों की भौतिक दूरी अधिक होती है। ऐसी स्थिति में किसी एक इकाई के न मिलने पर या उससे कार्य पूरा करने के बाद दूसरी इकाई से संपर्क स्थापित करने के लिए या तो अनुसंधानकर्ता के पास यातायात के द्रुतगामी साधन सुलभ होंगे अथवा उसे काफी समय इधर से उधर जाने में व्यय करना पड़ेगा। ऐसी सुविधा प्रायः सामान्य अनुसंधानकर्ता के पास नहीं होती है। इसी कारण वह ऐसा प्रयास करता है कि अध्ययन के लिए चुनी गई इकाइयों को एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित रखा जाए। इन दोनों ही स्थितियों में बहुस्तरीय निदर्शन एक उपयुक्त विकल्प है।

बहुस्तरीय निदर्शन में अनुसंधानकर्ता सबसे पहले अध्ययन क्षेत्र को भौगोलिक आधार पर छोटे–छोटे क्षेत्रों में विभाजित करता है। ये क्षेत्र कितने होंगे तथा इनका आधार क्या होगा, यह अध्ययन क्षेत्र के विस्तार और स्वरूप पर निर्भर करता है। यदि अनुसंधानकर्ता को उदयपुर क्षेत्र में इस प्रकार के निदर्शन का चयन करना है तो वह उदयपुर शहर को नगरपालिका के उनतालीस वार्डों में विभाजित कर सकता है। इसी प्रकार विभाजन का कोई दूसरा आधार भी लिया जा सकता है। अध्ययनक्षेत्र को छोटे–छोटे भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित करने के बाद अनुसंधानकर्ता उनमें से कुछ वार्डों का चयन रैण्डम विधि जैसे लॉटरी या दूसरी विधि के द्वारा करता है, जैसे यदि उसने अध्ययन क्षेत्र को 39 भागों में विभाजित किया है तो वह पहले 1 से 39 तक लॉटरी डाल देगा उसमें से 3–4 या जिस भी संख्या में वह चाहे क्षेत्रों का चयन अपने अध्ययन के लिए कर लेगा। उदाहरण के तौर पर लॉटरी निकालने पर 2, 7, 26 या 37 कार्ड निकले। उस स्थिति में अनुसंधानकर्ता निदर्शन का चुनाव पूरे शहर की इकाइयों में से नहीं करेगा वरन उसे उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रखेगा। उन क्षेत्रों का चयन करने के बाद अनुसंधानकर्ता इन क्षेत्रों की इकाइयों की सूची प्राप्त करेगा। यदि उपलब्ध नहीं है तो वह संगणना के द्वारा अध्ययन से संबंधित इकाइयों की सूची का निर्माण करेगा। इस प्रकार तैयार की गई सूची में यदि इकाइयों की कुल संख्या इतनी हो कि उन सभी का उपलब्ध साधनों के द्वारा अध्ययन हो सकता हो तब वह उन सभी इकाइयों के तथ्यों का संकलन करेगा। इसके विपरीत यदि उसे ऐसा लगे कि इकाइयों की संख्या बहुत अधिक है तो इस प्रकार बनाई गई सूची में से वह सरल

यादृच्छिक निदर्शन के द्वारा इकाइयों का चयन करेगा। चूंकि इस पूरी प्रक्रिया में अनुसंधानकर्ता एक से अधिक स्तरों पर निदर्शन पद्धति का उपयोग करता है तो इस कारण उसे बहुस्तरीय निदर्शन कहा जाता है।

टिप्पणी

5. गुच्छ निदर्शन (Cluster Sampling)–यदि हम किसी समष्टि को बहुत से समूहों में बांट लें और फिर इनमें से केवल कुछ समूहों का निदर्श लेकर उनके तत्वों का अध्ययन करें तो इसे गुच्छ निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि किसी राज्य में 200 चुनाव क्षेत्र हों और हम इनमें से 10 का निदर्श ले लें और इसके मतदाताओं का अध्ययन करें तो यह गुच्छ निदर्शन होगा। इस प्रकार से सारे राज्य में नहीं घूमना पड़ेगा। अपने निदर्श में आए चुनाव क्षेत्रों के आधार पर हम सारे राज्य के विषय में आकलन कर सकेंगे। सामाजिक सर्वेक्षणों में इस प्रणाली का उपयोग मुख्यतया आधार सामग्री संग्रह के लिए, यात्रा के व्यय को बचाने के उद्देश्य से होता है। गुच्छों के निर्माण के विषय में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं :

(क) इकाइयों के एक संग्रह को गुच्छ के नाम से सम्बोधित किया जाए अथवा नहीं इस बात का निर्धारण विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कहीं गुच्छ एक जनपद (जिला) के रूप में हो सकता है तथा कहीं यह एक मकान के रूप में हो सकता है।

(ख) गुच्छ आवश्यक रूप से प्राकृतिक संकलन नहीं होते। उदाहरण के लिए क्षेत्र निदर्शन के दौरान मानचित्र पर जाली रखते हुए कृत्रिम गुच्छों का निर्माण किया जाता है किंतु प्रायः गुच्छ निदर्शन के दौरान समग्र के प्राकृतिक समूहों में प्रयोग किया जाता है।

(ग) किसी एक ही निदर्शन प्ररचना के अंतर्गत गुच्छों के अनेक प्रकारों का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए राज्य के अंतर्गत जिलों, जिलों के अंतर्गत तहसीलों, तहसीलों के अंतर्गत ब्लाकों, ब्लाकों के अंतर्गत गांवों तथा गांवों के अंतर्गत परिवारों का प्रयोग गुच्छों के रूप में किया जा सकता है।

(घ) गुच्छ जितने बड़े होंगे, निदर्शन की लागत उतनी ही कम होगी। गुच्छ निदर्शन में यदि हम केवल एक बार निदर्शन करें तो उसे एक पद निदर्शन कहते हैं और यदि एक से अधिक बार करें तो उसे बहु–पद निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि हमें किसी राज्य के मतदाताओं का अध्ययन करना हो और हम 10 चुनाव क्षेत्रों का यादृच्छिक निदर्शन लेकर इन 10 चुनाव क्षेत्रों के सभी मतदाताओं का अध्ययन करें तो यह एक पद निदर्शन होगा क्योंकि हमने केवल एक ही बार निदर्शन लिया है। किंतु यदि हम (1) चुनाव–क्षेत्रों का यादृच्छिक निदर्श ले लें, और फिर निदर्श में आए चुनाव–क्षेत्र में से, (2) गांवों का यादृच्छिक निदर्श ले लें, और फिर निदर्श में आए प्रत्येक गांव में से (3) मतदाताओं का यादृच्छिक निदर्श ले लें तो यह त्रि–पद निदर्शन होगा। यहां हमने तीन बार निदर्शन लिया है। प्रत्येक बार

प्राकृतिक निदर्शन होना चाहिए फिर चाहे वह यादृच्छिक हो या व्यवस्थित। गुच्छ निदर्शन में यह प्रयत्न किया जाता है कि गुच्छे यथासंभव छोटे हों जिससे आने–जाने में व्यय कम हो। साथ ही यह भी प्रयत्न रहता है कि प्रत्येक गुच्छे के अन्दर अधिक से अधिक विषमता हो। जैसे विधानसभा चुनावक्षेत्र, लोकसभा वाले क्षेत्रों से छोटे होंगे। मतदाताओं के साथ साक्षात्कार के लिए शोधकर्ता को अधिक यात्रा न करनी पड़े, इस दृष्टिकोण से विधानसभा चुनावक्षेत्र अधिक उपयुक्त होंगे। दूसरी आवश्यक बात यह है कि प्रत्येक गुच्छे के अन्दर अधिक से अधिक विषमता हो। यहां प्रत्येक चुनावक्षेत्र गांवों का गुच्छा है। यदि विधानसभा के चुनावक्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के गांव न आते हों तो लोकसभा के चुनावक्षेत्रों का निदर्शन लेना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि निदर्शन के इन अवसरों में किस सीमा तक वैषम्य हो सकता है। यथासंभव दोनों उद्देश्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। जैसे यदि हमें लगे कि विधानसभा के चुनावक्षेत्रों में सभी प्रकार के गांव आ जाते हैं तो इनका प्रतिदर्श ले लेना ठीक होगा क्योंकि ये छोटे भी हैं और विषम भी। गुच्छ प्रतिचयन यादृच्छिक निदर्शन से बहुधा सस्ता पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि हम सारे भारत में 2,000 मतदाताओं का निदर्श लेना चाहें और यादृच्छिक निदर्श लें, तो संभव है, अकेले मध्यप्रदेश में 150 मतदाताओं से साक्षात्कार के लिए हमें सारे राज्य में घूमना पड़े। इसके विपरीत गुच्छ निदर्शन में हो सकता है कि हमें केवल इसके पांच जिलों में जाना पड़े। यदि बहु–पद निदर्शन लिया जाए तो सभी जिलों में भी नहीं घूमना पड़ेगा, कुछ गांवों में जाने से ही काम चल जाएगा।

- **गुच्छ निदर्शन के प्रमुख लाभ**

1. विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में फैले हुए समग्र का अध्ययन गुच्छ निदर्शन की सहायता से अधिक बचतपूर्ण ढंग से किया जा सकता है।
2. जहां समग्र के उप समूहों के विषय से आगणन प्राप्त करना हो। उदाहरण के लिए गुच्छ निदर्शन का प्रयोग करते हुए अध्ययन करने पर प्रत्येक मकान में रहने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या भी ज्ञात हो जाती है।
3. कुछ परिस्थितियों में गुच्छों का प्रयोग बार–बार किया जा सकता है जैसे कि पैनल अध्ययनों के अंतर्गत जिसमें हम एक निश्चित अवधि में समग्र में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना चाहते हैं।
4. निदर्शन ढांचे के उपलब्ध न होने पर स्वयं सूची बनाने की आवश्यकता का अनुभव होता है और हमारी इस आवश्यकता की पूर्ति गुच्छनिदर्शन द्वारा संभव बनाई जाती है।
5. गुच्छ निदर्शन की कुशलता को बढ़ाने के लिए निम्न प्रकार के उपायों को अपनाया जा सकता है :

(i) गुच्छों का स्तरीकरण,

(ii) गुच्छों के आकार का कम किया जाना,

टिप्पणी

(iii) उप–निदर्शन।

6. अभ्यंश निदर्शन (Quota Sampling)–अभ्यंश निदर्शन या कोटा निदर्शन में यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न तत्व जिस अनुपात में समग्र में पाए जाते हैं उसी अनुपात में निदर्शन में भी आ जाएं, किंतु इकाइयों का चयन आकस्मिक ही होता है। दूसरे शब्दों में, अभ्यंश निदर्शन यादृच्छिक निदर्शन का ही सुधारा हुआ रूप है। इसमें समग्र के मुख्य स्तरों का ध्यान रखा जाता है एवं यह प्रयास किया जाता है कि प्रत्येक स्तर का प्रतिनिधित्व निदर्शन में होगा। यदि प्रत्येक स्तर का सदस्य अपने सही अनुपात में निदर्शन में न भी आ सके तो कम से कम यह होना चाहिए कि प्रत्येक स्तर के विषय में अनुमान लगाया जा सके। इस पद्धति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी अधिक उपयुक्त नहीं माना जाता एवं इसके अंतर्गत भी उत्तरदाताओं का चुनाव अनुसंधानकर्ता स्वेच्छा से ही करता है। अभ्यंश निदर्शन का उपयोग करते समय अनुसंधानकर्ता यह ध्यान में रखता है कि अध्ययन के दृष्टिकोण से किन–किन लक्षणों के आधार पर विभिन्न वर्गों में से इकाइयों का चुनाव करना अधिक उपयुक्त होगा। ऐसा करने के उपरांत यह निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक वर्ग में से कितने उत्तरदाताओं से आंकड़ों को एकत्रित करना है इस संख्या को ही अभ्यंश या कोटा कहा जाता है। प्रत्येक वर्ग में से चयन की जाने वाली इकाइयों की संख्या तय करने के उपरांत अनुसंधानकर्ता इस बारे में पूर्णतः स्वतंत्र होता है कि, 'वह इन वर्गों में किन इकाइयों का चयन अपने अध्ययन में करे।

अपनी सुविधा के अनुसार या आकस्मिक विधि से इकाइयों को लेते हुए वह तथ्यों का संकलन करता है। यदि यह मान लें कि हमें किसी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की राजनीतिक जानकारी का अध्ययन करना है और हमारे पास पुरुष विद्यार्थियों की जानकारी स्त्री विद्यार्थियों से अधिक है। यदि दोनों अपने सही अनुपात में निदर्शन में आएं तभी निदर्शन के माध्य से समग्र के माध्य का सही अनुमान लग सकेगा। इसके विपरीत यदि पुरुष अपने अनुपात से अधिक आ गए तो निदर्शन का माध्य घट जाएगा। इसलिए हम यह प्रयत्न करते हैं कि निदर्श में उनका अनुपात लगभग वही हो जो समग्र में है। अब यदि हमें ज्ञात है कि कुछ विद्यार्थियों में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से दुगुनी है तो हम साक्षात्कार लेने वाले को यह निर्देश देते हैं कि उसे 90 विद्यार्थियों के साथ साक्षात्कार करना होता था। किंतु अभ्यंश निदर्शन में उसे कोई सूची नहीं दी जाती। उसे जो भी विद्यार्थी मिलते जाते हैं उनसे वह साक्षात्कार करता जाता है, और प्रयत्न करता है कि उनकी संख्या निर्देश के अनुसार काफी हो जाए और उनमें पुरुषों और स्त्रियों का निर्दिष्ट अनुपात हो जाए। इस प्रकार इतने विद्यार्थी हमें मिल जाते हैं कि हम पुरुषों और स्त्रियों की अलग–अलग जानकारी का अनुमान लगा सकें, और साथ ही दोनों को मिलाकर कुल विद्यार्थियों की जानकारी का भी।

टिप्पणी

अभ्यंश निदर्शन के पक्ष में कई तर्क दिए जाते हैं। एक तो यह कि इसमें खर्च कम आता है क्योंकि पहले से चुने हुए उत्तरदाताओं को नहीं ढूंढना पड़ता। दूसरे इसके प्रबन्धन में आसानी होती है। प्राकृतिक निदर्शन की कठिनाइयां नहीं उठानी पड़ती। साक्षात्कार के लिए बार–बार प्रयत्न नहीं करना पड़ता। तीसरे इसे शीघ्रतापूर्वक किया जा सकता है। इंग्लैंड में रेडियों के कार्यक्रमों के विषय में लोगों के मत जानने के लिए इसे प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार के सर्वेक्षण में प्रतिदिन 3,000 से अधिक लोगों से पिछले दिन के कार्यक्रमों के विषय में पूछा जाता है। यदि दूसरे ही दिन न पूछा जाए तो यह संभावना रहती है कि लोग इनके विषय में भूल जाएं। अभ्यंश निदर्शन से ही इतनी जल्दी इतने लोगों का निदर्शन और साक्षात्कार हो सकता है। चौथे, नियत मात्रात्मक निदर्शन के लिए समग्र सूची की आवश्यकता नहीं होती।

इन लाभों के होते हुए भी अभ्यंश निदर्शन यादृच्छिक निदर्शन का एक सुधरा हुआ रूप ही है। यह पाया गया है कि साक्षात्कार लेने वाले अपने मित्रों से अधिक साक्षात्कार करते हैं। मित्र बहुत–सी बातों (जैसे विचार, रुचि, आदि) में एक जैसे होते हैं और हो सकता है उनमें और दूसरे लोगों में काफी भेद हो। निदर्शन में अपने सही अनुपात से अधिक होने से उससे लगाए गए अनुमान पर काफी प्रभाव पड़ सकता है। इसी प्रकार साक्षात्कारकर्ता बहुधा यह प्रयत्न करता है कि मेले, तमाशे, आदि में जाकर बहुत–से लोगों से आसानी से साक्षात्कार कर लें। किंतु यहां भी यह संभावना रहती है कि मेले–तमाशे में जाने वाले लोग न जाने वाले लोगों से काफी भिन्न हों। यदि साक्षात्कार घरों पर लिया जाता है तो वह भवन और लोगों के कपड़ों आदि से प्रभावित होकर कुछ को चुनाव में अधिमान दे सकता है। बहुधा पाया गया है कि नियत मात्रात्मक निदर्शन में अमीर, उच्चवर्गीय लोग अपने अनुपात से अधिक आ सकते हैं। इन सब कठिनाइयों का निराकरण प्राकृतिक निदर्शन द्वारा ही हो सकता है। किंतु यदि शोधकर्ता को इन खतरों का ध्यान रहे तो अभ्यंश निदर्शन में भी वह इनके निराकरण के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हो सकता है।

7. व्यवस्थित निदर्शन (Systematic Sampling)–निदर्शन का एक और सरल ढंग है व्यवस्थित निदर्शन। इसमें यादृच्छिक संख्याओं का उपयोग करने के स्थान पर समष्टि सूची में से नियमित अंतराल के बाद सदस्यों को चुन लेते हैं। जैसे यदि 1,500 की समष्टि में से हमें 100 का निदर्श लेना हो तो हम समष्टि की सूची में से प्रत्येक पन्द्रहवें सदस्य को चुन लेते हैं। 1,500 को 100 से भाग देकर यह 15 का अंतराल हमें मिल जाता है। यह आवश्यक है कि पहले तत्व का चयन यादृच्छिक हो। पहली संख्या चुनने के लिए हम लॉटरी की पद्धति या यादृच्छिक संख्याओं की तालिका का उपयोग कर सकते हैं। मान लें हमें पहली यादृच्छिक संख्या 10 मिलती है। तब हमारे निदर्श में आने वाली संख्याएं होंगी 10, 25, 40, 55, 70, 85 आदि। सूची के अंत तक जाने पर हमें 100 संख्याएं मिल जाएंगी। इन संख्याओं वाले सदस्य हमारे व्यवस्थित निदर्शन में माने जाएंगे। व्यवस्थित निदर्शन का उपयोग सामाजिक शोध में बहुधा होता है। यदि समष्टि की सूची अत्यन्त लंबी हो या हमें बड़ा निदर्श लेना हो तो व्यवस्थित निदर्शन से अधिक

टिप्पणी

सरल होता है। उदाहरणार्थ, मान लें हमें किसी चुनाव क्षेत्र के 50,000 मतदाताओं में से 1,000 का निदर्श परिकल्पना या उपकल्पना या प्राक्कल्पना लेना है। यादृच्छिक संख्याओं द्वारा निदर्शन के लिए हमें पहले सारे मतदाताओं के आगे 1, 2, 3 आदि 50,000 तक संख्याएं लिखनी होंगी, फिर उनमें से निदर्श में आई संख्याओं वाले सदस्यों को ढूंढ–ढूंढ कर निदर्शन हो सकेगा। इसके स्थान पर व्यवस्थित निदर्शन में हम एक यादृच्छिक प्रारंभ (जैसे ऊपर उदाहरण में दसवां व्यक्ति) से लेकर प्रत्येक पचासवें व्यक्ति को अपने निदर्श में रखते जाएंगे।

8. आकस्मिक निदर्शन (Accidental Sampling)–आकस्मिक निदर्शन, निदर्शन का वह प्रकार है जो पूर्णरूप से मनमाने ढंग से किया जाता है अर्थात यह पद्धति पूर्णतः अवैज्ञानिक है। यहां अनुसंधानकर्ता अपनी इच्छानुसार निदर्शन सूची से आवश्यक संख्या में इकाइयों का चुनाव करता है। निदर्शन की इस प्ररचना में समय, धन एवं प्रयासों के व्यय में बचत तो अवश्य होती है किंतु इसमें पूर्वग्रह अधिक तथा सूक्ष्मता कम पाई जाती है। जहोदा ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है कि यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें तथ्यों का संकलन करने से पूर्व अनुसंधानकर्ता इकाइयों का चयन नहीं करता है बल्कि वह तथ्यों के संकलन के क्षेत्र के साथ अध्ययन क्षेत्र में पहुंच जाता है। अध्ययन क्षेत्र में अध्ययन विषय से संबंधित जो भी इकाई उसे मिले वह उससे तथ्यों को प्राप्त करने का प्रयास कर लेता है। अन्यथा वह इस इकाई को छोड़कर दूसरी इकाई से तथ्यों का संकलन, करता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आकस्मिक रूप से जो भी उत्तरदाता मिले और तथ्य प्रस्तुत करने को तैयार हो वह उसे अध्ययन का अंग बना लेता है तथा शेष को छोड़ता जाता है। इस प्रक्रिया को तब तक जारी रखता है जब तक कि एक पूर्ण निश्चित संख्या में उत्तरदाताओं से तथ्य प्राप्त नहीं हो जाते। चूंकि इस पद्धति में उत्तरदाता का चयन पूर्ण रूप से अनुसंधानकर्ता पर निर्भर करता है और इसमें भी वह केवल तथ्य प्रस्तुत करने को तैयार इकाइयों को ही सम्मिलित करता है अतः यह पद्धति विश्वसनीय, प्रतिनिधि व वैज्ञानिक नहीं मानी जा सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि जिन अध्ययनों के आधार पर साधारणीकरण, उपकल्पना का परीक्षण या वैज्ञानिक सिद्धांतों का विकास या निर्माण करना हो उनमें वह पद्धति काम में ली जा सकती है।

3.2.3 निदर्शन के गुण एवं दोष

शुद्ध और निष्पक्ष परिणामों को प्राप्त करने के लिए निदर्शन/प्रतिदर्श में निम्न गुणों का होना आवश्यक है–

1. **सजातीयता**– समग्र की प्रत्येक इकाई में सजातीयता होनी चाहिए अर्थात प्रतिदर्शों में होने वाले विचरण निर्धारित सीमाओं के अंदर होने चाहिए।
2. **स्वतंत्रता**– समग्र की सभी इकाइयां आपस में स्वतंत्र होनी चाहिए। यथार्थ इकाइयां एक दूसरे पर आश्रित न हो।
3. **प्रतिनिधित्व**– निदर्शन/प्रतिदर्श में समग्र की संपूर्ण विशेषताएं होनी चाहिए अर्थात यह निदर्शन की इकाई समग्र का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम होनी चाहिए।

4. **पर्याप्तता**— प्रतिदर्श पर्याप्त होने चाहिए। प्रतिदर्श में जितनी इकाइयां अधिक होंगी शुद्धता का स्तर भी उतना ही ऊंचा होगा।
5. **उद्देश्य के अनुकूल**— प्रतिदर्श शोध के उद्देश्य के अनुकूल होना चाहिए। इसके लिए समग्र के चुनाव में ही सतर्कता बरती जानी चाहिए जिस पर कि हम अध्ययन कर रहे हों। यदि समग्र का उद्देश्य के साथ सामंजस्य होगा तो निदर्शन की इकाइयों से भी तालमेल बिठाया जा सकता है।

टिप्पणी

निदर्शन पद्धति के दोष एवं सीमाएं

निदर्शन के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष सही, शुद्ध और विश्वसनीय हो इसके लिए आवश्यक है कि निदर्शन से संबंधित समस्याओं पर विचार कर लिया जाए जो निम्नलिखित हैं—

1. **समग्र का पूरी तरह से स्पष्ट न होना**— कई बार हमें ज्ञात नहीं होता कि समग्र की इकाइयों में किस सीमा पर सजातीयता अथवा विजातीयता पाई जाती है। परिणामस्वरूप हमें निदर्शन के आकार के बारे में सही जानकारी नहीं हो पाती है।
2. **निदर्शन की कौन—सी विधि प्रयोग में लाई जाए**— जहां समग्र की इकाइयां स्पष्ट हो, वहां दैव निदर्शन का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए समग्र की इकाइयों को किसी न किसी आधार पर क्रमानुसार करना होता है। ऐसा प्रायः संभव नहीं हो पाता।
3. **समग्र का प्रतिनिधित्व करना**— यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता तो परिणाम आशा के विपरीत व पक्षपातपूर्ण हो सकते हैं। अतः प्रतिदर्शों के समग्र का प्रतिनिधित्व करना अति आवश्यक है।
4. **निदर्शन की विश्वसनीयता का निर्धारण करने में कठिनता**— यदि समग्र से संबंधित विभिन्न वर्गों अथवा इकाइयों में एकरूपता का अभाव होता है तो निदर्शन द्वारा प्राप्त तथ्यों की विश्वसनीयता भी संदेहपूर्ण बन जाती है। इसके अलावा साधारणतया शोधकर्ता के पास ऐसे कोई निश्चित उपकरण नहीं होते जिनकी सहायता से निदर्शन से प्राप्त तथ्यों की प्रमाणिकता की जांच की जा सके।
5. **विशेष ज्ञान की आवश्यकता**— सामाजिक घटनाओं में निदर्शन का चुनाव कठिन होता है। इस कारण इस पद्धति का प्रयोग सभी शोधकर्ता नहीं कर पाते तथा इसका प्रयोग सभी सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में नहीं किया जा सकता है।

अतः निदर्शन सामाजिक शोध का एक महत्वपूर्ण घटक है। शोध का निष्कर्ष मुख्य रूप से निदर्शन पर ही निर्भर करता है। निदर्शन पद्धति के प्रयोग के लिए शोधकर्ता में विषय का संपूर्ण एवं विशेष ज्ञान, सूझबूझ, अनुभव तथा अंतर्दृष्टि, निदर्शन के सिद्धांतों, उसकी कमियों तथा सीमाओं का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। इसके अभाव में शोधकर्ता को अशुद्ध और अविश्वसनीय परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. संयुक्त राज्य अमेरिका की जनगणना ब्यूरो ने निदर्शन का सर्वप्रथम प्रयोग किस सन् में किया?
   (क) सन् 1920 (ख) सन् 1930
   (ग) सन् 1940 (घ) सन् 1950
2. अभ्यंश निदर्शन का दूसरा नाम क्या है?
   (क) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन (ख) कोटा निदर्शन
   (ग) बहुस्तरीय निदर्शन (घ) व्यवस्थित निदर्शन

3.3 शोध प्रारूप के मुख्य प्रकार

अनुसंधान के उद्देश्य के आधार पर संपूर्ण अध्ययन की व्यवस्थित संरचना ही अनुसंधान प्रारूप, संरचना अथवा अभिकल्प कहलाते हैं। साधारणतया अनुसंधान के प्रारंभिक स्तर पर ही शोध प्रारूप का निर्माण किया जाता है। इस दृष्टिकोण से अनुसंधान प्रारूप सामाजिक अनुसंधान का एक ऐसा प्रारूप है जो सामाजिक शोधकर्ता को दिशा प्रदान करता है तथा इसके माध्यम से शोध कार्य के विभिन्न आयामों तथा उसकी वास्तविक प्रकृति को सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है। इस संबंध में अल्फ्रेंड जेब कान्ह ने लिखा है कि ''अनुसंधान की आरंभिक स्थिति में प्रारूप का निर्माण, प्रस्तावित अध्ययन की उपयुक्तता को स्पष्ट करता है तथा अध्ययन संबंधी प्रमुख समस्याओं के समाधान में सहायता करता है तथा सहायता पहुंचाता है।'' इस प्रकार अनुसंधान कार्य में कार्य करने की योजना या शोध प्रक्रिया की रूपरेखा को ही अनुसंधान प्रारूप कहा जाता है।

3.3.1 शोध प्रारूप : अर्थ, परिभाषाएं, विशेषताएं एवं उद्देश्य

अनुसंधान को क्रमबद्ध एवं प्रभावपूर्ण ढंग से संपन्न करने के लिए शोध प्रारंभ करने से पहले जिस रूपरेखा का निर्माण सामाजिक अनुसंधान की समस्या और परिकल्पना की प्रकृति के आधार पर किया जाता है उसे ही अनुसंधान प्रारूप के नाम से जाना जाता है। अनुसंधान प्रारूप के उद्देश्यों, महत्व एवं विशेषताओं आदि को ध्यान में रखते हुए विभिन्न विद्वानों ने इसे निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है—

परिभाषाएं

जहोदा एवं कुक के अनुसार, ''एक अनुसंधान प्रारूप आंकड़ों के एकत्रीकरण एवं विश्लेषण के लिए उन दशाओं का प्रबंध करता है जो अनुसंधान के उद्देश्यों की उपयुक्तता को कार्य क्षेत्र में आर्थिक नियंत्रण के साथ सम्मिलित करने का उद्देश्य रखती है।''

पी.वी. यंग के अनुसार, ''एक अनुसंधान प्रारूप शोध का तार्किक तथा व्यवस्थित आयोजन एवं निर्देशन है।''

आर.एल. एकाफ के अनुसार, "प्रारूप निर्णय कार्य करने की वह प्रक्रिया है जो उन परिस्थितियों के पूर्व किए जाते हैं जिनमें वे निर्णय कार्य रूप में लाए जाते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अनुसंधान प्रारूप एक ऐसी योजना या रूपरेखा है जो शोध की समस्या के निर्माण से लेकर निष्कर्षों तक के अंतिम चरण तक सभी पक्षों को इस प्रकार निर्देशित, नियंत्रित एवं संचालित करती है कि न्यूनतम समय, धन एवं प्रयत्नों के माध्यम से अधिक से अधिक अनुसंधान उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार अनुसंधान प्रारूप शोधकर्ता को तथ्यों के संकलन तथा संकलन की प्रविधियों, आंकड़ों के वर्गीकरण एवं विश्लेषण शोध प्रतिवेदन के लेखन इत्यादि सभी कुछ पहले से ही निश्चित कर देती है। संक्षेप मे, अनुसंधान प्रारूप संपूर्ण सामाजिक अनुसंधान कार्य के कार्यक्रम और रूपरेखा को अध्ययन के पूर्व में ही सुनिश्चित कर देता है।

शोध प्रारूप की विशेषताएं

अनुसंधान प्रारूप की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. अनुसंधान प्रारूप का संबंध सामाजिक अनुसंधान से है।
2. अनुसंधान प्रारूप शोधकर्ता को एक निश्चित दिशा का बोध कराता है।
3. अनुसंधान प्रारूप सामाजिक घटनाओं की जटिल प्रकृति को सरल रूप में प्रस्तुत करता है।
4. अनुसंधान प्रारूप अनुसंधान की वह रूप–रेखा है जिसका निर्माण अनुसंधान कार्य प्रारंभ करने से पूर्व किया जाता है।
5. अनुसंधान प्रारूप का उद्देश्य अनुसंधान प्रक्रिया की आने वाली परिस्थितियों को नियंत्रित करना और अनुसंधान को सरल बनाना है।
6. शोध प्रारूप न केवल मानवीय श्रम की बचत करता है, बल्कि समय व लागत को भी कम कर अनुसंधान के अधिकतम उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होता है।
7. अनुसंधान प्रारूप अनुसंधान के निष्कर्ष निकालने में सहयोगी होते हैं।
8. अनुसंधान प्रारूप का चयन सामाजिक अनुसंधान की समस्या एवं उपकल्पना की प्रकृति के आधार पर किया जाता है।
9. यह बाधा निवारण का काम करती है तथा अपनी शोध प्रारूप, शोध प्रक्रिया में आने वाली कठिनाइयों का निदान करने में शोधकर्ता की सहायता करती है।
10. अनुसंधान प्रारूप समस्या की पहचान से लेकर अनुसंधान प्रतिवेदन के अंतिम चरण तक के विषय में सभी उपलब्ध विकल्पों के बारे में व्यवस्थित रूप में श्रेष्ठ निर्णय लेने में सहायता करता है।
11. इसके माध्यम से ज्यादा से ज्यादा उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।
12. इसके द्वारा सामाजिक घटनाओं का सरलीकरण किया जाता है।
13. अनुसंधान प्रारूप संपूर्ण शोध की प्रणाली का प्रारूप होता है।

14. उपकल्पनाओं की सहायता व असत्यता के निरीक्षण में भी अनुसंधान प्रारूप सहायता करता है।
15. शोध प्रारूप से शोध कार्य सत्य, प्रमाणिक एवं विश्वसनीय हो जाता है।

टिप्पणी

एक आदर्श शोध प्रारूप का स्वरूप

एक आदर्श शोध प्रारूप में निम्नलिखित बातों का होना जरूरी होता है–

1. **शोध विषय की प्रकृति**–व्यक्तिगत दो या अधिक व्यक्तियों के समूह, उपसमूह समाज या इनके मिश्रित समूह।
2. **घटनाओं की संख्या**–कुछ–कुछ चयनित घटनाएं या कई चुनी हुई घटनाएं।
3. **सामाजिक भौतिक परिवेश**–किसी एक ही समय के एक ही समाज से संबद्ध मामले या कई समाजों के कई मामले।
4. **घटनाओं को चुनने का प्राथमिक आधार**–प्रतिनिधित्वपूर्ण, विश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक या तुलनात्मक या उपरोक्त सभी।
5. **समय संबंधी तत्व**–एक ही समय में किया जाने वाला (स्थैतिक) अध्ययन, एक प्रक्रिया या लंबे समय में घटित परिवर्तन वाला (गत्यात्मक) अध्ययन।
6. **अध्ययन के अंतर्गत व्यवस्था के ऊपर शोध के नियंत्रण की सीमा**–व्यवस्थित या अव्यवस्थित नियंत्रण।
7. **आधार सामग्री के मूल स्रोत**–प्रस्तुत उद्देश्य के लिए शोधकर्ता द्वारा नई आधार सामग्री का संकलन (शोध समस्या के आवश्यकतानुसार)।
8. **आधार सामग्री के संकलन करने की पद्धति**–अवलोकन, प्रश्न, साक्षात्कार या सभी या अन्य कई।
9. **शोध अध्ययन में प्रयुक्त चरों या गुणों की संख्या**–एक, दो या कई।
10. **एक गुण का विश्लेषण करने की पद्धति**–अव्यवस्थित वर्णन, चरों का अध्ययन।
11. **विभिन्न गुणों या चरों के मध्य संबंधों के विश्लेषण की पद्धति**–अव्यवस्थित वर्णन, व्यवस्थित विश्लेषण।
12. **एकांकी या सामूहिक रूप में अध्ययन**– एकांकी या सामूहिक रूप में व्यवस्था के गुणों का अध्ययन।

अतः स्पष्ट है कि एक आदर्श शोध प्रारूप में अनेक विशेषताएं पाई जाती हैं। वह शोध प्रक्रिया के दौरान आवश्यकतानुसार संशोधित एवं परिवर्तित किए जा सकने के कारण लचीला होता है। इसकी अवधारणाएं स्पष्ट, सुनिश्चित एवं आनुभविक होती हैं। इससे शोध में परिशुद्धता आ जाती है। इसके अतिरिक्त शोध प्रारूप सभी उपलब्ध सामग्री, साधनों एवं स्रोतों का अध्ययन करने के पश्चात ही बनाई जाती है। इसमें अवधारणाओं का प्रयोग करते समय राजनीतिक संदर्भ का ध्यान रखा जाता है। शोध प्रारूप की उपर्युक्त सभी विशेषताओं में नई स्थितियों, दशाओं एवं विशेषताओं के दृष्टिगोचर हो जाने पर उनमें स्पष्टीकरण देते हुए परिवर्तन किया जा सकता है। वस्तुतः राजनीतिक–विषयक शोध का प्रारूप ऐसे निर्मित करना आवश्यक भी हो जाता है।

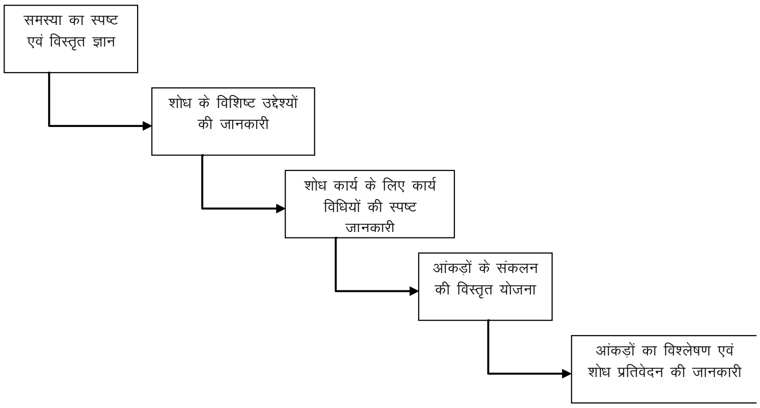

चित्रः शोध प्रारूप के विभिन्न चरण

उपरोक्त चित्र में स्पष्ट है कि शोध प्रारूप को तैयार करने के सभी स्तर क्रमबद्ध तरीके से प्रयोग में लाए जाने आवश्यक हैं। यहां उन सभी स्तरों अथवा चरणों का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

शोध प्रारूप के उद्देश्य

कोई भी शोध सामान्यतः तीन प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए किया जाता है। इनमें सामाजिक शोध समस्या का व्यावहारिक समाधान, वैज्ञानिक पद्धति बौद्धिक शोध समस्या का समाधान और सैद्धांतिक व्यवस्थाओं को विकसित करने की शोध समस्या का समाधान प्रस्तुत किया जाता है। जहां व्यावहारिक शोध समस्याएं, सामाजिक नीतियों के निर्धारण एवं समस्याओं के निदान में सहायक होती हैं, वहीं वैज्ञानिक एवं बौद्धिक शोध का संबंध मौलिक वस्तुओं से होता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे शोध भी होते हैं जिनका उद्देश्य केवल सैद्धांतिक व्यवस्थाओं का विकास करना होता है। जिनके आधार पर विचारों का परीक्षण एवं विश्लेषण किया जाता है।

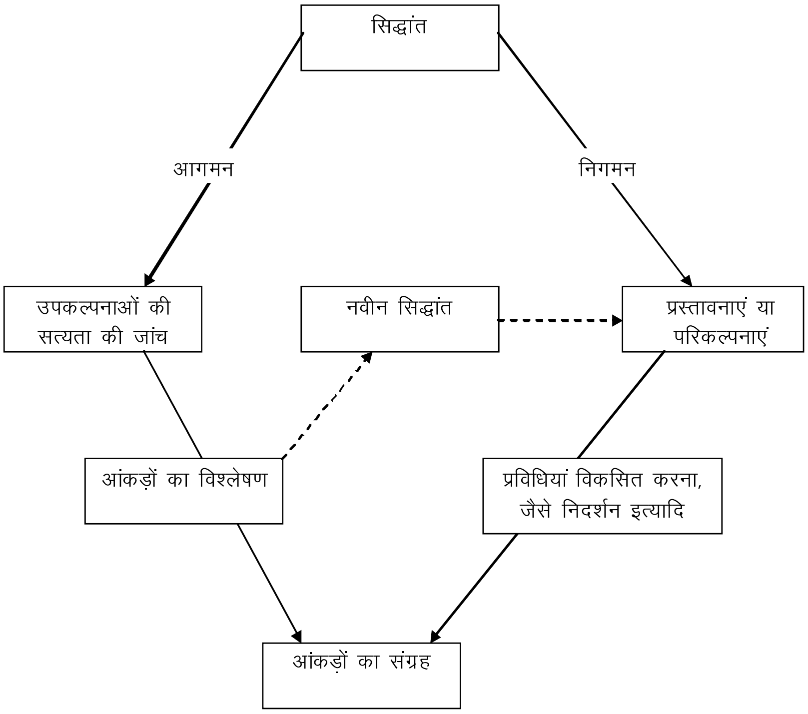

अनुसंधान प्रारूप का सिद्धांत

टिप्पणी

यहां ऊपर अनुसंधान प्रारूप का सिद्धांत दिया गया है। यहां ध्यान रखने वाली बात यह है कि शोध प्रारूप स्वयं इन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करता बल्कि ये उद्देश्य शोधकर्ता द्वारा ही प्राप्त किए जाते हैं। शोध प्रारूप शोधकर्ता को इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में केवल इतनी सहायता करता है कि वह शोध के द्वारा प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर ले तथा विविध त्रुटियों का पता लगा सके।

अतः हम कह सकते हैं कि शोध प्रारूप के दो प्रमुख उद्देश्य होते हैं–

1. शोध समस्या का उत्तर प्रदान करना
2. विविधताओं को नियंत्रित करना।

इसका विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है–

1. **शोध समस्या के उत्तर प्रदान करना**–शोध प्रारूप शोधकर्ता को शोध समस्या से संबंधित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर प्रदान करने में मदद करता है। यह शोध प्रारूप की यथासंभव प्रमाणिकता, विषयात्मकता, यथार्थता, निश्चयात्मकता एवं समय की बचत के साथ–साथ श्रम की भी बचत करने में मदद करता है। शोध प्रश्नों के उत्तर की खोज हेतु शोध प्रारूप शोधकर्ता को सभी प्रमाणों को संकलित करने में सहायता प्रदान करता है। शोध प्रारूप में शोध उपकल्पनाओं के रूप में समस्या को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि इनका आनुमानिक परीक्षण या जांच संभव हो सके। परीक्षणों की संभावनाओं के अनुसार शोध उपकल्पनाओं का निर्माण करना आवश्यक होता है अर्थात जितनी संभावनाएं परीक्षण की होती हैं। उतने ही प्रकार के शोध प्रारूप निर्मित किए जा सकते हैं।

   उपकल्पनाओं के परीक्षण संबंधी प्रतिफल इस बात पर निर्भर करते हैं कि परिणाम निकालने एवं पर्यवेक्षण करने के लिए किन प्रविधियों का इस्तेमाल किया जा रहा है। विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए चरों के बीच पाए जाने वाले संबंधों के उपयुक्त परीक्षण के लिए उपर्युक्त संदर्भ ढांचे की स्थापना की जाती है। शोध प्रारूप का यही पहला लक्ष्य होता है। शोध प्रारूप अवलोकन एवं विवेचना के लिए जरूरी निर्देशों को निश्चित करता है साथ ही शोध प्रारूप से प्राप्त होने वाले निष्कर्षों एवं प्रश्नों के उत्तरों की संरचना भी निश्चित होती है।

2. **विविधताओं को नियंत्रित करना**–शोध प्रारूप शोध की विविधताओं को नियंत्रित करने में शोधकर्ता की हर संभव मदद करता है। शोध के समय कई खामियों की संभावना बनी रहती है। शोध प्रारूप में इन विभिन्न त्रुटियों अथवा खामियों को कम करने के दो प्रमुख तरीके हैं–
   (क) मापों की विश्वसनीयता में वृद्धि की जाए।
   (ख) शोध परिस्थितियों को अधिक से अधिक नियंत्रित करते हुए परिमापन के कारण उत्पन्न हुई कमियों को यथासंभव कम किया जाए। वस्तुतः शोध प्रारूप के नियंत्रण का कार्य तकनीकी है। इस अर्थ में शोध प्रारूप एक नियंत्रित कार्य व्यवस्था है, जिसका प्रमुख सांख्यिकी सिद्धांत यह है कि ''क्रमबद्ध विविधताओं को अधिक से अधिक बढ़ाइए, बाध्य क्रमबद्ध विविधताओं को नियंत्रित कीजिए तथा विविध त्रुटियों को कम से कम कीजिए।''

इस प्रकार मुख्य रूप से शोध प्रारूप के दो मौलिक उद्देश्य होते हैं और दोनों ही उद्देश्य स्वयं शोध प्रारूप के न होकर शोधकर्ता द्वारा ही प्राप्त किए जाते हैं। शोध की समस्या से संबंधित उत्तर अर्जित करना एवं विभिन्नताओं को नियंत्रित करना ही शोधकर्ता के प्रमुख उद्देश्य हैं एवं शोध प्रारूप को बनाने का लक्ष्य भी यही है।

3.3.2 शोध प्रारूप के विभिन्न चरण एवं महत्व

शोध प्रारूप शोधकर्ता को न्यूनतम धन, समय एवं प्रयत्नों के माध्यम से अधिकतम शोध के लक्ष्यों को प्राप्त करने में पथ प्रदर्शन का कार्य तो करता ही है इसके अतिरिक्त यह शोध समस्या के निर्माण से लेकर निष्कर्षों तक निर्देशित नियंत्रित एवं संचालित करने में भी सहायक है। इसलिए यह आवश्यक है कि शोध प्रारूप का निर्माण भली भांति सोच समझकर किया जाए। समान्यतः किसी भी शोध प्रारूप का निर्माण निम्नलिखित चरणों में किया जाना आवश्यक होता है–

1. शोध प्रारूप के निर्माण में प्रथम जरूरी चरण यह है कि शोधकर्ता को अनुसंधान समस्या के बारे में स्पष्ट एवं विस्तृत ज्ञान होना चाहिए।
2. शोध प्रारूप के निर्माण में दूसरा प्रमुख चरण यह है कि शोधकर्ता को शोध अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्यों की स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए।
3. शोध प्रारूप के निर्माण का तीसरा आवश्यक चरण यह है कि शोधकर्ता को उन तकनीकों एवं कार्य विधियों की भी स्पष्ट एवं व्यापक जानकारी होनी चाहिए जिनका प्रयोग करते हुए शोध के लिए आवश्यक आंकड़ों के संकलन के मार्ग में आने वाली विभिन्न समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया जाएगा।
4. शोध प्रारूप के निर्माण कार्यों का प्रमुख चरण यह है कि आंकड़ों के संकलन के लिए विस्तृत एवं सुनियोजित योजना का उपलब्ध होना भी आवश्यक है।
5. शोध प्रारूप के निर्माण का अंतिम चरण यह है कि संकलित आंकड़ों के विश्लेषण एवं विवेचन के लिए उपयुक्त योजना प्राप्त हो।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शोध प्रारूप के निर्माण को कई चरणों से होकर गुजरना पड़ता है। ये चरण प्रत्येक शोध के आवश्यक एवं अनिवार्य अंग हैं। इन चरणों की सहायता से एक उपर्युक्त शोध प्रारूप का निर्माण किया जा सकता है। शोध प्रारूप के उपर्युक्त चरणों को क्रमशः इस प्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. शोध प्रारूप में सर्वप्रथम समस्या के प्रतिपादन का अध्ययन किया जाना चाहिए।
2. शोध कार्य का वर्तमान रूप शोध समस्या से स्पष्ट रूप से संबंधित करना अर्थात् वर्तमान शोध कार्य एवं शोध समस्या में परस्पर सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है।
3. वर्तमान में जिस शोध कार्य को किया जाना है, उसकी सीमाओं को स्पष्ट रूप से निर्धारित करना आवश्यक है।
4. शोध प्रारूप में शोध समस्या के समग्र एवं उपयुक्त अध्ययन क्षेत्र का चयन करना तथा इसे स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

5. शोध प्रारूप में शोध समस्या से संबंधित तथ्यों के अवलोकन, विवरण तथा परिमापन के लिए उचित चरों का चयन करना चाहिए तथा इन्हें स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए।
6. शोध के कई क्षेत्रों का व्यापक विवरण प्रस्तुत किया जाना अर्थात इस चरण में शोध के कई क्षेत्रों का पता लगाकर उसका व्यापक विवरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
7. इसमें उपकल्पनाओं की परिचालनात्मक परिभाषा देते हुए उसे इस रूप में प्रस्तुत करना चाहिए कि इनका परीक्षण किया जा सके।
8. इसमें शोध के लिए उपयुक्त विधियों एवं प्रविधियों का चयन किया जाता है।
9. इसमें शोध के प्रतिफलों के प्रयोग के विषय में निर्णय लिया जाता है।
10. शोध प्रारूप के इस चरण में शोधकर्ता के शोध के दौरान प्रयुक्त किए जाने वाले प्रलेखों, रिपोर्टों एवं अन्य प्रपत्रों का सिंहावलोकन करना होता है।
11. इसके उपरांत अध्ययन के प्रभावपूर्ण उपकरणों का चयन एवं इनका निर्माण करना तथा इन्हें व्यवस्थित करके पूर्ण परीक्षण करना होता है।
12. आंकड़ों के संकलन के पश्चात इनका संपादन किस प्रकार किया जाएगा इसकी विस्तृत व्यवस्था का उल्लेख किया जाता है।
13. आंकड़ों के संपादन की व्यवस्था के उल्लेख के पश्चात उनके वर्गीकरण एवं सारणीकरण हेतु उचित विधियों का चयन किया जाता है एवं उनकी परिभाषा की जाती है।
14. आंकड़ों के संकेतीकरण के लिए उचित व्यवस्था की जाती है।
15. आंकड़ों को प्रयोग हेतु बनाने के लिए संपूर्ण प्रक्रिया की समुचित व्यवस्था का विकास किया जाता है।
16. इसमें आंकड़ों के गुणात्मक एवं संख्यात्मक विश्लेषण के लिए विस्तृत रूपरेखा तैयार की जाती है।
17. इसमें शोधकर्ता के प्रशिक्षण के ढंग एवं कार्य विधियों का वर्णन किया जाता है।
18. इसके पश्चात अन्य उपलब्ध परिणामों की पृष्ठभूमि में समुचित विवेचन व कार्य विधियों का उल्लेख किया जाता है।
19. इसमें अनुसंधान अथवा शोध प्रतिवेदन के प्रस्तुतिकरण के विषय में निर्णय लिया जाता है।
20. इसमें जरूरत के मुताबिक पूर्ण परीक्षणों एवं पूर्वगामी अध्ययनों का प्रावधान किया जाता हैं।
21. शोध प्रारूप का यह चरण संपूर्ण शोध प्रक्रिया में लगने वाला समय, धन एवं मानवीय श्रम का अनुमान लगाने का है। इस चरण में प्रशासकीय व्यवस्था की स्थापना एवं विकास का अनुमान लगाया जाता है।
22. इसमें शोध अध्ययन की कार्य विधियों से संबंधित संपूर्ण प्रक्रिया, नियमों उपनियमों को विस्तारपूर्वक तैयार किया जाता है।

23. शोध प्रारूप के इस अंतिम चरण में शोधकर्ता यह प्रावधान करता है कि समस्त कार्यकारी अध्ययन शोधकर्ता एक सामंजस्य की स्थिति को बनाए रखते हुए शोध कार्य के नियमों कार्य विधियों की तुलना करते हुए किस प्रकार संतोषप्रद ढंग से कार्य को पूर्ण करेंगे।
24. इसमें अध्ययन समस्या का प्रतिपादन किया जाता है।
25. इस चरण में सामग्री के विवरण के लिए उच्च श्रेणियों का चयन किया जाता है एवं उनकी परिभाषा की जाती है।
26. इसमें अध्ययन में समाहित उपकल्पनाओं एवं मान्यताओं का स्पष्ट वर्णन किया जाना चाहिए।

शोध प्रारूप का महत्व

हमारा विश्वास है कि शोध किसी समस्या अथवा तथ्य को जानने का ऐसा प्रयास है जिसमें क्रमबद्ध, बौद्धिकता, सैद्धांतिकता और मानक तथ्य का समावेश है तथा जिनकी तार्किकता एवं विश्वसनीयता की परीक्षा की जा सके। दूसरे शब्दों में शोध के द्वारा पूर्व में यदि कोई तथ्य या विचार प्रकाश में लाया जाए तो उस तथ्य या विचार को उस शोध विषय के रूप में आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होना चाहिए। इसलिए इसका बौद्धिक तथा क्रमबद्ध होना जरूरी है। किसी शोध की सार्थकता का मापदंड यही है कि वह कितना बौद्धिक, सैद्धांतिक एवं क्रमबद्ध है तथा उसकी विश्वसनीयता इस बात पर निर्भर करती है कि वह उस शोध विषय के लिए कितना महत्व रखता है। यदि उपरोक्त क्रिया का संपादन किसी शोध में नहीं किया गया है तब उसे शोध की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। वस्तुतः शोध एक ऐसी तार्किक प्रक्रिया है जिसमें शोध विषय से संबंधित तथ्यों, आंकड़ों अथवा सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है। उनका अवलोकन, विश्लेषण एवं विवेचन किया जाता है तथा शोध समस्या के परिप्रेक्ष्य में उनका उत्तर दिया जाता है। प्रायः देखा जाता है कि एक अच्छा शोध अच्छे विचारों को जन्म देता है। ये विचार तार्किक एवं परीक्षणीय तथा क्रमबद्ध तरीके से सैद्धांतिक बन जाते हैं। एक अच्छे शोध के लिए जितना प्रयास शोध के प्रारंभ में किया जा सकता है उतना ही शोधकर्ता शोध के उपरांत अपने निष्कर्षों की व्याख्या करने में करता है। इस संदर्भ में शोध प्रारूप का निर्माण अत्यधिक महत्वपूर्ण है। शोध प्रारूप की उपयोगिता एवं महत्व निम्नांकित रूप से समझे जा सकते हैं–

1. शोध प्रारूप शोधकर्ता के विचारों को मजबूत बनाता है।
2. शोध प्रारूप से शोधकर्ता अपने शोध को क्रमबद्ध तथा तार्किक बनाता है।
3. अच्छे शोध के लिए सामग्री की खोज करना, दृढ़ विचारों एवं साक्ष्यों को आंकड़ों के रूप में रखना तथा शोध समस्या के प्रश्नों का उपयोगी उत्तर देना शोध प्रारूप द्वारा ही संभव है।
4. शोध के लिए तथ्यों की खोज करना, उन्हें संकलित करना, उनके प्रमाण में साक्ष्य जुटाना, आंकड़ों को क्रमबद्ध करना और उपयोगी विश्लेषण करना शोध प्रारूप के द्वारा ही किया जा सकता है।

टिप्पणी

5. शोध प्रारूप ऐसा विचार है जिससे शोधकर्ता निश्चित सीमाओं के अंदर रहकर निश्चित प्रक्रिया द्वारा शोधकार्य के लिए पथ पर अग्रसर होता है।
6. शोध प्रारूप द्वारा तथ्यों का आगमन एवं निगमन विधि द्वारा विश्लेषण करके उपयोगी आंकड़ों एवं तथ्यों का संकलन किया जा सकता है।
7. किसी भी घटना में कुछ विशेष प्रकार का क्रम होता है और इस क्रम को जानना ही शोध है। तब शोध प्रारूप जो कि संपूर्ण शोध का क्रमबद्ध एवं तार्किक अध्ययन है, द्वारा भी उस शोध समस्या एवं घटना का वह क्रम जानने में मदद करता है जिस क्रम में वह घटित होती है।
8. शोध प्रारूप द्वारा निम्न तरीके से लाभ लिया जा सकता है–
    - यह ज्ञान और समझ के बीच दूरी को चिह्नित करता है।
    - यह दूरी समस्या और प्रश्न के रूप में सीमित और स्पष्ट की जा सकती है।
    - इस दूरी को क्रमबद्ध, सैद्धांतिक तथा कारणीय तरीके से विषय के अध्ययन के लिए काम में लिया जा सकता है।
    - यह देखा जा सकता है कि हमारी समझ तथ्यों, सिंद्धातों और सूचनाओं का कैसे उपयोग करती है और शोध समस्या को सुलझाने में इनका क्या उपयोग कर सकती है।
    - शोध प्रारूप सैद्धांतिक और तार्किक समझ बढ़ाता है और शोध से संबंधित प्रश्नों, समस्याओं और उद्दश्यों को स्पष्ट करने में सहायता प्रदान करता है। यह हमें बताता है कि तथ्यों के बारे में हम कितना जान चुके हैं, कौन से तथ्य हमारे शोध के लिए उपयोगी हैं। अर्थात् किन–किन तथ्यों, सूचनाओं अथवा आंकड़ों को अभी संकलित किया जाना है।
    - शोध प्रारूप आंकड़ों के संग्रह करने की प्रविधि पर प्रकाश डालता है और स्पष्ट, सही, उपयोगी आंकड़ों एवं सूचनाओं को एकत्रित करने में मदद करता है।
    - शोध प्रारूप संकलित आंकड़ों के वर्गीकरण, विश्लेषण में भी आवश्यकतानुसार मदद करता है।
    - शोध प्रारूप आंकड़ों के विश्लेषण एवं विवेचन में सहायक होने के साथ ही विश्लेषित तथ्यों, विचारों एवं आंकड़ों का निष्कर्ष प्रस्तुत करने में भी सहायक होता है तथा इनके आधार पर आगे शोध की संभावनाओं, उपकल्पनाओं की भी व्याख्या करने में सहायता प्रदान करता है।

उपरोक्त बिंदुओं से स्पष्ट है कि शोध प्रारूप में प्रत्येक चरण साथ–साथ रहकर एवं क्रमबद्ध तरीके से शोध के सफल संचालन में सहायक होते हैं अर्थात हमारा सैद्धांतिक और तार्किक प्रबंधन हमारे शोध के उद्देश्यों और लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होता है। इसी प्रकार आंकड़ों का संकलन प्रविधिय शोध के उद्देश्यों को पूरा

करने में सहायक होता है तथा हमारे सैद्धांतिक एवं तार्किक प्रबंध व प्रविधियां शोध के आंकड़ों का विश्लेषण करने में मदद करते हैं। आंकड़ों के विश्लेषण की पद्धति शोध के उद्देश्यों को पूरा करने तथा शोध को पूरा करने में मदद करती है। यह आगे चलकर शोध को आगे की संभावनाओं को बताने में सहायक होती है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जब तक शोध प्रारूप का निर्माण उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में नहीं किया जाता है तब तक वह शोध के वास्तविक उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकता है अर्थात शोध प्रारूप के निर्माण में उक्त तथ्यों का जितना अधिक समावेश होगा वह शोध उतना ही सफल व लाभकारी होगा।

3.3.3 शोध प्रारूप के प्रकार

सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति, उद्देश्यों एवं परिकल्पना में भिन्नता के कारण उनसे संबद्ध अनुसंधान प्रारूपों में भी विविधता का होना आवश्यक हो जाता है। सामान्यता सामाजिक विज्ञान में अनुसंधान प्रारूपों को निम्नलिखित तीन मुख्य प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–

1. अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक अनुसंधान प्रारूप
2. वर्णनात्मक अनुसंधान प्रारूप
3. व्याख्यात्मक अनुसंधान प्रारूप

ये अनुसंधान की तीन सीढ़ियां है। अन्वेषणात्मक अध्ययन किसी विषय में खोज की प्रारंभिक अवस्था होती है। इसमें अध्ययन के द्वारा विषय का परिचय प्राप्त किया जाता है तथा नवीन धारणाओं एवं उपकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। अनुसंधान की दूसरी सीढ़ी वर्णनात्मक अध्ययन है, इससे किसी घटना, परिस्थिति, संगठन आदि लक्षणों का विशुद्ध अध्ययन किया जाता है अर्थात लक्ष्य की पूर्ति के लिए वर्णनात्मक उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है। अनुसंधान की अंतिम सीढ़ी व्याख्यात्मक अध्ययन है इसमें निष्कर्षों अथवा तथ्यों का पूर्व उपकल्पनाओं की प्रमाणिकता के रूप में अध्ययन किया जाता है।

यहां हम इन विभिन्न अनुसंधान प्रारूपों का विस्तार से उल्लेख करेंगे।

1. अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप

अन्वेषणात्मक अनुसंधान/निरूपणात्मक अनुसंधान प्रारूप का संबंध नवीन तथ्यों की खोज से होता है। इसकी सहायता से परिकल्पना के निर्माण में मदद मिलती है। इस प्रारूप के माध्यम से अज्ञात तथ्यों की खोज या सीमित ज्ञान के बारे में व्यापक खोज की जाती है अर्थात इसका उद्देश्य अज्ञात तथ्यों की खोज कर मानवीय ज्ञान में वृद्धि करना होता है। प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। इस प्रकार अनुसंधान प्रारूप का उद्देश्य किसी सामाजिक घटना के अंतर्निहित कारणों को ढूंढ़ निकालना होता है। अतः अन्वेषणात्मक अनुसंधान प्रारूप घटनाओं में व्याप्त नियमितता और श्रृंखलाबद्धता को स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त कभी–कभी शोध विषय की उपयुक्तता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी इस प्रकार के शोध प्रारूप का निर्माण किया जाता है।

अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के उद्देश्य

अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप की सफलता इसके कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति पर निर्भर करती है। प्रमुख रूप से एक अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के अग्रलिखित उद्देश्य हो सकते हैं–

टिप्पणी

1. **अनुसंधान विषय की जानकारी करना**–यह अन्वेषणात्मक शोध प्ररचना अथवा प्रारूप का प्रथम उद्देश्य है जिसमें शोधकर्ता को शोध संबंधित विषय या समस्या का परिचय या जानकारी प्राप्त करनी होती है। उदाहरण के लिए यदि हम किसी समाज के विशेष वर्ग या जाति का अध्ययन करना चाहें तो पहले हमें यह पता लगाना होगा कि यह वर्ग या जाति कब और कहां स्थापित हुई, इसके अस्तित्व में आने के पीछे कौन से कारण हैं। वर्तमान अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के इस उद्देश्य में हमें सर्वप्रथम शोध समस्या के विषय की जानकारी प्राप्त करनी होती है।
2. **अनुसंधान अथवा शोध की संभावनाओं एवं क्षेत्र का निर्णय**– यह अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का दूसरा प्रमुख उद्देश्य है। इसके अंतर्गत शोधकर्ता यह पता लगाता है कि विषय विशेष में शोध की क्या वास्तविक संभावनाएं हैं। अध्ययन शुरू करने से पहले क्षेत्र का निर्णय करना धन, श्रम व समय की बचत करना है। अन्यथा हो सकता है कि इसमें व्यर्थ ही समय, धन एवं श्रम को व्यर्थ व्यय कर बैठें, जैसे यदि किसी सरकारी संगठन का अध्ययन करने में यदि हमें यह पता लग जाए कि उसके तथ्य या आंकड़े सरकार गोपनीय रखती है तथा वे प्रकाशन योग्य नहीं है तो हमारे लिए यह विषय छोड़ना ही उचित है।
3. **अवधारणाओं का स्पष्टीकरण एवं नवीन अवधारणाओं की खोज**– अन्वेषणात्मक शोध प्रारूपों का तीसरा उद्देश्य यह हो सकता है कि शोध अध्ययन की स्पष्ट अवधारणाओं का निर्माण तथा नवीन अवधारणाओं की खोज की जाए। वस्तुतः वैज्ञानिक अध्ययन महत्वपूर्ण होता है जबकि अध्ययन की स्पष्ट अवधारणाएं हो अर्थात स्पष्ट अवधारणाओं का निर्माण ही सफल शोध अध्ययन की आवश्यकता है।

   इसके अलावा अवधारणाएं सैद्धांतिक संरचना का आधार होती हैं इसलिए कई सैद्धांतिक संरचना के लिए कभी–कभी नवीन अवधारणाओं की रचना की जाती है। यहां शोधकर्ता किसी पुरानी अवधारणा की नवीन परिभाषा भी कर सकता है, मार्क्स का वर्ग संघर्ष इसी प्रकार की नवीन अवधारणा है।
4. **उपकल्पनाओं का निर्माण**– अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का एक और उद्देश्य उपकल्पनाओं का निर्माण है। अन्य प्रकार के शोध प्रारूपों में भी इन उपकल्पनाओं का अत्यंत महत्व होता है। वस्तुतः वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य सिद्धांतों का परीक्षण होता है। सिद्धांत उपकल्पना के तंत्र होते हैं। उपकल्पनाएं वैज्ञानिक अध्ययन को दिशा देती हैं तथा बताती हैं कि शोधकर्ता को किन लक्षणों एवं संबंधों का अध्ययन करना है। इस प्रकार शोध विषय पर समस्या से परिचय होने के बाद उसका निरूपण करके तथा अवधारणाओं के स्पष्टीकरण एवं खोज द्वारा अन्वेषणात्मक अध्ययन नवीन उपकल्पनाओं को बनाने में सहायता प्रदान करता है।

टिप्पणी

उपरोक्त मुख्य उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के अन्य उद्देश्य भी हो सकते हैं, जैसे–

- शोधकर्ता में प्रघटना के बारे में जागरूकता एवं समझ पैदा करना।
- भविष्य में होने वाले शोध के विषय में प्रमुख तथ्य या विषय की स्थापना करना।
- समाजिक महत्व की समस्याओं की ओर शोधकर्ता को प्रेरित करना।
- अध्ययन को समस्या के जिस क्षेत्र में केंद्रित किया जाना है इसका निर्धारण करना।
- विषय को परंपरागत सीमाओं से मुक्त करके उसके अध्ययन क्षेत्र का विकास करना।

इस प्रकार के शोध प्रारूप के लिए समस्या के चुनाव में कुछ आवश्यकताओं या अनिवार्यताओं का होना अनिवार्य है। अन्वेषणात्मक शोध प्रचना अथवा प्रारूप में समस्या का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- समस्याओं का सामाजिक महत्व
- समस्याओं का व्यावहारिक पक्ष एवं
- विश्वसनीय तथ्यों की प्राप्ति की संभावनाएं

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शोध का अन्वेषणात्मक प्रारूप प्राथमिक दिशा प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह शोध में प्रारंभिक दृष्टिकोण निश्चित करने में भी सहयोगी सिद्ध होता है।

जब तक शोधकर्ता को समस्या की सुस्पष्ट व्याख्या उसके सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों तथा प्रयोगात्मक पक्षों का ज्ञान नहीं होगा तब तक वह शोध करने में समर्थ नहीं हो पाएगा।

अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के निर्माण की विधियां

अन्वेषणात्मक शोध को क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित ढंग से संपादन करने के लिए शोध प्रारूप की योजना तैयार करने के लिए कुछ विशेष दशाओं पर ध्यान देना व उनका पालन करना अनिवार्य होता है। अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप की कुछ दशाएं अथवा पद्धतियां अथवा विधियां होती हैं जिनमें से प्रमुखतः निम्न हैं–

1. **संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण एवं अध्ययन**– अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के निर्माण के प्रारंभ में अध्ययन विषय से संबंधित प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य का गहनता से अध्ययन किया जाता है। इसमें विषय या समस्या से संबंधित संदर्भ शोध, पत्र–पत्रिकाएं, साहित्य, पुस्तकों और लेखों इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। इस सर्वेक्षण से शोधकर्ता को यह पता चलता है कि उस विषय से संबंधित महत्वपूर्ण सिद्धांत कौन–कौन से हैं? तथा इन सिद्धांतों के आधार पर बहुत–सी नई उपकल्पनाएं भी प्रकाश में आती हैं। विषय से संबंधित पूर्व में जो अध्ययन हुए हैं उनके आगे किस समस्या पर शोध किया जा सकता है अर्थात् पिछले शोध कार्यों को एकत्र करके शोध के संदर्भ में उनकी उपयोगिता देखकर नवीन उपकल्पनाएं एवं शोध विषय बनाए जा सकते हैं।

टिप्पणी

संबंधित साहित्य के सर्वेक्षण एवं अध्ययन के लिए शोधकर्ता संदर्भ ग्रंथ सूची, पूर्व लेखों के सारांश तथा अनुक्रमणिकताओं आदि की सहायता ले सकता है। ये सभी पुस्तकालयों में उपलब्ध होती हैं। अतः इसकी सहायता से शोधकर्ता को अपने विषय के कुल प्रकाशित साहित्य के विषय का पता लग जाता है। इसके अलावा अध्ययन के लिए विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित लेखों व शोध ग्रंथों के सारांश को भी माध्यम बना सकता है और वह आवश्यकतानुसार अपने शोध विषय से संबंधित अध्ययन सामग्री का चयन कर सकता है।

इस प्रकार अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के निर्माण में सबसे पहले संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण तथा अध्ययन करना आवश्यक होता है।

2. **अनुभवी व्यक्तियों से संरक्षण**—सामाजिक विज्ञान की प्रयोगशाला संपूर्ण समाज है। सामाजिक विज्ञान में ज्ञान का एक बड़ा भाग अलिखित रूप में विद्यमान होता है। अतः शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि अध्ययन विषय या समस्या से संबंधित जिन व्यक्तियों को अनुभव है और वे किसी कारण से अपने ज्ञान एवं अनुभवों को सार्वजनिक रूप से व्यक्त नहीं कर सकते हैं, उन व्यक्तियों का सर्वेक्षण करके उनके ज्ञान एवं अनुभव को इकट्ठा किया जाए। इस प्रकार से संचित व्यावहारिक अनुभव शोधकर्ता की न केवल अध्ययन विषय की वास्तविकता से परिचित कराता है बल्कि इसके लिए पथ प्रदर्शक का भी कार्य करता है। सेलिज, जहोदा एवं अन्य ने इन विशिष्ट व्यक्तियों की श्रेणी में निम्नांकित को सम्मिलित किया है—
   (i) सीमांत व्यक्ति, जो एक सांस्कृतिक समूह से दूसरे सांस्कृतिक समूह में आवागमन करते रहते हैं तथा दोनों समूहों से अपने संपर्क बनाए रखते हैं।
   (ii) वे व्यक्ति जो विकास की एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर संक्रमण काल में है।
   (iii) विचलित व्यक्ति, एकांकी व्यक्ति तथा समस्याग्रस्त व्यक्ति।
   (iv) विशुद्ध, आदर्श अथवा जटिलताविहीन व्यक्ति।
   (v) अत्यधिक सामंजस्य अथवा असामंजस्य की स्थिति में पाए जाने वाले व्यक्ति।
   (vi) सामाजिक संरचना के अंतर्गत विभिन्न स्थितियों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति।
   (vii) जांच पड़ताल करने वाले व्यक्तियों के अपने अनुभव।
   (viii) अजनबी एवं नवागंतुक।

   अनुभवी, विशिष्ट जानकारी रखने वाले एवं विषय के ज्ञाताओं का चुनाव अत्यंत सावधानीपूर्वक करना चाहिए इससे शोध के लिए प्राथमिक तो उपलब्ध होते ही हैं तथा ये शोध को नई दिशा भी प्रदान करने में सहायक हैं।

3. **अंतर्दृष्टि प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण** : अन्वेषणात्मक शोध की एक महत्वपूर्ण अनिवार्यता अंतदृष्टि प्रेरक घटनाओं का संकलन, वर्गीकरण एवं

विश्लेषण करना है, इससे अध्ययन विषय को व्यावहारिक बनाया जा सकता है तथा साथ ही उपकल्पना के निर्माण व वास्तविक शोध कार्य में बहुत कुछ स्पष्ट एवं सरल कुछ व्यक्तिगत एवं कुछ व्याधिकीय विशेष गुण सिद्ध होते हैं। फ्रायड ने घटनाओं के गहन विश्लेषण के द्वारा ही एक ऐसी अंतर्दृष्टि प्राप्त की जिसके द्वारा वह मानव व्यवहारों को कहीं अधिक सफल रूप से स्पष्ट कर सका।

4. **एकल विषय अध्ययन**—अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप की एक और महत्वपूर्ण पद्धति एकल विषय अध्ययन है। इसका तात्पर्य है किसी एक घटना, मामले, समस्या, समूह, व्यक्ति या संस्था का सर्वांगीण एवं गहन अध्ययन करना। इस प्रकार एकल विषय अध्ययन मूल रूप से शोधकर्ता द्वारा विशिष्ट इकाई का अध्ययन करना है। इसमें उस इकाई का समग्रता से एवं गहन अध्ययन किया जाता है। अतः यह मूल रूप से एक अन्वेषणात्मक पद्धति है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अन्वेषणात्मक अनुसंधान प्रारूप मूलतः उन आधारों को प्रस्तुत करता है जिससे एक सफल शोध कार्य किया जा सकता है।

अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के प्रयोजन

अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के निम्नलिखित कार्य, लक्ष्य एवं प्रयोजन होते हैं—

1. अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का प्रथम कार्य महत्वपूर्ण शोध प्ररचना के विषयों एवं समस्याओं की ओर शोधकर्ताओं का ध्यान दिलाना है।
2. इसका द्वितीय कार्य शोध की संभावनाओं एवं क्षेत्र का फैसला करना है।
3. इसका तृतीय कार्य पूर्व—निर्धारित अवधारणाओं एवं उपकल्पनाओं का तात्कालिक दशाओं में परीक्षण एवं निरीक्षण करना है।
4. इसका चौथा कार्य शोध से संबंधित विभिन्न शोध पद्धतियों की उपयुक्तता, संभावनाओं को स्पष्ट करना है।
5. इसका पांचवां कार्य शोध प्रारूप के लिए कई नवीन समस्याओं से संबंधित व्यावहारिक एवं उपयोगी उपकल्पना का निर्माण करना है।
6. इसका छठा उद्देश्य शोध प्रारूप की योजना प्रारूप तैयार करने के लिए प्राथमिक एवं आरंभिक सामग्री प्रदान करना है।
7. इसका सातवां कार्य प्राथमिक सामग्री प्रदान करके शोध—प्ररचना अथवा प्रारूप के क्षेत्रों की प्रगति करना है।
8. इसका आठवां कार्य अथवा उद्देश्य शोध से संबंधित प्राथमिक सूचनाएं एवं सामग्री प्रदान करके शोध के कार्य को एक निश्चित दिशा प्रदान करना है।
9. इसका नवां उद्देश्य किसी विशेष समस्या के व्यापक एवं गहन अध्ययन के लिए एक व्यावहारिक आधारशिला तैयार करना है।
10. इसका दसवां उद्देश्य अथवा कार्य भविष्य में आने वाले शोध के विषय प्रधानता या प्रमुखता की स्थापना करना है।

टिप्पणी

11. इसका ग्यारहवां उद्देश्य महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर शोधकर्ता को प्रेरित करना है।
12. इसका बारहवां कार्य अथवा उद्देश्य समस्या के किसी एक क्षेत्र में अध्ययन को केंद्रित करना है।
13. इसका एक महत्वपूर्ण कार्य नवीन शोध कार्यों को एक निश्चित दिशा प्रदान करने के लिए नवीन उपकल्पनाओं को विकसित करना है।
14. इसका कार्य विज्ञान की परंपरागत सीमाओं में सुधार करके उसके अध्ययन क्षेत्र का विस्तार करना है।
15. इसका कार्य अंतर्दृष्टिपूर्ण प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण करना एवं अध्ययन की नवीन संभावनाओं को विकसित करना है।

2. व्याख्यात्मक शोध प्रारूप

व्याख्यात्मक शोध प्रारूप का संबंध समस्या के 'क्यों है' अथवा 'कैसे है'? प्रश्नों के उत्तरों से है। अर्थात व्याख्यात्मक शोध में किसी घटना अथवा समस्या के 'क्यों' तथा 'कैसे' प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं, जैसे क्यों लोग किसी एक उत्पाद 'क' को चुनते हैं और उत्पाद 'ब' को नहीं। क्यों कुछ ग्राहक किसी कंपनी की सेवा से संतुष्ट हो जाते हैं और दूसरे नहीं। व्याख्यात्मक शोध प्रारूप में इसी प्रकार के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं अर्थात समस्या के कारणों एवं परिस्थितियों का वर्णन किया जाता है। अतः इस प्रकार का शोध व्याख्या करता है। यह कारण और दशा के सिद्धांत पर कार्य करता है। अर्थात वे कौन–कौन सी दशाएं हैं जिनमें कोई समस्या घट सकती है अथवा किन–किन कारणों से अमुक समस्या के घटने की संभावना है। इस प्रकार व्याख्यात्मक शोध प्रारूप शोध समस्या के कारणों तथा परिणामों की व्याख्या प्रस्तुत करता है।

व्याख्यात्मक शोध प्रारूप के उद्देश्य

1. व्याख्यात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य अध्ययन समस्या के 'क्यों' और 'कैसे' प्रश्नों का उत्तर देना है। व्याख्यात्मक शोध अन्य प्रकार के शोध प्रारूपों अर्थात (विवरणात्मक एवं अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप) की तुलना में आगे बढ़कर प्रभावशाली तरीके से वैज्ञानिक अध्ययन पर बल देता है। एक उदाहरण के रूप में व्याख्यात्मक शोध इस बात का अध्ययन होगा कि कुछ शहरों में गश्ती पुलिस की बढ़ती संख्या और वहां अपराध कम होने के बीच संबंध ज्ञात करना अथवा कुछ कैदी जेलों में ड्रग्स लेते हैं जबकि कुछ बिल्कुल नहीं लेते। इनका व्याख्यात्मक अध्ययन इनके कारणों को खोजने के कारण शोधकर्ता के लिए रुचिपरक हो जाता है।
2. व्याख्यात्मक शोध प्रारूप का दूसरा उद्देश्य तथ्यों की विस्तार से चर्चा करना है न कि केवल अभिलेखित करना। यह तथ्यों, घटनाओं के पीछे के कारणों की व्याख्या करने में सक्षम होता है। इसके अतिरिक्त यदि किसी विशेष घटना अथवा तथ्य के पीछे अनेक कारण हैं तो यह इन सभी में से सबसे उपयुक्त कारणों को

टिप्पणी

खोजने में भी समर्थ रहता है। इसके अतिरिक्त यदि किसी घटना के घटित होने का कारण (अवधारणा अथवा सिद्धांत) ही मौजूद है तो यह उन अवधारणाओं अथवा सिद्धांतों का परीक्षण करता है। यदि परीक्षण का परिणाम पूर्व अवधारणा या सिद्धांत के अनुरूप होता है, तब वह अवधारणा अथवा सिद्धांत सत्य सिद्ध होता है। यदि परिणाम इन अवधारणाओं अथवा सिद्धांतों से मेल नहीं खाता तो ये असत्य सिद्ध हो जाते हैं और वैज्ञानिक पद्धति द्वारा उस घटना का सैद्धांतिक हल प्रस्तुत किया जाता है।

3. व्याख्यात्मक शोध का एक अन्य उद्देश्य अध्ययन विषय अथवा समस्या के संबंध में संभव अवधारणाएं और सिद्धांतों का निर्माण करना है। यह कार्य वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से किया जाता है जिसमें परीक्षणों और साक्ष्यों के माध्यम से विचारों को प्रमाणित किया जाता है और एक ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है जहां अध्ययन से संबंधित नये क्षेत्रों तथा नये आयामों का पता चलता है जिससे विज्ञान मानव के जीवन का गुणात्मक विकास करने में सक्षम होता है।
4. व्याख्यात्मक शोध एक प्राथमिक पद्धति है जिसमें मानव जीवन में गुणात्मक सुधार संभव हो सका है और इसका प्रभाव क्षेत्र विज्ञान के परे दूसरे क्षेत्रों में भी फैल चुका है जिसमें अध्ययन विषय के बारे में हर संभव तार्किक हल प्रस्तुत किया जाता है।
5. जब हमारे सामने कोई ऐसा तथ्य आता है जिसके बारे में पहले से पता हो और उसका वर्णन किया जा चुका हो तब हम उन तथ्यों के घटित होने के कारणों का पता लगाने लगते हैं कि वे तथ्य क्यों हैं? अर्थात उनके इस तरह होने के क्या कारण हैं? यह 'क्या'? जानने की इच्छा इस प्रकार के शोध का प्रमुख उद्देश्य है। यह शोध अन्वेषणात्मक और वर्णनात्मक शोध करने के साथ ही उस घटना के घटित होने के कारणों को जानने का प्रयास करता है। इस प्रकार व्याख्यात्मक शोध कार्य और कारणों की व्याख्या करता है। उदाहरण के लिए वर्णनात्मक शोध इस बात की खोज करता है कि 10 प्रतिशत अभिभावक अपने बच्चों को डांटते अथवा मारते पीटते हैं जबकि व्याख्यात्मक शोध में इस कारण का पता लगाया जाता है कि अभिभावक अपने बच्चों को क्यों डांटते अथवा मारते पीटते हैं।

व्याख्यात्मक शोध के कार्य

- तथ्यों की न केवल व्याख्या करना बल्कि अभिलेखित करना। तथ्यों की क्यों के आधार पर व्याख्या करना।
- विभिन्न व्याख्याओं में से सबसे उत्तम व्याख्या को ज्ञात करना।
- सिद्धांतों की सत्यता की जांच करना अथवा अवधारणाओं, तथ्यों का परीक्षण करना।
- किसी घटना के घटित होने के कारण अस्तित्व में आये विस्तृत एवं सैद्धांतिक ज्ञान को प्राप्त करना।

टिप्पणी

- किसी घटना अथवा समस्या पर तथ्य के संबंध में अपनी अवधारणा अथवा सिद्धांत का निर्माण करना तथा उन्हें प्रतिपादित करना।
- सिद्धांतों या तथ्यों को नये क्षेत्रों, नयी समस्याओं व नये तथ्यों पर प्रयोग करना तथा परीक्षण करना।

अवधारणाओं और व्याख्याओं की सत्यता के संदर्भ में साक्ष्य प्रस्तुत करना सिद्धांतों अथवा उपकल्पनाओं या संभावनाओं की सैद्धांतिक जांच करना व्याख्यात्मक शोध प्रारूप शोध करने की एक पद्धति या तरीका है जिसमें निर्भर और स्वतंत्र चरों के बीच संबंध या सहसंबंध की प्रक्रिया को जानना और समझा जाना मुख्य उद्देश्य के रूप में किया जाता है।

इस प्रकार के शोध का केंद्रीय बिंदु दो या अधिक घटनाओं, समस्याओं अथवा तथ्यों के बीच संबंध ज्ञात करना तथा व्याख्या करना है। यह तथ्यों के बीच संबंधों की तार्किक एवं बौद्धिक समझ के आधार पर व्याख्या करना है। इस प्रकार के शोध का कार्य शोध समस्या जिसका अवलोकन किया जाना है कि बौद्धिक तस्वीर विकसित करना है व शोध संभावनाओं को ज्ञात करना है तथा इन शोध की संभावनाओं का विभिन्न प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में परीक्षण व निरीक्षण करना है तथा विश्लेषणात्मक विचार प्रस्तुत करना है। इस प्रकार व्याख्यात्मक शोध प्रारूप की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक उपयोगिता है।

यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि व्याख्यात्मक शोध तथा विवरणात्मक शोध अन्वेषणात्मक शोध से अलग है। जहां मुख्य रूप से व्याख्यात्मक शोध में शोध समस्या के 'क्यों है'? प्रश्न का उत्तर दिया जाता है वहीं अन्वेषणात्मक शोध समस्या को समझने तथा उससे संबंधित ज्ञान में वृद्धि करने से संबंधित सूचनाओं को एकत्रित करना है। व्याख्यात्मक शोध अध्ययन तथ्यों, घटनाओं अथवा समस्याओं के कारण और परिणामों के बीच संबंध की जानकारी देता है। विवरणात्मक शोध का मुख्य उद्देश्य शोध के विभिन्न चरों के बीच संबंध को बताता है। इसमें मुख्य रूप से 'क्या है'? 'कब है'? 'कहां है'? 'कितना है'? प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है, अर्थात यह समस्या का सुस्पष्ट एवं क्रमबद्ध वर्णन करता है।

3. वर्णनात्मक शोध प्रारूप

सामाजिक विज्ञान में किसी विषय अथवा समस्या के शोध में सामान्य नियमों का अन्वेषण उनकी विवेचना व विशिष्ट परिस्थितियों का निदान खोजना शोधकर्ता का प्रमुख उद्देश्य होता है। वर्णनात्मक शोध प्रारूप का उद्देश्य किसी अध्ययन समस्या के बारे में यथार्थ तथ्य एकत्रित करके उन्हें एक विवरण के रूप में प्रस्तुत करना होता है। सामाजिक विज्ञान में अध्ययन से संबंधित अनेक विषय इस प्रकार के होते हैं जिनका पूर्व में कोई गहन अध्ययन प्राप्त नहीं होता। ऐसी दशा में यह आवश्यक होता है कि अध्ययन से संबंधित व्यक्ति, समूह, समुदाय अथवा वर्ग विशेष के बारे में अधिक से अधिक सूचनाएं एकत्रित करके उन्हें जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। इसी कारण इस प्रकार के शोध को वणर्नात्मक शोध कहा जाता है तथा इसके प्रारूप को वणर्नात्मक शोध प्रारूप अथवा विवरणात्मक शोध प्रारूप भी कहा जाता है। इसकी

टिप्पणी

प्रमुख विशेषता पूर्ण और यथार्थ सूचना प्राप्त करना होता है। सामाजिक शोध मूलतः दो प्रकार की समस्याओं से संबंधित होता है–प्रथम यह समस्या से संबंधित सामान्य नियमों की खोज करता है। द्वितीय यह समस्या विशिष्ठ परिस्थितियों के निदान से संबंधित होती है। प्रथम का अध्ययन वणर्नात्मक शोध प्रारूप के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समस्या या विषय के संबंध में वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करना वर्णनात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य होता है।

वर्णनात्मक शोध प्रारूप के द्वारा घटनाओं अथवा तथ्यों को उसी रूप में प्रस्तुत करने पर बल दिया जाता है, जैसा कि वे वास्तव में है। विवरणात्मक शोध प्रारूप के तहत जनगणना प्रतिवेदन एवं किसी विषय से जुड़े लोगों के विचारों के अध्ययन को रखा जा सकता है। इस तरह की शोध प्रचना में प्रश्नावली, साक्षात्कार अनुसूची तथा अवलोकन इत्यादि के माध्यम से तथ्य अथवा सामग्री संकलित की जाती है साथ ही इसमें घटना का उल्लेख किया जाता है, जिसके आधार पर यथार्थता का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार वर्णनात्मक या विवरणात्मक अनुसंधान प्रारूप के लिए आवश्यक है कि विषय के संबंध में यथार्थ एवं पूर्ण सूचनाएं प्राप्त की जाएं। ये सूचनाएं वैज्ञानिक विधियों के आधार पर प्राप्त की जाती हैं क्योंकि इनका आधार वास्तविक एवं विश्वसनीय तथ्य होते हैं।

विवरणात्मक एवं निदानात्मक अध्ययन प्रारूपों में एक मुख्य अंतर यह है कि निदानात्मक प्रारूप कारणात्मक संबंधों को व्यक्त करने तथा सामाजिक क्रिया के लिए इन विभिन्न कारणों के आशयों का पता लगाने से संबंधित है।

वर्णनात्मक शोध प्रारूप की विशेषताएं

वर्णनात्मक शोध प्रारूप की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं–

1. इसमें शोधकर्ता का परिप्रेक्ष्य मानविकी न होकर वैज्ञानिक होता है।
2. यह शोध प्रारूप नवीन अध्ययनों के लिए अत्यधिक उपयोगी है। अर्थात किसी विषय पर समस्या का जब पहले पहल अध्ययन किया जाता है, तो सबसे प्रारंभ में उसका वर्णनात्मक अनुसंधान किया जाता है।
3. इसमें शोध अध्ययन की इकाई का संपूर्ण अध्ययन नहीं किया जाता है बल्कि उसके किसी एक पक्ष या कुछ पहलुओं का ही अध्ययन किया जाता है।
4. वर्णनात्मक शोध प्रारूप में क्या है का अध्ययन किया जाता है? अर्थात इस प्रकार के शोध में शोधकर्ता घटना का वस्तुनिष्ठ तथा निष्पक्ष अध्ययन करता है।
5. इसमें उपकल्पना का निर्माण संभव नहीं होने की वजह से उपकल्पना नहीं बनाई जाती है।
6. ऐसे अनुसंधान में शोधकर्ता की भूमिका एक सुधारक अथवा भविष्यवक्ता की न होकर एक तटस्थ अवलोकनकर्ता की होती है।
7. इसकी एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें अध्ययन से संबंधित विषय अथवा समस्या के अधिकाधिक पक्षों को विस्तार से स्पष्ट करना होता है।

टिप्पणी

वर्णनात्मक शोध प्रारूप की उपरोक्त विशेषताओं से पता चलता है कि समस्या की विषय के संबंध में वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करना वर्णनात्मक शोध प्रचना अथवा प्रारूप का मुख्य उद्देश्य होता है। वर्णनात्मक, शोध–प्रारूप के निर्माण में निम्न बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है–

1. इसमें विशिष्ट तथ्यों के विषय में अति संतुलित दृष्टिकोण अपनाया जाए।
2. शोधकर्ता को अपने शोध के विवरण में अतिशयोक्ति तथा अतिरंजना से बचना चाहिए।
3. अध्ययन विषय का चुनाव सावधानीपूर्वक करना चाहिए। वस्तुतः ऐसे शोध विषयों का चुनाव किया जाता है जिससे संबद्ध, निर्भर तथा आवश्यक योग्य तथ्यों को अर्जित किया जा सके।
4. इसमें तथ्यों के एकत्रीकरण की प्रविधियों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाए अर्थात तथ्यों के संकलन के लिए उपयुक्त एवं व्यावहारिक अध्ययन प्रविधियों का चुनाव किया जाना चाहिए। इसके अलावा अपने शोध प्रयत्न को सीमित किया जाना आवश्यक है जिससे शोध पर होने वाले अत्यधिक व्यय को कम किया जा सके। अनावश्यक पदों पर न तो श्रम, न समय एवं न ही धन व्यय किया जाए। इसके अभाव में शोध कार्य में वैज्ञानिकता पैदा होने के स्थान पर उसके दार्शनिक तत्वों का अधिक सम्मिलन हो जाता है।

वर्णनात्मक शोध प्रारूप के उद्देश्य

वर्णनात्मक शोध प्रचना के भी कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. किसी समूह अथवा परिस्थिति के लक्षणों का परिशुद्ध वर्णन
2. किसी चर की आवृत्ति का निर्धारण
3. चरों के साहचर्य के विषय के ज्ञान एकत्रित करना।

1. **किसी समूह अथवा परिस्थिति के लक्षणों का परिशुद्ध वर्णन**– वर्णनात्मक शोध प्रारूप में किसी समूह, जैसे कोई राजनीतिक दल, कोई जाति, विशेष वर्ग अथवा किसी परिस्थिति, जैसे हड़ताल, चुनाव, आंदोलन इत्यादि का क्रमबद्ध वर्णन एवं व्याख्या की जाती है। यह ज्ञान गुणात्मक एवं संख्यात्मक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। गुणात्मक ज्ञान के आधार पर यह ज्ञात होता है कि किस चुनाव के परिणामों पर किस राजनीतिक दल के प्रभाव थे अथवा वे किस जाति व वर्ग विशेष के थे। संख्यात्मक ज्ञान संख्या पर आधारित होता है। साधारणतः यह किसी चर की आवृत्ति होती है, जैसे किसी चुनाव में कितने लोगों ने भाग लिया। एक उम्मीदवार के पक्ष में कितने मत पड़े, यह संख्यात्मक ज्ञान है।
2. **किसी चर की आवृत्ति का निर्धारण**–किसी चर की आवृत्ति निश्चित करना, इस प्रारूप में अध्ययन विषय का या समस्या का हटाना पूर्व ज्ञान जो पूर्व में किए गए अन्वेषणात्मक शोध अथवा दूसरे लोगों द्वारा किए गए अध्ययन से प्राप्त होता है, हमारे शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट कर देता है। अर्थात शोधकर्ता निश्चित रहता

टिप्पणी

है कि उसे अपने शोध में किन लक्षणों का वर्णन करना है। वस्तुतः समस्त लक्षणों का वर्णन किसी एक अध्ययन में नहीं होता है। उदाहरण के लिए किसी संख्या के विभिन्न भागों का आकार एक महत्वपूर्ण लक्षण हो सकता है किंतु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक अध्ययन में इसका समावेश हो। किसी एक ही समूह का अध्ययन अलग–अलग दृष्टिकोण से किया जा सकता है और प्रत्येक के लिए प्रथम पक्षों की आवृत्ति देखनी होती है इसी प्रकार किन चरों की आवृत्ति देखनी है और किन चरों की आवृत्ति नहीं देखनी यह भी निश्चित होता है।

3. **चरों के साहचर्य के विषय में ज्ञान संकलन**–वर्णनात्मक शोध प्रारूप का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि इसके द्वारा चरों के साहचर्य के विषय में ज्ञान अर्जित किया जाता है। उदाहरण के लिए विकासशील देशों में, शिक्षा और उच्च जीवन शैली में धनात्मक साहचर्य पाया जाता है। अर्थात अमीर व्यक्ति सामान्यतः अधिक शिक्षित होते हैं। अतः वर्णनात्मक शोध प्रचरना के अंतर्गत इसी प्रकार के विविध चरों के बीच साहचर्य का पता लगाता है। अर्थात यह देखते हैं कि विभिन्न चरों के बीच साहचर्य है या नहीं और यदि है तो किस प्रकार का। सामान्यतः सभी चरों के साहचर्य को देख पाना संभव नहीं हो पाता है। अतः उन्हीं चरों का साहचर्य देखा जाता है जहां हम इस प्रकार की आशा करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विवरणात्मक प्रारूप विवरणात्मक उपकल्पनाओं की परीक्षा करता है। साथ ही विवरणात्मक अध्ययन कार्य कारण संबंधी उपकल्पनाओं के निर्माण में भी सहायक साबित होता है। जैसे यदि हम किन्हीं चरों में बहुत अधिक साहचर्य पाएं तो हम यह उपकल्पना बना सकते हैं कि उनमें से एक कारण है और दूसरा कार्य। इस प्रकार की उपकल्पनाओं का परीक्षण एक अधिक विकसित प्रचरना अथवा प्रारूप के द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त ऐसा संयोग से भी हो सकता है।

वर्णनात्मक शोध प्रारूप के चरण

जैसा कि आप जानते हैं कि शोध प्रचरना के चरण का अभिप्राय होता है कि किसी भी शोध प्रारूप को किस तरीके से आयोजित किया जाए। वर्णनात्मक शोध प्रारूप के निर्माण से भी कुछ चरणों की आवश्यकता होती है, जो निम्नांकित हैं–

1. **उद्देश्यों की व्याख्या**– इसके प्रथम चरण में शोध से संबद्ध मौलिक सवालों का स्पष्टीकरण एवं लक्ष्यों को परिभाषित किया जाता है, जिससे की असंबद्ध तथा अनावश्यक तथ्यों का संकलन न हो। इससे उपकल्पना का सृजन नहीं किया जाता है बल्कि शोध के लक्ष्यों को स्पष्ट एवं सुनिश्चित किया जाता है तथा साथ ही समस्या की व्याख्या भी की जाती है।

2. **प्रविधियों का चयन**–इसके दूसरे चरण में शोध उद्देश्यों की प्रकृति के अनुरूप तथ्य तथा सामग्री संग्रहण हेतु विविध प्रविधियों में से उपयुक्त प्रविधियों का चुनाव किया जाता है। तथ्य अथवा आंकड़े या सामग्री संकलन की उपर्युक्त विधियों के चुनाव से विषय से संबंधित निर्भर आंकड़ों, योग्य तथ्यों तथा प्रमाणों के संकलन करने में कोई समस्या नहीं रहती है। विभिन्न शोध पद्धतियों के अपने गुण व महत्व

टिप्पणी

हैं इसलिए समस्या तथा लक्ष्य के अनुरुप कितनी उपयुक्त पद्धतियों का चयन किया गया इस पर संपूर्ण शोध की सफलता निर्भर करती है।

3. **निदर्शनों का चुनाव**– जब अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत हो तब उसे सीमित करने के लिए निदर्शन का प्रयोग किया जाता है। इसका विस्तृत अध्ययन आगे की इकाई में किया गया है। वर्णनात्मक शोध प्रारूप के तीसरे चरण में अध्ययन क्षेत्र का निदर्शन के आधार पर चुनाव किया जाता है। निदर्शन के द्वारा विस्तृत अध्ययन क्षेत्र कुछ प्रतिनिधि इकाइयों को चुनकर उसका अध्ययन किया जाता है; जैसे संपूर्ण जनसंख्या की कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का अध्ययन करके जनसंख्या के विषय में विश्वसनीय निष्कर्ष निकाला जा सकता है।
4. **सामग्री का संकलन**– इसका चौथा चरण शोध विषय से संबंधित तथ्य अथवा सामग्री का संकलन करना है। सामग्री संकलन प्रश्नावली, अनुसूची, अवलोकन तथा साक्षात्कार आदि प्रविधियों में से किसी एक पद्धति को चुनकर किया जा सकता है। प्राप्त तथ्यों की प्रमाणिकता जांचने के लिए अन्य पद्धतियों का भी सहारा लिया जा सकता है ताकि वर्णनात्मक विवरण में अनावश्यक तथ्य शामिल न हो सकें।
5. **तथ्यों का वर्गीकरण तथा विश्लेषण**– इसका पांचवां चरण शोध कार्य में एकत्रित किए गए तथ्य अथवा सामग्री का वर्गीकरण तथा विश्लेषण करना होता है। संचित किए गए तथ्यों अथवा आंकड़ों को उनकी प्रकृति तथा गुणों के आधार पर भिन्न–भिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है। उन्हें समानता के आधार पर सारणीबद्ध किया जाता है। तथ्यों के गुण संबंध देखने के लिए सांख्यकी प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है तत्पश्चात इनका विश्लेषण कर निष्कर्ष विवरण प्रस्तुत किया जाता है।
6. **प्रतिवेदन लिखना**– इसका अंतिम चरण शोध प्रतिवेदन तैयार करना है। इसमें सामग्रियों, तथ्यों तथा एकत्रित सूचनाओं को क्रमबद्ध रूप से वर्णनात्मक रूप में लिखा जाता है। संबंधित विषय में मान्यताप्राप्त भाषा तथा शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। जिससे लोग उसका वही आशय समझें जो शोधकर्ता उन्हें समझाना चाहता है। शोध विषय के संबंध में तथ्ययुक्त विवरण तथा साधारण निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है। अतः आवश्यक है कि शोधकर्ता अत्यधिक शब्दों का प्रयोग न कर उचित एवं सुस्पष्ट तथा तार्किक शब्दों का प्रयोग कर निष्कर्षों की व्याख्या प्रस्तुत करे।

उपरोक्त चरणों से सफलतापूर्वक गुजरने के उपरांत ही वर्णनात्मक शोध के लक्ष्यों या उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

शोध प्रारूप के मुख्य तत्व तथा इनके बीच संबंध

शोध प्रारूप के मुख्य तत्व और उनके बीच के संबंध को स्पष्ट रूप से समझने के लिए निम्न चित्र प्रस्तुत है। इसके अतिरिक्त आंकड़ों के संग्रहण और आंकड़ों के विश्लेषण को प्रदर्शित करने के लिए निम्न चित्र उपयोगी हो सकता है–

शोध उद्देश्य	संकलन योग्य आंकड़े	आंकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया	सूचना प्रदाता
प्रारूप का प्रकार	व्याख्यात्मक	अन्वेषणात्मक	वर्णनात्मक
आंकड़ों के संकलन की विधियां	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचनात्मक या असंरचनात्मक) अवलोकन तथ्यों का विश्लेषण अन्य उपयुक्त प्रविधियां	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचनात्मक या असंरचनात्मक) अवलोकन तथ्यों का विश्लेषण अन्य उपयुक्त प्रविधियां	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचनात्मक या असंरचनात्मक) अवलोकन तथ्यों का विश्लेषण अन्य उपयुक्त प्रविधियां

यदि आंकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया शोध उद्देश्य के अगले खाने (क्रम) में रखें तो हमें यह पता चल सकता है कि हमारे शोध के लिए कौन–कौन से आंकड़े उपयोगी हैं अर्थात किन आंकड़ों के द्वारा समस्या का समाधान किया जा सकता है। यहां उपरोक्त चित्र से पता लगता है कि आंकड़ों को क्रमबद्ध तथा उपयोगी बना सकें। उपरोक्त चित्र में सूचना प्रदाता इस बात को प्रदर्शित करता है कि हमारे शोध के लिए आवश्यक एवं उपयोगी सूचनाओं के स्रोत क्या हों।

ये सूचना प्रदाता व्यक्ति भी हो सकते हैं, सूचना प्रदाता कोई दूसरा शोधकर्ता या सिद्धांतवेत्ता भी हो सकता है जो हमारे अध्ययन को और सामान्य स्तर से प्रारूपित कर सके। इस प्रकार एक शोध का प्रारूप विभिन्न तरीके से तैयार किया जा सकता है और इसके एक से अधिक तार्किक रूप हो सकते हैं परंतु हमें एक ऐसा प्रारूप तैयार करना होता है जो व्यक्तिगत तथा जनसामान्य के लिए रुचिपरक व उपयोगी हो। यहां यह आवश्यक है कि हम चाहे किसी भी तरीके से शोध प्रारूप तैयार करें शोध के मूल उद्देश्यों को प्राप्त करना ही इसका मुख्य कार्य होना आवश्यक है।

अन्वेषणात्मक अनुसंधान प्रारूप रचना की विधियां यहां दी जा रही हैं–

अन्वेषणात्मक अनुसंधान प्रारूप रचना की विधियां

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण या सिद्धावलोकन	**आनुभविक व्यक्तियों से संरक्षण**	**एकल विषय अध्ययन**
1. संदर्भ ग्रंथ सूची 2. लेखों के सारांश 3. अनुक्रमाणिकता	1. अजनबी या नवागंतुक 2. सीमांत व्यक्ति 3. काल दृष्टा या संक्रमणकाल का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति 4. आदर्श व्यक्ति 5. समस्याग्रस्त व्यक्ति	

टिप्पणी

6. भिन्न–भिन्न सामाजिक स्थितियों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति
7. जांच पड़ताल करने वाले व्यक्ति

अन्वेषणात्मक व विवरणात्मक अनुसंधान प्रारूप के उद्देश्यों में भेद

अनुसंधान विषय की जानकारी प्राप्त करना	समूह या परिस्थिति के लक्षणों का परिशुद्ध वर्णन
अनुसंधान की संभावनाओं एवं क्षेत्र का निर्णय	किसी चर की आवृत्ति निश्चित करना
अवधारणाओं का स्पष्टीकरण व नवीन अवधारणाओं की खोज	चरों के मध्य साहचर्य के बारे में ज्ञात करना
उपकल्पनाओं का निर्माण	

अपनी प्रगति जांचिए

3. शोध प्रारूप से शोध कार्य कैसा हो जाता है?
   (क) सत्य (ख) विश्वसनीय
   (ग) प्रमाणिक (घ) अप्रमाणिक
4. किस शोध प्रारूप का संबंध समस्या के 'क्यों है?' अथवा 'कैसे है?' प्रश्नों के उत्तर से है?
   (क) अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप (ख) वर्णनात्मक शोध प्रारूप
   (ग) व्याख्यात्मक शोध प्रारूप (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (ग)
4. (ग)

3.5 सारांश

अनुसंधान में अधिकतर परिस्थितियां ऐसी आती हैं जिनमें हम केवल निदर्शन के आधार पर विश्वसनीय निष्कर्ष निकाल सकते हैं बशर्ते कि निदर्शन का चयन वैज्ञानिक ढंग से किया गया हो। अधिकतर अनुसंधान परिस्थितियों में निष्कर्ष निकलने के लिए केवल निदर्शन को लेना ही पर्याप्त नहीं होता किंतु समस्त स्थितियों का अध्ययन करना अनावश्यक होता है।

समग्र में से चुने गए ऐसे 'कुछ' को जोकि समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करता है, निदर्शन कहते हैं।

सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता निदर्शन आदि के नियमों का प्रयोग करता है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसे सामान्य ज्ञान एवं तर्क का आश्रय लेना छोड़ देना चाहिए। बिना सामान्य ज्ञान एवं तर्क के कोई भी अनुसंधानकर्ता अपने क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता है इसीलिए निदर्शनों को सही रूप देने के लिए सामान्य ज्ञान एवं तर्क का भी आश्रय लेना अधिक उपुयक्त होगा।

प्रायिकता (संभावित) निदर्शन प्रतिचयन का अर्थ है ऐसा प्रतिचयन जिसमें आवश्यक रूप से इस नियम का पालन हो कि पूरी जनसंख्या की हर इकाई को प्रतिदर्श में चुनाव का समान एवं स्वतंत्र अवसर प्राप्त होगा।

वैज्ञानिक विधि में प्रायिकता विधि को ही मान्यता दी जाती है, क्योंकि बहुत सी सांख्यिकीय विधियां उन्हीं आंकड़ों पर प्रयोग की जा सकती हैं जो यादृच्छिक अथवा प्रायिकता विधि से संकलित की गई हों।

अप्रायिकता विधियां अधिक सुविधाजनक होती हैं। इन विधियों में शोधकर्ता को न तो प्रायिकता विधियों के सूत्रों का प्रयोग करना पड़ता है और न ही किसी कठोर प्रक्रिया का पालन करना पड़ता है। अप्रायिकता प्रतिचयन में शोधकर्ता का बहुत सा धन एवं समय भी बचता है।

यादृच्छिक निदर्शन एवं संभावना निदर्शन को एक पर्यावाची के रूप में प्रयोग किया जाता है। निदर्शन समग्र के एक अंश (अथवा निदर्शन) को निकालने का एक ऐसा ढंग है जो जनसंख्या अथवा समग्र के प्रत्येक सदस्य के चुनाव को ज्ञात संभाविता प्रदान करता है।

नियमित अंकन प्रणाली सरल यादृच्छिक निदर्शन की एक महत्वपूर्ण विधि मानी जाए या नहीं इस संबंध में दो विपरीत धारणाएं हैं किंतु इस विवाद की चर्चा करने के पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि नियमित अंकन प्रणाली क्या है? इस पद्धति के द्वारा अनुसंधानकर्ता जब निदर्शन का चुनाव करता है तब सबसे पहले वह वर्गान्तर की गणना करता है।

स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन वस्तुतः यादृच्छिक निदर्शन पद्धति का ही विकसित रूप है। स्तरीकृत निदर्शन के अंतर्गत सरल यादृच्छिक निदर्शन पद्धति के द्वारा ही निदर्शन का चयन किया जाता है।

समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन में प्रत्येक निदर्शन की इकाइयां उसी अनुपात में ली जाती हैं जिस अनुपात में वे समग्र के अंतर्गत होती हैं, यदि विभिन्न स्तरों में भिन्न–भिन्न संख्या में इकाइयां पाई जाती हैं तो प्रत्येक स्तर के लिए समानुपातिकता बनाए रखना ज़रूरी है। प्रत्येक स्तर में से इकाइयों को एक स्थिर अनुपात में चुनते हैं एवं समानुपातिक निदर्शन अनुसंधानकर्ता को इस विषय में निश्चित होने की सामर्थ्य प्रदान करता है कि वह प्रत्येक स्तर से सही अनुपात में इकाइयों का चुनाव कर रहा है।

समग्र को पहले स्तरीकृत करने के बाद ही उनके प्रत्येक स्तर से स्तरीकृत निदर्श निकाला जाता है इसलिए समग्र के किसी भी महत्वपूर्ण समूह के, पूर्णरूपेण बाहर रह जाने की संभावना कम हो जाती है।

अभ्यंश निदर्शन या कोटा निदर्शन में यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न तत्व जिस अनुपात में समग्र में पाए जाते हैं उसी अनुपात में निदर्शन में भी आ जाए, किंतु इकाइयों का चयन आकस्मिक ही होता है।

आकस्मिक निदर्शन, निदर्शन का वह प्रकार है जो पूर्णरूप से मनमाने ढंग से किया जाता है अर्थात यह पद्धति पूर्णतः अवैज्ञानिक है। यहां अनुसंधानकर्ता अपनी इच्छानुसार निदर्शन सूची से आवश्यक संख्या में इकाइयों का चुनाव करता है। निदर्शन की इस प्ररचना में समय, धन एवं प्रयासों के व्यय में बचत तो अवश्य होती है किंतु इसमें पूर्वग्रह अधिक तथा सूक्ष्मता कम पाई जाती है।

शोध प्रारूप शोधकर्ता को शोध समस्या से संबंधित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर प्रदान करने में मदद करता है। यह शोध प्रारूप की यथासंभव प्रमाणिकता, विषयात्मकता, यथार्थता, निश्चयात्मकता एवं समय की बचत के साथ–साथ श्रम की भी बचत करने में मदद करती है।

शोध प्रारूप शोधकर्ता को न्यूनतम धन, समय एवं प्रयत्नों के माध्यम से अधिकतम शोध के लक्ष्यों को प्राप्त करने में पथ प्रदर्शन का कार्य तो करता ही है इसके अतिरिक्त यह शोध समस्या के निर्माण से लेकर निष्कर्षों तक निर्देशित नियंत्रित एवं संचालित करने में भी सहायक है। इसलिए यह आवश्यक है कि शोध प्रारूप का निर्माण भली भांति सोच समझकर किया जाए।

व्याख्यात्मक शोध प्रारूप का संबंध समस्या के 'क्यों है' अथवा 'कैसे है'? प्रश्नों के उत्तरों से है। अर्थात व्याख्यात्मक शोध में किसी घटना अथवा समस्या के 'क्यों' तथा 'कैसे' प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं, जैसे क्यों लोग किसी एक उत्पाद 'क' को चुनते हैं और उत्पाद 'ब' को नहीं। क्यों कुछ ग्राहक किसी कंपनी की सेवा से संतुष्ट हो जाते हैं और दूसरे नहीं।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **निदर्शन** : निदर्शन शोध की वह पद्धति है, जिसमें समस्त शोध से कुछ प्रतिदर्श का चुनाव इस प्रकार किया जाता है कि वह संपूर्ण शोध क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कर सके।
- **प्रायिकता (संभावित) निदर्शन** : प्रायिकता प्रतिदर्शन उसे कहते हैं जिसमें समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने की कितनी संभावना है यह ज्ञात रहता है और इसकी गणना की जा सकती है।
- **अप्रायिकता (असंभावित) निदर्शन** : अप्रायिकता प्रतिदर्शन में शोधकर्ता की सूझ–बूझ एवं विवेक पर आधृत प्रतिदर्श का चयन होता है।

- **शोध प्रारूप** : शोध कार्य में कार्य करने की योजना या शोध प्रक्रिया की रूपरेखा को शोध प्रारूप कहते हैं।

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. निदर्शन के स्वरूपों पर प्रकाश डालते हुए प्रायिकता एवं अप्रायिकता निदर्शन में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. निदर्शन की समस्याएं एवं निदान का उल्लेख कीजिए।
3. शोध प्रारूप को समझाते हुए इसके उद्देश्यों एवं विविध चरणों का विश्लेषण कीजिए।
4. यादृच्छिक निदर्शन को समझाते हुए इसकी मुख्य प्रविधियों का उल्लेख कीजिए।
5. स्तरीकृत निदर्शन को स्पष्ट करते हुए समानुपातिक एवं असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन पर अंतर बताइए।
6. उद्देश्य पूर्ण निदर्शन से क्या तात्पर्य है? इसकी विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इसके गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।
7. शोध प्रारूप को समझाते हुए इसके विभिन्न चरणों का उल्लेख कीजिए।
8. शोध प्रारूप के महत्व पर प्रकाश डालिए।
9. शोध प्रारूप के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. निदर्शन से क्या अभिप्राय है? इसकी मुख्य विशेषताएं बताइए।
2. निदर्शन प्रविधि के लाभ बताइए।
3. यादृच्छिक निदर्शन किसे कहते है?
4. प्रायिकता निदर्शन से आप क्या समझते है? इसकी मुख्य विशेषताएं बताइए।
5. अप्रायिकता निदर्शन को समझाते हुए इसकी विशेषताएं बताइए।
6. शोध–प्रारूप से क्या अभिप्राय है? इसकी मुख्य विशेषताएं बताइए।
7. एक अच्छे शोध प्रारूप में किन बातों का होना आवश्यक है?
8. शोध प्रारूप के मुख्य उद्देश्य क्या होते है?

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

टिप्पणी

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutledgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 4 सांख्यिकी : महत्व, क्षेत्र तथा ग्राफिक और आरेखीय प्रदर्शन

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 सांख्यिकी का महत्व, क्षेत्र एवं सीमाएं
  4.2.1 सांख्यिकी का अर्थ
  4.2.2 सांख्यिकी की प्रकृति
  4.2.3 सांख्यिकी का क्षेत्र
  4.2.4 सांख्यिकी का महत्व
  4.2.5 सांख्यिकी की सीमाएं
4.3 ग्राफिक और आरेखीय प्रदर्शन
4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.5 सारांश
4.6 मुख्य शब्दावली
4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

समाज को व्यवस्थित ढंग से चलाने एवं नियंत्रण करने के लिए आंकड़ों का प्रयोग करना आवश्यक है। आधुनिक युग में समस्त मानवीय प्राकृतिक तथ्यों को आंकड़ों के रूप में ही मापा एवं अध्ययन किया जा सकता है। संख्यात्मक तथ्य से भरे विश्व में प्रत्येक व्यक्ति समस्त निर्णय संख्यात्मक ज्ञान के आधार पर ही प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। वर्तमान संचार एवं कम्प्यूटर क्रांति के समय में ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में सांख्यिकी विधियों का प्रयोग एवं समंकों का ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक एवं परम उपयोगी हो गया है। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में भी यह अपेक्षा की जाती है कि विचारों के आदान-प्रदान में सांख्यिकीय ढंग को ही व्यवहार में लाया जाए। ज्ञान को स्पष्ट करने एवं उसे व्यापक रूप में रखने के लिए आंकड़ों का प्रयोग आवश्यक माना गया है। अतः सभ्यता के विकास में सांख्यिकी का योगदान सदैव ही महत्वपूर्ण रहा है। सांख्यिकी का संबंध ज्ञानार्जन की विधियों से है तथा ज्ञान को व्यक्त करने एवं उसे प्राप्त करने में सांख्यिकी का ही प्रयोग करना आवश्यक है।

विशाल समंक समूहों के अर्थों को सरल, स्पष्ट एवं व्यापक रूप में समझने में सहायता करना सांख्यिकीय विज्ञान का एक प्रमुख कार्य है। इस कार्य का निष्पादन करने के लिए अनेक सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है। जिनमें से समंकों का चित्रमय प्रदर्शन एक महत्वपूर्ण विधि है। नीरस समंकों को चित्रों के माध्यय से प्रदर्शित करके उन्हें अर्थपूर्ण तथा रोचक बनाकर उनकी विशेषताओं को स्पष्ट किया जा

टिप्पणी

सकता है। विभिन्न प्रकार के समंकों को प्रस्तुत करने में चित्रों का प्रयोग अत्यंत प्रभावी रहता है। जिस प्रकार किसी दृश्य का चित्र उसके शाब्दिक विवरण से अधिक श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार आंकिक तथ्यों का चित्रित प्रदर्शन उनकी विशेषताओं को अधिक श्रेष्ठ रूप में प्रदर्शित करता है।

इस इकाई में सांख्यिकी का अर्थ, उसकी प्रकृति व क्षेत्र, महत्व तथा ग्राफिक और आरेखीय प्रदर्शन सांख्यिकी मूल्यांकन को समझाया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सांख्यिकी का अर्थ, प्रकृति व क्षेत्र को समझ पाएंगे;
- सांख्यिकी के महत्व की विवेचना कर पाएंगे;
- ग्राफिक और आरेखीय प्रदर्शन का आकलन कर पाएंगे।

4.2 सांख्यिकी का महत्व, क्षेत्र एवं सीमाएं

सांख्यिकी वैज्ञानिक विधि की वह शाखा है जो प्राकृतिक तथ्यों के समग्रों की विशेषताओं संबंधी आगणन अथवा मापने से उपलब्ध समंकों से व्यवहार करती है। सांख्यिकी का क्षेत्र जो प्राचीन काल में केवल राज्य तक सीमित था वर्तमान समय में अत्यधिक व्यापक हो गया है। आज सांख्यिकी का क्षेत्र उन तमाम क्षेत्रों तक फैला हुआ है जहां संख्यात्मक समंकों अथवा तथ्यों का व्यवहार किया जाता है।

4.2.1 सांख्यिकी का अर्थ

सांख्यिकी राज्य से संबंधित है। इसके अंग्रेजी Statistics की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Statics, इटैलियन के Statista तथा जर्मन के Statistics से हुई है। तीन शब्दों का आशय राजनीतिक राज्य (Political State) से है, अर्थात सांख्यिकी का राज्य से गहरा तादात्म्य है। कुछ विद्वानों ने सांख्यिकी को राज्यशिल्प विज्ञान (Science of Statecraft) या सम्राटों का विज्ञान (Science of Kings) कहा है। Gottfried Achew all को Father of Statistics क्यों कहा जाता है। क्यों कि इन्होंने 17वीं शताब्दी में इस विषय का समुचित अध्ययन किया। William Petty ने सांख्यिकी को Poltical Arithmetic कहा है। Captain John Graunt, Casper Newman आदि ने इसके द्वारा जन्म-मरण संबंधी समस्याओं का अध्ययन किया। Cardan ने इसके द्वारा विभिन्न खेलों के जोखिमों तथा उनसे बचने के उपायों पर प्रकाश डाला। पास्कल (Pascal) तथा फार्मेट (Farmat) नामक गणितज्ञों के बीच निरंतर पत्र व्यवहार हुआ जो 'थ्योरी ऑफ प्रोबेबलिटी' की आधारशिला मानी जाती है।

James Bernculli तथा उसके भतीजे Daniel Benoulli ने Theory of Probability को वर्तमान रूप प्रदान किया। Abraham De Moive नामक फ्रांसीसी गणितज्ञ ने अपने मित्र की पहेलियां हल करते समय प्रसामान्य वक्र (Normal Curve) के रचना सिद्धांत की

निष्पत्ति की। इंग्लैंड में Galton ने मध्यांक (Median), चतुर्थांश (Quartile), चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation), प्रतीपगमन (Regression) तथा सह-संबंध (Correlation) को जन्म दिया। Fisher ने प्रसरण विश्लेषण (Analysis of variance) का प्रतिपादन किया। F-ratio उन्हीं के नाम पर जाना जाता है।

स्पष्ट है कि सांख्यिकी का उपयोग राज्य में जन्म-मरण की दर का रिकॉर्ड रखना, आय-व्यय का ब्यौरा रखना आदि अनेक प्रकार के कार्यों के लिए किया गया। समय की प्रगति के अनुसार इसके उपयोग का क्षेत्र भी व्यापक होता गया और सांख्यिकी का उपयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किया जाने लगा। आज सामाजिक विज्ञान में भी सांख्यिकी के द्वारा प्रदत्त संकलन तथा प्रदत्त विश्लेषण के विषय में महत्वपूर्ण निर्णय हो रहे हैं और मनोवैज्ञानिक और शिक्षाशास्त्री भी अपने अध्ययन में सांख्यिकी का उपयोग कर रहे हैं। सामाजिक विज्ञानों में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियां हमारे वर्णनों को अति सूक्ष्म (Precise) बनाती हैं। सांख्यिकी के बिना विज्ञान की शाखाओं का अध्ययन संभव नहीं है।

4.2.2 सांख्यिकी की प्रकृति

सांख्यिकी की प्रकृति से संदर्भित मूलभूत प्रश्न यह है कि 'सांख्यिकी विज्ञान है या कला है, या दोनों है।'

1. विज्ञान के रूप में सांख्यिकी

किसी विषय को विज्ञान' तभी कहा जा सकता है, जब-

- वह ज्ञान का क्रमबद्ध अध्ययन व्यवस्थित रूप से दे सके।
- उसमें कारणों और परिणामों के तहत क्रमिक एवं सामूहिक रूप से किसी ज्ञान का विश्लेषण संभव हो।
- उसके नियम तथा विधियां सर्वमान्य, व्यापक एवं सार्वभौमिक हों।
- पूर्वानुमानों तथा कल्पनाओं की उसमें पर्याप्त क्षमता हो।
- वह हमेशा प्रगतिशील रूप में प्रकट होता हो।

सांख्यिकी की प्रकृति वैज्ञानिक है, क्योंकि

- इसमें प्रत्येक प्रकार के विषयों का अध्ययन क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित है।
- संख्यात्मक तथ्यों के संकलन द्वारा घटनाओं का वर्णन करना और उनमें कारण परिणाम संबंध का विवेचन कर समुचित निष्कर्ष निकालना, सांख्यिकी की आधारभूत क्रियाएं हैं।
- सांख्यिकी के नियम अन्य विज्ञानों की भांति व्यापक एवं सार्वभौमिक हैं। ये प्रत्येक स्थान पर समान रूप से लागू किये जा सकते हैं। यथा- महांक जड़ता नियम तथा सांख्यिकीय नियमितता का नियम।
- अतीत व वर्तमान कालीन तथ्यों के आधार पर भविष्य के लिए पूर्वानुमान लगाना सांख्यिकी की महवपूर्ण रीतियों में से एक है। इसकी सहायता से जनसंख्या, मूल्य आदि के पूर्वानुमान किये जाते हैं।

- सांख्यिकी की रीतियों में शोध-कार्य तथा सुधार होता रहता है जिससे यह निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

वैज्ञानिक विधि और सांख्यिकी- विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि सांख्यिकी विज्ञान नहीं है, यह एक वैज्ञानिक विधि है।

वैज्ञानिक विधि के चार चरण हैं-

1. अवलोकन (Observation),
2. परिकल्पना (Hypothesis),
3. पूर्वानुमान (Prediction) तथा
4. परीक्षण (Verification)।

सांख्यिकी में उपरोक्त सभी चरणों का पर्याप्त उपयोग होता है अत: सांख्यिकी विज्ञान की विधि है। वालिस एवं राबर्ट्स का विचार है कि, "सांख्यिकी स्वतंत्र एवं मूलभूत ज्ञान का समूह नहीं है बल्कि ज्ञान प्राप्त करने की रीतियों का समूह है।"

टिपेट के अनुसार, "विज्ञान के रूप में सांख्यिकीय रीति सामान्य मौलिक विचारों एवं प्रक्रियाओं पर आधारित है।"

अत: सांख्यिकी साध्य नहीं है बल्कि साधन है। सांख्यिकी अन्य विज्ञानों 'भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान आदि' की भांति विज्ञान नहीं है, क्योंकि यह ज्ञान प्राप्त करने का एक सक्रिय एवं संतोषप्रद साधन है।

2. कला के रूप में सांख्यिकी

कला केवल तथ्यों का वर्णन ही नहीं करती बल्कि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के उपाय भी बताती है। कला उन क्रियाओं का समूह है जिनकी सहायता से वांछित परिणामों की प्राप्ति तथा अवांछनीय बातों से रक्षा संभव हो सके। कला के लिए विशेष ज्ञान, अनुभव एवं आत्म-संयम की आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त तत्वों के आलोक में स्पष्ट होता है कि वह कला है क्योंकि-

- सांख्यिकीय सामग्री का संकलन एवं उसका उपयोग स्वयं में एक कला है।
- सांख्यिकी बताती है कि समस्याओं के अध्ययन करने एवं उनके समाधान के लिए नियमों एवं सिद्धांतों का उपयोग किस प्रकार किया जाये जिससे वांछित उद्देश्य की पूर्ति हो सके।
- सांख्यिकी की रीतियों का उचित प्रयोग करने के लिए विशेष योग्यता तथा आत्म-संयम की आवश्यकता होती है।

सांख्यिकी विज्ञान एवं कला की परिभाषा

सांख्यिकी विज्ञान एवं कला दोनों ही है। इसके सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों पहलू हैं।

टिपेट के अनुसार, "सांख्यिकी विज्ञान तथा कला दोनों है। यह विज्ञान इसलिए है क्योंकि इसकी रीतियां मौलिक रूप से क्रमबद्ध हैं और उनका सर्वत्र प्रयोग होता है और

कला इसलिए कि इसकी रीतियों का सफल प्रयोग पर्याप्त सीमा तक सांख्यिकी की योग्यता व विशेष अनुभव तथा उसके प्रयोग-क्षेत्र, जैसे अर्थशास्त्र के ज्ञान पर निर्भर करता है।"

4.2.3 सांख्यिकी का क्षेत्र

सांख्यिकी का विस्तार उन तमाम क्षेत्रों तक है जहां संख्यात्मक संमकों अथवा तथ्यों का व्यवहार किया जाता है। अर्थशास्त्र, वाणिज्य, गणित, जीवविज्ञान, प्रशासन, राजनीतिशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, व्यवसाय आदि क्षेत्रों में भी सांख्यिकी का प्रयोग होता है।

डब्ल्यू. जे. रीचमैन के शब्दों में कहें तो, "सांख्यिकी विशेष रूप से गतिशील है। वह निरंतर आगे बढ़ रही है। अधिक कुशल तकनीकी, अधिक गणन सुविधाएं और परिणामस्वरूप सर्वेक्षण की घटती लागत, इसके क्षेत्र को और अधिक व्यापक बनाने में सहायता देती हैं।"

सांख्यिकी के सिद्धांत और रीतियां जो वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण हैं, उन समंकों या तथ्यों जिनमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है तथा उन्हें प्रयोगात्मक विधि से नियंत्रित नहीं किया जा सकता, से व्यवहार करती हैं। यही सांख्यिकी की विषय-सामग्री है। क्राक्स्टन तथा काउडेन के अनुसार, "मानव क्रियाओं के निरंतर बढ़ते हुए क्षेत्र में तथा किसी भी विचार क्षेत्र में जहां संख्यात्मक तथ्य उपलब्ध किये जा सकते हैं, सांख्यिकी की रीतियां उपयोगी सिद्ध होती हैं।.... आज प्रयास का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिसमें सांख्यिकी की रीतियां उपयोगी सिद्ध होती हैं।.... आज प्रयास का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिसमें सांख्यिकीय रीतियों को कभी-न-कभी उपयोगी न पाया जाता हो।"

सांख्यिकी के क्षेत्र को निम्नांकित दो प्रमुख भागों में विभाजित करके समझा जा सकता है- (क) सांख्यिकीय रीतियां और (ख) व्यावहारिक सांख्यिकी।

(क) सांख्यिकीय रीतियां (Statistical Methods)

जिन रीतियों का उपयोग सांख्यिकी में किया जाता है वे सांख्यिकीय रीतियां कहलाती हैं।

यूल और केंडाल के मत में, "सांख्यिकीय रीतियों से हमारा तात्पर्य उन रीतियों से है जिनका प्रयोग अनेक कारणों से प्रभावित समंकों की व्याख्या करने के लिए किया जाता है।"

जॉनसन और जैक्सन के अनुसार, "साख्यिकीय रीतियां वे प्रक्रियाएं हैं जो समंकों के संग्रहण, संगठन, संक्षिप्तीकरण, विश्लेषण, विवेचन एवं प्रस्तुतीकरण में प्रयोग की जाती हैं।"

निष्कर्षत: सांख्यिकीय रीतियां वे युक्तियां हैं जिनके द्वारा जटिल संख्यात्मक समंकों का इस प्रकार विश्लेषण किया जाता है जिससे वे समझने योग्य हो सकें और उनसे ठीक परिणाम निकाले जा सकें।

प्रमुख सांख्यिकीय रीतियां हैं-

- समंकों (आंकड़ों) का संकलन।
- समंकों का वर्गीकरण।
- समंकों का सारणीयन।

टिप्पणी

- समंकों का प्रस्तुतीकरण।
- समंकों का विश्लेषण।
- समंकों का निर्वचन।
- पूर्वानुमान।

कार्यविधि के आधार पर सांख्यिकीय रीतियों को निम्नलिखित दो उपविभागों में बांटा जा सकता है- (1) विवरणात्मक सांख्यिकी और (2) निष्कर्षात्मक सांख्यिकी।

(ख) व्यावहारिक सांख्यिकी (Applied Statistics)

सांख्यिकीय रीतियों को व्यवहार में किस प्रकार प्रयोग किया जाये, उसका अध्ययन व्यावहारिक सांख्यिकी में होता है। किस समस्या से संबंधित अंकों का किस प्रकार संग्रहण, विश्लेषण, प्रदर्शन व निर्वचन किया जाये, यह व्यावहारिक सांख्यिकी का क्षेत्र है। किसी समस्या के समाधान में हम इसके सिद्धांतों को मूर्त रूप देते हैं। जनसंख्या, उत्पादन, व्यापार या जन्म-मरण से संबंधित समंकों को कैसे क्रियात्मक रूप दिया जाये, यह व्यावहारिक सांख्यिकी का कार्य है।

व्यावहारिक सांख्यिकी के निम्नांकित प्रमुख उप-विभाग हो सकते हैं- (क) विवरणात्मक व्यावहारिक सांख्यिकी एवं (ख) वैज्ञानिक व्यावहारिक सांख्यिकी।

सामाजिक समस्याओं से संबंधित 'सामाजिक समंक', आर्थिक समस्याओं से संबंधित 'आर्थिक समंक', कृषि समस्याओं से संबंधित 'कृषि समंक' एवं व्यापारिक समस्याओं से संबंधित 'व्यापार समंक' आदि व्यावहारिक सांख्यिकी के अंतर्गत ही आते हैं। आधुनिक समय में 'व्यावसायिकी सांख्यिकी' व्यावसायिक समस्याओं का अध्ययन कर सांख्यिकीय रीतियों द्वारा समाधान का प्रयास किया जाता है। गुण नियंत्रण, क्रियात्मक शोध, व्यापारिक निर्णय हेतु संख्यामक विश्लेषण, रेखीय नियोजन, बजट संबंधी नियंत्रण, काल श्रेणी विश्लेषण, गुण संबंध एवं परिकल्पना परीक्षण आदि आधुनिक व्यावसायिक सांख्यिकीय की विधियां हैं।

4.2.4 सांख्यिकी का महत्व

हमारे जीवन एवं हमारी आदतों में सांख्यिकी का प्रभाव इतना अधिक है कि इसकी उपादेयता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आधुनिक सभ्यता 'सांख्यिकी सभ्यता' (Statistics Culture) जैसी हो गयी है और समंकों की अनुपस्थिति में आधुनिक जीवन की मशीनरी स्थिर हो जाएगी। एम.जे. मोरोनी लिखते हैं, "तुम कुछ भी क्यों न हो, यदि तुम्हारा कार्य समंकों के निर्वचन से संबंधित है तो तुम समंकों के बिना कार्य करने में समर्थ हो सकते हो परंतु तुम उतनी अच्छी प्रकार नहीं कर पाओगे।"

माध्य, अपकिरण, सहसंबंध, निदर्शन (Sampling), आलेख (Charts) और सांख्यिकीय विधियों को जाने बिना मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, वित्त प्रबंधन, सामाजिक विज्ञान तथा भौतिक विज्ञानों को अत्यंत प्रारंभिक स्तर पर भी समझना असंभव है। यही नहीं, सांख्यिकी विधियों का प्रयोग उन व्यक्तियों द्वारा भी किया जाता है जिन्हें सांख्यिकी विज्ञान का ज्ञान भी नहीं होता है। सामान्य व्यक्तियों द्वारा भी दिन-प्रतिदिन के निर्णयों में, जाने-अनजाने

में सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया जाता है। जब कोई व्यक्ति रेडियो अथवा मशीन खरीदना चाहता है तो वह कई कंपनियों की मूल्य सूचियों का अध्ययन करता है। इस प्रकार के अध्ययन का उद्देश्य मूल्यों के विस्तार का पार लगना होता है।

जब एक किसान किसी मौसम में एक निश्चित मात्रा में वर्षा की अपेक्षा करता है जिससे फसल अच्छी हो सके तो इससे पता चलता है कि इसे वर्षा की मात्रा तथा उत्पादन के मध्य सहसंबंध का ज्ञान है। श्रमिक जिसने निर्देशांक (Index Number) के बारे में सुना भी न हो, मूल्यों की घटा-बढ़ी आसानी से औसत तौर पर समझ जाता है।

एक नवजात शिशु के माता-पिता हर मास यह पता लगाते हैं कि उनका बच्चा 'नॉर्मल' गति से बढ़ रहा है अथवा नहीं। सोचिए- 'नॉर्मल' का विचार कहां से आया तथा उसका निर्धारण कैसे हुआ? सांख्यिकीय रीतियों द्वारा संकलित समंकों के आधार पर ही नॉर्मल विकास का स्तर निर्धारित किया जाता है। हम चाहते हैं कि विभिन्न आयु वाले बच्चों के लिए कपड़े व जूते बिल्कुल ठीक आकार में बाजार में सफल हों परंतु क्या निर्माता यह सब संभव कर पाता यदि उसने आंकड़ों के बारे में समंक संकलन करके उनका सांख्यिकीय विश्लेषण न किया होता? लोग सुरक्षा के लिए जीवन तथा अन्य आकस्मिक घटनाओं का बीमा कराते हैं। बीमा व्यवसाय का आधार समंक ही होते हैं।

समंकों के आधार पर ही घटना के घटित होने की संभावना ज्ञात की जाती है और संभावना से बीमा की प्रीमियम निश्चित होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समंकों से हमें मार्गदर्शन प्राप्त होता है, इसीलिए कहा गया है कि, "सांख्यिकी प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती है तथा जीवन के अनेक बिंदुओं को स्पर्श करती है।"

(अ) अर्थशास्त्र में सांख्यिकी का महत्व

अर्थशास्त्र के विकास में सांख्यिकी का महत्वपूर्ण योगदान है। अर्थशास्त्र में किसी भी नियम को बनाने के लिए पूर्व अनुभव तथा कुछ तथ्यों के चुनाव महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। तथ्यों के आधार पर किसी निष्कर्ष की परिकल्पना की जाती है तथा उसका परीक्षण किया जाता है। अर्थशास्त्र में सांख्यिकी के महत्व को देखते हुए अर्थशास्त्र की एक शाखा अर्थमिति का उदय हुआ। अर्थमिति में आर्थिक चरों तथा आर्थिक संबंधों का मापन किया जाता है। इस विज्ञान में समीकरणों, फलनों, विकास मॉडलों आदि का सहारा लिया जाता है।

वर्तमान युग में अर्थशास्त्र के नियम गणित एवं सांख्यिकी पर आधारित हैं। इसी आधार पर अर्थशास्त्र के मानव कल्याण का विज्ञान तथा सांख्यिकी को मानव कल्याण का गणित कहा गया है।

प्रो. जेवन्स के अनुसार, "मैं नहीं जानता कि हम कब पूर्ण सांख्यिकी व्यवस्था को प्राप्त कर सकेंगे परंतु उसकी कमी ही अर्थशास्त्र को पूर्ण विज्ञान बनाने में एकमात्र अजेय बाध है।"

प्रो. बाउले ने कहा है कि, "अर्थशास्त्र का कोई भी विद्यार्थी पूर्णता का दावा नहीं कर सकता जब तक कि वह सांख्यिकीय विधियों में लीन नहीं होता, उनकी कठिनाइयों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, यह नहीं देख लेता कि सत्य समंक किन साधनों से उपलब्ध हो सकते हैं, सांख्यिकीय परिमाणों की आलोचना नहीं कर सकता।"

संक्षेप में केवल यही कहा जा सकता है कि कल का अर्थशास्त्री सांख्यिकीयविधियों से अनभिज्ञ था, आज का अर्थशास्त्री सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग से आर्थिक सिद्धांतों को उत्कृष्टता प्रदान करता है किंतु आने वाला अर्थशास्त्री वही बन पायेगा जो कि पहले सांख्यिकीय विधियों का ज्ञाता होगा।

(ब) व्यवसाय में सांख्यिकी का महत्व

व्यवसाय के क्षेत्र में सांख्यिकी का अत्यधिक महत्व है। आजकल व्यवसायी के लिए किसी भी व्यवसाय में अनुमान व संभावनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. बॉडिंगटन के अनुसार, "एक सफल व्यवसायी वही है जिसका अनुमान वास्तविकता के अधिक निकट होता है।"

व्यवसायी का प्रमुख उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है अत: वह किसी वस्तु की मांग के अनुरूप स्टॉक रखता है।

प्रो. एम.एम. ब्लेयर के अनुसार, "यदि समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो तथा तार की सूचनाओं से प्राप्त होने वाले सभी मूल्य समंक केवल एक दिन के लिए हटा दिये जाएं तो व्यावसायिक जगत निष्क्रिय हो जाएगा। यदि इस समय प्राप्त कुल समंक विश्व से एक वर्ष के लिए हटा दिए जायें तो इसका परिणाम संपूर्ण आर्थिक व्यवस्था का नाश होगा।"

व्यावसायिक प्रबंध एवं प्रशासन के क्षेत्र में सांख्यिकी के प्रयोग में निरंतर वृद्धि हो रही है। वाणिज्य प्रबंधकों को अनिश्चितता के मध्य निर्णय लेना होता है। समंकों के आधार पर ही व्यावसायिक खाते बनाये जाते हैं जिनसे व्यवसाय की गतिविधि का पता लगता है। उद्योग के क्षेत्र में उद्योगों के प्रवर्तन की प्रारंभिक अवस्था से लेकर अंतिम प्रक्रिया तक पग-पग पर समंकों का सहारा लेना पड़ता है। आजकल उद्योगों में उत्पादन एवं वितरण की नयी तकनीक एवं रीतियां अपनायी जा रही हैं। वैज्ञानिक प्रबंध, सेविवर्गीय प्रबंध, विवेकीकरण, लागत, नियंत्रण आदि लागू किये गए हैं। संक्षेप में उद्योगों के संतुलित विकास की दृष्टि से भी सांख्यिकी का महत्व है।

(स) शिक्षा में सांख्यिकी का महत्व

शिक्षा के विकास में सांख्यिकी का महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा में किसी भी नियम को बनाने के लिए पूर्व अनुभव तथा कुछ तथ्यों का चुनाव महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। तथ्यों के आधार पर किसी निष्कर्ष की परिकल्पना की जाती है तथा उसका परीक्षण किया जाता है। शिक्षा का संबंध मनुष्यों से होता है जो इस संसार में रहते हैं। शिक्षा में सांख्यिकी का प्रयोग शैक्षिक परीक्षणों के इतिहास से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का एक दल है जिसने शैक्षिक चरों के मापन को अपनाया तथा बुद्धि आदि तत्वों को भौतिक वस्तुओं की तरह मापने का प्रयास किया। धीरे-धीरे ऐसे परीक्षण की व्यवस्था संभव हुई जिसके माध्यम से बुद्धि जैसे तत्व को वस्तुनिष्ठ ढंग से मापना आसान हो गया। इन परीक्षाओं से विश्वसनीयता एवं वैधता ज्ञात होती है। आगे चलकर इस तरह की

परीक्षाओं का प्रयोग विद्यालय में होने लगा और शैक्षणिक निष्पत्तियों तक के वस्तुनिष्ठ मापन को बढ़ावा मिला। बैलर्ड का न्यू इक्जामिनर इसका महत्वपूर्ण प्रमाण है।

आधुनिक युग में सांख्यिकी का प्रयोग दिन प्रतिदिन इतना बढ़ता जा रहा है कि सभी विज्ञान अपने स्वरूप को वैज्ञानिकता प्रदान करने के लिए सांख्यिकी का अत्यधिक प्रयोग करने लगे हैं। शैक्षिक मनोवैज्ञानिक सांख्यिकीय प्रविधियों का उपयोग मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रमाणीकरण के समय तो करते ही हैं साथ ही साथ शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के लिए भी सांख्यिकी का प्रयोग करते हैं। शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार अनेक योजनाएं संचालित करती है, लेकिन इन योजनाओं की सफलता के लिए वास्तविक तथा अर्थपूर्ण सांख्यिकीय विश्लेषण की आवश्यकता हर स्तर पर विद्यमान रहती है, जिसके बिना ऐसे कार्यक्रम सफल नहीं हो सकते हैं।

(द) आर्थिक नियोजन में सांख्यिकी का महत्व

भारतीय आर्थिक नियोजन में, नियोजन के उद्देश्यों की पूर्ति और नीति एवं प्रशासन संबंधी निर्णय लेने के लिए निरंतर अधिकाधिक मात्रा में समंकों की आवश्यकता होती है। आजकल प्रत्येक देश योजनाबद्ध विकास में लगा हुआ है। योजना आयोग के अनुसार, "नियोजन के लिए देश का आर्थिक विकास समंकों के अधिकाधिक प्रयोग पर निर्भर करता है। अपर्याप्त और अशुद्ध समंकों के आधार पर किये जाने वाला नियोजन, नियोजित अर्थव्यवस्था के न होने से भी बुरा है।"

आर्थिक नियोजन का उद्देश्य देश के मानवीय एवं भौतिक साधनों का उचित उपयोग करके मानव जीवन के स्तर को ऊंचा उठाना है जिसकी पूर्ति के लिए व्यक्तियों की आवश्यकताएं, देश की उत्पादन क्षमता, जनसंख्या आदि की जानकारी समंकों की मदद से ही की जाती है। समंक उपलब्ध होने के कारण ही नियोजन के कार्यान्वयन व संचालन में सांख्यिकीय विधियां मदद करती हैं तथा नियोजन की सफलता के मूल्यांकन में भी सहायक है। भारत सरकार तथा राष्ट्रीय योजना आयोग नियोजन में सांख्यिकी के महत्व और उपयोगिता के प्रति जागरूक है।

पर्याप्त सांख्यिकीय समंकों के कारण योजना की प्राथमिकताएं एवं भौतिक तथ्यों के निर्धारण में सुविधा हो जाती है।

(य) आर्थिक विश्लेषण में सांख्यिकी का महत्व

आर्थिक विश्लेषण में सांख्यिकी का महत्व निम्न तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है–

1. **उत्पादन के क्षेत्र में–** उत्पादन के क्षेत्र में उत्पादन के समंकों द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना, देश की कुल उत्पादिता तथा साधनों की सीमांत उत्पादिता का अध्ययन किया जाता है। किसी निश्चित उत्पादन की मात्रा के लिए उसके विभिन्न साधनों, जैसे भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यम की कितनी आवश्यकता होगी इसका इन विषयों के द्वारा विश्लेषण किया जा सकता है।
2. **उपभोग के क्षेत्र में–** उपभोग के क्षेत्र में उपभोग के समंकों द्वारा विभिन्न आयु-वर्ग और उनके उपभोग व्यय के द्वारा औसत और सीमांत उपभोग प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जाता है।

3. **वितरण के क्षेत्र में–** राष्ट्रीय आय को उत्पादन के विभिन्न साधनों में वितरित करना, राष्ट्रीय आय के वितरण में असमानता का अध्ययन करना, व्यक्तिगत तथा क्रियात्मक दोनों प्रकार के वितरण का अध्ययन करना आदि सांख्यिकी समंकों पर आधारित है। साधनों में उत्पादन की राशि के उचित बंटवारे के संबंध में नियम सांख्यिकी विधियों की सहायता से बनाया जा सकता है।
4. **विनिमय के क्षेत्र में–** विनिमय के क्षेत्र में मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया में उत्पादन लागत और आगम का विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों पर आधारित है। इसके अंतर्गत बाजार की स्थिति, मूल्यों का निर्धरण, विनिमय के सिद्धांत आदि का अध्ययन किया जाता है।
5. **राजस्व के क्षेत्र में–** राज्य के आय-व्यय के ब्यौरे एक सांख्यिकीय विपत्र हैं। सरकार की नीति, घाटे की अर्थव्यवस्था, कर देय क्षमता का निर्धारण, मौद्रिक नीति आदि सांख्यिकीय तथ्य हैं।

अर्थशास्त्र के विकास में सांख्यिकी का महत्वपूर्ण योगदान है। अर्थशास्त्र में किसी भी नियम को बनाने के लिए पूर्व अनुभव तथा कुछ तथ्यों के चुनाव महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। तथ्यों के आधार पर किसी निष्कर्ष की परिकल्पना की जाती है तथा उसका परीक्षण किया जाता है।

4.2.5 सांख्यिकी की सीमाएं

सांख्यिकी की कुछ सीमाएं भी हैं, जिनके कारण कभी-कभी गलत एवं भ्रामक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। ये सीमाएं निम्नलिखित हैं-

1. **समस्या के संख्यात्मक स्वरूप तक सीमित**- सांख्यिकी के अंतर्गत उन्हीं समस्याओं का अध्ययन किया जाता है जिनका संख्यात्मक वर्णन संभव होता है, जैसे- आयु, लंबाई, उत्पादन, मजदूरी आदि। परंतु कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनका गुणात्मक अध्ययन ही संभव हो सकता है, जैसे- सुंदरता, बुद्धिमत्ता, ईमानदारी आदि। ऐसे तथ्यों का अध्ययन परोक्ष रूप से तो किया जा सकता है परंतु प्रत्यक्ष रूप से नहीं।
2. **केवल समूहों का अध्ययन**- सांख्यिकी के निष्कर्ष समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहां व्यक्तिगत विशेषताओं पर प्रकाश नहीं डाला जाता है। प्रो. नीसवैंगर के अनुसार, "सांख्यिकी के निष्कर्ष समूह के सामूहिक व्यवहार का अनुमान करने में सहायक होते हैं, उस समूह की व्यक्तिगत इकाइयों का नहीं।" उदाहरण के लिए, 'किसी कारखाने के कर्मचारियों की औसत मजदूरी 800 रुपये प्रति माह है।' परंतु कुछ कर्मचारी ऐसे भी हो सकते हैं जिनकी आयु बहुत ही कम हो।
3. **नियमों का औसत रूप में सत्य होना**- कोई भी व्यवस्था जो बड़े या जटिल वर्ग को एक दृष्टि में मस्तिष्क के समझने योग्य बनाती है, वह अधिकांश छोटी-छोटी अनियमितताओं को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकी है। सांख्यिकी

टिप्पणी

के नियम पूर्ण रूप से सतत नहीं होते हैं। ये केवल अनुमान तथा संभावनाओं को बताते हैं और सन्निकट प्रवृत्तियों के सूचक होते हैं। यदि यह कहा जाये कि भारत में व्यक्तियों की आयु 35 वर्ष है तो यह कथन औसत रूप से ही सत्य है, सामान्य रूप से नहीं। सांख्यिकी व्यापक रूप से औसतों से संबंधित होती है और ये औसतें ऐसे अंकों से बनते हैं जिनमें एक-दूसरे से महत्वपूर्ण भेद होता है। औसत में ये अनियमितताएं छिप जाती हैं।

4. **आंकड़ों में एकरूपता और सजातीयता की अनिवार्यता**- सांख्यिकीय निष्कर्ष केवल सजातीय एवं एकरूप समंकों से ही निकाले जाते हैं। आपस में तुलना करने के लिए भी यह आवश्यक है कि जो समंक एक ही गुण को प्रकट करते हैं, उनमें प्रारंभ से अंत तक उच्च कोटि की स्थिरता आवश्यक है, तभी परिणाम ठीक होंगे। उदाहरणार्थ- वृक्ष की ऊंचाई और मनुष्यों की ऊंचाई की तुलना नहीं की जानी चाहिए।
5. **प्रयोगकर्ता हेतु सांख्यिकीय रीतियों का पूर्ण ज्ञान आवश्यक**- सांख्यिकी की रीतियों का उचित प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति वैज्ञानिक पद्धति से बनायी गयी सांख्यिकीय रीतियों तथा अन्य नियमों को अच्छी प्रकार से समझता हो। बाउले के अनुसार, "समंक केवल एक आवश्यक किंतु अपूर्ण औजार प्रदान करते हैं जो उन व्यक्तियों के हाथों में खतरनाक है जो उसकी प्रयोग विधि और कमियों से परिचित नहीं हैं।"
6. **सांख्यिकीय रीति किसी समस्या के अध्ययन की रीति**- क्राक्स्टन तथा काउडेन के अनुसार, "यही नहीं मान लेना चाहिए कि सांख्यिकीय रीति ही अनुसंधान कार्य में प्रयोग की जाने वाली एक मात्र रीति है, न ही इस रीति को प्रत्येक समस्या का सर्वोत्तम हल समझना चाहिए।" मिल्स का कहना है, "सांख्यिकीय रीतियों का प्रयोग साधन के रूप में बुद्धिमानी से करना चाहिए तथा सांख्यिकी विश्लेषण से निकलने वाले निष्कर्षों के विवेचन में अत्यंत सावधानी से काम लेना चाहिए।"

   सांख्यिकीय रीति से प्राप्त निष्कर्षों की सत्यता का परीक्षण अन्य रीतियों से प्राप्त निष्कर्षों से कर लेना आवश्यक है। सांख्यिकीय एक साधन मात्र है, समाधान नहीं।
7. **निष्कर्ष संदेह से परे नहीं**- यदि सांख्यिकीय समंकों का अध्ययन बिना संदर्भ के किया जाये तो उनसे प्राप्त निष्कर्ष असत्य व भ्रामक सिद्ध हो सकते हैं। बिना संदर्भ व परिस्थितियों को समझते हुए जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे यद्यपि सत्य जान पड़ते हैं परंतु वास्तविक रूप से वे निष्कर्ष सत्य नहीं होते हैं। अतएव सांख्यिकीय परिणामों का निर्वचन करते समय उन्हें उनके उचित संदर्भ में रखना चाहिए। डॉ. बाउले ने भी कहा है, "जो समंकों का उपयोग करता है, उसे अनुसंधान के निष्कर्षों को प्रभावित मानकर संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए परंतु उस विधि के समस्त अंगों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।"

सांख्यिकी की सीमाओं को हटाया जाना संभव नहीं है। सांख्यिकी की सीमाओं को ध्यान में न रखकर सांख्यिकीय समंकों के आधार पर निष्कर्ष निकालना अनुचित है। अनुसंधान कार्य के दौरान सांख्यिकी की सीमाओं की उपेक्षा करने के कारण सांख्यिकी (या समंकों) के प्रति अविश्वास पैदा न होना स्वाभाविक है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. सांख्यिकी शब्द का जन्मदाता कौन है?

   (क) मार्शल (ख) गाल्टन

   (ग) गाटफ्राइड आकेनवाल (घ) बाउले

2. प्रकृति की दृष्टि से सांख्यिकी क्या है?

   (क) एक विज्ञान (ख) एक कला

   (ग) न विज्ञान न कला (घ) विज्ञान एवं कला दोनों

3. सांख्यिकी के क्षेत्र को कितने भागों में विभाजित किया गया है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

4.3 ग्राफिक और आरेखीय प्रदर्शन

प्रदत्तों को समझना और उनसे कोई निष्कर्ष निकालना सांख्यिकीय विशेषज्ञों द्वारा ही सम्भव है। इन प्रदत्तों को जनसाधारण तक पहुंचाने और इन्हें सरल एवं बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रेखाचित्रों/रेखीय प्रदर्शन (Graphical Presentation) की आवश्यकता होती है। यद्यपि वर्गीकरण एवं सारणीयन द्वारा सांख्यिकीय प्रदत्तों की जटिलता को पर्याप्त मात्रा तक समाप्त कर दिया जाता है। फिर भी उन्हें समझना इतना सरल नहीं होता है इसलिए बिन्दु रेखा से संख्यात्मक तथ्यों को सरल, स्पष्ट तथा प्रभावी ढंग से दर्शाया जा सकता है। अर्थात् प्रदत्तों/आंकड़ों के रेखीय प्रदर्शन से तात्पर्य प्राप्त आंकड़ों को रेखाओं द्वारा स्पष्ट करने से है। यह प्रायः ग्राफ पेपर पर किया जाता है। ग्राफ पेपर पर सामान्यतः एक–एक सेमी वर्ग बने होते हैं और प्रत्येक वर्ग 10 बराबर भागों (मिमी) में बंटा होता है। ये वर्ग 1 सेमी के स्थान पर इससे बड़ी माप के भी हो सकते हैं और छोटी माप के भी हो सकते हैं। ग्राफ पेपर की क्षैतिज रेखा (Horizontal Line) को अक्ष भुजा (Axis of X) और लम्बवत् रेखा (Vertical Line) को उदग्र भुजा (Ordinate of Y) कहते हैं। इन दोनों भुजाओं के मिलने के बिन्दु को मूल बिन्दु (Origin point) कहते हैं। आँकड़ों के रेखीय प्रदर्शन के लिए सर्वप्रथम यह निश्चित किया जाता है कि किस प्रकार के आँकड़ों को अक्ष भुजा पर दर्शाना है और किस प्रकार के आँकड़ों को उदग्र भुजा पर दर्शाना है। इसके बाद दोनों प्रकार के आँकड़ों के लिए पैमाना माना जाता है और उसके बाद आँकड़ों को माने गए पैमानों के अनुसार वर्गों के खानों में बिन्दुओं से अंकित किया जाता है। अन्त में बिन्दुओं को मिलाने से रेखाचित्र तैयार किया जाता है।

रेखाचित्र ग्राफ का अर्थ एवं परिभाषा

जब दो या दो से अधिक चरों को अथवा एक चर के विभिन्न मूल्यों को रेखाओं या आकृति द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो इस प्रकार की बनी आकृति को रेखाचित्र कहा जाता है। रेखाचित्र या ग्राफ बनाने की विधि को रेखाचित्रण या आलेख चित्रण अथवा ग्राफीय चित्रण कहते हैं। सांख्यिकीय या प्रयोगात्मक प्रदत्तों का वास्तविक चित्रण कभी रेखाओं द्वारा किया जाता है तो कभी वक्रों द्वारा किया जाता है और कभी आकृतियों द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार किया गया चित्रण ही ग्राफ या रेखाचित्र कहलाता है।

परिभाषा :

रेबर और रेबर ने रेखाचित्रों को इस प्रकार परिभाषित किया है– "नैदानिक या प्रयोगात्मक प्रदत्तों का रेखाओं, वक्रों या आकृति द्वारा वास्तविक चित्रण ग्राफ कहलाता है, जो चरों के मध्य सम्बन्ध को दर्शाता है।"

आंकड़ों के रेखीय प्रदर्शन की उपयोगिता और आवश्यकता

आंकड़ों के रेखीय प्रदर्शन की उपयोगिता, और आवश्यकता को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. रेखीय प्रदर्शन द्वारा आँकड़ों को जनसाधारण के समझने योग्य बनाया जाता है।
2. रेखीय प्रदर्शन द्वारा आँकड़ों को सरलता व शीघ्रता से समझा जा सकता है। इसके लिए हम रेखाचित्रों में विभिन्न प्रकार के रंग भरकर आकर्षक एवं बोधगम्य बना सकते हैं।
3. रेखीय प्रदर्शन द्वारा प्रदर्शित आंकड़ों की एक ही दृष्टि में तुलना की जा सकती है।
4. रेखीय प्रदर्शन द्वारा प्रदर्शित आंकड़े अधिक समय तक स्मरण रहते हैं।
5. शिक्षा के क्षेत्र में इनका प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है– छात्रों की संख्या स्पष्ट करने में, छात्रों के परीक्षा परिणाम स्पष्ट करने में और शिक्षा की प्रगति आदि को स्पष्ट करने में।
6. ऐतिहासिक एवं कालिक सूचनाओं को रेखाचित्रों द्वारा ज्यादा प्रभावशाली ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है।
7. चित्रण के माध्यम से दो तथ्यों के बीच पाए जाने वाले सम्बन्ध को आसानी से समझा व स्पष्ट किया जा सकता है।

रेखाचित्रों का महत्व

1. ग्राफ द्वारा प्रदर्शित तथ्य स्मरणीय बन जाते हैं।
2. विभिन्न रंगों द्वारा बने ग्राफ अधिक आकर्षक बन जाते हैं। वे सहज ही ध्यान को आकर्षित करते हैं।
3. ग्राफ की सहायता से आंकड़ों से निष्कर्ष सरलता से निकाले जा सकते हैं।
4. ग्राफ द्वारा प्रदर्शित आंकड़े रुचिपूर्ण, आकर्षक तथा प्रभावशाली होते हैं।

टिप्पणी

5. ग्राफ द्वारा प्रदर्शित आंकड़ों की प्रकृति को शीघ्र समझा जा सकता है। अंकों द्वारा अभिव्यक्त आंकड़ों को समझने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। अतः ग्राफ द्वारा अभिव्यक्त आंकड़ों को समझने में समय की भी बचत होती है।
6. ग्राफ द्वारा आंकड़ों को प्रदर्शित करने से आंकड़ों की तुलना सरल हो जाती है। यद्यपि संख्यात्मक आंकड़ों की तुलना भी सरल होती है परंतु ग्राफ द्वारा प्रदर्शित करने से आंकड़ों की तुलना सरल ही नहीं, सजीव भी बन जाती है।
7. जब सांख्यिकीय आंकड़ों को अंकों के स्थान पर ग्राफ द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो आकंड़ों की प्रकृति को समझना सरल हो जाता है।

रेखाचित्र रचना के सामान्य नियम

रेखाचित्रों की रचना करते समय हमें निम्न सामान्य नियमों का पालन करना चाहिए–

1. रेखाचित्र आकर्षक, रोचक तथा बोधगम्य होने चाहिए ताकि वे अनायास ही समझ आ जाएं।
2. ग्राफ पेपर पर बने रेखाचित्र अधिक शुद्ध होते हैं।
3. रेखाचित्र न तो बहुत बड़ा होना चाहिए और न ही बहुत छोटा होना चाहिए।
4. प्रत्येक चित्र के ऊपर स्पष्ट, पूर्ण एवं संक्षिप्त शीर्षक होना चाहिए।
5. चित्र रचना से पहले उचित मापदण्ड या पैमाने का निर्धारण करना आवश्यक होता है।
6. चित्र सदैव पैंसिल, पैमाना तथा अन्य ज्यामितीय उपकरणों की सहायता से बनाना चाहिए।
7. चित्र में प्रयुक्त चित्रों के संकेत एक कौने में अवश्य देने चाहिए।
8. वास्तव में चित्र बनाना इतना कठिन नहीं है जितना उपयुक्त प्रकार के चित्र का चुनाव करना।
9. यदि एक तथ्य से सम्बंधित पद–मूल्यों की संख्या अधिक हो तथा न्यूनतम व अधिकतम मूल्यों का अनुपात कम हो तो एक उचित मापदण्ड के अनुसार प्रत्येक मूल्य के बराबर लम्बाई की खड़ी या उदग्र (Ordinate of Y) रेखा खींची जाती है। रेखाओं के बीच समान अन्तर रखा जाता है।

रेखाचित्र की संरचना

रेखाचित्र की रचना किसी विशेष प्रकार के कागज पर की जाती है जिसे ग्राफ कहा जाता है। इस ग्राफ पेपर पर 1–1 वर्ग से.मी. के खाने बने होते हैं। ग्राफ की संरचना के लिए दिए गए आंकड़ों के आधार पर ग्राफ पेपर पर सबसे पहले क्षैतिज तथा उदग्र रेखा जो आपस में 90^0 कोण पर स्थित होती है, खींची जाती है।

यही क्षैतिज रेखा X भुजा कहलाती है तथा उदग्र भुजा रेखाचित्र की Y भुजा कहलाती है। इन दोनों बिन्दुओं के कटान बिन्दु को मूल बिन्दु कहा जाता है। इसे समान्यतः O से प्रदर्शित किया जाता है।

टिप्पणी

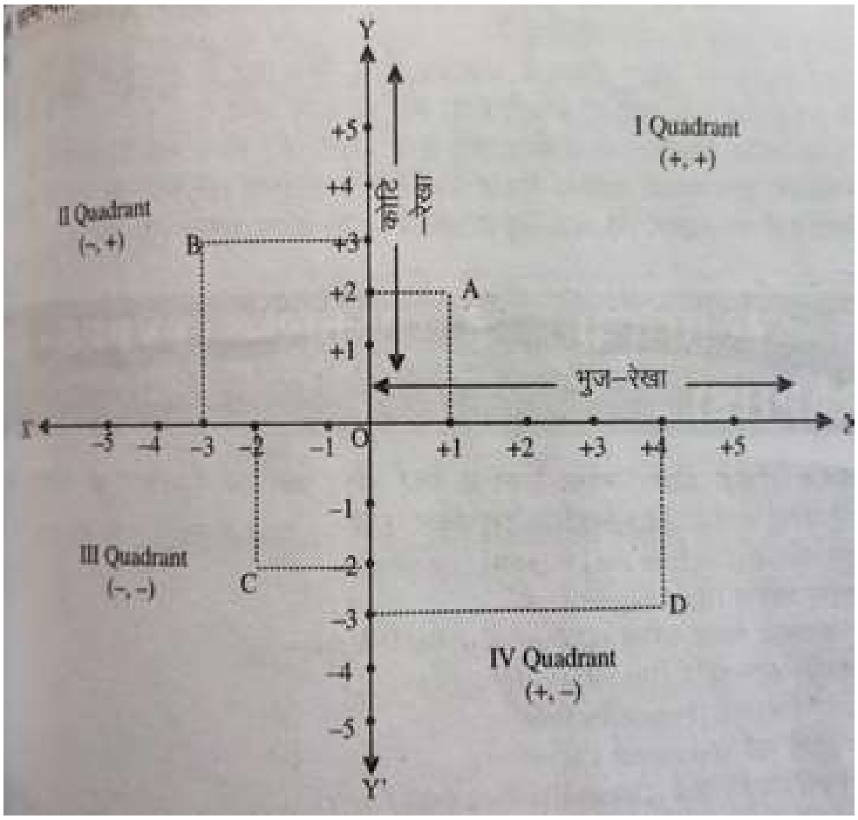

चित्र के अनुसार क्षैतिज भुजा XOX भुज अक्ष कहलाती है। इस रेखा पर स्थित सभी बिन्दु भुज कहलाते हैं तथा उदग्र भुजा YOY कोटि अक्ष कहलाती है। इस रेखा पर स्थित सभी बिन्दु कोटि कहलाते हैं। द्वितीय चतुर्थों में X अक्ष पर स्थित बिन्दु ऋणात्मक तथा Y अक्ष पर स्थित बिन्दु धनात्मक होते हैं। तृतीय चतुर्थों में X तथा Y दोनों अक्षों पर स्थित बिन्दु ऋणात्मक होते हैं। चतुर्थ चतुर्थों में X अक्ष पर स्थित बिन्दु धनात्मक तथा Y अक्ष पर स्थित बिन्दु ऋणात्मक होते हैं। सामान्यतः प्रथम चतुर्थों का सबसे ज्यादा प्रयोग किया जाता है क्योंकि आर्थिक तथा व्यावसायिक क्षेत्र के अधिकांश प्रदत्त धनात्मक होते हैं।

रेखाचित्र के गुण : रेखाचित्रण में निम्न गुण पाये जाते हैं–

1. जब सांख्यिकीय आंकड़ों को अंकों के स्थान पर रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जाता है तो आंकड़ों की प्रकृति को समझना अधिक सरल हो जाता है।
2. रेखाचित्रण द्वारा प्रदर्शित आंकड़ों को समझने में बहुत कम समय खर्च होता है अर्थात् समय की बचत होती है।
3. रेखाचित्रण द्वारा प्रदर्शित आंकड़े आकर्षक, रुचिपूर्ण एवं प्रभावशाली होते हैं।
4. रेखाचित्रण की सहायता से परिणाम/निष्कर्ष आसानी से निकाले जा सकते हैं।

रेखाचित्र के दोष : रेखाचित्र के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं–

1. जिन पैमानों का सहारा लेकर ये रेखचित्र तैयार किए जाते हैं यदि इन्हीं पैमानों में थोड़ा फेरबदल कर दिया जाए तो रेखाचित्र का अर्थ ही बदल जाता है।

टिप्पणी

2. अनेक व्यक्ति रेखाचित्रों से अनभिज्ञ होते हैं, वे इनको कोई महत्व नहीं देते हैं।
3. रेखाचित्रों द्वारा यथार्थ आंकिक शुद्धता ज्ञात करना सम्भव नहीं होता है।
4. रेखाचित्रों को उद्धरण के रूप में प्रस्तुत करना सम्भव नहीं होता है।

रेखीय प्रदर्शन के प्रकार : सांख्यिकीय आँकड़ों का रेखीय प्रदर्शन मुख्य रूप से निम्न प्रकार का होता है–

(अ) सरल रेखा आरेख (Simple line Diagram)
(ब) सरल दण्ड आरेख (Bar Diagrams)
(स) तुलनात्मक दण्ड आरेख (Comparative Bar Diagrams)
(द) वृत्त आरेख (Pie Diagrams)
(य) आवृत्ति दण्डाकृति (Frequency Histograms)
(र) आवृत्ति बहुभुज (Frequency Polygon)
(ल) आवृत्ति वक्र (Frequency Curve)
(व) संचयी आवृत्ति वक्र (Cumulative Frequency Curve)
(स) संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र या ओगिव (Cumulative Percentage Frequency Curve or Ogive)

इस अध्याय में रेखीय प्रदर्शन के इन सभी प्रकारों को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

(अ) सरल रेखा आरेख : यदि एक तथ्य से सम्बन्धित पद–मूल्यों की संख्या अधिक हो तथा न्यूनतम व अधिकतम मूल्यों का अनुपात कम हो तो एक उचित मापदण्ड के अनुसार प्रत्येक मूल्य के बराबर लम्बाई की खड़ी या उदग्र (Vertical) रेखा खींची जाती है। रेखाओं के बीच में समान अन्तराल रखा जाता है।

क्रम संख्या	मूल्य	क्रम संख्या	मूल्य
1	44	11	55
2	43	12	58
3	43	13	60
4	45	14	60
5	47	15	62
6	49	16	63
7	49	17	64
8	50	18	65
9	52	19	67
10	55	20	69

टिप्पणी

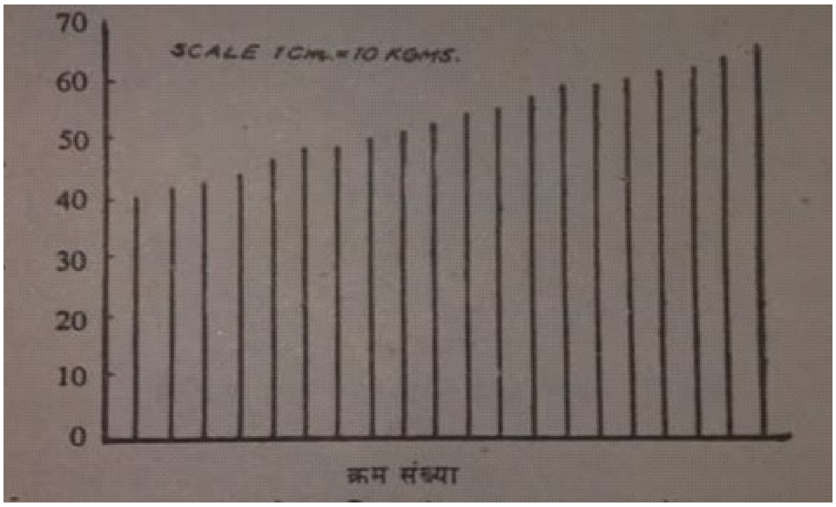

सरल रेखा चित्र

(ब) सरल दण्ड आरेख : जब प्राप्त प्रदत्तों को ग्राफ पेपर पर खड़े स्तम्भों के रूप में प्रदर्शित किया जाता है तो उसे दण्ड आरेख या स्तम्भ आरेख कहते हैं। इसका प्रयोग सामान्यतः विद्यालयों, विद्यार्थियों, शिक्षकों की संख्या और साक्षर–निराक्षरों की संख्या आदि स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। दण्ड आरेख के द्वारा दो या दो से अधिक समूहों की मध्यमान योग्यता को भी स्पष्ट किया जा सकता है। दण्ड आरेख लम्बवत (Longitudinal) या क्षैतिज (Horizontal) किसी भी दिशा में बनाए जा सकते हैं। सामान्यतः इन्हें लम्बवत ही बनाये जाते हैं।

उदाहरण– एक महाविद्यालय के विभिन्न वर्गों के विद्यार्थियों की संख्या निम्न प्रकार है। विद्यार्थियों की संख्या में इस वृद्धि को दण्ड आरेख द्वारा स्पष्ट कीजिए।

वर्ष	2015	2016	2017	2018	2019
विद्यार्थियों की संख्या	3000	3500	4000	4500	5400

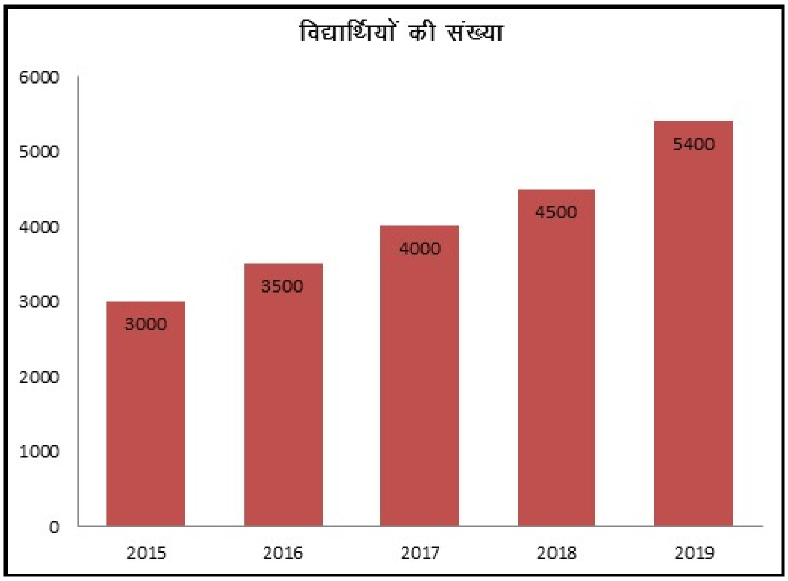

• **बहुगुणी दण्ड आरेख** : दो या दो से अधिक समूहों या वितरणों की समय या स्थान के आधार पर तुलना करने के लिए बहुगुणी आरेख का प्रयोग किया जाता

है। उदाहरण– निम्न उदाहरण में विभिन्न समयों, वर्षों पर विद्यालय में कुल विद्यार्थियों एवं उनके कुल बालकों तथा बालिकाओं की संख्या दी गयी है। इसे दण्ड आरेख के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।

वर्ष	2015	2016	2017	2018	2019
विद्यार्थियों	3000	3500	4000	4500	5400
बालक	2200	2400	2850	3300	4000
बालिकाओं	800	1100	1150	1200	1400

एक विद्यालय में कुल विद्यार्थियों की संख्या तथा बालक एवं बालिकाओं की संख्या का दण्ड आरेख द्वारा प्रदर्शन

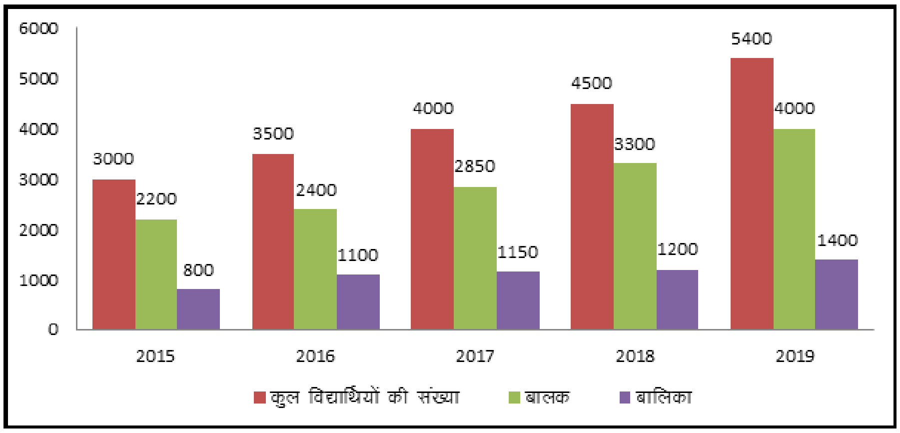

उदाहरण – एक विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं में गणित विषय की परीक्षाओं में प्राप्तांकों का मध्यमान निम्न तालिका में अंकित है इसे दण्ड आरेख द्वारा स्पष्ट कीजिए–

कक्षा	6	7	8	9	11
गणित विषय	55	44	60	65	59

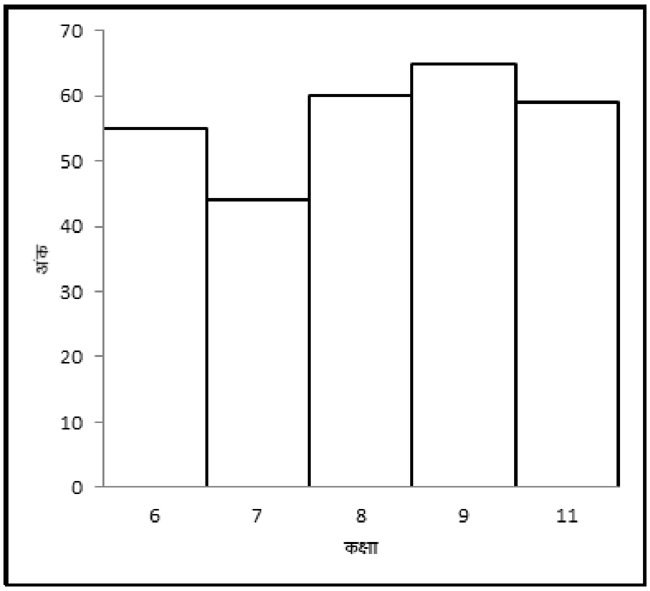

दण्ड आरेख के उपयोग

इस आरेख के उपयोग निम्नलिखित हैं–

1. यदि आंकड़ों की तुलना सरलता से करनी हो तो ऐसी स्थिति में दण्ड आरेख का उपयोग लाभकारी होता है।
2. एक ही दृष्टि में रखकर यदि हमें आंकड़ों की व्याख्या करनी हो तो हमें दण्ड आरेख का उपयोग करना चाहिए।
3. दण्ड आरेख का उपयोग आंकड़ों के वर्गीकरण को प्रदर्शित करने में किया जाता है।

दण्ड आरेख के गुण

दण्ड आरेख के गुण निम्नलिखित हैं–

1. दण्ड आरेख की सहायता से सभी प्रदत्तों का ज्ञान एक ही दृष्टि में ही हो जाता है।
2. इस आरेख की सहायता से आँकड़ों के बीच तुलना आसानी से हो जाती है।
3. दण्ड आरेख में हम वर्गान्तरों को सटाकर दिखा सकते हैं, फिर अलग–अलग भी दिखा सकते हैं। इस आरेख में वर्गान्तरों के लिए कोई बन्धन नहीं होता है।

दण्ड आरेख के दोष

दण्ड आरेख के दोष निम्नलिखित हैं–

1. यदि प्राप्त आँकड़ों की संख्या बहुत अधिक हो तथा उन आँकड़ों को प्रदर्शित करना हो तो इसके लिए दण्ड आरेख उपयोगी नहीं होता है।
2. दण्ड आरेख के द्वारा केवल साधारण तुलना ही की जा सकती है। यदि हमें स्पष्ट एवं पूर्ण तुलना करनी हो तो इसके लिए दण्ड आरेख उपयुक्त नहीं होता है।
3. यदि हमें आँकड़ों की सांख्यिकीय व्याख्या करनी हो तो भी ऐसी स्थिति में दण्ड आरेख कारगर साबित नहीं होता है।

(स) **तुलनात्मक दण्ड आरेख** : तुलनात्मक दण्ड आरेख का उपयोग प्रायः उन परिस्थितियों में किया जाता है जहां आँकड़ों का स्वरूप द्विपक्षी होता है। अर्थात् आँकड़ों के द्विचर स्वरूप के कारण तुलनात्मक दण्ड आरेख का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ– आयु सम्बन्धी, सेक्स सम्बन्धी, उत्तीर्ण–अनुत्तीर्ण आदि के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए तुलनात्मक दण्ड आरेख का प्रयोग उपयोगी होता है। नीचे दिए गए उदाहरणों के माध्यम से यह स्थिति और अधिक स्पष्ट हो जाती है।

विषय	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण
हिन्दी	90	10
अंग्रेजी	60	40
संस्कृत	70	30
इतिहास	60	40
भूगोल	50	50

उदाहरण– नीचे एक महाविद्यालय में पाँच विषयों में उत्तीर्ण तथा अनुत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों का परीक्षाफल प्रतिशत में दिया गया है– इस वितरण के लिए तुलनात्मक दण्ड आरेख की रचना कीजिए।

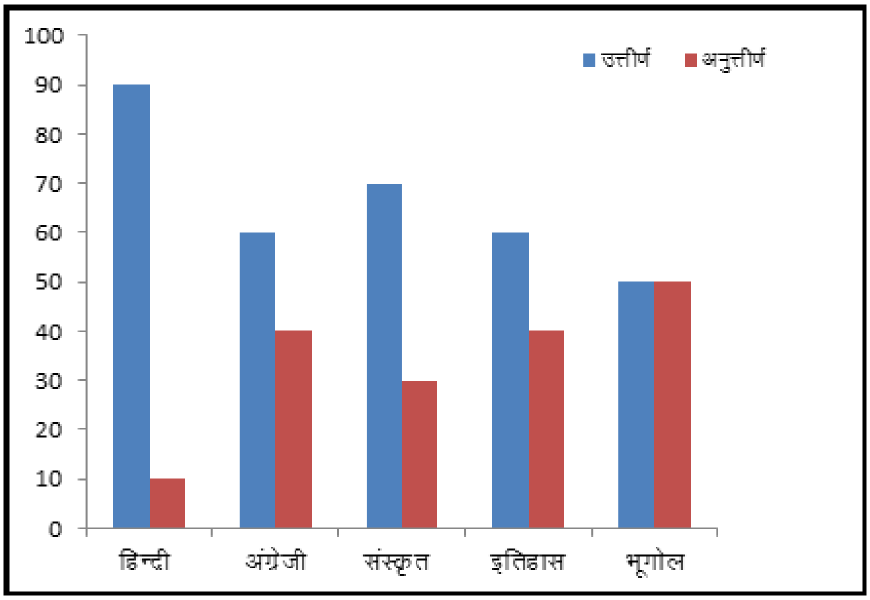

विद्यालय में विभिन्न विषयों में उत्तीर्ण एवं अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों का तुलनात्मक परीक्षाफल

विषय	बालकों का प्रतिशत	बलिकाओं का प्रतिशत
प्रथम	30	25
द्वितीय	35	30
तृतीय	20	35
अनुत्तीण	15	10

उदाहरण– एक विश्वविद्यालय में विज्ञान विषय के परीक्षाफल, श्रेणी के अनुसार बालक एवं बालिकाओं के प्रतिशत द्वारा दिखाए गए हैं जैसे–

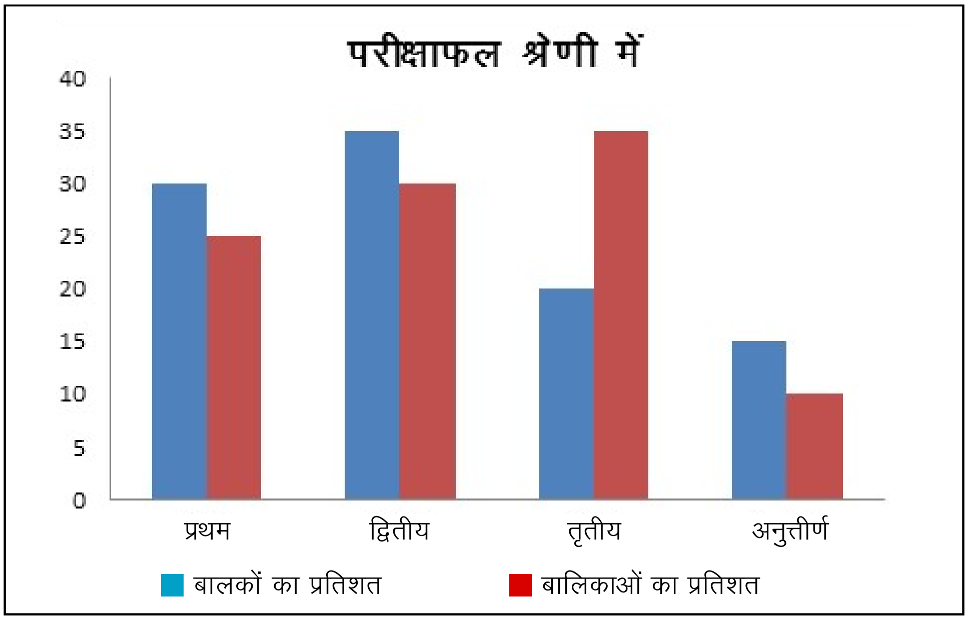

तुलनात्मक दण्ड आरेख के गुण

इस प्रकार के आरेख के गुण निम्नलिखित हैं–

1. जब दो या दो से अधिक प्रकार के आँकड़ों का तुलनात्मक ढंग से अध्ययन करना हो तो तुलनात्मक दण्ड आरेख का उपयोग लाभकारी होता है।
2. इस प्रकार के आरेख की सहायता से आँकड़ों की संख्या एक ही दृष्टि में रखकर सरलतापूर्वक की जा सकती है।
3. आँकड़ों के वर्गीकरण को दर्शाने में तुलनात्मक दण्ड आरेख का उपयोग किया जाता है।

तुलनात्मक दण्ड आरेख के दोष

तुलनात्मक दण्ड आरेख के दोष निम्नलिखित हैं–

1. यदि दो या दो से अधिक प्रकार के आँकड़ों की संख्या होती है तो सारे आँकड़ों को तुलनात्मक दृष्टि से दण्ड आरेख पर नहीं खींचा जा सकता है।
2. यदि तुलनात्मक आँकड़ों की व्याख्या सांख्यिकीय ढंग से करनी हो तो ऐसी स्थिति में तुलनात्मक दण्ड आरेख कारगर साबित नहीं हो पाता है।

(द) वृत्त आरेख : जब प्राप्त प्रदत्तों को वृत्त की सहायता से दर्शाया जाता है तो इस प्रकार बने ग्राफ को वृत्त आरेख कहते हैं। जैसा कि ज्ञात है कि प्रत्येक वृत्त का एक केन्द्र होता है। जिसे केन्द्र बिन्दु कहते हैं। ठीक उसी प्रकार से इसे वृत्त आरेख का केन्द्र बिन्दु कहते हैं। प्रत्येक वृत्त के केन्द्र पर 360^0 का कोण होता है। अतः वृत्त आरेख का पैमाना कोणों में तैयार किया जाता है। इस प्रकार से वृत्त आरेख को कोणीय आरेख भी कहा जाता है। यदि किसी प्रश्न में परिणाम प्रतिशत में दर्शाए गए हैं तो उनको अंशों में बदलना सरल होता है। प्रतिशत/अंकों को कोण में बदलने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है– प्राप्त अंकों को कुल अंकों से भाग देकर 360 से गुणा करके कोणीय मान में परिवर्तित किया जाता है।

उदाहरण एक विद्यालय में कक्षा 10 का परिणाम निम्न प्रकार से है। इन परिणामों को वृत्त आरेख द्वारा प्रदर्शित कीजिए–

श्रेणी	प्रतिशत
प्रथम	30
द्वितीय	45
तृतीय	10
अनुत्तीर्ण	15

हल– सबसे पहले सूत्र के द्वारा प्रतिशतों को अंश में परिवर्तित करेंगे और फिर वृत्त आरेख बनाते हैं।

श्रेणी	प्रतिशत	अंश में परिवर्तन
प्रथम	30÷	$\frac{30}{100} \times 360 = 108^0$
द्वितीय	45÷	$\frac{45}{100} \times 360 = 162^0$
तृतीय	10÷	$\frac{10}{100} \times 360 = 36^0$
अनुत्तीर्ण	15÷	$\frac{15}{100} \times 360 = 54^0$

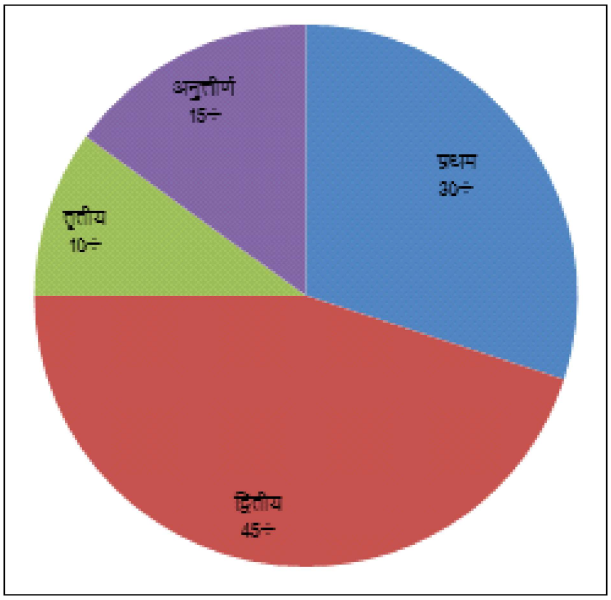

एक अन्य उदाहरण : एक विश्वविद्यालय के विभिन्न संकायों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की संख्या निम्न तालिका में दी गयी है। इस तालिका में दिए गए प्रदत्तों की सहायता से वृत्त आरेख की रचना कीजिए।

श्रेणी	विद्यार्थियों की संख्या
कला संकाय	600
विज्ञान संकाय	450
वाणिज्य संकाय	300
कृषि संकाय	150

हलः— सर्वप्रथम विद्यार्थियों की संख्या को संकाय के अनुसार प्रतिशत तथा अंशों में परिवर्तित करना होगा। इसके लिए समस्त विद्यार्थियों की संख्या ज्ञात की जायेगी = 600+450+300+150 = 1500

इसके बाद सभी संकायों की छात्रा संख्या को प्रतिशत में परिवर्तित किया जाता है–

श्रेणी	विद्यार्थियों की संख्या	प्रतिशत में परिवर्तन	अंश में परिवर्तन
कला संकाय	600	$\frac{600}{1500} \times 100 = 40\%$	$\frac{40}{100} \times 360 = 144^0$
विज्ञान संकाय	450	$\frac{450}{1500} \times 100 = 30\%$	$\frac{30}{100} \times 360 = 108^0$
वाणिज्य संकाय	300	$\frac{300}{1500} \times 100 = 20\%$	$\frac{20}{100} \times 360 = 72^0$
कृषि संकाय	150	$\frac{150}{1500} \times 100 = 10\%$	$\frac{10}{100} \times 360 = 36^0$

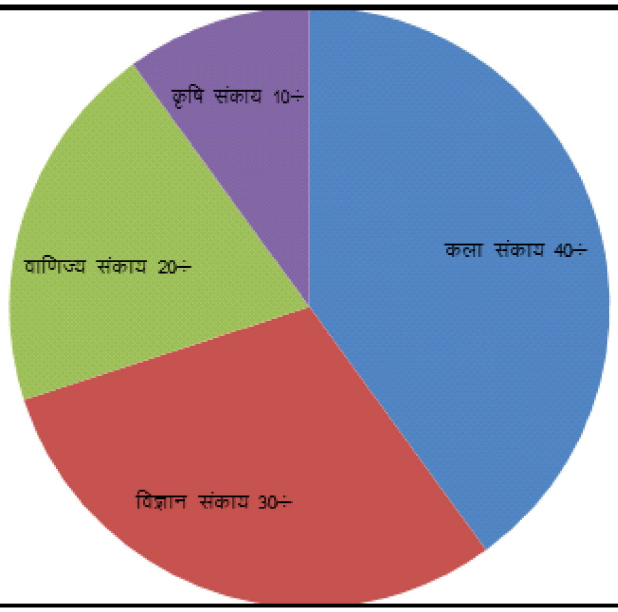

उपरोक्त वृत्त आरेख विभिन्न संकायों में विद्यार्थियों की संख्या के प्रतिशत को दर्शाया गया है।

वृत्त आरेख के गुण : वृत्त आरेख में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं–

1. वृत्त आरेख द्वारा हम उन्हीं आंकड़ों को प्रदर्शित कर सकते हैं जिन आँकड़ों का मान प्रतिशत या अंशों में दिया हुआ होता है।
2. जब हमें सामान्यतः आँकड़ों की तुलना करनी होती है तब हम वृत्त आरेख का उपयोग उचित समझते हैं।
3. वृत्त आरेख का उपयोग एक ही चर के विभिन्न आयामों को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है।
4. वृत्त आरेख में आँकड़ों का वितरण विशेष गुणों के आधार पर किया जाता है।
5. वर्गों की संख्या निश्चित होने के कारण, आंकड़ों का वर्गीकरण कम समूहों में किया जाता है।

6. वृत्त आरेख में हम आँकड़ों की संख्या को साधारण आयाम से न देखकर कोणीय आयाम की सहायता से देखते हैं।

वृत्त आरेख के दोष : वृत्त आरेख में निम्न दोष पाये जाते हैं–

टिप्पणी

1. जब आँकड़ों की संख्या बहुत अधिक होती है तब हम वृत्त आरेख का उपयोग उचित नहीं कर पाते हैं।
2. वृत्त आरेख का उपयोग हम तभी कर सकते हैं जब हमें आँकड़ों का कोणीय मान ज्ञात हो और कोणीय मान को ज्ञात करने के लिए काफी समय लग जाता है अतः इसमें समय की हानि होती है।

(य) आवृत्ति–दण्डाकृति

यदि आँकड़े आवृत्ति के रूप में व्यवस्थित हों तो इस प्रकार के आँकड़ों के लिए खींचा गया दण्ड आरेख आवृत्ति–दण्डाकृति कहलाता है। आवृत्ति–दण्डाकृति बनाने के लिए X अक्ष पर वर्गान्तरों को दर्शाया जाता है तथा Y अक्ष पर आवृत्तियों को निरूपित किया जाता है। वर्गान्तरों तथा आवृत्तियों के लिए पैमाना मानते समय थोड़ा ध्यान रखा जाना आवश्यक हो जाता है तथा पैमाना इस प्रकार से मानना चाहिए कि आरेख को बनाने में सुविधा हो। इस आरेख को निम्न उदाहरण की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है–

उदाहरण 100 अंकों की एक अंग्रेजी की परीक्षा में 50 विद्यार्थियों के प्राप्तांकों की आवृत्ति वितरण तालिका नीचे दी गई है। इन प्रदत्तों की सहायता से आवृत्ति दण्डाकृति बनाइए।

वर्ग	45.50	40.45	35.40	30.35	25.30	20.25	15.20	10.15
आवृत्ति	6	4	6	8	9	7	4	3

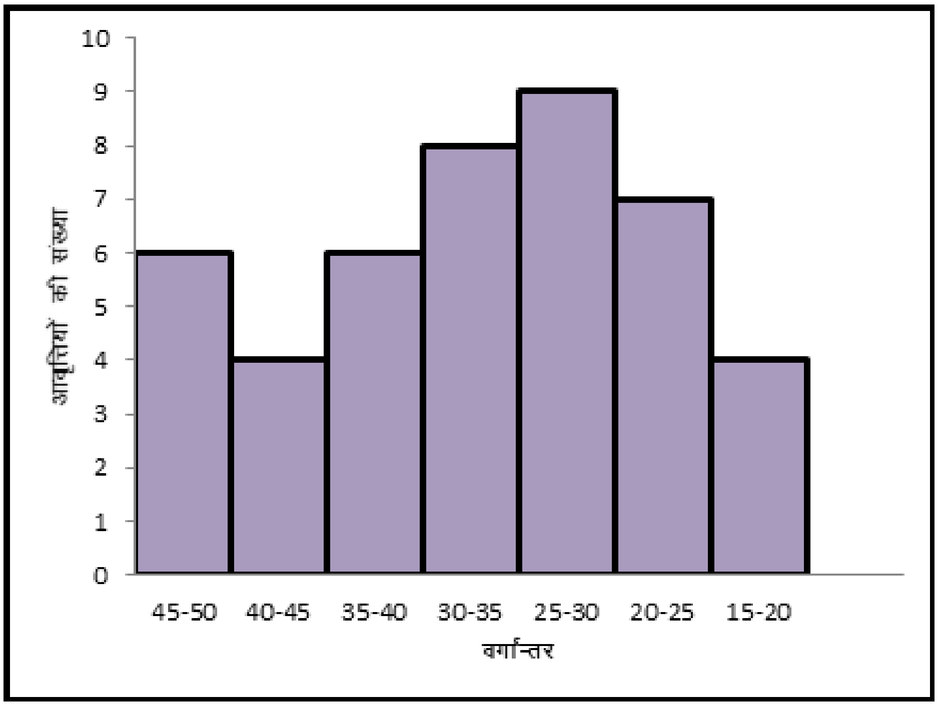

आवृत्ति दण्डाकृति के गुण : आवृत्ति दण्डाकृति में निम्न गुण होते हैं–

1. आवृत्ति दण्डाकृति वक्र केवल उन्हीं आँकड़ों के लिए प्रदर्शित किया जाता है जो आँकड़े आवृत्तियों के रूप में दिए होते हैं।
2. यदि दिए गए वर्ग अन्तराल को आरेख द्वारा दर्शाना हो तो ऐसी परिस्थितियों में आवृत्ति दण्डाकृति का उपयोग हितकारी रहता है।
3. आवृत्ति दण्डाकृति आरेख का उपयोग केवल एक ही प्रकार के आवृत्ति वितरण के लिए किया जाता है।

आवृत्ति दण्डाकृति के दोष : आवृत्ति दण्डाकृति में निम्न दोष होते हैं–

1. आवृत्ति–दण्डाकृति आरेख द्वारा उच्च सांख्यिकीय व्याख्याएँ नहीं की जा सकती हैं।
2. केवल और केवल सतत् (Continuous) चरों (Variables) के आवृत्ति वितरणों के द्वारा ही आवृत्ति–दण्डाकृति को प्रदर्शित किया जा सकता है।

(र) आवृत्ति–बहुभुज : आवृत्ति रूप में व्यवस्थि आँकड़ों को यदि दण्ड आरेख में दर्शाया जाता है तो इस रचना को आवृत्ति–दण्डाकृति कहा जाता है परन्तु यदि आवृत्ति वितरण को दण्डों द्वारा न दर्शाकर उन दण्डों की शीर्ष रेखाओं के मध्य बिन्दुओं को मिलाकर प्रदर्शित किया जाए तो यह आरेख आवृत्ति–बहुभुज कहलाता है। आवृत्ति बहुभुज को दर्शाने का एक तरीका यह भी होता है कि यदि वर्गान्तरों की संख्या बहुत अधिक हो तो दण्डों की जगह दण्डों के बीच के बिन्दुओं को मिलाकर रेखा खींच दी जाती है।

यहाँ एक तथ्य यह भी है कि अगर हमें आवृत्ति बहुभुज बनाना हो तो सबसे पहले आवृत्ति वितरण में सबसे ऊपर तथा सबसे नीचे एक–एक वर्ग और जोड़ लिया जाता है तथा इन जोड़े गए आभासी वर्ग की आवृत्ति शून्य मान ली जाती है एवं अब ठीक आवृत्ति–दण्डाकृति आरेख खींचा जाता है फिर इसमें प्रत्येक दण्ड पर शीर्ष रेखा के मध्य बिन्दुओं को आपस में मिलाकर एक रेखा खींच दी जाती है। इस प्रकार प्राप्त आकृति आवृत्ति बहुभुज कहलाती है। नीचे दिये गए उदाहरण की सहायता से आवृत्ति– बहुभुज आरेख आसानी से समझा जा सकता है।

उदाहरण– 50 अंकों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा में 50 छात्रों के प्राप्तांकों की आवृत्ति वितरण तालिका निम्न प्रकार से दी गई है। इन आँकड़ों को आवृत्ति बहुभुज के रूप में दर्शाओ–

वर्ग अन्तराल	आवृत्ति
50 – 55 बढ़ा हुआ वर्ग	0
45 – 50	5
40 – 45	9
35 – 40	7
30 – 35	8
25 – 30	4
20 – 25	6
15 – 20	5
10 – 15	6
5 – 10 बढ़ा हुआ वर्ग	0
	50

हल– सबसे पहले ज्ञात वर्गान्तरों को ग अक्ष पर प्रदर्शित करते हैं तथा आवृत्तियों को Y अक्ष पर निरूपित करते हैं चूँकि दिये गए उदाहरण में वर्गान्तर 10–15 (सबसे नीचे) तथा वर्गान्तर 45–50 (सबसे ऊपर) दिया गया है। परन्तु नियमानुसार आवृत्ति बहुभुज आरेख बनाने के लिए एक आभासी वर्गान्तर मानते हैं। सबसे ऊपर 50–55 तथा सबसे नीचे वर्गान्तर (5–10) मानेंगे जिसकी आवृत्ति शून्य होगी। OX अक्ष रेखा खींचने के लिए 1 वर्ग = 1 सेमी का पैमाना माना जाता है तथा OY अक्ष रेखा के लिए भी यही माप रखी जाती है।

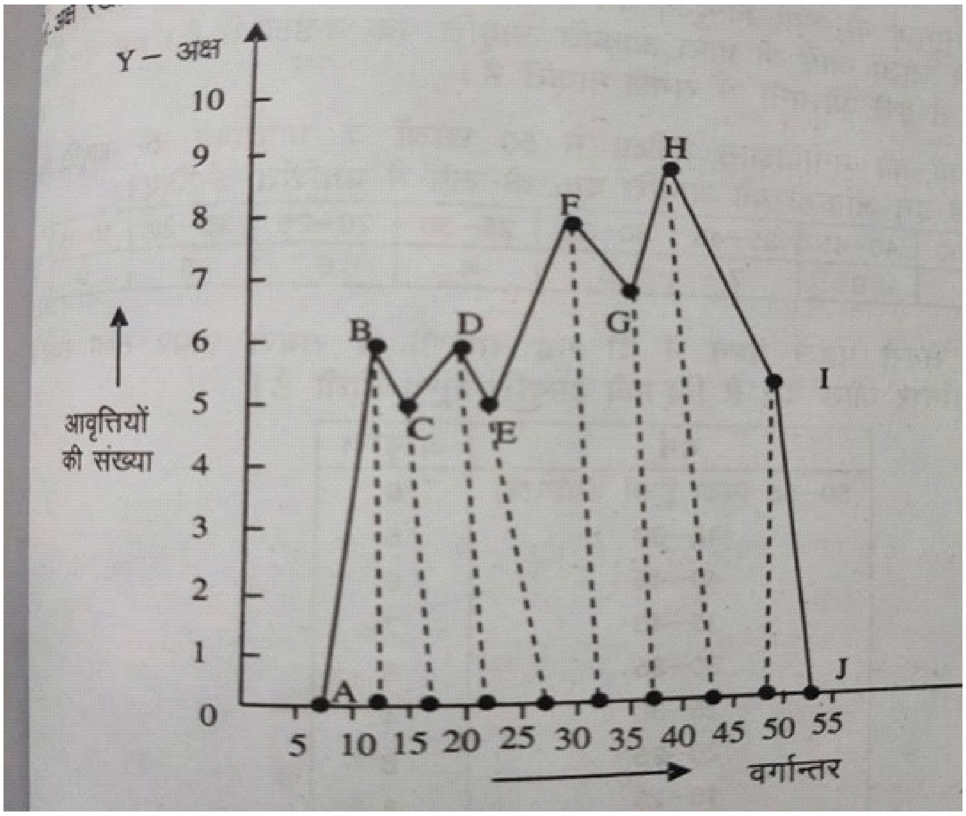

सबसे पहले हमने वर्गान्तर (5–10) की आवृत्ति 0 को बिन्दु A से निरूपित किया तथा फिर वर्गान्तर (10–15) की आवृत्ति 6 को बिन्दु B से तथा वर्गान्तर (15–20) की आवृत्ति 5 को बिन्दु C तथा यही प्रक्रिया सबसे ऊपर तक के वर्गान्तर के साथ की तथा फिर इन सभी बिन्दुओं को पैमाने की सहायता से मिलाकर आवृत्ति बहुभुज को तैयार किया। जैसा कि आप चित्र संख्या में देखते हैं।

आवृत्ति–बहुभुज के गुण : आवृत्ति बहुभुज के निम्नलिखित गुण हैं–

1. यदि आँकड़े आवृत्तियों के रूप में दिये हों और वर्गान्तरों की संख्या बहुत ज्यादा हो तो ऐसी स्थिति में हम इन आँकड़ों को आवृत्ति बहुभुज के रूप में प्रदर्शित कर सकते हैं।
2. आवृत्ति बहुभुज का उपयोग आँकड़ों की वितरण प्रकृति को समझने के लिए भी किया जाता है।
3. आवृत्ति बहुभुज का उपयोग दो या दो से ज्यादा समूहों की तुलना के लिए भी किया जाता है।

आवृत्ति–बहुभुज के दोष : आवृत्ति बहुभुज के दोष निम्नलिखित हैं–

1. केवल सतत् (continuous) आँकड़ों के लिए ही आवृत्ति–बहुभुज को प्रदर्शित किया जा सकता है।
2. आवृत्ति बहुभुज की सहायता से कोई संख्यात्मक तुलना आदि नहीं की जा सकती है।
3. आवृत्ति बहुभुज द्वारा किसी भी प्रकार का उच्च सांख्यिकीय विश्लेषण नहीं किया जा सकता है।

(ल) आवृत्ति वक्र

आवृत्ति वक्र की बनावट बिल्कुल आवृत्ति–बहुभुज की तरह ही होती है। बस अन्तर केवल इतना होता है कि आवृत्ति–बहुभुज के शीर्ष बिन्दुओं को सीधी रेखाओं से न जोड़कर उन बिन्दुओं को गोलाई () में जोड़ा जाए जो प्राप्त आकृति आवृत्ति वक्र कहलाती है। हम नीचे दिये गए उदाहरण की सहायता से इसे आसानी से समझ सकते हैं।

उदाहरण– 50 अकों की मनोविज्ञान परीक्षा में 50 छात्रों के प्राप्तांकों की आवृत्ति वितरण तालिका नीचे दी गई है। इन आँकड़ों को आवृत्ति वक्र के रूप में प्रदर्शित कीजिए।

वर्ग अन्तराल	आवृत्ति
50 – 55 बढ़ा हुआ वर्ग	0
45 – 50	5
40 – 45	9
35 – 40	7
30 – 35	8
25 – 30	4
20 – 25	6
15 – 20	5
10 – 15	6
5 – 10 बढ़ा हुआ वर्ग	0
	50

अब सबसे पहले ज्ञात वर्गान्तरों को X अक्ष पर निरूपित करते हैं तथा आवृत्तियों को Y अक्ष पर निरूपित करते हैं। OX अक्ष रेखा खींचने के लिए 1 वर्ग = 1 सेमी का पैमाना मान लेते हैं तथा यही माप OY अक्ष रेखा खींचने के लिए उपयोग में लाई जाती है।

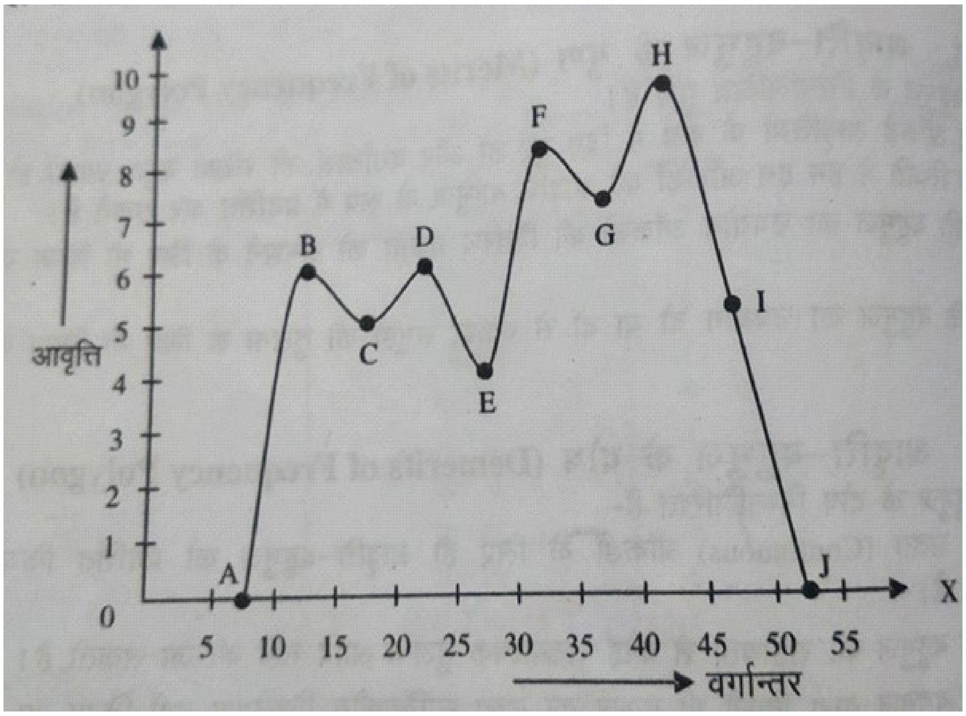

आवृत्ति वक्र खींचने के लिए हमने वर्गान्तर (5–10) की आवृत्ति 0 को बिन्दु A से निरूपित किया तथा फिर वर्गान्तर (10–15) की आवृत्ति 6 को B से तथा वर्गान्तर (15–20) की आवृत्ति 5 को बिन्दु C से निरूपित किया तथा यह प्रक्रिया सबसे ऊपर तक के वर्गान्तर (50–55) तक की तथा फिर इन सभी बिन्दुओं A, B, D, E, F, G, H, I, I को गोलाई (Free Hamd) से मिलाकर आपस में जोड़ देते हैं जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है। यह तैयार आकृति आवृत्ति वक्र कहलाती है।

आवृत्ति वक्र के गुण : आवृत्ति वक्र के गुण निम्नलिखित हैं–

1. यदि आँकड़े आवृत्तियों के रूप में दिये हों तथा वर्गान्तरों की संख्या बहुत अधिक हो तो ऐसी स्थिति में आँकड़ों को दर्शाने के लिए आवृत्ति वक्र उपयोग करते हैं।
2. आवृत्ति वक्र का उपयोग आँकड़ों की वितरण प्रकृति को समझने के लिए भी किया जाता है।
3. आवृत्ति वक्र का उपयोग दो या दो से अधिक समूहों की तुलना के लिए भी किया जाता है।

आवृत्ति वक्र के दोष : आवृत्ति वक्र के दोष निम्नलिखित हैं–

1. केवल सतत् आँकड़ों के लिए आवृत्ति वक्र को प्रदर्शित किया जा सकता है।
2. आवृत्ति वक्र की सहायता से कोई संख्यात्मक तुलना नहीं की जा सकती है।

3. आवृत्ति वक्र के द्वारा किसी भी प्रकार का उच्च सांख्यिकीय विश्लेषण नहीं किया जा सकता है।

(व) संचयी आवृत्ति वक्र : पूर्व में हमने आवृत्ति बहुभुज तथा आवृत्ति वक्र का अध्ययन किया। संचयी आवृत्ति वक्र, आवृत्ति वक्र पर ही आधारित है अर्थात् आवृत्ति की तरह ही संचयी आवृत्ति वक्र, संचयी आवृत्ति वक्र कहलाता है। इसका निर्माण हम नीचे दिये गए उदाहरण द्वारा भली भांति समझ सकते हैं।

उदाहरण– 50 अंकों की एक अंग्रेजी की परीक्षा में 50 छात्रों के प्राप्तांकों की आवृत्ति विवरण तालिका नीचे दी गई है। इस तालिका के माध्यम से संचयी आवृत्ति वक्र की रचना कीजिए।

वर्ग	45–50	40–45	35–40	30–35	25–30	20–25	15–20	10–15
आवृत्ति	3	7	9	8	7	9	4	3

हल– सबसे पहले दी गई तालिका में नीचे तथा ऊपर दोनों ओर क्रमानुसार दो प्राप्तांक वर्ग बनाते हैं। नीचे की ओर वर्गान्तर 5–10 तथा ऊपर की ओर वर्गान्तर 50–55 तथा इन दोनों की आवृत्ति शून्य होती है। जैसा कि नीचे दी गई तालिका में दिखाया गया है। अब इस तालिका में संचयी आवृत्ति के कालम को पूरी तरह पूर्ण करते हैं अर्थात् संचयी आवृत्ति ज्ञात करने के लिए नीचे से आवृत्तियों को जोड़ते हुए संचयी वाले कालम को पूरा करते हैं जैसे–

वर्ग अन्तराल	आवृत्ति	संचयी आवृत्ति
50 – 55 बढ़ा हुआ वर्ग	0	50
45 – 50	3	50
40 – 45	7	47
35 – 40	9	40
30 – 35	8	31
25 – 30	7	23
20 – 25	8	16
15 – 20	5	8
10 – 15	3	3
5 – 10 बढ़ा हुआ वर्ग	0	0
	50	

उपरोक्त सारणी में दिए गये सूत्रानुसार हम आवृत्तियों से संचयी आवृत्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं तथा अब संचयी आवृत्ति वक्र खींचने के लिए संचयी आवृत्ति को Y अक्ष पर स्थित करते हैं तथा वर्गान्तरों को X अक्ष पर निरूपित कराते हैं। अब OX अक्ष तथा OY अक्ष दोनों के लिए समान परिमाप यानी 1 वर्ग = 1 तथा एक आवृत्ति = सेमी रखकर प्रत्येक प्राप्तांक वर्गान्तर में उसकी संचयी आवृत्तियों को वर्गान्तर के केन्द्रबिन्दु पर डॉट (-) बनाकर अंकित करते हैं तथा अब इन सभी बिन्दुओं को गोलाई (Free Hand) द्वारा मिलाकर संचयी आवृत्ति वक्र तैयार कर सकते हैं जैसा कि चित्र संख्या में दिखाया गया है।

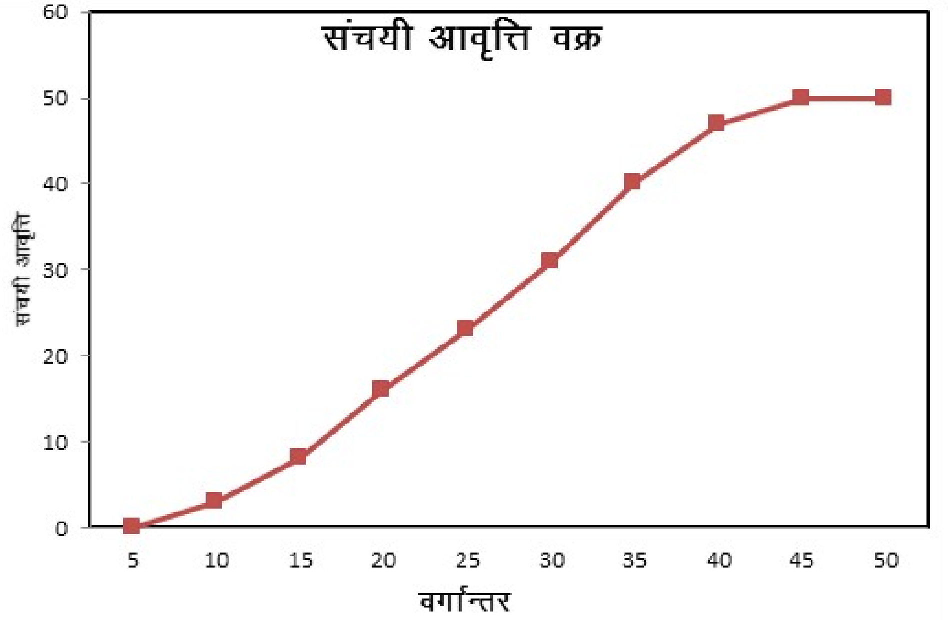

(स) संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र या ओगिव : संचयी आवृत्तियों को प्रतिशत आवृत्तियों में बदलकर जो वक्र बनाया जाता है उसे संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र या तोरण कहते हैं।

संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र की संरचना संचयी आवृत्ति वक्र के समान ही होती है। दोनों वक्रों में अन्तर केवल इतना है कि संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र संचयी प्रतिशत आवृत्तियों (Cumulative Percentage Frequency) के आधार पर तैयार किया जाता है जबकि संचयी आवृत्ति वक्र केवल संचयी आवृत्तियों के आधार पर तैयार किया जाता है।

सबसे पहले ज्ञात आँकड़ों की आवृत्तियों को संचयी आवृत्तियों में परिवर्तित किया जाता है तथा फिर संचयी आवृत्तियों को संचयी प्रतिशत आवृत्तियों (C.P.F) में परिवर्तित किया जाता है।

संचयी आवृत्तियों को प्रतिशत आवृत्तियों में बदलने के लिए नीचे दिए गए सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

संचयी प्रतिशत आवृत्ति $C.P.F = \frac{F \times 100}{N}$

F = संचयी आवृत्ति

N = आवृत्तियों की कुल संख्या

टिप्पणी

इसके निर्माण को हम आगे दिए गये उदाहरण से भली–भाँति समझ सकते हैं।

उदाहरण– निम्नलिखित आँकड़ों की सहायता से संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र की रचना कीजिए।

वर्ग	80–85	75–80	70–75	65–70	60–65	55–60	50–55	45–50	40–45	35–40
आवृत्ति	2	4	5	7	9	6	4	3	2	1

हल– सबसे पहले दी गई तालिका में सबसे नीचे आभासी वर्गान्तर (30-35) लेते हैं। जिसकी आवृत्ति शून्य मानते हैं। इसके पश्चात् आवृत्तियों को नीचे से जोड़ते हुए चलते हैं तथा इस प्रकार से संचयी आवृत्ति का मान हमें ज्ञात हो जाता है।

यह प्रकरण बिल्कुल उसी प्रकार से है जिस प्रकार से संचयी आवृत्ति वक्र के लिए संचयी आवृत्तियों का मान ज्ञात किया जाता था। अब प्रत्येक संचयी आवृत्ति से सूत्रानुसार इस संचयी प्रतिशत आवृत्ति का मान ज्ञात करते हुए निम्नलिखित सारणी प्राप्त कर लेते हैं।

वर्गान्तर	आवृत्ति	संचयी आवृत्ति	संचयी प्रतिशत आवृत्ति
80-85	2	43	$\frac{43 \times 100}{43} = 100$
75-80	4	41	$\frac{41 \times 100}{43} = 95.35 = 95$
70-75	5	37	$\frac{37 \times 100}{43} = 86.04 = 86$
65-70	7	32	$\frac{32 \times 100}{43} = 74.42 = 74$
60-65	9	25	$\frac{25 \times 100}{43} = 58.14 = 58$
55-60	6	16	$\frac{16 \times 100}{43} = 37.2 = 37$
50-55	4	10	$\frac{10 \times 100}{43} = 23.25 = 23$
45-50	3	6	$\frac{6 \times 100}{43} = 13.95 = 14$
40-45	2	3	$\frac{3 \times 100}{43} = 6.97 = 7$
35-40	1	1	$\frac{1 \times 100}{43} = 2.32 = 2$
30-35	0	0	$\frac{0 \times 100}{43} = 00 = 0$
	43		

टिप्पणी

वर्गान्तर	आवृत्ति	संचयी आवृत्ति	संचयी प्रतिशत आवृत्ति
80 - 85	2	43	$\frac{43\times100}{43}=100$
75 - 80	4	41	$\frac{41\times100}{43}=95.35=95$
70 - 75	5	37	$\frac{37\times100}{43}=86.04=86$
65 - 70	7	32	$\frac{32\times100}{43}=74.42=74$
60 - 65	9	25	$\frac{25\times100}{43}=58.14=58$
55 - 60	6	16	$\frac{16\times100}{43}=37.2=37$
50 - 55	4	10	$\frac{10\times100}{43}=23.25=23$
45 - 50	3	6	$\frac{6\times100}{43}=13.95=14$
40 - 45	2	3	$\frac{3\times100}{43}=6.97=7$
35 - 40	1	1	$\frac{1\times100}{43}=2.32=2$
30 - 35	0	0	$\frac{0\times100}{43}=00=0$
	43		

अब संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र बनाने के लिए उपरोक्त सारणी के वर्गान्तरों को X अक्ष पर 1 सेमी = 1 वर्ग (प्रत्येक वर्गान्तर) मानकर आधार रेखा खींचते हैं तथा प्राप्त संचयी प्रतिशत आवृत्ति को Y अक्ष द्वारा प्रदर्शित करते हैं। इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ग में उसकी प्रतिशत संचयी आवृत्तियाँ तथा वर्ग के केन्द्र बिन्दु पर डॉट (-) बनाकर अंकित करते हैं तथा अब इन संचयी प्रतिशत आवृत्ति बिन्दुओं को गोलाई (free hand) द्वारा मिलाकर जो वक्र तैयार होता है वही संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र कहलाता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है–

टिप्पणी

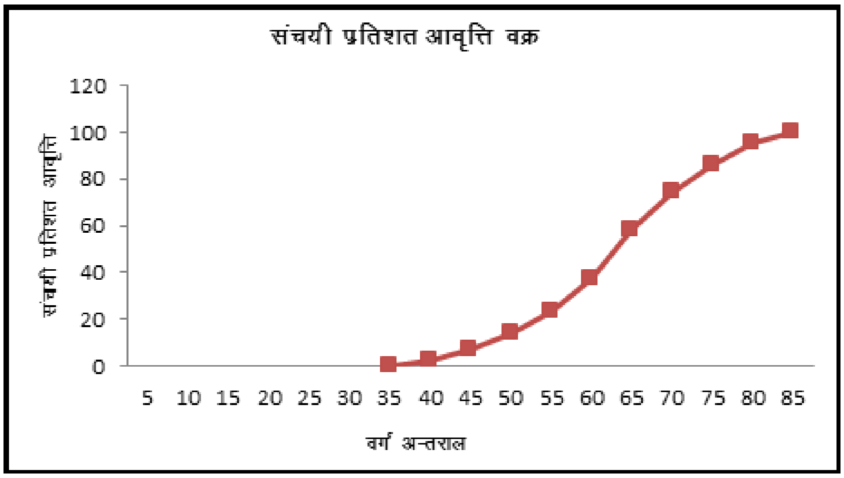

संचयी आवृत्ति वक्र के गुण : संचयी आवृत्ति वक्र के गुण निम्नलिखित हैं–

1. संचयी आवृत्ति वक्र के माध्यम से हम संचयी आवृत्तियों को प्रदर्शित कर सकते हैं।
2. किसी भी वितरण की मध्यिका, चतुर्थों आदि का मान हम संचयी आवृत्ति वक्र द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।
3. किसी बिन्दु से ऊपर अथवा नीचे कितने आँकड़े मौजूद हैं। इसकी गणना हम संचयी आवृत्ति वक्र द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।
4. एक से ज्यादा संचयी आवृत्ति वक्रों द्वारा हम भिन्न–भिन्न प्रकार के आँकड़ों की मध्यिकाओं, चतुर्थो की तुलना भी कर सकते हैं।

संचयी आवृत्ति वक्र के दोष : संचयी आवृत्ति वक्र के दोष निम्नलिखित हैं–

1. संचयी आवृत्ति वक्र द्वारा ज्ञात की गई गणनाएँ सही होती हैं परन्तु शत–प्रतिशत शुद्ध नहीं होती हैं।
2. संचयी आवृत्ति वक्र द्वारा गणना करने में समय अधिक व्यय होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

4. चित्रमय प्रदर्शन का सबसे सरल रूप है–

   (क) आरेख चित्र (ख) वृत्तीय चित्र
   (ग) सरल दण्ड चित्र (घ) आयत चित्र

5. आंकड़ों का स्वरूप जब द्विपक्षी होता है तब किस प्रकार के आरेखों का प्रयोग किया जाता है?

   (क) सरल दण्ड आरेख (ख) तुलनात्मक दण्ड आरेख
   (ग) वृत्त आरेख (घ) आवृत्ति–दण्डाकृति

6. वृत्त आरेख के प्रत्येक वृत्त के केंद्र पर कितने डिग्री का प्रयोग किया जाता है?

   (क) 90^o (ख) 180^o
   (ग) 270^o (घ) 360^o

4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (घ)
3. (क)
4. (ग)
5. (ख)
6. (घ)

4.5 सारांश

सांख्यिकी वैज्ञानिक विधि की वह शाखा है जो प्राकृतिक तथ्यों के समग्रों की विशेषताओं संबंधी आगणन अथवा मापने से उपलब्ध समंकों से व्यवहार करती है। सांख्यिकी का क्षेत्र जो प्राचीन काल में केवल राज्य तक सीमित था वर्तमान समय में अत्यधिक व्यापक हो गया है।

सामाजिक समस्याओं से संबंधित 'सामाजिक समंक', आर्थिक समस्याओं से संबंधित 'आर्थिक समंक', कृषि समस्याओं से संबंधित 'कृषि समंक' एवं व्यापारिक समस्याओं से संबंधित 'व्यापार समंक' आदि व्यावहारिक सांख्यिकी के अंतर्गत ही आते हैं। आधुनिक समय में 'व्यावसायिकी सांख्यिकी' व्यावसायिक समस्याओं का अध्ययन कर सांख्यिकीय रीतियों द्वारा समाधान का प्रयास किया जाता है।

अर्थशास्त्र में किसी भी नियम को बनाने के लिए पूर्व अनुभव तथा कुछ तथ्यों के चुनाव महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। तथ्यों के आधार पर किसी निष्कर्ष की परिकल्पना की जाती है तथा उसका परीक्षण किया जाता है।

व्यावसायिक प्रबंध एवं प्रशासन के क्षेत्र में सांख्यिकी के प्रयोग में निरंतर वृद्धि हो रही है। वाणिज्य प्रबंधकों को अनिश्चितता के मध्य निर्णय लेना होता है। समंकों के आधार पर ही व्यावसायिक खाते बनाये जाते हैं जिनसे व्यवसाय की गतिविधि का पता लगता है।

भारतीय आर्थिक नियोजन में, नियोजन के उद्देश्यों की पूर्ति और नीति एवं प्रशासन संबंधी निर्णय लेने के लिए निरंतर अधिकाधिक मात्रा में समंकों की आवश्यकता होती है। आजकल प्रत्येक देश योजनाबद्ध विकास में लगा हुआ है।

विनिमय के क्षेत्र में मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया में उत्पादन लागत और आगम का विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों पर आधारित है। इसके अंतर्गत बाजार की स्थिति, मूल्यों का निर्धारण, विनिमय के सिद्धांत आदि का अध्ययन किया जाता है।

सांख्यिकीय या प्रयोगात्मक प्रदत्तों का वास्तविक चित्रण कभी रेखाओं द्वारा किया जाता है तो कभी वक्रों द्वारा किया जाता है और कभी आकृतियों द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार किए गए चित्रण ही ग्राफ या रेखाचित्र कहलाते हैं।

ग्राफ द्वारा आंकड़ों को प्रदर्शित करने से आंकड़ों की तुलना सरल हो जाती है। यद्यपि संख्यात्मक आंकड़ों की तुलना भी सरल होती है परंतु ग्राफ द्वारा प्रदर्शित करने से आंकड़ों की तुलना सरल ही नहीं, सजीव भी बन जाती है।

तुलनात्मक दण्ड आरेख का उपयोग प्रायः उन परिस्थितियों में किया जाता है जहां आँकड़ों का स्वरूप द्विपक्षी होता है। अर्थात् आँकड़ों के द्विचर स्वरूप के कारण तुलनात्मक दण्ड आरेख का प्रयोग किया जाता है।

आवृत्ति रूप में व्यवस्थि आँकड़ों को यदि दण्ड आरेख में दर्शाया जाता है तो इस रचना को आवृत्ति–दण्डाकृति कहा जाता है परन्तु यदि आवृत्ति वितरण को दण्डों द्वारा न दर्शाकर उन दण्डों की शीर्ष रेखाओं के मध्य बिन्दुओं को मिलाकर प्रदर्शित किया जाए तो यह आरेख आवृत्ति–बहुभुज कहलाता है।

संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र की संरचना संचयी आवृत्ति वक्र के समान ही होती है। दोनों वक्रों में अन्तर केवल इतना है कि संचयी प्रतिशत आवृत्ति वक्र संचयी प्रतिशत आवृत्तियों (Cumulative Percentage Frequency) के आधार पर तैयार किया जाता है जबकि संचयी आवृत्ति वक्र केवल संचयी आवृत्तियों के आधार पर तैयार किया जाता है।

4.6 मुख्य शब्दावली

- **सांख्यिकी** : सांख्यिकी तथ्यों के संकलन, सारणीयन तथा विश्लेषण के सिद्धांत एवं उनकी विधियों का अध्ययन है।
- **सांख्यिकीय रीतियां** : सांख्यिकीय रीतियां वे प्रक्रियाएं है जो समंकों के संग्रहण, संगठन, संक्षिप्तीकरण, विश्लेषण, विवेचन एवं प्रस्तुतीकरण में प्रयोग की जाती हैं।
- **ग्राफ** : नैदानिक या प्रयोगात्मक प्रदत्तों का रेखाओं, वक्रों या आकृति द्वारा वास्तविक चित्रण ग्राफ कहलाता है।
- **दण्ड आरेख** : वह चित्र जिसमें आंकड़ों को दण्डों या आयतों के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।
- **बहुदण्ड आरेख** : ऐसे आरेख जिनमें दण्डों द्वारा दो या दो से अधिक तथ्यों के आंकड़ों को प्रदर्शित किया जाता है।
- **वृत्तीय आरेख** : वृत्तीय आरेख वह चित्र है जिसमें एक वृत्त को कई भागों में बांटकर सापेक्ष मूल्यों को प्रदर्शित किया जाता है।

4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. सांख्यिकी से आप क्या समझते हैं?
2. हम किस आधार पर कह सकते हैं कि सांख्यिकी की प्रकृति वैज्ञानिक है?
3. आर्थिक विश्लेषण में सांख्यिकी के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. रेखाचित्रों की रचना करते समय हमें किन नियमों का पालन करना चाहिए।
5. रेखाचित्र के गुण व दोषों को स्पष्ट कीजिए।
6. आवृत्ति–दण्डाकृति से क्या तात्पर्य है? इसके गुण व दोषों को समझाइए।

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. "सांख्यिकी एक विज्ञान नहीं है, वह एक वैज्ञानिक विधि है," इस कथन का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।
2. सांख्यिकी का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके क्षेत्रों की व्याख्या कीजिए।
3. सांख्यिकी के महत्व का उल्लेख कीजिए।
4. सांख्यिकी की प्रमुख सीमाओं की विवेचना कीजिए।
5. आंकड़ों के रेखीय प्रदर्शन की उपयोगिता, आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
6. वृत्त आरेख से आप क्या समझते हैं? इसके गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।
7. निम्नांकित आवृत्ति वितरण की सहायता से वृत्तआरेख की रचना कीजिए।

वर्ग अंतराल	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50
आवृत्ति	18	20	45	32	10

8. निम्नलिखित समंकों को दण्ड चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

वर्ष	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी
2007	10	50	40
2008	15	80	20

9. निम्नलिखित समंकों के लिए आवृत्ति बहुभुज एवं आवृत्ति वक्र की रचना कीजिए।

मजदूरी	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80
श्रमिकों की संख्या	10	21	28	43	31	14	2	1

4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutledgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 5 विश्लेषण की इकाइयों का अध्ययन : केंद्रीय प्रवृत्ति की माप, परिक्षेपण एवं सहसंबंध

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 विश्लेषण की इकाइयों का अध्ययन : अनुपात एवं प्रतिशत
 5.2.1 अनुपात
 5.2.2 प्रतिशत
5.3 केंद्रीय प्रवृत्ति की माप
 5.3.1 मध्यमान
 5.3.2 माध्यिका
 5.3.3 बहुलक
5.4 परिक्षेपण की माप
 5.4.1 परास
 5.4.2 चतुर्थक विचलन
 5.4.3 माध्य/मध्यमान विचलन
 5.4.4 मानक विचलन
 5.4.5 विचलन गुणांक
5.5 सहसंबंध और उसके माप
 5.5.1 सह–संबंध के प्रकार
 5.5.2 सहसंबंध की माप
5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

सार्थक और उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए समंकों का विश्लेषण और तुलना करना आवश्यक है ताकि उन्हें सरलता से समझा जा सके। जिन इकाइयों के आधार पर समंकों की तुलना की जाती है वे विश्लेषण कहलाते हैं। अनुपात और प्रतिशत इन्हीं के अंतर्गत आते हैं मानव मस्तिष्क जटिल समंकों को पूर्णतया समझने और उनकी तुलना करने में सर्वथा समर्थ नहीं है इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि विविध तथ्यों, जिनकी तुलना की जानी है उन्हें सारांश रूप में एक ही अंक द्वारा व्यक्त किया जा सके। अंक जिस प्रकार किसी समूह या समुदाय का मुखिया उस समूह अथवा उस समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है उसी प्रकारा केंद्रीय मान भी संपूर्ण समूह या प्राप्तांकों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

केंद्रीय प्रवृत्ति के माप के अतिरिक्त सामान्यतः समंकों को एक परिक्षेपण माप की आवश्यकता होती है। विशेषण का माप अवलोकनों द्वारा प्रदर्शित बिखराव की सीमा का विवरण देता है तथा उसे सामान्यतः किसी केंद्रित अथवा उचित स्तर पर से विचलनों के माध्य के रूप में जाना जाता है।

इस इकाई में अनुपात अध्ययन विश्लेषण केंद्रीय प्रवृत्ति की माप, परिक्षेपण की माप तथा सह–संबंध व उसके मापों को समझाया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अनुपात और प्रतिशत को जान पाएंगे;
- केंद्रीय प्रवृत्ति की विभिन्न मापों का उल्लेख कर पाएंगे;
- परिक्षेपण की मापों का विवेचन कर पाएंगे;
- सह–संबंध और उसके प्रकारों को समझ पाएंगे;
- सह–संबंध की मापों का आकलन कर पाएंगे।

5.2 विश्लेषण की इकाइयों का अध्ययन : अनुपात एवं प्रतिशत

सार्थक और उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए हमारे लिए समंकों का विश्लेषण और तुलना करना आवश्यक होता है ताकि उन्हें सरलता से समझा जा सके। इसके लिए अनेक विधियों का उपयोग किया जाता है उनमें से एक विधि है अनुपात और प्रतिशत।

इकाई अध्ययन विश्लेषण के अंतर्गत अनुपात और प्रतिशत आते हैं। इन व्युत्पन्नों के परिकलन करने का प्रमुख प्रयोजन तुलना में इनका सहायक होना है। ये अंश या हर की अज्ञात राशियों का आकलन करने में उपयोगी होते हैं।

जिन इकाइयों के आधार पर समंकों की तुलना की जाती है वे विश्लेषण व निर्वचन की इकाइयां कहलाती हैं। अनुपात व प्रतिशत विश्लेषण इकाइयों के अंतर्गत आते हैं। इन इकाइयों के माध्यम से समंकों का तुलनात्मक अध्ययन सरल और सुविधाजनक हो जाता है। सांख्यिकीय व्युत्पन्नों की गणना मूल रूप से तुलना करने के लिए की जाती है। अनुपात, प्रतिशतता - ये सभी किसी न किसी के सापेक्ष आकलन प्रस्तुत करते हैं।

5.2.1 अनुपात

सांख्यिकीय व्युत्पन्नों का परिकलन सामान्य उपागमों में से एक है। सांख्यिकीय व्युत्पन्नों के संबंध में दो महत्वपूर्ण विधियां हैं- ये हैं- अनुपात (Ratios), और प्रतिशत (Percentage)। इन दोनों के अर्थ को निम्न प्रकार से समझाया गया है-

अनुपात- दो सजातीय व समान संख्याओं के पारस्परिक मूल्यों को अनुपात (Ratios) द्वारा व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी नगर में 10,000 पुरुष व 8,000 स्त्रियां हैं तो पुरुष स्त्री का अनुपात 1000 : 8000 होगा। अनुपात दो मात्राओं का संबंध है। ये दोनों मात्राएं पद कहलाती हैं। इसमें पहले पद को दूसरे पद से भाग करके अनुपात निकाला जाता है। जिसकी तुलना की जाती है वह पहला पद है और जिसके साथ तुलना

की जाती है वह दूसरा पद है। यदि x वस्तु की कीमत 12 रु. और y की 4 रु. है तो इनका अनुपात होगा–

$$\text{अनुपात} = \frac{x \text{ वस्तु की कीमत}}{y \text{ वस्तु की कीमत}} = \frac{12 \text{ रु.}}{4 \text{ रु.}} = 3 \text{ रु.}$$

यहां अनुपात का मूल्य 3 रु. है जो यह दर्शाता है कि x वस्तु की कीमत y की कीमत से 3 गुना अधिक है। दूसरे शब्दों में दो सजातीय राशियों की तुलना को अनुपात कहा जाता है।

परिभाषा

वह गणितीय व्यंजक, जो समान इकाई को दो असमान राशियों के बीच सम्बन्ध या तुलना बताता है, वह अनुपात कहलाता है, जैसे; a अनुपात इ को a : b द्वारा दर्शाया जाता है। a को Antecedent और b को Consequent कहा जाता है।

दूसरे शब्दों में, अनुपात एक ऐसी संख्या है जो दो सजातीय राशियों के बीच संबंध प्रदर्शित करती है, कि एक राशि की अपेक्षा दूसरी कितनी गुना कम या अधिक है।

दो समान राशियों के तुलनात्मक अध्ययन को अनुपात कहा जाता है। जहां, a तथा b दो अशून्य संख्याएं हैं, जैसे, a : b

गणित में, समान प्रकार की दो संख्याओं के बीच सम्बन्ध को अनुपात कहते हैं, इस "a संबंध b" या a : b द्वारा सूचित किया जाता है।

अनुपात किसी भी संख्या या वस्तु की गुणात्मक तुलना को कहते हैं। अनुपात के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

1. राष्ट्रीय आय और जनसंख्या का अनुपात है प्रति व्यक्ति आय = $\frac{\text{राष्ट्रीय आय}}{\text{जनसंख्या}}$
2. आगत - उत्पादन अनुपात है प्रति इकाई उत्पादन के लिए आगत = आगत / उत्पादन
3. उपभोग और आय का अनुपात है उपभोग की प्रवृत्ति = उपभोग व्यय / आय
4. जनसंख्या और क्षेत्रफल का अनुपात है जनसंख्या का घनत्व = जनसंख्या / क्षेत्रफल

अनुपात हमेशा दो सजातीय राशि में होता है। एक राशि को दूसरी राशि में भाग देने पर अनुपात प्राप्त होता है। जैसे यदि राशि x को राशि y से भाग दिया जाए तब $\frac{x}{y}$ x तथा y का अनुपात कहते हैं। इसे निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है–

$\frac{x}{y}$ = x : y अतः अनुपात x : y में x को प्रथम पद तथा y को द्वितीय पद कहा जाता

है। यदि किसी अनुपात के प्रत्येक पद को o को छोड़कर किसी निश्चित संख्या से गुणा या भाग करते हैं तो वह अनुपात अपरिवर्तित रहता है।

अनुपात की विशेषताएं

राशियों की अनुपात के संबंध में कुछ विशेषताएं होती हैं जिन्हें समझना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं–

- साधारण भाषा में अनुपात एक भिन्न होता है।
- अनुपात एक संख्यात्मक संबंध है। इसकी कोई इकाई नहीं होती है।
- अनुपात हमेशा सजातीय राशियों का है।
- दो अनुपात तुल्य कहलाते हैं, यदि उनके संगत भिन्न तुल्य हों।
- किसी भी अनुपात के दोनों पदों में एक ही अशून्य संख्या से गुणा या भाग करने पर प्राप्त अनुपात का मान अपरिवर्तित होता है।
- गणित में अनुपात हमेशा भागफल से प्राप्त होता है।
- अनुपात का चिन्ह (:) होता है।
- दो राशियों या संख्याओं का अनुपात एक भिन्न (Fraction) होता है। पहली राशि अंश तथा दूसरी राशि हर होती है।
- उत्तर पद या द्वितीय पद से अनुपात की राशियों को सूचित किया जाता है।
- किसी अनुपात के दोनों पदों में एक ही अशून्य संख्या को जोड़ने या घटाने पर प्राप्त अनुपात का मान परिवर्तन हो जाता है।

उदाहरण : 35 तथा 7 में क्या अनुपात है?

हल : 35 तथा 7 में अनुपात = $\frac{35}{7} = \frac{5}{1} = 5:1$

उदाहरण : 750 ग्राम तथा 1 किलो ग्राम में क्या अनुपात है

हल : 1 किलो ग्राम = 1000 ग्राम

750 ग्राम तथा 1000 ग्राम का अनुपात

$= \frac{750}{1000} = \frac{3}{4} = 3:4$

उदाहरण : निम्नलिखित दो अनुपात में से कौन-सा अनुपात बड़ा है?

5 : 9 या $\frac{6}{7}$

हल : पहला अनुपात $\frac{5}{9}$ है तथा दूसरा अनुपात $\frac{6}{7}$ है। तुलना करने के लिए दोनों अनुपात के हर का समान होने चाहिए अतः $\frac{5}{9}$ तथा $\frac{6}{7}$ को क्रमशः $\frac{35}{63}$ तथा $\frac{54}{63}$ लिखा जा सकता है।

अतः $\frac{54}{63}$ बड़ा है $\frac{35}{63}$ से।

इस प्रकार $\frac{6}{7}$ बड़ा है $\frac{5}{9}$ से।

अनुपात के प्रकार

प्रयोग के आधार पर अनुपात को मुख्यतः निम्न भागों में विभाजित किया गया है-

प्रतिलोमानुपात- दो अनुपात में से यदि एक अनुपात का प्रथम पद दूसरे अनुपात का पद हो और दूसरे का प्रथम पद पहले का द्वितीय पद हो तो वे एक दूसरे के प्रतिलोमानुपात कहलाते हैं। जैसे अनुपात x:y तथा y:x प्रतिलोमानुपात है। इस प्रकार से 5:7 तथा 7:5 प्रतिलोमानुपात है।

उदाहरण : यदि 12:18:: x:24 हो तो x का मान कितना होगा?

हल : 12:18::x:24

$$= 12 \times 24 = 18 \times x$$

$$x = \frac{12 \times 24}{18} = 16$$

वर्गानुपात : यदि किसी अनुपात में समान से गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त होती है, वह वर्गानुपात कहलाती है।

जैसे- 4 : 5 का वर्गानुपात $4^4 : 5^5$

3 : 6 का वर्गानुपात = 9 : 36 आदि।

वर्गमूलानुपात : किसी भी अनुपात की राशियों का वर्गमूल करने पर जो संख्या प्राप्त होती है, उसे वर्गमूलानुपात कहा जाता है।

जैसे- a : b का वर्गमूलानुपात $\sqrt{a} : \sqrt{b}$

4 : 9 का वर्गमूलानुपात = 2 : 3

घनानुपात : यदि किसी अनुपात को घन करने के उपरांत प्राप्त संख्या घनानुपात कहलाती है।

जैसे- a : b का घनानुपात $a^3 : b^3$

2 : 3 का घनानुपात = 8 : 27

घनमूलानुपात : किसी अनुपात को घनमूल करने के उपरांत प्राप्त संख्या घनमूलानुपात कहलाती है।

जैसे- a : b का घनमूलानुपात = $\sqrt[3]{a} : \sqrt[3]{b}$

8 : 27 का घनमूलानुपात = 2 : 3

इसे भी पढ़ें, घन और घनमूल फार्मूला, परिभाषा, तथ्य एवं ट्रिक्स

सरल अनुपात : यदि किसी अनुपात की दोनों राशियां या संख्याएं आपस में अभाज्य हों, तो वे सरल अनुपात कहलाती हैं।

जैसे- 2 : 3, 4 : 5, 5 : 6

मिश्र अनुपात : मिश्र अनुपात उस अनुपात को कहते हैं जिसमें दो या दो से अधिक अनुपातों के प्रथम पदों को परस्पर गुना करके पहला पद तथा दूसरे पद को परस्पर गुना करके दूसरा नया पद बनाया जाता है तो वह अनुपात जो नये पहले व दूसरे पद से बना है मिश्र अनुपात कहलाता है।

उदाहरण के लिए $\frac{5}{2}$ तथा $\frac{1}{3}$ का मिश्र अनुपात $\frac{5}{6}$ है। इसी प्रकार से $\frac{2}{3}\times\frac{3}{4}\times\frac{4}{5}$ का मिश्र अनुपात = $\frac{24}{60}=\frac{2}{5}$ है।

समानुपात :

दो समान अनुपातों को समानुपात कहते हैं।

यह दो शब्दों का सम्मलित रूप है, 'सम' और 'अनुपात' जिसका अर्थ बराबर या समरूप होता है। अर्थात, दो अनुपात के बराबर भाग को समानुपात कहा जाता है जिसमें एक अनुपात दूसरे के बराबर होता है।

दूसरे शब्दों में, दो चर राशियाँ x तथा y समानुपाती कही जाती हैं x/y का मान नियत हो ऐसी स्थिति में, पहली राशि, दूसरी राशि के समानुपाती होती है।

जैसे 5 : 7 = 15 : 21, इन दोनों से बना अनुपात समानुपात कहलाता है। इसी तरह से चार पद ऐसे हों जिनमें पहले तथा दूसरे पद का अनुपात, तीसरे तथा चौथे पद के अनुपात के बराबर हो तो वे पद समानुपात कहलाते हैं। अतः a,b,c तथा d समानुपात होंगे।

यदि $\frac{a}{b}=\frac{c}{d}$ या a : b : c : d या a : b = c : d है तो इसमें a तथा d बाहरी राशियां तथा c तथा d आंतरिक राशियां कहलाती हैं।

बाहरी राशियों का गुणनफल = आंतरिक राशियों का गुणनफल

उदाहरण के लिए 10 : 15 = 6 : 9

$10 \times 9 = 15 \times 6$

समानुपात के प्रकार

समानुपात के प्रकारों को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

समानुपात विभाजन- किसी राशि को ऐसे भागों में बांटना जिसमें दिया हुआ अनुपात समान रहे तो वह समानुपात विभाजन कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि z को x:y दो भागों में विभाजित करना है तो

टिप्पणी

पहला भाग = $\dfrac{x}{x+y}$ = z

दूसरा भाग = $\dfrac{x}{x+y}$ = z

1. वितताानुपात : वितताानुपाती राशियां वे राशियां होती है जिनमें पहली राशि का अनुपात दूसरी राशि के साथ, तीसरी राशि का अनुपात चौथी राशि के साथ है और इस प्रकार आगे बढ़ता है तो वे राशियां वितताानुपाती कहलाती हैं। दूसरे शब्दों में यदि राशियां a,b,c,d आदि इस प्रकार की हों कि $\frac{a}{b}=\frac{b}{c}=\frac{c}{d}\cdots$ तो राशियां वितताानुपाती कहलाती हैं।

2. वर्गमूलानुपात : यदि किसी अनुपात का वर्गमूल लेकर नया अनुपात बनाया जाता है तो वह वर्गमूलानुपात कहलाता है।

3. सरल समानुपात- सरल समानुपात उस अनुपात को कहते हैं जो दो समानुपात से बना हो। सरल समानुपात दो प्रकार के होते हैं-

(क) **प्रत्यक्ष समानुपात**- यदि एक राशि में वृद्धि के फलस्वरूप दूसरी राशि में भी वृद्धि हो या एक राशि में कमी होने के फलस्वरूप दूसरी राशि में भी कमी हो तो हम उन राशियों को प्रत्यक्ष समानुपात कहते हैं।

उदाहरण : यदि 40 दर्जन संतरों का मूल्य 500 रु. है। 8 दर्जन संतरों का मूल्य ज्ञात कीजिए।

हल : माना 8 दर्जन संतरों का मूल्य रु. x है।

$$\frac{40}{500}=\frac{8}{x}$$

$$x=\frac{500\times 8}{40}$$

= 100 रु.

(ख) **अप्रत्यक्ष समानुपात**- यदि एक राशि में वृद्धि के फलस्वरूप दूसरी राशि में कमी हो या एक राशि में कमी होने के फलस्वरूप दूसरी राशि में वृद्धि हो तो हम उन राशियों को अप्रत्यक्ष समानुपात कहते हैं।

उदाहरण : यदि 3 पाइप एक टैंक को 60 मिनट में भरते हैं तो 6 पाइप उस टैंक को कितने समय में भरेंगे?

हल : मान लो अप्रत्यक्ष समानुपात $= x$ है

$3 \times 60 = 6 \times x$

$3 : x = 60 : 6$

$$x = \frac{60 \times 3}{6} = 30 \text{ मिनट}$$

4. **मिश्र समानुपात :** बहुत से अनुपात जब एक ही अनुपात से संबंधित हों तो उसे मिश्र समानुपात कहते हैं।

   उदाहरण : यदि 750 ग्राम लीची का मूल्य 50 रु. है तो 1 किलो 500 ग्राम लीची का मूल्य कितना होगा?

   हल : मान लो 1 किलो 500 ग्राम लीची का मूल्य x रु. है अतः

   $750 : 50 = 1500 : x$

   $$\Rightarrow x = \frac{1500 \times 50}{750}$$

   =100 रु.

   उदाहरण : यदि 450 रु. को सीता और गीता में 5 : 4 में बांटा जाए तो दोनों को कितने रु. मिलेंगे?

   हल : सीता और गीता के भागों में अनुपात = 5 : 4

   तथा अनुपाती संख्याओं का भाग = 5 + 4 = 9

   सीता का हिस्सा = $450 \times \frac{5}{9}$ = 250 रु.

   गीता का हिस्सा = $450 \times \frac{4}{9}$ = 200 रु.

5. **व्युत्क्रम समानुपात :** यदि a, b इ के व्युत्क्रमानुपाती होगा तो किसी एक का मान बढ़ने या घटने पर दूसरे पर उसका व्युत्क्रम प्रभाव पड़ेगा।

   उदाहरण : यदि 490 रु. क, ख, और ग को क्रमशः 20, 10 और 5 के अनुपात में बांटे गए जाए तो ख को कितने रु. मिलेंगे।

   हल : क, ख और ग के भागों में अनुपात = 20:10:5 तथा अनुपाती संख्याओं का भाग = 20+10+5 = 35

   ख का भाग = $\frac{5 \times 490}{35}$ = 70 रु.

5.2.2 प्रतिशत

गणित में किसी अनुपात को व्यक्त करने का एक तरीका प्रतिशत (Percentage) है। प्रतिशत (Percentage) का अर्थ है प्रति सौ या प्रति सैकड़ा। दूसरे शब्दों में प्रतिशत उन अनुपातों या समानुपातों को कहते हैं जिनका आधार 100 होता है। 100 को आधार मानकर किसी तथ्य को प्रकट करने के लिए प्राप्त संख्या प्रतिशत कहलाती है।

प्रतिशत शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द परसेंटम शब्द से हुई है जिसका अर्थ है प्रति सौ/प्रतिशत को व्यक्त करने के लिए : चिह्न का प्रयोग किया जाता है जैसे 15%, 25%, 85% आदि। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किन्हीं दो संख्याओं का वह अनुपात है जिसका कि हर 100 हो। प्रतिशत (Percent) गणित में किसी अनुपात को व्यक्त करने का एक तरीका है प्रतिशत का अर्थ है प्रति सौ या प्रति सैकड़ा (%=1/100) एक सौ में एक।

सामान्य बोल-चाल की भाषा में प्रतिशत से तात्पर्य प्रति सौ (Per Hundred) उदा के लिये 60 प्रतिशत से तात्पर्य हुआ 60 प्रति सौ अर्थात 100 में से 60 या 60/100 = 3/5 अर्थात दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि प्रतिशत दशमलव या भिन्न को व्यक्त करने का ही एक और तरीका है सीधी और सरल भाषा में प्रतिशत किसी संख्या को 100 के अनुपात में व्यक्त करने का एक तरीका है। अर्थात् हम कह सकते हैं कि किसी भिन्न के हर को 100 बना देना। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि 30 प्रतिशत या 20 प्रतिशत तो इसका अर्थ हुआ 100 में से 30 या 100 में से 20 वर्तमान समय में तेजी से प्रतिशत का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। बैंक, व्यवसाय तथा बाजार से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों में इसका प्रयोग बहुतायत से किया जा रहा है। मुख्यत: जब हमें किसी क्षेत्र का तुलनात्मक या विश्लेषणात्मक अध्ययन करना होता है तो प्रतिशत का प्रयोग करना सरल होता है। उदा. के लिये विगत 5 वर्षों में देश के मोबाइल उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि, बैंकों में जमा धन राशि में वृद्धि या कमी, बैंकों में जमा धन राशि पर ब्याज आयकर, बिक्रीकर आदि सभी की गणना में प्रतिशत का प्रयोग किया जाता है।

प्रतिशत दो शब्दों "प्रति" तथा "शत" के मिलने से बना है।

"प्रति" का अर्थ है "प्रत्येक" अर्थात "Per"

तथा "शत" का अर्थ है "सैंकड़ा" या "सौ" या "100"

अर्थात प्रतिशत का अर्थ है "प्रति सैंकड़ा" या "प्रत्येक सौ में"

अर्थात प्रतिशत का अर्थ है "प्रति सैंकड़ा" या "प्रत्येक सौ में"

उदाहरण

मान लिया कि कुल 100 जानवर हैं तथा उनमें 20 कुत्ते हैं।

तो कुत्ते का प्रतिशत 20 हुआ।

यहाँ 20 प्रतिशत कुत्तों का अर्थ हुआ, कुत्तों की संख्या 20 है जहां कुल जानवरों की संख्या 100 है।

मान लिया कि किसी छात्र ने 100 में से 40 अंक प्राप्त किए, तो कहा जायेगा कि उस छात्र ने 40 प्रतिशत अंक प्राप्त किए हैं।

प्रतिशत का चिह्न

प्रतिशत को किसी अंक के बाद "%" को लगाकर व्यक्त किया जाता है।

जैसे: 40 प्रतिशत को "40%"

8 प्रतिशत को "8%"

14 प्रतिशत को "14%"

60 प्रतिशत को "60%"

उदाहरण के लिए $\frac{3}{4}$ तथा $\frac{2}{3}$ को प्रतिशत में बदलिए।

हल : $\frac{3}{4} = \frac{3}{4} \times 100\%$

$= 75\%$

$\frac{2}{3} = \frac{2}{3} \times 100\%$

$= 66\frac{2}{3}\%$

उदाहरण : 5 : 10 को प्रतिशत में बदलिए

$\frac{5}{10} = \left(\frac{5}{10} \times 100\right)\%$

$= 50\%$

उदाहरण : 0.75 को प्रतिशत में बदलिए

हल : $0.75 = \frac{75}{100}$

$= \frac{75}{100} \times 100 = 75\%$

उदाहरण : 250 रु. का 30% ज्ञात कीजिए

हल : 250 रु. का 30% = 250 × 30%

$= 250 \times \frac{30}{100} = 75\%$

उदाहरण : राम ने दसवीं की परीक्षा में 80% अंक हासिल किए। यदि परीक्षा का पूर्णांक 500 था तो राम को कितने अंक प्राप्त हुए।

हल : राम को प्राप्त अंक = 500 का 80%

$= 500 \times \frac{80}{100} = 400$

अपनी प्रगति जांचिए

1. दो सजातीय व समान संख्याओं के पारस्परिक मूल्यों को किससे व्यक्त किया जाता है?

   (क) प्रतिशत (ख) अनुपात

   (ग) दर (घ) घनानुपात

2. प्रतिशत शब्द की उत्पत्ति किस भाषा के शब्द से हुई है?

   (क) यूनानी (ख) फ्रेंच

   (ग) रूसी (घ) लैटिन

5.3 केंद्रीय प्रवृत्ति की माप

अंक सामग्री को आवृत्ति वितरण के रूप में व्यवस्थित कर लेने के पश्चात् विभिन्न समूहों अथवा योग्यताओं की तुलना के लिए एक ऐसे मूल्य की आवश्यकता पड़ती है जो कि समस्त समूह का प्रतिनिधित्व कर सके। जिस प्रकार किसी समूह या समुदाय का मुख्य उस समूह अथवा समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है ठीक उसी प्रकार केन्द्रीय मान भी सम्पूर्ण समूह या प्राप्तांकों का प्रतिनिधित्व करता है।

एक अकेला आंकिक मूल्य जो कि किसी समूह की केन्द्रीय प्रवृत्ति का द्योतक हो, उस समूह का सर्वोत्तम रूप में प्रतिनिधित्व कर सकता हो केन्द्रीय मान कहलाता है। वह विधि जिसके द्वारा किसी आंकिक श्रृंखला की केन्द्रीय प्रवृत्ति का द्योतक, एक अकेला अंक ज्ञात किया जाता है, केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप कहलाती है। केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप को प्रायः औसत (Average) कहते हैं। सामान्य लोग प्रायः औसत का अर्थ गणितीय माध्य (Airthmetic Mean) से लगाते हैं। परन्तु वस्तुतः सांख्यिकी में औसत का अर्थ केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप से लगाया जाता है। Simpson and Kafka के अनुसार – "एक केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप, वह विशिष्ट मूल्य है जिसमें चहुं ओर अन्य अंक संगठित होते हैं या जो अंकों को दो अर्ध भागों में विभाजित करता है।"

किसी समूह की केन्द्रीय प्रवृत्ति को संक्षेप में प्रकट करने के लिए जिन मानों का प्रयोग किया जाता है। उन्हें केन्द्रीय मान कहते हैं। समूह का केन्द्रीय मान उस समूह का प्रतिनिधि प्राप्तांक होता है और समूह के अधिकतर प्राप्तांक उसके इधर–उधर होते हैं। कुछ उससे कम और कुछ उससे अधिक होते हैं। केन्द्रीय मान किसी सम्पूर्ण समूह का वह प्रतिनिधि प्राप्तांक होता है जिसके आस–पास उस समूह के अधिकतर प्राप्तांक केन्द्रित होते हैं।

रॉस (Ross) के अनुसार, "केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान वह मान है जो कि सारे आंकड़ों का श्रेष्ठतम प्रतिनिधित्व करता है।"

जे. पी. गिल्फर्ड के अनुसार, "व्यक्तियों के निरीक्षणों के एक समूह के केन्द्रीय मूल्य को इंगित करने वाला अंक एक औसत होता है।"

केन्द्रीय प्रवृत्ति का महत्व

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान द्वारा हम किसी की विशेषता का आंकलन सरलता से कर सकते हैं। प्रायः पूर्ण सूचना उपलब्ध न होने पर भी केवल केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान द्वारा कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इन मापों के द्वारा विभिन्न समूहों की तुलना करना सम्भव हो जाता है। एच. ई. गैरेट के अनुसार केन्द्रीय प्रवृत्ति की दोहरी उपयोगिता है–

1. यह एक अकेला ऐसा अंक होता है जो समस्त अंकों का प्रतिनिधित्व करता है तथा समस्त समूह के कार्य सम्पादन का संक्षिप्त विवरण प्रदान करता है।
2. इसके द्वारा विभिन्न समूहों के Typical कार्य सम्पादन की तुलना सम्भव हो जाती है।
3. इसके अतिरिक्त केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप द्वारा उच्च सांख्यिकीय गणना में सहायता मिलती है। जैसे– मानक विचलन (Standard Deviation), सह–सम्बन्ध (Correlation) आदि।
4. ये माप प्राथमिक के रूप में प्रयोग किये जाते हैं और इनके बिना उच्च कोटि के सांख्यिकीय अनुमान सम्भव नहीं हैं।

केन्द्रीय प्रवृत्ति की सीमाएं

केन्द्रीय प्रवृत्ति की सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इनके द्वारा केवल वैयक्तिक विशेषताओं पर ही प्रकाश पड़ता है।
2. इनसे समूह विशेष में विद्यार्थी विशेष की सापेक्षिक स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता है।
3. सामूहिक गुणों, विशेषताओं और उपलब्धियों पर, उन अवस्थाओं में जब समूह विषमजातीय हो, इनसे कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। हम एक समूह की औसत उपलब्धि का ज्ञान तो इससे प्राप्त कर सकते हैं पर समूह में सर्वोत्तम या निकृष्ट उपलब्धि वाले व्यक्ति का ज्ञान इन मापों से नहीं होता है।
4. इनका उपयोग यदि सूझबूझ से न किया जाये तो इनके द्वारा हानिकारक परिणाम हो सकते हैं। क्योंकि भिन्न–भिन्न सांख्यिकीय विश्लेषणों में भिन्न केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों से अलग मूल्य प्राप्त होते हैं।

केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप की गणना

केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप निम्न तीन विधियों से की जाती है–

1. औसत या मध्यमान
2. मध्यांक या माध्यिका
3. बहुलक

केंद्रीय प्रवृत्ति से संबंधित तथ्य को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. जब सर्वेक्षण या परीक्षण से प्राप्त अंक वितरण सामान्य और सममित (Symmetrical) होता है, तब दोनों केन्द्रीय मानों में समानता रहती है। इस स्थिति में मध्यमान, मध्यांक और बहुलक तीनों का मान समान प्राप्त होता है।

2. जब सर्वेक्षण या परीक्षण से प्राप्त अंक वितरण में विषमता (Skewness) होती है तब तीनों ही केन्द्रीय मानों में अन्तर पाया जाता है।
3. जब अंक वितरण में ऋणात्मक विषमता (Negative Skewness) होती है तब मध्यमान का मान सबसे अधिक मध्यांक का मान कम तथा बहुलांक का मान सबसे कम होता है।

   मध्यमान > मध्यांक > बहुलांक

4. जब अंक वितरण में धनात्मक विषमता (Positive Skewness) होती है तब मध्यमान का मान कम मध्यांक का मान उससे अधिक और बहुलांक का मान उससे भी अधिक होता है।

   मध्यमान < मध्यांक < बहुलांक

5. केन्द्रीय मान में मध्यमान सबसे शुद्ध मध्यांक उससे कम और बहुलांक उससे कम शुद्ध होता है।

5.3.1 मध्यमान

अंकगणितीय भाषा में जिसे औसत मान कहते हैं उसे ही सांख्यिकीय भाषा में मध्यमान, माध्य और समान्तर माध्य (Mean) कहते हैं। यह गणितीय माध्यों में सबसे अधिक लोकप्रिय, महत्वपूर्ण एवं सबसे अधिक विश्वसनीय माप है। यह किसी समूह के प्राप्तांकों की केन्द्रीय प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है और उसके समस्त प्राप्तांकों का प्रतिनिधित्व करता है।

परिभाषाएं

वर्मा एवं श्रीवास्तव, "किसी समंकमाला के समस्त अंकों के योगफल को उन अंकों की संख्या से भाग देने पर जो भाजनफल आता है वही मध्यमान होता है।"

फरग्यूसन के अनुसार, "मध्यमान वह मान है, जो संख्याओं के योग को उनकी संख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है।"

जे.पी. गिलफर्ड, "औसत वह अंक है जो निरीक्षणों या व्यक्तियों के प्राप्तांकों के मध्य का प्रतीक होता है।"

एच.टी. मैनुअल, "औसत को मूल्यों की शृंखला के उस बिन्दु के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिससे लिये गये ऋणात्मक और धनात्मक विचलनों का योग शून्य हो।"

सरल शब्दों में समंकमाला या श्रेणी का माध्य (Mean) वह मूल्य होता है जो उस श्रेणी के सभी मूल्यों का योग करके उनकी संख्या से भाग देने पर जो भाजनफल के रूप में प्राप्त होता है। इसके लिए संकेताक्षर X का प्रयोग किया जाता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इसके दोनों ओर के प्राप्तांकों के विचलनों का योग शून्य होता है।

उदाहरण के लिए 50 अंकों की एक परीक्षा में पाँच विद्यार्थियों के प्राप्तांक इस प्रकार हैं– 25 32 29 16 18

प्राप्तांकों का औसत (X)= $\frac{25+32+29+16+18}{5}$ = 120 / 5 = 24

प्राप्तांकों को आरोही क्रम में रखने पर औसत मान से उनका विचलन

प्राप्तांक	औसत मान	विचलन	विचलनों का योग
25		**+1**	
32		**+8**	**+14 −14=0**
29	**24**	**+5**	
16		**−8**	
18		**−6**	

- **मध्यमान की गणना विधि**

मध्यमान की गणना को दोनों प्रकार के प्रदत्तों से ज्ञात किया जाता है : (क) अव्यवस्थित/अवर्गीकृत प्रदत्त (ख) व्यवस्थित वर्गीकृत प्रदत्त

(क) अव्यवस्थित/अवर्गीकृत प्रदत्तों से मध्यमान की गणना –

मध्यमान : प्रत्यक्ष विधि

अवर्गीकृत आंकड़ों से प्रत्यक्ष विधि द्वारा माध्य की गणना करने के लिए पर्यवेक्षण के सभी मूल्यों को जोड़कर पदों की कुल संख्या से भाग देते हैं इस प्रकार अव्यवस्थित/अवर्गीकृत प्रदत्तों से मध्यमान की गणना निम्न सूत्र के माध्यम से की जाती है–

$$\overline{x} = \frac{\Sigma X}{N}$$

जहां $\overline{x}$ = मध्यमान

Σ = मापों के सभी मूल्यों का योग

ΣX = प्रदत्तों का योग

N = पदों की संख्या

उदाहरण – निम्न अंकों से मध्यमान ज्ञात कीजिए–

5,7,6,3,4,2,9,8,10,11

हल = 5+7+6+3+4+2+9+8+10+11= 65

ΣX = 65

N = 10

मध्यमान = $\overline{x} = \frac{\Sigma X}{N}$

$$\overline{x} = \frac{65}{10}$$

$$\overline{x} = 6.5$$

उदाहरण : 100 अंकों के एक परीक्षण में 10 विद्यार्थियों ने निम्न अंक प्राप्त किए हैं। इन प्राप्तांकों का मध्यमान ज्ञात कीजिए।

प्राप्तांक = 45,75,48,68,73,69,81,55,70,56

45+75+48+68+73+69+81+55+70+56 = 640

$\sum X = 640$

N = 10

मध्यमान = $\overline{x} = \frac{\sum x}{N}$

$$\overline{x} = \frac{640}{10}$$

$$\overline{x} = 64$$

जब प्रदत्तों की पुनरावृत्ति हो अथवा पदों की संख्या काफी अधिक होती है तो इस विधि से माध्यमान ज्ञात करना कठिन होता है इसके लिए पहले आवृत्ति तालिका का निर्माण किया जाता है तत्पश्चात औसत/मध्यमान ज्ञात किया जाता है।

उदाहरण : अंकों की एक परीक्षा में 20 विद्यार्थियों के निम्न प्रकार हैं इनसे मध्यमान ज्ञात कीजिए– 9,8,4,3,4,8,5,10,5,6,7,6,3,4,5,6,9,5,3,2

हल (Solution)

प्राप्तांक	आवृत्ति (f)
1	0
2	1
3	3
4	3
5	4
6	3
7	1
8	2
9	2
10	1
कुल	20

प्राप्तांक	आवृत्ति (f)	fx
1	0	0
2	1	2
3	3	9
4	3	12
5	4	20
6	3	18
7	1	7
8	2	16
9	2	18
10	1	10
कुल	20	112

$\sum fx = 112$ $\qquad$ $N\ 20$

$$\overline{x} = \frac{\sum fx}{N}$$

$$\overline{x} = \frac{112}{20}$$

$$\overline{x} = 5.6$$

अप्रत्यक्ष विधि

पदों में जहां प्रेक्षणों की संख्याएं बहुत अधिक होती हैं, वहां सामान्यतः अप्रत्यक्ष विधि से माध्य की गणना की जाती है। इस विधि में एक स्थिरांक को सभी मूल्यों से घटाने पर

टिप्पणी

पदों की संख्या कम हो जाती है। एक 'कल्पित माध्य' मानकर हम इन संख्याओं के विस्तार को कम कर सकते हैं। अप्रत्यक्ष विधि से माध्य की गणना निम्न सूत्र से की जाती है।

$$\overline{x} = A + \frac{\sum d}{N}$$

जहां

A = घटाया हुआ प्रदत्त

Σd = प्रदत्त घटाए हुए मूल्यों का योग

N = पदों की संख्या

अप्रत्यक्ष विधि द्वारा माध्य की गणना निम्न अंकों से ज्ञात कीजिए।

प्राप्तांक X	आवृत्ति (f)	कल्पित माध्य से विचलन (X-A= dx)	कल्पित माध्य से विचलनों का आवृत्ति से गुणनफल fdx	
1	0	.4	0	
2	1	.3	.3	
3	3	.2	.6	.12
4	3	.1	.3	
5	4	0	0	
6	3	.1	3	
7	1	.2	2	24
8	2	.3	6	
9	2	.4	8	
10	1	.5	5	
कुल	20		.12	

$$\overline{x} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

$\sum fdx$= कल्पित माध्य से विचलनों का आवृत्ति से गुणनफल = +12

dx = कल्पित माध्य से विचलन = N 20

A = कल्पित माध्य = 5

$$\overline{x} = 5 + \frac{12}{20}$$

$$\overline{x} = 5 + .6$$

$$\overline{x} = 5.6$$

(ख) व्यवस्थित/वर्गीकृत प्रदत्तों से मध्यमान की गणना – जब विद्यार्थियों की संख्या अधिक होती है और उपर्युक्त दोनों प्रकार से मध्यमान ज्ञात करना कठिन होता है तो उस स्थिति में प्राप्तांकों के वर्ग बनाये जाते हैं और फिर उनकी आवृत्ति तालिका

बनाकर उसकी सहायता से मध्यमान निकालते हैं। व्यवस्थित/वर्गीकृत प्रदत्तों से मध्यमान निकालने के दो तरीके अपनाये जाते हैं–

(1) दीर्घ विधि (Long Method) (2) लघु/सरल विधि (Short/simple Method)

प्रत्यक्ष विधि

(1) दीर्घ विधि–इस विधि में समस्त प्राप्तांकों का उचित वर्गान्तर लेकर उचित वर्गों में व्यवस्थित किया जाता है और फिर प्रत्येक वर्ग की आवृत्तियों को ज्ञात किया जाता है। इस विधि में मध्यमान ज्ञात करने के लिए निम्न सोपानों का प्रयोग किया जाता है–

1. सर्वप्रथम प्रत्येक वर्ग विस्तार का मध्यबिन्दु ज्ञात किया जाता है। इस बिन्दु को ज्ञात करने के लिए वर्गान्तर का योग करके उसे 2 से भाग दिया जाता है। जैसे 0–10,10–20, 20–30।

$$\frac{0+10}{2}=5 \qquad \frac{10+20}{2}=15 \qquad \frac{20+30}{2}=25$$

2. प्रत्येक मध्यबिन्दु को सम्बन्धित आवृत्ति से गुणा करते हैं।
3. गुणनफल का योग करके आवृत्तियों की कुल संख्या से भाग करते हैं।

इसके बाद निम्न सूत्र द्वारा मध्यमान ज्ञात किया जाता है।

$$\bar{x} = \frac{\sum fx}{N}$$

जहां x = माध्य

f = आवृत्ति

x = वर्ग अंतराल के मध्य बिंदु

m = पदों की संख्या

उदाहरण : निम्न प्राप्तांकों के माध्यम से मध्यमान ज्ञात कीजिए–

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)
0 – 10	3
10 – 20	1
20 – 30	3
30 – 40	3
40 – 50	4
50 – 60	1
60 – 70	3
70 – 80	2

हल (Solution)

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)	मध्य बिन्दु (M.V) (*X*)	मध्य बिन्दु तथा आवृत्तियों का गुणनफल (*fx*)
0 – 10	3	5	15
10 – 20	1	15	15
20 – 30	3	25	75
30 – 40	3	35	105
40 – 50	4	45	180
50 – 60	1	55	55
60 – 70	3	65	195
70 – 80	2	75	150
	20		790

fX =मध्यबिन्दु एवं आवृत्तियों के गुणनफल का योग = 790

= आवृत्तियों का योग = 20

$\overline{x} = \frac{\sum fx}{N}$ $\overline{x} = \frac{790}{20}$ $\overline{x} = 39.5$

(2) **लघु/सरल विधि**–दीर्घ विधि से मध्यमान ज्ञात करने में काफी गुणा जोड़ करना पड़ता है। इसलिए समय बहुत लगता है। समय एवं समय के सदुपयोग की दृष्टि से मध्यमान निकालने के लिए एक सरल विधि निकाली गयी है। इस विधि में मध्यबिन्दु से एक कल्पित माध्य लेकर मध्यमान ज्ञात किया जाता है। इस विधि से मध्यमान ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\overline{x} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

जहां

$\overline{x} =$ मध्यमान

$\sum fdx =$ कल्पित माध्य से विचलनों का आवृत्ति से गुणनफल =

$N =$ आवृत्तियों का योग

$N =$ कल्पित माध्य से विचलन

$A =$ कल्पित माध्य =

$I =$ वर्ग अंतराल

(M.V)/(X) = मध्यबिन्दु

उदाहरण : निम्न प्राप्तांकों की सहायता से मध्यमान ज्ञात कीजिए–

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)
10 – 14	4
15 – 19	5
20 – 24	4
25 – 29	6
30 – 34	12
35 – 39	14
40 – 44	3
45 – 49	2

टिप्पणी

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)	मध्य बिन्दु (M.V)(X)	कल्पित माध्य से विचलन X-A/i	कल्पित माध्य से विचलन तथा आवृत्तियों का गुणनफल (fdX)
10 – 14	4	12	-3	-12
15 – 19	5	17	-2	-10
20 – 24	4	22	-1	-4
25 – 29	6	27 A	0	0
30 – 34	12	32	+1	12
35 – 39	14	37	+2	28
40 – 44	3	42	+3	9
45 – 49	2	47	+4	8
	50			**-26 +57 =31**

मध्य बिन्दु (M.V) (X) 10+14 / 2=12, 15+19 / 2 =17..........

$\sum fdX = \$31 \quad N = 50 \quad A = 27 \quad i = 5$

$$\bar{x} = A + \frac{\sum fdx}{N} \times i$$

$$\bar{x} = 27 + \frac{+31}{50} \times 5$$

$$\bar{x} = 27 + \frac{155}{50}$$

$$\bar{x} = 27 + 3.1$$

$$\bar{x} = 30.1$$

संयुक्त माध्य– जब दो या दो से अधिक विभिन्न समूहों या प्रतिदर्शों के अलग–अलग मध्यमान ($\bar{x}$) तथा विद्यार्थियों की संख्या (N) उपलब्ध होती है तो इन दिये हुए समूहों का संयुक्त मान निकालने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\frac{N_1\bar{x}_1}{N_1} + \frac{N_2\bar{x}_2}{N_2} + \text{..........} \frac{N_n\bar{x}_n}{N_n}$$

$\bar{x}$ समूह का मध्यमान N समूह में विद्यार्थियों की संख्या / आवृत्ति का योग

उदाहरण– नीचे पाँच समूह दिए गये हैं जिनके मध्यमान भी ज्ञात हैं। इन पाँचों समूहों का संयुक्त मध्यमान ज्ञात कीजिए

समूह	विद्यार्थियों की संख्या (N)	मध्यमान ($\bar{x}$)
1	10	40
2	15	36
3	12	20
4	25	25
5	20	55

$$\overline{x}_{1.2.3..} = \frac{N_1\overline{x}_1}{N_1} + \frac{N_2\overline{x}_2}{N_2} + \frac{N_3\overline{x}_3}{N_3} + \frac{N_4\overline{x}_4}{N_4} + \frac{N_5\overline{x}_5}{N_5}$$

$$\overline{x}_{1.2.3..} = \frac{10 \times 40}{10} + \frac{15 \times 36}{15} + \frac{12 \times 20}{12} + \frac{25 \times 25}{25} + \frac{20 \times 55}{20}$$

$$\overline{x}_{1.2.3..} = \frac{400 +}{10 +}\frac{540 +}{15 +}\frac{240 +}{12 +}\frac{625}{25 +}\frac{+1100}{20}$$

$$\overline{x}_{1.2.3..} = \frac{2905}{82}$$

$$\overline{x}_{1.2.3..} = 35.4268$$

मध्यमान की विशेषताएं

मध्यमान की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. यह शृंखला के प्रत्येक पर के प्राप्तांक से प्रभावित होता है।
2. सांख्यिकीय माध्यों में मध्यमान सबसे अधिक सरल एवं बोधगम्य है।
3. मध्यमान प्राप्तांकों का औसत मान होता है, अतः इसे गणितीय विधियों से सरलता से ज्ञात किया जा सकता है।
4. समूह के प्राप्तांकों का मध्यमान समूह का सन्तुलन बिन्दु होता है। क्योंकि इसमें धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ओर के विचलनों का योग शून्य होता है।
5. मध्यमान अन्य माध्यों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होता है।
6. मध्यमान का प्रयोग व्यापक रूप में किया जाता है।

मध्यमान के गुण

मध्यमान के गुण निम्नलिखित हैंः–

1. **स्थिरता**– इस माध्य पर प्रतिचयन के उच्चावचनों का न्यूनतम प्रभाव पड़ता है, जैसे–यदि किसी एक ही समग्र में से सदैव आधार पर कई बार प्रतिदर्श लिए जाएं तो प्रतिदर्श–माध्यों में अधिक अंतर नहीं होगा। यह गुण अन्य किसी माध्य में नहीं पाया जाता है।
2. **सरलता**– समांतर माध्य एक सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए गणना करने व समझने की दृष्टि से अत्यंत सरल है।
3. **निश्चितता**– समांतर माध्य में निश्चितता का गुण होता है और यह बहुलक व माध्यिका की भांति अंतरगणन व अनुमान पर आधारित नहीं होता।
4. **सही प्रतिनिधित्व**– बहुलक तथा माध्यिका के विपरीत समांतर माध्य श्रेणी के सभी पदों पर आधारित होता है, जिसके कारण यह श्रेणी का सही प्रतिनिधित्व करता है।

5. **बीजगणितीय विवेचन**– समांतर माध्य के अपने कुछ बीजगणितीय गुण हैं, जिस कारण इस माध्य का अन्य सांख्यिकीय रीतियों में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।

समांतर माध्य में एक आदर्श–माध्य के सभी गुण पाए जाते हैं। फलतः यह सर्वाधिक लोकप्रिय माध्य है।

मध्यमान के दोष

एक आदर्श माध्य होने के बावजूद मध्यमान निम्न दोषों से ग्रसित है–

1. **अप्रतिनिधित्व**– समांतर माध्य किसी श्रेणी का एक ऐसा मूल्य हो सकता है, जो उस श्रेणी में न होकर कोई बाहर का मूल्य हो।
2. **चरम मूल्यों का प्रभाव**– इस माध्य का सबसे बड़ा दोष चरम मूल्यों का प्रभाव है। अत्यधिक बड़े या छोटे मूल्यों को यह अधिक महत्व देता है। उदाहरणार्थ, चार कर्मचारियों के वेतन क्रमशः 1000, 250, 210, 180 रु. का समांतर माध्य 410 हुआ। स्पष्ट है कि एक अकेले पद–मूल्य (1000) ने औसत को काफी हद तक बढ़ा दिया है।
3. **अवास्तविक माध्य**– समांतर माध्य, कभी–कभी पूर्णांक में न होकर दशमलव या भिन्न के रूप में आता है जोकि इसे अवास्तविक बना देता है, जैसे–चार माताओं द्वारा क्रमशः 3,2,1 व 4 बच्चों को जन्म दिया गया, जिसका प्रति माता औसत 2.5 आया। निःसंदेह यह एक हास्यप्रद निष्कर्ष है।
4. **अनुपयुक्तता**– समांतर माध्य का एक अन्य दोष यह है कि इसके अनुपात, दर, प्रतिशत आदि की गणना करना संभव नहीं हो पाता है।
5. **भ्रमात्मक निष्कर्ष**– समांतर माध्य कभी–कभी भ्रमात्मक निष्कर्ष भी देता है। उदाहरणार्थ, जूट उद्योग की दो फर्मों का पिछले तीन वर्षों में लाभ इस प्रकार रहा है–

   A : 5000 रु. + 7000 रु. + 9000 रु. = औसत 7000 रु.

   B : 12000 रु. + 6000 रु. + 3000 रु. = औसत 7000 रु.

   इनके समान स्तर का प्रतीक है। परंतु वास्तविक यह है कि A फर्म उन्नति की ओर अग्रसर है, जबकि B फर्म दिवालियेपन की ओर बढ़ रही है।
6. **गणना संबंधी जटिलता**– स्थिति संबंधी माध्यों, जैसे–भूयिष्ठक व माध्यिका की अपेक्षा समांतर माध्य की गणना क्रिया अधिक जटिल है। प्रथम, यह निरीक्षण द्वारा नहीं निकाला जा सकता। दूसरा, यदि श्रेणी का कोई एक मूल्य भी अज्ञात है तो समांतर माध्य नहीं निकल पाएगा क्योंकि यह श्रेणी के सभी पदों पर आधारित होता है, तीसरा गुणात्मक समंकों के लिए समांतर माध्य का प्रयोग नहीं किया जा सकता। चौथा, माध्यिका व भूयिष्ठक की भांति इस माध्य का निर्धारण बिंदु–रेखीय रीति द्वारा भी नहीं किया जा सकता।

5.3.2 माध्यिका

किसी शृंखला को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर उस शृंखला के मध्य में जो मूल्य आता है उसे मध्यांक कहते हैं। मध्यांक / माध्यिका (Median) वह केन्द्रवर्ती मान है जो किसी समूह के प्राप्तांकों को दो बराबर भागों में बांटता है। एक भाग के सभी प्राप्तांक उससे अधिक होते हैं और दूसरे भाग के सभी प्राप्तांक उससे कम होते हैं।

परिभाषाएं

कॉनर के अनुसार, "मध्यांक समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में इस प्रकार बांटता है कि एक भाग के सारे मूल्य मध्यांक से अधिक और दूसरे भाग के सारे मूल्य मध्यांक से कम होते हैं।"

प्रो. बाउले– "मध्यांक श्रेणी में उस पद का मूल्य है जो वितरण को दो बराबर भागों में बांटता है।"

गिलफोर्ड के अनुसार, "किसी मापनी पर मध्यांक वह बिन्दु है आधे जिसके ऊपर होते हैं और आधे नीचे होते हैं।"

मध्यांक किसी समंक माला को दो बराबर भागों में विभाजित करता है। इसे स्थिति सम्बन्धी माध्य भी कहा जाता है। मध्यांक किसी समूह का वह प्राप्तांक होता है जो उनको स्थिति क्रम में रखने पर उनके ठीक मध्य में पड़ता है और जिसके दोनों ओर समूह के आधे–आधे प्राप्तांक वितरित होते हैं।

- **माध्यिका की गणना विधि**

माध्यिका (Median) मान की गणना को दो प्रकार से प्रदत्तों से ज्ञात किया जाता है–

(क) अव्यवस्थित / अवर्गीकृत प्रदत्त

(ख) व्यवस्थित / वर्गीकृत प्रदत्त

(क) अव्यवस्थित / अवर्गीकृत प्राप्तांकों से मध्यांक की गणना – मध्यांक को संकेताक्षर (M) से दिखाया जाता है। मध्यांक निकालने की सबसे सरल विधि यह है कि इसमें सबसे पहले प्राप्तांकों को क्रम से न्यूनतम से अधिकतम की दिशा में व्यवस्थित किया जाता है और फिर उसमें से बीच के प्राप्तांक को लिया जाता है। निम्न सूत्र की सहायता से माध्यिका ज्ञात किया जाता है।

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ वाले पद का मान}$$

अव्यवस्थित आंकड़े दो स्थितियों में होते हैं– जब प्राप्तांकों की संख्या विषम होती है और जब प्राप्तांकों की संख्या सम होती है।

उदाहरण–जब प्राप्तांकों की संख्या विषम होती है–निम्न प्रदत्तों की सहायता से मध्यांक ज्ञात कीजिए।

प्राप्तांक / प्रदत्त	2	5	9	8	7	6	4

हल : पहले प्रदत्तों को इस प्रकार आरोही क्रम में व्यवस्थित करेंगे–

प्राप्तांक / प्रदत्त	2	4	5	6	7	8	9

$M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वाले पद का मान

$M = \left(\frac{7+1}{2}\right)$ वाले पद का मान

$M = \left(\frac{8}{2}\right)$ वाले पद का मान

$M = (4)$ वाले पद का मान

$M = 6$

उदाहरण–जब प्राप्तांकों की संख्या सम होती है–निम्न प्रदत्तों की सहायता से मध्यांक ज्ञात कीजिए–

प्राप्तांक / प्रदत्त	12	15	19	11	18	17	16	14

हल : पहले प्रदत्तों को इस प्रकार आरोही क्रम में व्यवस्थित करेंगे–

प्राप्तांक / प्रदत्त	11	12	14	15	16	17	18	19

$M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वाले पद का मान

$M = \left(\frac{8+1}{2}\right)$ वाले पद का मान

$M = \left(\frac{9}{2}\right)$ वाले पद का मान

$M = (4.5)$ वाले पद का मान

$M = 4^{g}.5^{g} \times 2$ वाले पद का मान

$M = \left(\frac{15+16}{2}\right)$ वाले पद का मान

$M = \left(\frac{31}{2}\right)$ वाले पद का मान

$M = (15.5)$

उदाहरण–

प्राप्तांक / प्रदत्त	11	12	14	15	16	17	18	19
आवृत्ति	3	7	9	10	9	6	5	2

टिप्पणी

हल – इसमें सबसे पहले संचयी आवृत्ति तैयार करते हैं–

प्राप्तांक/प्रदत्त	11	12	14	15	16	17	18	19	
आवृत्ति	3	7	9	10	9	6	5	2	51
संचयी आवृत्ति	3	10	19	29	38	44	49	51	

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{वां पद}$$

$$M = \left(\frac{51+1}{2}\right) \text{वां पद}$$

$$M = \left(\frac{52}{2}\right) \text{वां पद}$$

$$M = (26) \text{वां पद}$$

यह पद संचयी आवृत्ति में 29 के अन्तर्गत है अतः इसके सामने वाला x मूल्य ही मध्यांक (M) होगा। यहाँ $M =$ 15 है।

व्यवस्थित/वर्गीकृत प्राप्तांकों से मध्यांक की गणना (Calculation of Median of the Grouped Data): व्यवस्थित/वर्गीकृत प्राप्तांकों से मध्यांक की गणना निम्न सूत्र से ज्ञात की जाती है–

$$M = L + \frac{i}{f}(m - c) \qquad m = \frac{N}{2}$$

M = मध्यांक

L = मध्यांक वर्ग की निचली सीमा

f = मध्यांक वर्ग की आवृत्ति

c = मध्यांक वर्ग के ऊपर वाली संचयी आवृत्ति

M = आवृत्ति का कुल योग

i = मध्यांक वर्ग का वर्ग अन्तराल

उदाहरण – 100 विद्यार्थियों के निम्नांकित प्राप्तांकों से मध्यांक ज्ञात कीजिए।

वर्ग अन्तराल	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50
आवृत्ति	8	30	40	12	10

हल (Solution) : इसमें सबसे पहले संचयी आवृत्ति तैयार करते हैं–

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)	संचयी आवृत्ति (cf)
0 – 10	8	8
10 – 20	30	38
20 – 30	40	78 .... median group
30 – 40	12	90
40 – 50	10	100
	100	

L = 20 f = 40 c = 38 i = 10

$$M = L + \frac{i}{f}(m - c) \qquad m = \frac{100}{2} = 50$$

$$M = 20 + \frac{10}{40}(50 - 38)$$

$$M = 20 + \frac{1}{4}(12)$$

$$M = 20 + \frac{12}{4}$$

$$M = 20 + 3$$

$$M = 23$$

जब मध्यांक मान वाले वर्गान्तर की आवृत्तियाँ शून्य (When Zero Frequency of Median Group Intereval)

उदाहरण

वर्ग अन्तराल	90.99	80.89	70.79	60.69	50.59	40.49	30.39	20.29	10.19
आवृत्ति	2	1	0	0	2	0	0	3	2

हल

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)	संचयी आवृत्ति (cf)	वास्तविक वर्ग अन्तराल
90 – 99	2	10	89.5 – 99.5
80 – 89	1	8	79.5 – 89.5
70 – 79	0	7	69.5 – 79.5
60 – 69	0	7	59.5 – 69.5
50 – 59	2	7	49.5 – 59.5……..Md_2
40 – 49	0	5	39.5 – 49.5
30 – 39	0	5	29.5 – 39.5
20 – 29	3	5	19.5 – 29.5 ……..Md_1
10 – 19	2	2	09.5 – 19.5
	10		

$$m = \frac{10}{2} = 5$$

Md_2= 50-59

Md_1 =20-29

चूँकि Md_2 ज्ञात करने के लिए सभी आवृत्तियों का योग करना पड़ता है। यहाँ यह संख्या 5 है जो (20–29) अर्थात् 39.5 से नीचे 9 आवृत्तियाँ है इसी प्रकार दूसरी बार यह मूल्य (50–59) में पड़ रहा है। इन दोनों वर्गान्तरों को मिलाकर एक नया वर्गान्तर बनाया जायेगा जो 20–59 में आता है। फिर इसे वास्तविक वर्गान्तर में बदलने के लिए निम्न सीमा से 0.5 घटा देते हैं और उच्च सीमा में 0.5 जोड़ देते हैं। इस प्रकार वर्गान्तर की वास्तविक सीमाएँ 19.5–59.5 होंगी। तो ऐसी स्थिति में मध्यांक निम्न प्रकार से ज्ञात किया जायेगा–

माध्यिका $m = \frac{19.5+59.5}{2}$

माध्यिका = $m = \frac{79}{2}$ मध्यांक = $m = 39.5$

उपरोक्त उदाहरण के लिए एक दूसरी विधि का प्रयोग किया जा सकता है–

माध्यिका $m = \frac{Md_1 + Md_2}{2}$

Md_1 का हल

$$Md_1 = U - \frac{i}{f}(m - c)$$

$$Md_1 = 29.5 - \frac{10}{3}(5 - 2)$$

$$Md_1 = 29.5 - \frac{30}{3}$$

$$Md_1 = 29.5 - 10$$

$$Md_1 = 19.5$$

Md_2 का हल

$$M = U - \frac{i}{f}(m - c)$$

$$Md_2 = 59.5 - \frac{10}{2}(5 - 5)$$

$$Md_2 = 59.5 - \frac{00}{4}$$

$$Md_2 = 59.5 - 00$$

$$Md_2 = 59.5$$

अब

माध्यिका $m = \frac{19.5 + 59.5}{2}$

माध्यिका = $m = \frac{79}{2}$ माध्यिका = $m = 39.5$

माध्यिका की विशेषताएं (Characteristics of Median)

माध्यिका की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. मध्यांक, वितरण का मध्य बिन्दु होता है अतः वितरण के आधे प्राप्तांक मध्यांक मान से ऊपर तथा आधे प्राप्तांक नीचे होते हैं।
2. जब किसी वितरण के प्राप्तांकों का विचलन असामान्य होता है तो ऐसी स्थिति में मध्यमान की अपेक्षा मध्यांक अधिक उपयोगी होता है।
3. मध्यांक किसी वितरण के प्राप्तांको की गुणात्मक व्याख्या के लिए अन्य केन्द्रवर्ती मानों (मध्यमान बहुलक) की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है।
4. मध्यांक मान को वितरण के किनारों पर स्थित प्राप्तांक अधिक प्रभावित नहीं करते हैं।

माध्यिका के गुण

माध्यिका के गुण निम्नलिखित हैं–

1. गुणात्मक तथ्यों (qualitative facts) जैसे–ईमानदारी, बुद्धिमत्ता, क्षमता आदि का माध्य ज्ञात करने के लिए माध्यिका सर्वोत्तम मानी जाती है।

2. माध्यिका को समझना और ज्ञात करना बहुत सरल है।
3. माध्यिका पर चरम मूल्यों या सीमांत मदों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
4. खुले–सिरे वाली सारणी में माध्यिका मूल्य सुगमता से ज्ञात किया जा सकता है। ऐसी सारणी में माध्यिका निकालने के लिए प्रथम वर्ग की निम्नतम सीमा तथा अंतिम वर्ग की उच्चतम सीमा निश्चित करना आवश्यक नहीं, जबकि माध्यिका निकालते समय ये सीमाएं निश्चित करनी पड़ती हैं।
5. रेखा–चित्र खींचकर माध्यिका मूल्य निर्धारित किया जा सकता है, जबकि माध्यिका में ऐसा संभव नहीं है।
6. माध्यिका एक स्पष्ट और निश्चित माध्य है, भूयिष्ठक की भांति अनिश्चित नहीं है।

माध्यिका की सीमाएं

माध्यिका की सीमाओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. मध्यांक, मध्यमान की अपेक्षा का शुद्ध मान होता है।
2. मध्यांक किसी वितरण के प्राप्तांकों का स्थितिमान होता है। अतः मध्यांक को ज्ञात करने के लिए वितरण के प्राप्तांकों को स्थिति क्रम में सजाना आवश्यक होता है। वितरण बड़ा होने पर समय एवं शक्ति व्यय होती है।
3. मध्यांक की गणना केवल अपूर्ण एवं विकृत वितरण में ही प्रायः की जाती है।
4. माध्यिका में बीजगणित के गुणों का अभाव है, इसलिए उच्चतर गणितीय क्रियाओं में इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, माध्यिका मूल्य और मदों की संख्या को गुणा करने से सभी मदों के मूल्यों का जोड़ ज्ञात नहीं किया जा सकता।
5. माध्यिका–मूल्य निर्धारित करने से पूर्व मदों को आरोही या अवरोही क्रम में अनुविन्यासित करना पड़ता है, जिसमें काफी समय लगता है।
6. अविच्छिन्न श्रेणी में माध्यिका ज्ञात करते समय मान्यता की जाती है कि प्रत्येक वर्ग में आवृत्तियां समान रूप से वितरित हैं लेकिन यह मान्यता सदैव सत्य नहीं होती।
7. माध्यिका–मूल्य निकालते समय श्रेणी के सभी मदों को समान महत्व दिया जाता है।

5.3.3 बहुलक

एक वितरण में प्राप्त प्राप्तांकों में जिस प्राप्तांक की आवृत्ति सर्वाधिक होती है उसे उस वितरण का बहुलक (Mode) कहा जाता है। यह मूल्यों के अधिकतम संकेन्द्रण का बिन्दु बहुलक कहलाता है। बहुलक (Mode) किसी समूह का वह प्राप्तांक है जिसकी उस समूह के प्राप्तांकों में सबसे अधिक आवृत्ति होती है। बहुलक को संकेताक्षर Z द्वारा दर्शाया जाता है।

परिभाषाएं

प्रो. गिलफर्ड के अनुसार, "किसी वितरण में वह प्राप्तांक जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक होती है।"

क्राक्सटन एवं काउडन के अनुसार, "एक समंक श्रेणी का बहुलक वह मूल्य है जिसके निकट श्रेणी की इकाइयां अधिक से अधिक केन्द्रित होती हैं। उसे मूल्यों की श्रेणी का सबसे अधिक प्रतिरूपी मूल्य माना जाता है।"

क्रो व क्रो के अनुसार, "प्राप्तांकों के समूह में जिस अंक की आवृत्ति सबसे अधिक होती है, बहुलक कहलाता है।"

• बहुलक की गणना विधि

बहुलांक मान भी दो प्रकार के प्रदत्तों से ज्ञात किया जाता है–

अव्यवस्थित/ अवर्गीकृत प्रदत्त

व्यवस्थित/ वर्गीकृत प्रदत्त

(क) अव्यवस्थित/अवर्गीकृत प्रदत्तों से बहुलक की गणना – बहुलक में किसी सूत्र का प्रयोग नहीं किया जाता है। केवल सर्वेक्षण विधि के द्वारा यह देखा जाता है कि जो प्राप्तांक अधिकतम प्रयोग हुआ है उसे बहुलक कहते हैं।

उदाहरण–

प्राप्तांक 8 6 5 8 10 9 15 8 4 2 11 8

चूंकि इस सारणी में प्राप्तांक 8 की आवृत्ति सबसे अधिक (4) बार हुई है अतः यहां बहुलक (Z) 8 होगा।

कभी–कभी दो या दो से अधिक प्राप्तांकों की आवृत्ति समान होती है तो ऐसी स्थिति में बहुलक ज्ञात करने के लिए निम्न नियम का पालन किया जाता है–जिन प्राप्तांकों की संख्या आवृत्तियां सर्वाधिक और आपस में समान होती हैं उन दोनों प्राप्तांकों का औसत ज्ञात ही बहुलक होता है।

उदाहरण

प्राप्तांक 8 6 15 8 10 6 15 8 6 12 6 8

यहां प्राप्तांक 6 तथा प्राप्तांक 8 दोनों चार–चार बार हैं अतः यहां बहुलक इस प्रकार ज्ञात किया जायेगा

$$Mode = Z = \frac{8+6}{2} \quad Mode = Z = 7$$

नोट– यदि समूह में सभी अथवा अनेक प्राप्तांकों की संख्या समान होती है तो कोई बहुलक नहीं होता है। जैसे–

प्राप्तांक 3 6 15 8 10 9 15 3 6 10 9 8

इस समूह में सभी प्राप्तांक दो–दो बार आये हैं अतः किसी भी प्राप्तांक को बहुलक नहीं कहा जा सकता है।

(ख) व्यवस्थित/ वर्गीकृत प्रदत्तों से बहुलक की गणना– जब समूह बहुत बड़ा होता है अथवा विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है तो प्राप्तांकों को स्थिति क्रम में लगाना कठिन होता है और भूल की सम्भावना भी अधिक होती है। ऐसी स्थिति में वितरण को तालिका में परिवर्तित करके बहुलक का मान ज्ञात किया जाता है। इसकी भी दो विधियां होती हैं–

अनुमानित बहुलक ज्ञात करने की विधि– जब विद्यार्थियों के अंकों का वितरण बहुत अधिक हो तो पहले उन्हें व्यवस्थित किया जाता है और फिर सर्वेक्षण विधि द्वारा बहुलक ज्ञात किया जाता है। जिस प्राप्तांक की आवृत्ति सबसे अधिक होती है वह प्राप्तांक बहुलक कहलाता है।

उदाहरण– 10 अंकों की एक परीक्षा में 40 विद्यार्थियों के अंकों का वितरण निम्न प्रकार है इसमें बहुलक क्या होगा?

1	7	2	8	5	4	10	5
3	2	5	9	8	9	8	9
7	6	3	8	3	7	10	5
3	4	10	4	8	9	8	9
4	6	10	2	4	1	8	10

हल (Solution)

प्राप्तांक (X)	आवृत्ति (f)
1	2
2	3
3	4
4	5
5	4
6	2
7	3
8	7
9	5
10	4

यहां पर प्राप्तांक 8 की आवृत्ति सर्वाधिक 7 है अतः बहुलक (Z) = 8 होगा।

सूत्र द्वारा बहुलक ज्ञात करने की विधि : वर्गीकृत प्रदत्तों का बहुलक ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग किया जाता है।

$$Z = L + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times_i$$

उदाहरण– एक परीक्षा में 100 विद्यार्थियों के अंकों का वितरण निम्न प्रकार है इसमें बहुलक क्या होगा?

प्राप्तांक	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80
विद्यार्थियों की संख्या	11	17	32	28	12

प्राप्तांक / वर्ग अन्तराल	आवृत्ति
30 – 40	11
40 – 50	17 ……f_0
50 – 60 …L	32……f_1
60 – 70	28……f_2
70 – 80	12

टिप्पणी

$$Z = L + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times_i$$

$$Z = 50 + \frac{32 - 17}{2(32) - 17 - 28} \times_{10}$$

$$Z = 50 + \frac{15}{(64) - 45} \times_{10}$$

$$Z = 50 + \frac{150}{19}$$

Z=50+7.89

Z=57.89

एक अन्य उदाहरण– एक परीक्षा में 46 विद्यार्थियों के अंकों का वितरण निम्न प्रकार है इसमें बहुलक क्या होगा?

प्राप्तांक	0.9	10.19	20.29	30.39	40.49	50.59	60.69	70.79
विद्यार्थियों की संख्या	2	5	9	10	8	6	4	2

प्राप्तांक / वर्ग अन्तराल	आवृत्ति	वास्तविक अन्तराल
0 – 9	2	-0.5 – 9.5
10 – 19	5	9.5 – 19.5
20 – 29	9…… f_0	19.5 – 29.5
30 – 39 …*L*	10…..f_1	29.5 – 39.5
40 – 49	8…… f_2	39.5 – 49.5
50 – 59	6	49.5 – 59.5
60 – 69	4	59.5 – 69.5
70 – 79	2	69.5 – 79.5

$$Z = L + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2}\ i$$

$$Z = 29.5 + \frac{10 - 9}{2(10) - 9 - 8} \times_{10}$$

$$Z = 29.5 + \frac{1}{(20) - 17} \times_{10}$$

$$Z = 29.5 + \frac{10}{3}$$

$$Z = 29.5 + 3.33$$

$$Z = 32.83$$

कभी–कभी समूहन के बाद यह ज्ञात होता है कि दो या अधिक वर्गों की आवृत्तियाँ समान रूप से अधिकतम बार पाई जाती हैं तो ऐसी स्थिति में अलग–अलग

वर्गों का तथा निकटवर्ती वर्गों की आवृत्तियों को जोड़कर जोडों की तुलना की जाती है। जिस वर्ग का योग अधिक होता है उसे बहुलक वर्ग माना जाता है और निम्न वैकल्पिक सूत्र से बहुलक ज्ञात किया जाता है–

$$Z = \frac{f_2}{f_0 + f_2} \times i$$

उदाहरण–

वर्गान्तर	आवृत्ति	दो–दो के जोडे		तीन–तीन के जोडे			अधिकतम आवृत्ति वाले समूह	
	(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)	(vi)		
10 - 20	5	14						
20 - 30	9		22	27			I	1
30 - 40	13	34			43		II	2
40 - 50	21		41			56	IIIII	5
50 - 60	20			56			IIIII	5
60 - 70	15	35	23		43		III	3
70 - 80	8					26	I	1
80 - 90	3							

उपरोक्त सारणी में 40–50 तथा 50–60 दोनों वर्गों में अधिकतम आवृत्ति 5–5 है अतः दोनों में से बहुलक वर्ग छाँटने के लिए निम्न विधि का प्रयोग किया जाता है।

40-50	50-60
13 f_0	21 f_0
21 f_1	20 f_1
20 f_2	15 f_2
54	56

इस प्रकार 50–60 वाला वर्ग बहुलक वर्ग है क्योंकि इस समूह का योग ज्यादा है जिसकी आवृत्ति 20 है और इससे नीचे की आवृत्ति 21 है यहाँ $\mathbf{f_0 > f_1}$ है । अतः वैकल्पिक सूत्र का प्रयोग किया जायेगा

$$Z = L + \frac{f_2}{f_0 + f_2} \times i$$

$$Z = 50 + \frac{15}{21 + 15} \times 10$$

$$Z = 50 + \frac{150}{36}$$

$$Z = 50 + 4.166$$

$Z = 54.166$ या 54.17

सही बहुलक निकालने की विधि

सही बहुलक ज्ञात करने के लिए पहले मध्यमान निकाला जाता है। फिर मध्यांक ज्ञात किया जाता है और उसके बाद निम्न सूत्र के माध्यम से बहुलक ज्ञात किया जाता है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि जब किसी वितरण से मध्यमान एवं मध्यांक तथा बहुलक

भी ज्ञात करना हो तो बहुलांक ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

Z= 3M-2X

निम्न प्रदत्तों की सहायता से मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलक ज्ञात कीजिए

प्राप्तांक	10.19	20.29	30.39	40.49	50.59	60.69	70.79	80.89	90.99
आवृत्ति	2	3	5	4	12	9	8	5	2

हल (Solution)

वर्ग अन्तराल	वास्तविक वर्ग अन्तराल	आवृत्ति	c.f	m.v (x)	dx (X-A)	fdx	
10 – 19	9.5 – 19.5	2	2	14.5	-4	-8	m= n/2
20 – 29	19.5 – 29.5	3	5	24.5	-3	-9	m=50/2=25
30 – 39	29.5 – 39.5	5	10	34.5	-2	-10	
40 – 49	39.5 – 49.5	4f_0	14c	44.5	-1	-4	
50 – 59	49.5 – 59.5	12f_1	26	54.5	0	0	
60 – 69	59.5 – 69/5	9f_2	35	64.5	1	9	
70 – 79	69.5 – 79.5	8	43	74.5	2	16	
80 – 89	79.5 – 89.5	5	48	84.5	3	15	
90 – 99	89.5 – 99.5	2	50	94.5	4	8	
		50				-31+48=17	

मध्यमान (X)	मध्यांक (M)	बहुलांक (Z)
$\overline{x} = A + \frac{\sum fdx}{N} \times i$	$M = L + \frac{i}{f}(m - c)$	$Z = L + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times 10$
$\overline{x} = 54.5 + \frac{17}{50} \times 10$	$M = 49.5 + \frac{10}{12}(25 - 14)$	$Z = 49.5 + \frac{12 - 4}{2(12) - 4 - 9} \times 10$
$54.5 + \frac{170}{50}$	$M = 49.5 + \frac{10}{12}(11)$	$Z = 49.5 + \frac{8}{(24) - 13} \times 10$
$54.5 + 3.4$	$M = 49.5 + \frac{110}{12}$	$Z = 49.5 + \frac{80}{11}$
57.9	$M = 49.5 + 9.166$	$Z = 49.5 + 7.27$
	$M = 58.67$	$Z = 56.77$

अब बहुलांक इस सूत्र द्वारा ज्ञात किया जायेगा– Z= 3M-2X

Z= 3(58.67)-2(57.9) Z= (176.01)- (115.8) Z=60.21

टिप्पणी

जब केवल बहुलांक ही ज्ञात करना होता है तो उपरोक्त सूत्र का प्रयोग करना ही अधिक उपयोगी रहता है क्योंकि पहली विधि में यदि किसी भूलवश मध्यमान या मध्यांक में से कोई एक गलत हो जाए तो बहुलांक स्वतः गलत हो जाएगा।

बहुलक की विशेषताएं

बहुलक की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. किसी समूह के प्राप्तांकों का बहुलक बहुत सरलता से ज्ञात किया जा सकता है, असामान्य प्राप्तांकों का भी।
2. किसी समूह के प्राप्तांकों के बहुलक का मान प्राप्तांकों के ग्राफ द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है। यह वह बिन्दु है जिस पर आवृत्ति वक्र की ऊंचाई सबसे अधिक होती है।
3. यदि किसी समूह के कुछ प्राप्ताकों का मान अन्य प्राप्तांकों के मान की अपेक्षा बहुत अधिक अथवा बहुत कम होता है तो स्थिति में भी उस समूह के प्राप्तांकों का बहुलक प्रभावित नहीं होता।
4. यह किसी समूह के प्राप्तांकों की गुणात्मक व्याख्या के लिए अधिक उपयोगी होता है।

बहुलक के गुण

1. **श्रेणी के सभी मूल्यों की जानकारी आवश्यक नहीं**– बहुलक के लिए श्रेणी के सभी पद–मूल्यों की जानकारी भी आवश्यक नहीं है। एक नियमित आवृत्ति–श्रेणी में बहुलक वर्ग और उसके निकटवर्ती वर्गों की आवृत्तियों के आधार पर ही बहुलक ज्ञात किया जा सकता है।
2. **सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व**– चूंकि बहुलक श्रेणी का वह मूल्य होता है, जिसकी पुनरावृत्ति सबसे अधिक बार होती है, अतः इस आधार पर बहुलक श्रेणी का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व करने वाला माध्य माना जाता है। फिर, बहुलक का मूल्य, श्रेणी में दिए हुए पद–मूल्यों में से ही कोई एक होता है, जबकि अन्य माध्यों पर यह बात लागू नहीं होती।
3. **बिंदुरेखीय रीति द्वारा निर्धारण**– बिंदुरेखीय रीति द्वारा भी बहुलक का निर्धारण आसानी से किया जा सकता है।
4. **चरम मूल्यों से प्रभावित न होना**– बहुलक पर श्रेणी के चरम मूल्यों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि अधिकतम आवृत्ति संकेंद्रण प्रायः श्रेणी के मध्य में होता है न कि चरम सीमाओं के आस–पास।
5. **लोकप्रियता**– बहुल एक ऐसा माध्य है, जिसका दैनिक जीवन में काफी प्रयोग किया जाता है, जैसे–जूते, सिले–सिलाए कपड़े आदि। औसत आकार से हमारा अभिप्राय बहुलक के आकार से होता है।

6. **आगणन में सरलता तथा बोधगम्य**– बहुलक का सबसे बड़ा गुण इसकी सरलता है। यह माध्य अधिकतर निरीक्षण से ही ज्ञात हो जाता है फिर, इसका निर्धारण करने में गणितीय परिकलन की भी आवश्यकता नहीं होती।

बहुलक की सीमाएं

बहुलक की सीमाओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. जब किसी समूह में कोई भी प्राप्तांक नहीं होता अथवा दो से अधिक ऐसे प्राप्तांक जिनमें बहुत अधिक अन्तर होता है, बहुलक की श्रेणी में आते हैं तो उस स्थिति में बहुलक अर्थहीन होता है।
2. बहुलक एक अनुमानित केन्द्रवर्ती मान होता है इसलिए सांख्यिकीय गणनाओं के लिए यह कम उपयोगी होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में बहुलक की उपयोगिता एवं महत्ता

यूं तो बहुलक अन्य केन्द्रवर्ती मानों, मध्यमान एवं मध्यांक की अपेक्षा कम विश्वसनीय होता है फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में कुछ ऐसी परिस्थितियां होती हैं जब इसका प्रयोग किया जाता है।

1. जब किसी समूह की केन्द्रीय प्रवृत्ति का अनुमान लगाना होता है तब बहुलक मान का उपयोग किया जाता है।
2. जब किसी समूह की सर्वाधिक पसन्दों या उपलब्धियों का पता लगाना हो तो तब भी बहुलक का ही प्रयोग किया जाता है।
3. जब किसी समूह के बहुचर्चित मान का पता लगाना होता है तब भी इसी केन्द्रवर्तीमान बहुलक का प्रयोग किया जाता है।
4. जब मध्यमान या मध्यांक निकालने के लिए समय नहीं होता तब सरलता से बहुलक ज्ञात करना लिया जाता है और उससे काम चला लिया जाता है।
5. जब शैक्षिक शोधों के क्षेत्र में उपकल्पनाओं का निर्माण करना होता है, तब कभी–कभी बहुलक का प्रयोग किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. माध्यिका को किस संकेताक्षर द्वारा दर्शाया जाता है।

   (क) O (ख) P

   (ग) M (घ) N

4. किसी समूह का वह प्राप्तांक जिसकी उस समूह के प्राप्तांकों में सबसे अधिक आवृत्ति होती है निम्न में से क्या कहलाता है?

   (क) परास (ख) बहुलक

   (ग) माध्य (घ) माध्यिका

5.4 परिक्षेपण की माप

परिक्षेपण वस्तुओं के बीच मित्रता का माप है। यह संख्यात्मक आंकड़े हैं जो एक माध्य मूल्य के दोनों ओर फैलाव की जिस सीमा तक प्रवृत्ति रखते हैं उस सीमा को उन आंकड़ों का परिक्षेपण या अपकिरण कहते हैं।

परिक्षेपण जिसे अपकिरण भी कहा जाता है केंद्रीय प्रवृत्ति की विभिन्न मापें समंकमाला के वास्तविक मूल्यों पर आधारित रहती है। अतः इन्हें प्रथम श्रेणी के माध्य कहते हैं। अपकिरण की मापें द्वितीय श्रेणी के माध्य कहलाती हैं क्योंकि अपकिरण की माप ज्ञात करते समय पहले समंकमाला का माध्य किया जाता है और फिर उस माध्य से विभिन्न पद मूल्यों के विचलनों का माध्य ज्ञात किया जाता है। अवलोकनों के समूह की विचलनशीलता की विशेषता उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी उस समूह के पदों की केंद्रीय प्रवृत्ति की विशेषता। अपकिरण का संबंध समंकों की एकरूपता से है और अपकिरण की मापें माध्य के चारों ओर पद-मूल्यों का बिखराव या फैलाव का मापन करती हैं।

बाउले के अनुसार, "अपकिरण पदों की विचलनशीलता की माप है।"

बुक्स एवं डिक के अनुसार, "अपकिरण अर्थात प्रसार एक केंद्रीय मूल्य के इर्द-गिर्द चर मूल्यों के विचरण अथवा बिखराव की सीमा है।"

प्रो. किंग के शब्दों में, "अपकिरण शब्द का प्रयोग यह स्पष्ट करने के लिए किया जाता है कि एक दिये गए समूह के पद-मूल्यों में भिन्नता है।"

प्रो. कॉनर के अनुसार, "अपकिरण उस सीमा, जिस तक व्यक्तिगत पद विचलित है, की एक माप है।"

प्रो. स्पाइगल के अनुसार, "वह परिमाण जिस तक समंक समूह माध्य मूल्य के इर्द-गिर्द बिखरा है समंक समूह का विचलन कहलाता है।"

ग्रिफिन के अनुसार, "विचरण अथवा अपकिरण का माप अवलोकनों द्वारा प्रदर्शित बिखराव की सीमा का विवरण देती है तथा उसे सामान्यतः किसी केंद्रित मूल्य अथवा उचित स्थिर चर से विचलनों के माध्य के रूप में मापा जाता है।"

परिक्षेपण को मापने के उद्देश्य

परिक्षेपण की मापें मुख्य रूप से निम्न उद्देश्य की पूर्ति करती हैं-

1. **माध्य की विश्वसनीयता का अनुमान लगाना–** अपकिरण की माप, माध्य की माप के साथ मिलकर वितरण की संरचना एवं व्यक्तिगत पद-मूल्यों का उसमें स्थान के बारे में विवरण प्रस्तुत करती है। वितरण की विशेषताओं को संक्षप्ति रूप में व्यक्त करने के लिए माध्य तथा अपकिरण दोनों की माप को प्रस्तुत करना चाहिए। माध्य की माप के बिना कोई ऐसा प्रमाप नहीं होगा जिससे समंक समूह के व्यक्तिगत पद मूल्यों की तुलना की जा सके।
2. **विचरणशीलता को नियंत्रित करने के आधार के रूप में प्रयोग करना–** अपकिरण की माप ज्ञात करने का दूसरा उद्देश्य विचरण की प्रकृति तथा कारण निर्धारित करना होता है जिससे स्वयं विचरणशीलता को नियंत्रित किया जा सके।

3. **दो या अधिक श्रेणियों के मध्य विचरणशीलता की तुलना करना–** अपकिरण की मापों के आधार पर दो या अधिक श्रेणियों के मध्य विचरणशीलता की तुलना की जा सकती है। अपकिरण का अध्ययन समूह में एकरूपता ज्ञात करने में उपयोगी रहता है।

परिक्षेपण के गुण

परिक्षेपण की श्रेष्ठ माप में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

1. अपकिरण को समझना तथा उसकी गणना करना सरल हो।
2. इसको निश्चित रूप से परिभाषित किया जा सके।
3. परिक्षेपण श्रेणी के सभी पदों पर आधारित हो।
4. यह सीमांत मूल्यों से अत्यधिक प्रभावित न हो।
5. परिक्षेपण प्रतिचयन के उच्चावचनों से न्यूनतम प्रभावित हो।

परिक्षेपण ज्ञात करने की विधियां

परिक्षेपण ज्ञात करने की निम्नलिखित विधियां हैं- (क) परास, (ख) चतुर्थक विचलन (ग) माध्य विचलन (घ) मानक विचलन।

5.4.1 परास

परास (Range) एक अंक वितरण की विचलनशीलता की माप है। परास (Range) का अर्थ उस मान से है जो एक अंक वितरण के उच्चतम प्राप्तांक को न्यूनतम प्राप्तांक से घटाने पर प्राप्त होता है। इसका सूत्र निम्न है-

परास = उच्चतम प्राप्तांक - न्यूनतम प्राप्तांक

परिक्षेपण की अपरिष्कृत माप वितरण की परास (Range) होती है। किसी श्रृंखला का परास उसके अधिकतम एवं न्यूनतम मानों के बीच का अंतर होता है। अगर किसी परीक्षा में 248 छात्रों के प्राप्तांकों को आरोही क्रम में लिखा गया है तो परास अधिकतम और न्यूनतम अंकों का अंतर होगा।

किसी बारम्बारता वितरण में परास निम्न सीमा के सीमांत मान और उच्च सीमा के सीमांत मान का अंतर होता है।

सारणी *कार्यशाला में चार मजदूरों की साप्ताहिक कमाई।*

साप्ताहिक कमाई (रुपये में)	कार्यशाला A	कार्यशाला B	कार्यशाला C	कार्यशाला D
15 – 16	–	–	2	–
17 – 18	–	2	4	–
19 – 20	–	4	4	4
21 – 22	10	10	10	14
23 – 24	22	14	16	16

25 – 26	20	18	14	16
29 – 30	14	10	6	12
30 – 32	–	6	6	4
33 – 34	–	–	2	2
35 – 36	–	–	–	–
37 – 38	–	–	4	–
कुल योग	80	80	80	80
माध्य	25.5	25.5	25.5	25.5

उपरोक्त सारणी में आंकड़ों का अध्ययन करने के बाद हमें निम्नलिखित बातों का पता चलता है–

कार्यशाला	परास
A	9
B	15
C	23
D	15

इन आंकड़ों से स्पष्ट रूप से पता चलता है की अगर समूह के मूल्यों के बीच अधिक अंतर है तो उस समूह का परास अधिक है।

परास परिक्षेपण का निरपेक्ष माप है, और इसका दो भिन्न वितरण की भिन्न इकाइयों का तुलनात्मक अध्ययन में उपयोग होता है।

अगर परिक्षेपण को पाउंड में मापा गया है तो इसे इंच में मापे गए परिक्षेपण के साथ तुलना नहीं कर सकते हैं।

निरपेक्ष माप को सापेक्ष माप में किसी मानक मूल्य से विभाजित कर बदल सकते हैं।

वितरण के माध्य या किसी दूसरे स्थितिक औसत का उपयोग मानक के रूप में कर सकते हैं।

सारणी में सापेक्ष परिक्षेपण होगा।

$$\text{कार्यशाला } A = \frac{9}{25.5}$$

$$\text{कार्यशाला } B = \frac{15}{25.5}$$

$$\text{कार्यशाला } C = \frac{23}{25.5}$$

$$\text{कार्यशाला } D = \frac{15}{25.5}$$

निरपेक्ष विचलन को सापेक्ष विचलन में बदलने की वैकल्पिक विधि में सीमान्तों के योग का मानक के रूप में उपयोग किया जाता है। यह सीमान्त मदों के अन्तर को सीमान्त मदों के योग से विभाजित करने के बराबर होगा। इस प्रकार,

$$\text{सापेक्ष परिक्षेपण} = \frac{\text{सीमान्तों का अन्तर}}{\text{सीमान्त मदों का योग}}$$

किसी शृंखला के सापेक्ष परिक्षेपण को गुणांक या परिक्षेपण का प्रतिशत कहते हैं। हमारे श्रमिकों की साप्ताहिक कमाई के उदाहरण में गुणांक होगा :–

$$\text{कार्यशाला } A = \frac{9}{21+30} = \frac{9}{51}$$

$$\text{कार्यशाला } B = \frac{15}{17+32} = \frac{15}{49}$$

$$\text{कार्यशाला } C = \frac{23}{15+38} = \frac{23}{53}$$

$$\text{कार्यशाला } D = \frac{15}{19+34} = \frac{15}{53}$$

परास के गुण एवं सीमाएं

गुण

एक अच्छे परिक्षेपण की विभिन्न विशेषताओं में से परास के पास केवल दो गुण हैं-

(*i*) इसे आसानी से समझा जा सकता है। एवं,

(*ii*) इसकी गणना सरल होती है।

पूर्वोक्त दो गुणों के अतिरिक्त, परास किसी अच्छे माप के अन्य जांच को संतुष्ट नहीं करता है। इसलिए परास को प्रायः परिक्षेपण का अपरिष्कृत माप कहते हैं।

सीमाएं

परास की सीमाएं परिवर्तनशीलता के आधार पर निम्नलिखित हैं-

(i) परास वितरण में दो सीमांत विश्लेषण पर निर्भर रहता है, इसलिए परास में बदलाव होगा यदि किसी भी सीमांत मान या विश्लेषण को हटा दिया जाए जबकि अन्य किसी भी विश्लेषण को हटाने पर इसमें कोई बदलाव नहीं होता है।

(ii) केंद्रीय प्रवृत्ति की माप की तरह यह शृंखला में मूल्यों के वितरण के बारे में कुछ नहीं बताता।

(iii) जब वितरण में खुले सिरे वाले वर्ग हो तो इसकी गणना नहीं की जा सकती।

(iv) यह सारे आंकड़े को ध्यान में नहीं रखता। इन्हें हम निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं।

निम्न सारणी में आंकड़ों पर ध्यान दें।

टिप्पणी

सारणी *स्थितियों की समान संख्या, किन्तु भिन्न चर वाले तीन वितरण*

वर्ग अंतराल	छात्रों की संख्या		
	वर्ग A	वर्ग B	वर्ग C
0 – 10	–	–	–
10 – 20	1	–	–
20 – 30	12	12	19
30 – 40	17	20	18
40 – 50	29	35	16
50 – 60	18	25	18
60 – 70	16	10	18
70 – 80	6	8	21
80 – 90	11	–	–
90 – 100	–	–	–
कुल	110	110	110
परास	80	60	60

यह सारणी स्थितियों की समान संख्या, किन्तु भिन्न चर वाले तीन वितरणों को दर्शाती है।

वर्ग A से दो सीमांत छात्रों को हटा दिया जाए तो वर्ग A का परास वर्ग B और C के बराबर हो जायेगा।

वर्ग A का महत्तम परास इसके पूरे 110 छात्रों पर नहीं अपितु केवल दो चरम छात्रों पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त वर्ग B और C का परास समान है, परन्तु वर्ग B के छात्रों का समूह वर्ग C की अपेक्षा अधिक केन्द्रीय प्रवृत्ति का है। इस प्रकार परास वर्ग B की एकरूपता या वर्ग C के महत्तम परिक्षेपण को बताने में असफल हो जाता है। इसी कमी के कारण परास का उपयोग परिक्षेपण की माप के रूप में कभी-कभी ही किया जाता है।

परास के विशेष उपयोग

परिक्षेपण के माप की तरह परास की कई कमियों के बावजूद, कुछ निम्नलिखित परिस्थितियां हैं जब यह सर्वाधिक उपयुक्त होता है–

(i) ऐसी स्थितियां, जहां सीमान्तों में कुछ बाधाएं होती हैं, जिसके लिए तैयारी की जानी चाहिए, में वितरण के बारे में कुछ और जानने के बजाए होने वाली अतिचरम स्थितियों को जानना अधिक महत्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए,

एक यात्री जिस क्षेत्र में जा रहा है, वह उसके न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान के बारे में जानना चाहेगा, या एक इंजीनियर किसी वाटर ड्रेन के निर्माण के लिए 24 घंटे के दौरान अधिकतम वृष्टि के बारे में जानना पसंद करेगा।

(ii) प्रत्याभूतियों के मूल्यों के अध्ययन में, परास क्रियाकलाप का एक विशेष क्षेत्र होता है। इसीलिए बुलियन या शेयरों के मूल्य में उतार-चढ़ाव को रेखांकित करने के लिए, किसी समयांतराल के दौरान परिवर्तित मूल्यों का परास ज्ञात एक सामान्य ज्ञान है। यह सूचना, परिचालकों के प्रयोग के अतिरिक्त, बुलियन मार्केट या शेयर मार्केट की स्थिरता का एक पूर्वानुमान देती है।

(iii) सांख्यिकीय गुणवत्ता नियंत्रण में परिसर का प्रयोग विचरण की माप के रूप में होता है। उदाहरण स्वरूप, हम यह निर्धारित करते हैं कि गुणवत्ता में कौन-सा विचरण यादृच्छ कारणों से है, जो नियंत्रण सीमाओं के स्थिर होने हेतु आधार बना है।

अन्तर-चतुर्थक परास

वर्णनात्मक सांख्यिकी में, अन्तर-चतुर्थक परास, जिसे मध्य-प्रसार या मध्यार्द्ध भी कहा जाता है, सांख्यिकीय परिक्षेपण की एक माप है और इसकी गणना तृतीय (Q_3) और प्रथम (Q_1) चतुर्थक के अंतर को निकाल कर की जाती है। किसी अवलोकन चर का अन्तर चतुर्थक परास इसके ऊपरी एवं निचले चतुर्थक का अन्तर होता है। इससे केंद्रीय भाग में आंकड़ों के मान के फैलाव का पता चलता है।

अन्तर चतुर्थक परास (*Inter Quartile Range*) = ऊपरी चतुर्थक – निचला चतुर्थक

या $IQR = Q_3 - Q_1$

IQR चतुर्थकों में विभाजित किसी आंकड़ा-समूह पर आधारित परिवर्तनीयता की माप है। चतुर्थक व्यवस्थित आंकड़ा समूह को चार बराबर भागों में विभाजित करता है। मान जो प्रत्येक भाग को विभाजित करते हैं; प्रथम, द्वितीय और तृतीय चतुर्थक कहलाते हैं और वे क्रमशः Q_1, Q_2 और Q_3 के रूप में व्यक्त किए जाते हैं। जहां,

- Q_1 व्यवस्थित आंकड़ा समूह को प्रथमार्द्ध में 'मध्य' मान है।
- Q_2 आंकड़ा समूह की माध्यिका है।
- Q_3 व्यवस्थित आंकड़ा समूह के द्वितीयार्द्ध में मध्य मान है।

कुल परास के विपरीत, अन्तर चतुर्थक परास को सशक्त समंक माना जाता है, क्योंकि इसका ब्रेकडाउन प्वाइंट 25% का है एवं इस तरह यह प्राय: कुल परास के तौर पर पसंद किया जाता है। *IQR* बॉक्स प्लॉट, प्रायिकता वितरण का सामान्य ग्राफीय, प्रस्तुतीकरण बनाने में प्रयुक्त होता है।

एक संतुलित वितरण अर्द्ध के लिए *IQR* माध्यिका निरपेक्ष विचलन (*Median Absolute Deviation – MAD*) के बराबर होता है। माध्यिका केन्द्रीय प्रवृत्ति की संगत माप है। चित्र एक *IQR* सहित बॉक्स प्लॉट एवं सामान्य जनसंख्या $N(0, 1\sigma^2)$ की प्रायिकता घनत्व फलन को दिखाता है।

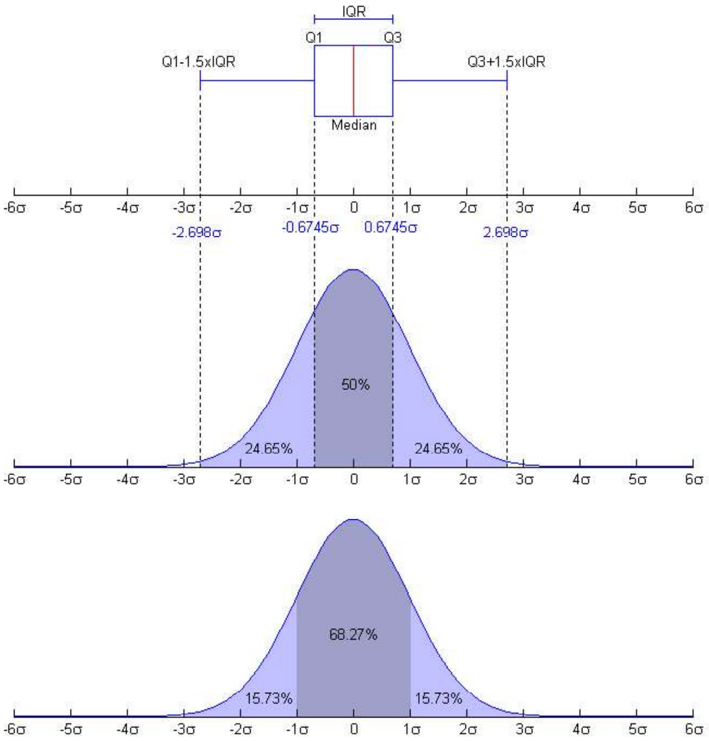

***चित्र** IQR सहित एक बॉक्स प्लॉट एवं सामान्य $(0; 1\sigma^2)$ जनसंख्या का प्रायिकता घनत्व फलन*

उदाहरण– निम्नलिखित सारणी में एक वितरण के आंकड़ें और चतुर्थक दिए गए हैं। *IQR* की गणना करें।

(i)	X(i)	**चतुर्थक**
1	102	
2	104	
3	105	Q_1
4	107	
5	108	
6	109	Q_2 (माध्यिका)
7	110	
8	112	
9	115	Q_3
10	116	
11	118	

हल– सारणी में दिया गया है कि Q_3 115 है और Q_1 105 है। अतः अन्तर चतुर्थक परास है।

$$IQR = Q_3 - Q_1$$

$$= 115 - 105 = 10$$

बारम्बारता वितरण का अन्तर-चतुर्थक परास

बारम्बारता वितरण के अन्तर-चतुर्थक परास की गणना प्रायिकता घनत्व फलन के एकीकरण के आधार पर की जाती है। जिससे संचयी वितरण फलन उत्पन्न होता है। निचली चुतर्थक या Q_1 एक संख्या है जिससे कि *PDF* का समग्र $-\infty$ से Q_1 एवं 0.25 के बराबर होता है, जबकि ऊपरी चतुर्थक या Q_3 एक संख्या है जिससे कि $-\infty$ से समग्र 0.75 के बराबर होता है। *CDF* के अनुसार, चतुर्थकों को निम्नलिखित रूप में वर्णित किया जा सकता है।

$$Q_1 = CDF^{-1}\ (0.25)$$

$$Q_3 = CDF^{-1}\ (0.75)$$

हम यह भी कह सकते हैं कि *IQR* 75वें शतमक एवं 25वें शतमक के बीच की दूरी है। मूलत: *IQR* आंकड़ा के 50% मध्य का परास है। क्योंकि यह आंकड़ा का मध्य 50% प्रयोग करता है। अत: *IQR* चरम मानों या बाह्य प्लॉट में बॉक्स की लम्बाई के भी बराबर होता है।

उदाहरण– दिए गए आंकड़ों से *IQR* की गणना करें।

18, 33, 58, 67, 73, 93, 147

हल– 25वां और 75वां शतमक $0.25 \times (7 + 1)$ और $0.75\ (7 + 1)$ = क्रमश: दूसरा और छठा विश्लेषण हैं।

$$IQR = Q_3 - Q_1$$

$$= 93 - 33 = 60$$

5.4.2 चतुर्थक विचलन

किसी भी श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थकों के आधे को चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation) कहते हैं। चतुर्थक विचलन का दूसरा नाम 'अर्द्ध मध्यांक–चतुर्थक प्रसार' भी है।

चतुर्थक विचलन के गुण

1. इसका समझना व निर्धारण करना सरल है।
2. विचलन के इस माप पर चरम मूल्यों का बहुत कम प्रभाव पड़ता है।
3. जहां श्रेणी के मध्य भाग का ही अध्ययन करना है, वहां इस माप का प्रयोग होता है।

चतुर्थक विचलन के दोष

1. चतुर्थक विचलन, श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित नहीं होता।
2. इसका बीजगणितीय विवेचन संभव नहीं है।
3. निर्देशन– परिवर्तन का इस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।
4. इससे समंकमाला की रचना का ठीक से पता नहीं चलता है।

इसका प्रयोग कब करना चाहिए?

1. जब अंक–वितरण पूर्ण हों।
2. जब प्रमाणिक विचलन की गणना न की जा सके।
3. जब प्रतिदर्श छोटा हो।
4. जब मध्यांक की गणना की गई हो।
5. जब अंक वितरण सामान्य तथा पूर्ण हो।

अव्यवस्थित अंक सामग्री से चतुर्थक विचलन की गणना

अव्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना का सूत्र निम्न है–

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

जबकि

$$Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right) \text{पद}$$

$$Q_3 = \left\{\frac{3(N+1)}{4}\right\} \text{पद}$$

गणना विधि–

(1) दी हुई अव्यवस्थित सामग्री से पहले Q_1 फिर Q_3 की गणना कीजिए। अंत में सूत्र में Q_3 और Q_1 के मान रखकर Q का मान ज्ञात कर लीजिए।

(2) Q_1 और Q_3 की गणना में केवल N का मान ज्ञात होना आवश्यक है।

(3) Q_1 और Q_3 ज्ञात करने से पहले दिये हुए प्राप्तांकों को क्रम में व्यवस्थित कर लीजिए।

उदाहरण : प्राप्तांक 12, 13, 11, 14, 13, 18, 17, 16, 15

हल– क्रम में व्यवस्थित प्राप्तांकः– 11, 12, 13, 13, 14, 15, 16, 17, 18

$N = 9$

Q_1 की गणना :

$$Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right) \text{पद}$$

$$= \left(\frac{9+1}{4}\right) \text{पद}$$

$$= \left(\frac{10}{4}\right) \text{पद}$$

$$= 2.5 \text{ पद}$$

$$= 12.5$$

Q_3 की गणना :

$$Q = \left\{\frac{3(N+1)}{4}\right\} \text{ पद}$$

$$= \left\{\frac{3(9+1)}{4}\right\} \text{ पद}$$

$$= \left(\frac{30}{4}\right) \text{ पद}$$

$$= 7.5 \text{ पद}$$

$$= 16.5$$

Q की गणना :

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

$$= \frac{16.5 - 12.5}{2}$$

$$= \frac{4}{2} = 2$$

व्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना

व्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है–

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

जबकि Q = चतुर्थक विचलन

Q_3 = तृतीय चतुर्थक अथवा वह चतुर्थक, जिसके नीचे 75: आवृत्तियां होती है।

Q_1 = प्रथम चतुर्थक (अर्थात जिसके नीचे 25: आवृत्तियां हो)

Q_3 की गणना करने का सूत्र–

$$Q_3 = L + \left(\frac{3N/4 - F}{f}\right) \times C.I$$

Q_1 की गणना करने का सूत्र–

$$Q_1 = L + \left(\frac{N/4 - F}{f}\right) \times C.I.$$

यहां

L = उस वर्गांतर की निम्नतम शुद्ध सीमा, जिसके नीचे Q_1 पड़ता है या Q_3 पड़ता है।

F = उस वर्गांतर की नीचे की संचित आवृत्ति, जिसमें Q_1 या Q_3 है।

f = उस वर्गांतर की आवृत्ति, जिसमें Q_1 या Q_3 है।

$C.I.$ = वर्गांतर का आकार।

गणना विधि

(1) दिये हुये अंक वितरण को आरोही क्रम में लिखिए, फिर दी हुई आवृत्तियों को संचित आवृत्तियों में परिवर्तित कीजिए।

(2) सर्वप्रथम Q_1 की गणना कीजिए। इसके बाद Q_3 की।

(3) Q_3 तथा Q_1 का मान प्राप्त कर लेने के बाद Q की गणना, दिये हुए सूत्र की सहायता से कीजिए।

उदाहरण : निम्नलिखित व्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना कीजिए।

C.I.	***f***	***F***
120 - 124	2	46
115 - 119	4	44
110 - 114	6	40
105 - 109	8	34
100 - 104	9	26
95 - 99	7	17
90 - 94	5	10
85 - 89	3	5
80 - 84	2	2
	N=46	

हल–

Q_1 की गणना–

$$Q = L + \left(\frac{N/4 - F}{f}\right) \times C.I.$$

यहां, $L = 94.5,\ N/4 = \frac{46}{4} = 11.5, F = 10, f = 7$

सूत्र में, इन मूल्यों को रखने पर

$$Q_1 = 94.5 + \left(\frac{115 - 10}{7}\right) \times 7$$

$$= 94.5 + \frac{1.5 \times 7}{7}$$

$$= 94.5 + 1.5 = 96$$

टिप्पणी

Q_3 की गणना $= Q_3 = L + \left(\frac{3N/4 - F}{f}\right) \times C.I.$

प्रश्न में $L = 109.5$, $3N/4 = 34.5$, $F = 34$, $F = 6$
$C.I. = 5$

सूत्र में मूल्यों को रखने पर,

$$Q_3 = 109.5 + \left\{\frac{34.5 - 34}{6}\right\} \times 5$$

$$= 109.5 + \frac{.5 \times 5}{6}$$

$$=109.5+.416$$

$$=109.08$$

Q की गणना–

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

$$= \frac{109.08 - 96}{2} \quad = \frac{13.08}{2} \quad = 6.54$$

चतुर्थक विचलन गुणक– चतुर्थक विचलन, विचलनशीलता की निरपेक्ष माप है। इसका सापेक्ष माप, चतुर्थक विचलन गुणक कहलाता है। इसे ज्ञात करने के लिए चतुर्थक विचलन के निरपेक्ष माप को दोनों Q_1 तथा Q_3 के माध्य से भाग दे दिया जाता है। सूत्र के रूप में–

$$Q.D = \frac{\frac{Q_3 - Q_1}{2}}{\frac{Q_3 - Q_1}{2}}$$

$$Q.D = \frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}$$

चतुर्थक विचलन के गुण

(i) चतुर्थक विचलन का आकार वितरण के एकरूपता या वितरण में मदों के आकार में भिन्नता के बारे में संकेत देता है। यदि चतुर्थक विचलन छोटा है तो यह वृहद् एकरूपता का संकेत देता है। इस प्रकार, चतुर्थक विचलन के गुणांक का भिन्न वितरणों की एकरूपता या भिन्नता के गुणांक का भिन्न वितरणों की एकरूपता या भिन्नता की तुलना करने में उपयोग किया जा सकता है।

(ii) चतुर्थक विचलन इस अर्थ में परिक्षेपण की माप नहीं होती कि यह माध्य के पास नहीं, बल्कि केवल पैमाने के माप दूरी पर प्रसरण दिखाता है। परिणमस्वरूप, चतुर्थक विचलन को विभाजन का माप कहा जाता है।

(iii) जब वितरण के वर्ग खुले सिरे वाले हों तब इसकी गणना की जा सकती है।

चतुर्थक विचलन की सीमाएं

चतुर्थक विचलन की गणना सरल होती है एवं इसे आसानी से ज्ञात किया जा सकता है इस सच्चाई से उलट यह विचरण के किसी दूसरी जांच को संतुष्ट नहीं करता है।

5.4.3 माध्य/मध्यमान विचलन

एक श्रृंखला के किसी माध्य (समांतर माध्य, माध्यिका या बहुलक) से निकाले गए विचलनों के जोड़े के समांतर माध्य को माध्य विचलन (Mean Deviation) कहा जाता है।

मध्यमान विचलन या माध्य विचलन के दोष

1. चिह्नों का परित्याग कर देने से यह माप गणितीय दृष्टिकोण से अशुद्ध एवं अवैज्ञानिक हो जाती है।
2. इसका बीजगणितीय विवेचन संभव नहीं है।
3. माध्य विचलन अधिक विश्वसनीय नहीं है क्योंकि भूयिष्ठक के अनिश्चित होने के कारण उससे निकालना ही अनुपयुक्त है, जबकि माध्यिका चरम सीमाओं से अधिक प्रभावित हो सकती है।

अव्यवस्थित अंक–सामग्री से मध्यमान विचलन की गणना

1. सर्वप्रथम दी हुई अव्यवस्थित अंक–साम्रगी का मध्यमान (M) ज्ञात कीजिए।
2. इसके बाद प्राप्तांकों का मध्यमान से विचलन ज्ञात कीजिए।
3. e/; eku l sl Hkh fopyu Kkr d j yssd sckn $\Sigma(d)$ का मान ज्ञात कीजिए।
4. निम्न सूत्र में सभी मान रखकर मध्यमान विचलन ज्ञात कीजिए–

$$AD = \frac{\Sigma|d|}{N}$$

d	=	मध्यमान से प्राप्तांकों का विचलन
$\lvert d \rvert$	=	d के दोनों ओर खिंची रेखाओं का तात्पर्य है कि विचलन का योगफल निकालते समय धन तथा ऋण चिह्नों का महत्व नहीं दिया जाता है।
N	=	प्राप्तांकों की संख्या
$\Sigma\lvert d \rvert$	=	मध्यमान से प्राप्तांकों का विचलन

उदाहरण : निम्न अव्यवस्थित अंक सामग्री का मध्यमान विचलन ज्ञात कीजिए–

28, 28, 30, 35, 34, 33, 32, 36

हल– दिए गए प्राप्तांकों को एक पंक्ति में लिखकर मध्यमान निकालिए, फिर मध्यमान से विचलन निम्न प्रकार ज्ञात कीजिए–

टिप्पणी

X(Score)	*X–M* = |*d*|
28	28 – 32 = 4
28	28 – 32 = 4
30	30 – 32 = 2
35	35 – 32 = 3
34	34 – 32 = 2
33	33 – 32 = 1
32	32 – 32 = 0
36	36 – 32 = 4
	Σ|*d*| = 20

यहां + तथा – चिह्नों का विलचन ज्ञात करते समय महत्व नहीं दिखाया है।

मध्यमान की गणना : $M = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{256}{8} = 32$

मध्यमान विचलन की गणना :

$$N = 8, \sum|d| = 20$$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$AD = \frac{\sum|d|}{N} = \frac{20}{8} = 2.5$$

उदाहरण : कक्षा के परीक्षण में 11 शिक्षार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों के निम्नांकित आंकड़ों से माध्य विचलन की गणना कीजिए:–

14, 15, 23, 20, 10, 30, 19, 18, 16, 25, 12.

हल– माध्यिका = The size of the $\frac{11+1}{2}$ th item

= size of 6th item 18

Serial No.	*Marks*	| *X – Median* | | *d* |
1	10	8
2	12	6
3	14	4
4	15	3
5	16	2
6	18	0
7	19	1
8	20	2
9	23	5
10	25	7
11	30	12
		$\sum \|d\| = 50$

टिप्पणी

माध्यिका से माध्य विचलन $= \frac{\sum |d|}{N}$

$$= \frac{50}{11} = 4.5 \text{ अंक।}$$

समूहबद्ध आंकड़ों के लिए निम्न द्वारा माध्य विचलन को देखना सरल हैः–

माध्य विचलन (M.D.) $= \frac{\sum f |d|}{\sum f}$ ...(4)

व्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान विचलन की गणना

1. सर्वप्रथम व्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान ज्ञात किया जाता है।
2. मध्यबिंदु का मध्यमान से विचलन ज्ञात किया जाता है।
3. मध्यमान से मध्यबिंदुओं का विचलन ज्ञात करने के पश्चात् इन विचलनों को संबंधित वर्गांतरों की आवृत्तियों से गुणा कीजिए, अर्थात (fd)।
5. अंत में Σfd का मान ज्ञात करके सूत्र में मूल्य को रखकर मध्यमान विचलन (AD) ज्ञात कर लेते हैं।

सूत्र–

$$AD = \frac{\sum |fd'|}{N}$$

यहां

d' = मध्यबिंदु के मध्यमान से विचलन

$\Sigma|d|$ = मध्यमान से मध्य बिंदुओं के विचलनों का योग जब संबंधित आवृत्तियों से गुणा किया गया है तथा + और – चिह्नों का ध्यान न रखा गया हो।

N = आवृत्तियों का कुल योग।

F = आवृत्तियां।

उदाहरण : अग्रलिखित व्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान विचलन (AD) ज्ञात कीजिए।

C.I.	*f*	*X* *Mid-Point*	*fX*	*|d'|* *(X–M)*	*|fd'|*
60 – 64	1	62	62	19.13	19.13
55 – 59	2	57	104	14.13	28.26
50 – 54	3	52	156	9.13	27.39
45 – 49	4	47	188	4.13	16.52
40 – 44	6	32	252	.87	5.22
35 – 39	3	37	111	5.87	17.61
30 – 34	2	32	64	10.87	21.74
25 – 29	1	27	27	15.87	15.87
20 – 24	1	22	22	20.87	20.87
	$N = 23$		$\Sigma fX = 986$		$\Sigma\|fd'\| = 172.61$

हल–

सर्वप्रथम मध्यमान ज्ञात कीजिए–

$$M = \frac{\sum fX}{N} = \frac{986}{23} = 42.869 = 42.87$$

मध्यमान विचलन की गणना

$$\sum |fd'| = 172.61, N = 23$$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$AD = \frac{\sum |fd'|}{N} = \frac{172.61}{23} = 7.50$$

यह अंक सामग्री छोटी विधि द्वारा ज्ञात की गयी है। मध्यमान विचलन के लिए लघु विधि या कल्पित मान का प्रयोग भी किया जाता है।

उदाहरण : निम्नलिखित तालिका से संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान विचलन ज्ञात कीजिए–

C.I.	*f*	*d*	*fd*	*X* Mid-Point	|d'| *(X–M)*	|*fd'*|
60 – 64	1	–4	+4	62	20	20
55 – 59	3	–3	+9	57	15	45
50 – 54	3	–2	+6	52	10	30
45 – 49	4	–1	+4	47	5	20
40 – 44	7	0	0	42	0	0
35 – 39	3	–1	–3	37	5	15
30 – 34	3	–2	–6	32	10	30
25 – 29	2	–3	–6	27	15	30
20 – 24	2	–4	–8	22	20	40
	N = 28		Σ*fd* = 0			Σ|*fd'*| = 230

हल–

मध्यमान की गणना–

$$M = A + \left(\frac{\sum fd}{N}\right) \times C.I.$$

$$= 42 + \frac{0}{28} \times 5 = 42$$

मध्यमान विचलन की गणना–

$$AD = \frac{\sum |fd'|}{N} = \frac{230}{28} = 8.21$$

जहां समूहबद्ध पृथक् (डिस्क्रीट) आंकड़ों के लिए $|d| = |X - \text{median}|$ एवं समूहबद्ध सतत आंकड़ों के लिए $|d| = M - \text{median}|$ समूह विशेष के मध्य–मान के रूप में M है। इस सूत्र के प्रयोग को निम्न उदाहरणों द्वारा दर्शाया जा रहा है–

उदाहरण : निम्न आंकड़ों से माध्य विचलन की गणना करें–

वस्तु का आकार	6	7	8	9	10	11	12
आवृत्ति	3	6	9	13	8	5	4

हल–

Size	*Frequency* *f*	*Cumulative Frequency*	*Deviations from Median (9)* $\|d\|$	$f\|d\|$
6	3	3	3	9
7	6	9	2	12
8	9	18	1	9
9	13	31	0	0
10	8	39	1	8
11	5	44	2	10
12	4	48	3	12
	48			60

माध्यिका= $\frac{48+1}{2}$ का आकार = 24.5th वस्तु, जो कि 9 है।

इसीलिए विचलनों की गणना 9 अर्थात $|d| = |X - 9|$ से की जाती है।

माध्य विचलन= $\frac{\sum f|d|}{\sum f} = \frac{60}{48} = 1.25$

उदाहरण : निम्न आंकड़े से माध्य विचलन की गणना करें–

X	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80
f	18	16	15	12	10	5	2	2

हल

यह सतत चर वाला एक आवृत्ति वितरण है। इस प्रकार विचलनों की गणना मध्यमानों से की जाती है।

X	Mid-value	f	Less than *c.f.*	Deviation from median $\|d\|$	$f\|d\|$
0–10	5	18	18	19	342
10–20	15	16	34	9	144
20–30	25	15	49	1	15
30–40	35	12	61	11	132
40–50	45	10	71	21	210

50–60	55	5	76	31	155
60–70	65	2	78	41	82
70–80	75	2	80	51	102
		80			1182

$$\text{Median} = \text{The size of } \frac{80}{2} \text{ th item}$$

$$= 20 + \frac{6}{15} \times 10 = 24$$

and then, Mean Deviation $= \frac{\Sigma f|d|}{\Sigma f} = \frac{1182}{80} = 14.775.$

माध्य विचलन के गुण और अवगुण

माध्य विचलन में निम्नलिखित गुण व दोष पाए जाते हैं:-

गुण

1. इसे आसानी से समझा जा सकता है।
2. मानक विचलन की तुलना में इसकी गणना सरल है।
3. मानक विचलन की तुलना में यह सीमांत मूल्यों से कम प्रभावित होता है।
4. यह वितरण में सारे मदों पर आधारित होता है इसलिए यह परास अथवा चतुर्थक विचलन से अच्छा होता है।

अवगुण

1. इसमें उन बीजगणितीय गुणों की कमी होती है जो इसकी गणना करने और दूसरी मापों के साथ इसे जोड़ने की सुविधा प्रदान करते हैं।
2. इस कमी के कारण दूसरे बीजगणितीय कार्यों में इसका उपयोग नहीं होता।

माध्य विचलन का गुणांक

गुणांक या सापेक्ष परिक्षेपण दर्ज माध्य विचलनों को विभाजित कर ज्ञात किया जाता है।

$$\text{माध्य विचलन का गुणांक} = \frac{\text{माध्य विचलन}}{\text{माध्य}}$$

(जब विचलन की गणना माध्य से की जाती है)

$$= \frac{\text{माध्य विचलन}}{\text{माध्यिका}}$$

(जब विचलन माध्यिका से ज्ञात किया जाए)

उपरोक्त सूत्र का निम्न उदाहरण में उपयोग करने पर

$$\text{माध्य विचलन का गुणांक} = \frac{14.775}{24} = 0.616$$

5.4.4 मानक विचलन

किसी श्रेणी के समांतर माध्य के निकाले गए उसके विभिन्न मद–मूल्यों के विचलनों के वर्गों का माध्य वर्गमूल, उस श्रेणी का मानक विचलन या प्रमाणिक विचलन (Standard Deviation) कहलाता है। इसे द्वितीय घात का विचलन या मूल मध्यक वर्ग विचलन भी कहते हैं।

प्रमाणिक विचलन के गुण

(1) अंक वितरण के प्रत्येक अंक से प्रमाणिक विचलन प्रभावित होता है।

(2) प्रमाणिक विचलन, सामान्य संभावना वक्र का मुख्य आधार है।

(3) विचलनशीलता की यह सर्वशुद्ध और विश्वसनीय माप है।

(4) अंक–वितरण के मध्यमान की विश्वसनीयता का अध्ययन प्रमाणिक विचलन के आधार पर किया जाता है।

प्रमाणिक विचलन का उपयोग कब करना चाहिए?

1. जब सर्वाधिक शुद्ध और विश्वसनीय विचलन माप की आवश्यकता हो।
2. जब केंद्रीय मापकों में मध्यमान की गणना की गई हो।
3. जब दो अंक–वितरणों का तुलनात्मक अध्ययन करना हो।
4. जब सह–संबंध गुणांक तथा मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जांच करनी होती है, तब S.D. (प्रमाणिक विचलन) की गणना आवश्यक होती है।
5. प्रमाणिक विचलन की गणना की आवश्यकता तब भी पड़ती है, जब मूल प्राप्तांकों को प्रमाणिक प्राप्तांकों में बदलना होता है।
6. विचलन गुणांकों और प्रमाणिक त्रुटि के अध्ययन में इसकी आवश्यकता होती है।
7. जब सीमांत प्राप्तांकों को महत्व देना होता है, तब भी S.D. की गणना की जाती है।

अव्यवस्थित अंक–सामग्री का प्रमाणिक विचलन

अव्यवस्थित अंक सामग्री से प्रमाणिक विचलन की गणना के सूत्र निम्नलिखित हैं। इन सभी सूत्रों से S.D. का समान मान प्राप्त होता है–

प्रथम सूत्र – $S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N}}$

जबकि, d = प्राप्तांकों का मध्यमान से विचलन

Σd^2 = मध्यमान से लिए गए विचलनों के वर्गों का योग

N = प्राप्तांकों की संख्या

द्वितीय सूत्र– $S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N} - C^2}$

तृतीय सूत्र– $S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N} - (M)^2}$

यहां M = मध्यमान, C = मध्यमान– कल्पित मध्यमान

गणना विधि

अव्यवस्थित अंक सामग्री से प्रमाणिक विचलन की गणना निम्न विधि से की जाती है–

1. सर्वप्रथम दी हुई अंक सामग्री क्रमबद्ध कीजिए फिर सभी अंकों का ΣX और N का मूल ज्ञात करके मध्यमान की गणना कीजिए।
2. प्राप्तांकों का मध्यमान से विचलन, $(X–M)$ करके d प्राप्त कर लिया जाता है। यहां + और – चिह्नों को लगाने की आवश्यकता नहीं है।
3. प्रत्येक विचलन का वर्ग करके d^2 प्राप्त करते हैं।
4. अंतिम चरण में Σd^2 और N का मान SD मान में रखते हैं और गणना करके SD का मान प्राप्त कर लिया जाता है।

उदाहरण : नीचे दी हुई अव्यवस्थित अंक–सामग्री से प्रमाणिक विचलन की गणना कीजिए।

5, 7, 8, 8, 9, 10, 11, 12

हल– सर्वप्रथम मध्यमान निकालिए–

$$M = \frac{\sum X}{N} = \frac{72}{8} = 9$$

प्राप्तांक	$X–M=d$	d^2
5	5 – 9 = 4	16
7	7 – 9 = –2	4
8	8 – 9 = –1	1
9	9 – 9 = –0	0
10	10 – 9 = 1	1
10	10 – 9 = 1	1
11	11 – 9 = 2	4
12	12 – 9 = 3	9
		$\Sigma d^2 = 36$

अतः $\Sigma d^2 = 36, \quad N=8$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N}} = \sqrt{\frac{36}{8}}$$

$$= \sqrt{4.5}$$

$$= 2.12$$

उदाहरण : निम्न प्राप्तांकों का प्रमाणिक विचलन, द्वितीय सूत्र द्वारा ज्ञात कीजिए–

7, 8, 8, 10, 11, 13, 14, 15

हल– सर्वप्रथम मध्यमान की गणना कीजिए।

$$M = \frac{\sum x}{N} = \frac{86}{8} = 10.75$$

कल्पित माध्य = 11

C = मध्यमान– कल्पित माध्य

= 10.75 − 11.0 = −0.25

प्राप्तांक	$X–Am=d$	d^2
7	7 – 11 = –4	16
8	8 – 11 = –3	9
8	8 – 11 = –3	9
10	10 – 11 = –1	1
11	11 – 11 = 0	0
13	13 – 11 = 2	4
14	14 – 11 = 3	9
15	15 – 11 =4	16
N=8		$\Sigma X = 64$

$$\Sigma d^2 = 64, \quad C^2 = (-0.25)^2, N=8$$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$S.D. = \sqrt{\frac{64}{8} - (-0.25)^2}$$

$$= \sqrt{8 - 0.06} = \sqrt{7.94} = 2.817$$

व्यवस्थित अंक सामग्री से प्रमाणिक विचलन

व्यवस्थित अंक–सामग्री के S.D. की गणना के निम्न तीन सूत्र प्रचलित हैं–

$$S.D. = i\sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2}$$ प्रथम सूत्र

$$S.D. = {}^{i/N}\sqrt{N(\sum fd^2) - (\sum fd)^2}$$ द्वितीय सूत्र

जबकि, $S.D.$ = प्रमाणिक विचलन

i = वर्गांतर का आकार

Σfd = आवृत्तियों एवं विचलनों का योग

Σfd^2 = विचलनों के वर्ग एवं आवृत्तियों के गुणनफल का योग

N = प्राप्तांकों की संख्या

दीर्घ विधि द्वारा *S.D.* की गणना का सूत्र,

$$S.D. = \frac{\sum fd^2}{N}$$

जबकि d = मध्य बिंदुओं का मध्यमान से विचलन

Σfd^2 = विचलनों के वर्ग एवं आवृत्तियों के गुणनफल का योग

N = प्राप्तांकों की संख्या

संक्षिप्त विधि द्वारा *S.D.* की गणना

गणना विधि

व्यवस्थित अंक सामग्री से प्रमाणिक विचलन की गणना निम्न प्रकार से की जाती हैः–

(1) इस विधि द्वारा *S.D.* की गणना करते समय कुछ गणनाएं वैसे ही करनी पड़ती हैं; जैसे मध्यमान में करनी पड़ती हैं।

(2) सर्वप्रथम जिस वर्गांतर की आवृत्ति सर्वाधिक होती है या जो वर्गांतर मध्य में होता है, उसमें कल्पित माध्य (AM) मानकर शून्य लगा देते हैं तथा d और fd की गणना करते हैं। अंत में fd^2 की गणना की जाती है।

(3) गणना के तीसरे चरण में Σfd, Σfd^2 तथा N और *C.I.* के मान प्राप्त कर लेते हैं।

(4) गणना के अंतिम चरण में S.D. के सूत्र में सभी मानों को रखकर प्रमाणिक विचलन ज्ञात कर लिया जाता है।

उदाहरण : निम्नलिखित व्यवस्थित अंक–सामग्री से संक्षिप्त विधि द्वारा S.D. की गणना कीजिए।

C.I.	*f*	*d*	*fd*	fd^2
26 – 27	1	+4	+4	16
24 – 25	2	+3	+6	18
22 – 23	3	+2	+6	12
20 – 21	5	+1	+5	5
18 – 19	8	0	0 (21)	0
16 – 17	4	–1	–4	4
14 – 15	3	–2	–6	12
12 – 13	2	–3	–6	18
10 – 11	1	–4	–4 (20)	16
	N=29		$\Sigma fd = 1$	$\Sigma fd^2 = 101$

हल– यहां $\Sigma fd = 1$, $Sfd^2 = 101$, $N = 29$ तथा $i = 2$

सूत्र में मूल्यों को रखने पर,

(1) **प्रथम सूत्र**– $i\sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2}$

$$= i\sqrt{\frac{101}{29} - \left(\frac{1}{29}\right)^2}$$

$$= 2\sqrt{3.482 - 0.001}$$

$$2 \times 1.865 = 3.73$$

(2) **द्वितीय सूत्र–**

$$S.D. = \frac{i}{N}\sqrt{N(\sum fd^2) - \left(\sum fd\right)^2}$$

$$= \frac{2}{29}\sqrt{29 \times 101 - (1)^2} = \frac{2}{29}\sqrt{2928}$$

$$\frac{2}{29} \times 54.11$$

$$= 3.73$$

उदाहरण : दीर्घ विधि द्वारा प्रमाणिक विचलन की गणना कीजिए।

C.I.	*f*	*X* (*Midpoint*)	*fX*	*X–M* (*d*)	*fd*	*fd*²
34 – 36	1	35	35	11.89	11.89	23.78
31 – 33	2	32	64	8.89	17.78	26.67
28 – 30	3	29	87	5.89	17.67	23.56
25 – 27	5	26	130	2.89	14.45	17.34
22 – 24	6	23	138	0.11	00.66	00.77
19 – 21	4	20	80	3.11	12.44	15.55
16 – 18	3	17	51	6.11	18.33	24.44
13 – 15	2	14	28	9.11	18.22	27.33
10 – 12	1	11	11	12.11	12.11	24.22
	N=27		Σ*fX*=*624*			Σ*fd*²=183.66

हल– मध्यमान की गणना,

$$M = \frac{\sum fX}{N} = \frac{624}{27} = 23.11$$

दीर्घ विधि से S.D. की गणना–

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N}}$$

$$= \sqrt{6.802} = 2.608$$

5.4.5 विचलन गुणांक

विचलन गुणांक, प्रमाणिक विचलन और संबंधित मध्यमान का अनुपात है। बहुधा इस अनुपात को 100 से गुणा कर दिया जाता है।

विचलन गुणांक का प्रयोग

जब दो या दो से अधिक अंक वितरणों के *N, M,* और S.D. तो ज्ञात हों साथ–साथ *M* और S.D. की मान इकाइयां भिन्न–भिन्न हों (जैसे एक वितरण की मापन इकाई सेंटीमीटर में हो तथा दूसरे वितरण की इकाई ग्राम में हो) और इन अंक वितरणों का तुलनात्मक अध्ययन करना हो तो इस अवस्था में विचलन गुणांक की गणना करके इस गुणांक के आधार पर दोनों समूहों की तुलना की जा सकती है।

इसकी गणना का सूत्र निम्नलिखित है–

$$C.V. = \frac{\sigma \times 100}{M}$$

यहां σ = प्रमाणिक विचलन, M = मध्यमान

उदाहरण : एक कक्षा के विद्यार्थियों के शिक्षाशास्त्र में औसत अंक 70 तथा S.D. 8.4 है तथा इसी कक्षा के विद्यार्थियों के इतिहास में औसत प्राप्तांक 54 है तथा S.D. 6.8 है। C.V. की गणना करके परिणामों की विवेचना कीजिए।

हल– शिक्षाशास्त्र के C.V. की गणना।

$$C.V. = \frac{\sigma}{M} \times 100 = \frac{8.4}{70} \times 100 = 12$$

अतः इतिहास के प्राप्तांकों में विचलनशीलता, मनोविज्ञान के प्राप्तांकों की अपेक्षा अधिक है।

उदाहरण : निम्नलिखित श्रृंखला (अकेली श्रृंखला) में परास और उसके गुणांक का पता लगाएं–

96, 180, 98, 75, 270, 80, 102, 100, 94.

हल– यहां, L = आइटम का सबसे बड़ा मूल्य = 270

और S = आइटम का सबसे छोटा मूल्य = 75

इसलिए, परास (R) = (L–S) = (270–75) = 195

और परास का गुणांक = $\frac{(L-S)}{(L+S)} = \frac{(270-75)}{(270+75)} = \frac{195}{345}$ = 0.56

उदाहरण : निम्नलिखित (अलग) श्रृंखला में परास और उसके गुणांक का पता लगाएं–

मासिक औसत (in ₹)	100	150	200	250	300	500
मजदूरों की संख्या	30	20	15	10	4	1

हल– यहां, L = आइटम का सबसे बड़ा मूल्य = 500

और S = आइटम का सबसे छोटा मूल्य = 100

इसलिए, परास (R) = (L–S) = (500–100) = 400

और परास का गुणांक = $\frac{(L-S)}{(L+S)} = \frac{(500-100)}{(500+100)}$ = 0.66

उदाहरण : निम्नलिखित (लगातार) शृंखला में परास और उसके गुणांक का पता लगाएं–

आकार	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60
आवृत्ति	8	15	20	5	3

हल– यहां, L = आइटम का सबसे बड़ा मूल्य = 60

और S = आइटम का सबसे छोटा मूल्य = 10

इसलिए, परास (R) = (L–S) = (60– 10) = 50

और परास का गुणांक $= \frac{(L-S)}{(L+S)} = \frac{(60-10)}{(60+10)} = 0.714$

उदाहरण : निम्न डाटा से चतुर्थक विचलन (या अर्द्ध–अंतःचतुर्थक परास) और उसके गुणांक का पता लगाएं–

आकार	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
आवृत्ति	3	2	5	7	9	5	8	10	2	1

हल–

आकार	*आवृत्ति*	*संचित आवृत्ति*
1	3	3
2	2	5
3	5	10
4	7	17
5	9	26
6	5	31
7	8	39
8	10	49
9	2	51
10	1	52
		$N = \Sigma f = 52$

अब, निचला चतुर्थक

$Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right)$, वें आइटम का आकार

$= \left(\frac{52+1}{4}\right)$, वें आइटम का आकार या $13\frac{1}{4}$, वां आइटम

= 13वां आइटम + $\frac{1}{4}$, (13वें और 14वें आइटम के बीच अंतर)

$= 4+\frac{1}{4}(4-4)$, क्योंकि $T_{13} = T_{14} = 4$

और ऊपरी चतुर्थक,

$Q_3 = \frac{3(N+1)}{4}$, वें आइटम का आकार

$= \frac{3}{4}$ (52 + 1) वें आइटम का आकार या $39\frac{3}{4}$ वां आइटम

= 39वां आइटम + $\frac{3}{4}$, (39वें और 40वें आइटम के बीच अंतर)

टिप्पणी

$$= \left[7 + \frac{3}{4}(8-7)\right] = 7.75$$

इसलिए, अपेक्षित चतुर्थक विचलन = ½ $(Q_3 - Q_1)$ = ½ (7.75 – 4)

= 1.725

और चतुर्थक विचलन का गुणांक,

$$= \left(\frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}\right) = \left(\frac{7.75-4}{7.75+4}\right) = 0.32$$

उदाहरण : निम्न लगातार श्रृंखला से चतुर्थक विचलन और उसके गुणांक का पता लगाएं–

वजन (पौंड)	*व्यक्तियों की संख्या*	*वजन (पौंड)*	*व्यक्तियों की संख्या*
70–80	12	110–120	50
80–90	18	120–130	45
90–100	35	130–140	20
100–110	42	140–150	8

हल– यहां, हमारे पास है

वजन (पौंड)	*आवृत्ति (व्यक्तियों की संख्या)*	*संचित आवृत्ति* (*C.F*)
70 – 80	12	12
80 – 90	18	30
90 – 100	35	65
100 – 110	42	107
110 – 120	50	157
120 – 130	45	202
130 – 140	20	222
140 – 150	8	230
कुल	$N = \Sigma f = 230$	

यहां $\frac{N}{4} = \frac{1}{4}(230) = 57.5$

∴ Q_1 = 57.5वें or 58वें आइटम जो 90.100 समूह में निहित हैं।

$$\therefore \quad Q_1 = \left\{L + \left(\frac{\frac{N}{4} - c.f}{f}\right) \times i\right\} = \left\{90 + \left(\frac{\frac{230}{4} - 30}{35}\right) \times 10\right\} = 97.85$$

इसी तरह,

$$\frac{3}{4}N = \frac{3}{4}(230) = 172.5$$

∴ Q_3 = 172.5वें or 173वें आइटम, जो 120.30 समूह में निहित हैं।

$$\therefore\ Q_3 = \left\{L + \left(\frac{\frac{3N}{4} - c.f}{f}\right) \times i\right\} = \left\{120 + \left(\frac{\frac{3}{4}(230) - 157}{45}\right) \times 10\right\} = 123.22$$

इसलिए, चतुर्थक विचलन $Q = ½\ (Q_3 - Q_1)$

= ½ (123.22 – 97.85) = 12.685

और, चतुर्थक विचलन का गुणांक,

$$= \left(\frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}\right) = \left(\frac{123.22 - 97.85}{123.22 + 97.85}\right) = 0.114$$

उदाहरण : निम्न डेटा निकटतम ग्राम (द्रव्यमान की एक मीट्रिक इकाई) से 20 अंडों के एक नमूने का घन (ग्राम में) देता है–

46, 51, 48, 62, 54, 51, 58, 60, 71, 75, 47, 73, 62, 65, 53, 57, 65, 72, 49, 51

इस नमूने के घन के समांतर माध्य से माध्य विचलन की गणना करें।

हल– यहां, N = आइटम की संख्या = 20

समांतर माध्य,

$$\bar{X} = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{(46 + 51 + 48 + ... + 49 + 51)}{20}$$

$$= \frac{1170}{20}$$ = 58.5 ग्राम = M

तालिकाबद्ध रूप में लिखकर, हमारे पास हैं–

X	$X - M$	$\lvert X - M\rvert$
46	– 12.5	12.5
51	– 7.5	7.5
48	– 10.5	10.5
62	+ 3.5	3.5
54	– 4.5	4.5
51	– 7.5	7.5
58	– 0.5	0.5
60	+ 1.5	1.5
71	+ 12.5	12.5
75	+ 16.5	16.5
47	– 11.5	11.5
73	+ 14.5	14.5
62	+ 3.5	3.5
65	+ 6.5	6.5
53	– 5.5	5.5
57	– 1.5	1.5
65	+ 6.5	6.5
72	+ 13.5	13.5
49	– 9.5	9.5
51	– 7.5	7.5
कुल		$\Sigma\lvert X - M\rvert = 157.0$

टिप्पणी

अपेक्षित माध्य विचलन $= \frac{\Sigma| X-M|}{N}$

$= \frac{157.0}{20}$ ग्राम = 7.85 ग्राम

उदाहरण : पांच मजदूरों की मासिक आय (₹ के हजार में) को 30, 40, 45, 50, 55 के रूप में दिया जाता है। मीडियन से विचलन का पता लगाएं।

हल– N = आइटम की संख्या = 5

आय, पहले से आरोही क्रम में मौजूद थी।

मीडियन = $\left(\frac{N+1}{2}\right)$ वें आइटम का आकार

= तीसरे आइटम का आकार = ₹ 45 = M

तालिकाबद्ध रूप में लिखकर, हमारे पास है–

X	$(X - M) = (X - 45)$	$\|X - M\|$
30	– 15	15
40	– 5	5
45	0	0
50	+ 5	5
55	+ 10	10
कुल		$\Sigma\|X - M\| = 35$

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \frac{\Sigma| X-M|}{N} = \frac{35}{5} = 7$

उदाहरण : छात्रों के एक विशिष्ट समूह की गर्दन परिधि का विवरण देते हुए निम्न डेटा के लिए माध्य से माध्य विचलन की गणना करें।

मध्य–मूल्य	30	31.5	33	34.5	36	37.5	39	40.5
छात्रों की संख्या	4	19	30	63	66	29	18	1

हल– तालिकाबद्ध रूप में लिखकर, हमारे पास है–

मध्य–मूल्य (X)	*छात्रों की संख्या* (f)	$d = (X - A) = (X - 36)$	$fd = f(X - A)$
30	4	– 6.0	– 24.0
31.5	19	– 4.5	– 85.5
33	30	– 3.0	– 90.0
34.5	63	– 1.5	– 94.5
36	66	0	0.0
37.5	29	+ 1.5	43.5
39	18	+ 3.0	54.0
40.5	1	+ 4.5	4.5
कुल	$\Sigma f = N = 230$		$\Sigma fd = -192$

($A = 36$ *मानते हुए*)

समांतर माध्य $= \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)\right\}$

$= \left\{36 + \left(\frac{-192}{230}\right)\right\}$ = 35 सेमी = M (कहिए)

अब, माध्य विचलन के लिए गणना निम्न तालिका में दिखाई जा रही है–

x	f	$\lvert X - M\rvert = \lvert X - 35\rvert$	$f.\lvert X - M\rvert$
30	4	5	20
31.5	19	3.5	66.5
33	30	2	60
34.5	63	0.5	31.5
36	66	1	66
37.5	29	2.5	72.5
39	18	4	72
40.5	1	5.5	5.5
	$N = 230$ (= Σf)		394 (= $\Sigma f\lvert x - M\rvert$)

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \frac{\Sigma f \lvert X - M\rvert}{N} = \frac{394}{230} = 1.77$

उदाहरण : निम्नलिखित शृंखला की माध्यिका से माध्य विचलन की गणना करें–

आकार	4	6	8	10	12	14	16
आवृत्ति	2	4	5	3	2	1	4

हल– $N = \Sigma f = 21$

माध्य, $M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वें आइटम का आकार = 8

आकार (X)	आवृत्ति (f)	संचित आवृत्ति	$\lvert X - M\rvert = \lvert X - 8\rvert$	$f.\lvert X - M\rvert$
4	2	2	4	8
6	4	6	2	8
8	5	11	0	0
10	3	14	2	6
12	2	16	4	8
14	1	17	6	6
16	4	21	8	32
	$N = \Sigma f = 21$			$\Sigma f \lvert X - M\rvert = 68$

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \frac{\Sigma f \lvert X - M\rvert}{N}$

$= \frac{68}{21} = 3.24$

उदाहरण : निम्नलिखित तालिका के लिए माध्य से माध्य विचलन की गणना करें–

अंक	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50
छात्रों की संख्या	5	8	15	16	6

हल– मान लीजिए $A = 25$ (माना गया माध्य)

श्रेणी	आवृत्ति (*f*)	मध्य–मान (*X*)	$d = \left(\frac{X-A}{i}\right)$ $\left(\frac{X-25}{10}\right)$	*fd*	$\|X–M\|$ $=\|X–27\|$	$f.\|X–M\|$
0 – 10	5	5	– 2	– 10	22	110
10 – 20	8	15	– 1	– 8	12	96
20 – 30	15	25	0	0	2	30
30 – 40	16	35	1	16	8	128
40 – 50	6	45	2	12	18	108
	$N = \Sigma f$ = 50			Σfd = 10		$\Sigma f\|X – M\|$ = 472

$$\text{समांतर माध्य } M = \left\{A + \left\{\frac{\Sigma fd}{N}\right\} \times i\right\}$$

$$= \left\{25 + \left\{\frac{10}{50}\right\} \times 10\right\}$$

$$\therefore \text{ अपेक्षित माध्य विचलन} = \frac{\Sigma f\,|X - M|}{N}$$

$$= \frac{472}{50} = 9.44$$

और, माध्य विचलन का गुणांक

$$= \frac{\text{माध्य विचलन}}{\text{माध्यिका}}$$

$$= \frac{9.44}{27} = 0.35$$

उदाहरण : निम्नलिखित तालिका के माध्य से माध्य विचलन का पता लगाएं–

नीचे से उम्र	10	20	30	40	50	60	70	80
व्यक्तियों की संख्या	15	30	53	75	100	110	115	125

हल– दिए गए आंकड़ों को तालिकाबद्ध रूप में लिखें, हमारे पास है–

श्रेणी	0 – 10	10 – 20	20 – 30	30 – 40	40 – 50	50 – 60	60 – 70	70 – 80
संचित आवृत्ति	15	30	53	75	100	110	115	125
आवृत्ति	15	15 (30 – 15)	23 (53 – 30)	22 (75 – 53)	25 (100 – 75)	10 (110 – 100)	5 (115 – 110)	10 (125 – 115)

गणना निम्न तालिका में दिखाई जा रही है–

टिप्पणी

श्रेणी	आवृत्ति (f)	माध्य–मूल्य (X)	$d = \left(\frac{X-A}{i}\right) = \left(\frac{X-45}{10}\right)$	fd	$\|X-M\|$ $=\|X-35.16\|$	$f\|X-M\|$
0 – 10	15	5	– 4	– 60	+ 30.16	452.40
10 – 20	15	15	– 3	– 45	+ 20.16	302.40
20 – 30	23	25	– 2	– 46	+ 10.16	233.68
30 – 40	22	35	– 1	– 22	+ 0.16	3.52
40 – 50	25	45	0	0	+ 9.84	246.00
50 – 60	10	55	+ 1	+ 10	+ 19.84	190.84
60 – 70	5	65	+ 2	+ 10	+ 29.84	149.20
70 – 80	10	75	+ 3	+ 30	+ 39.84	398.40
कुल	$N = \Sigma f = 125$			$\Sigma fd =$ $= -123$		$\Sigma f\|X-M\| =$ $= 1976.44$

मान लीजिए, माना गया समांतर माध्य $A = 45$

समांतर (असली) माध्य,

$$M = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{n}\right) \times i\right\}$$

$$= \left\{45 + \left(\frac{-123}{125}\right) \times 10\right\} = 35.16$$

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \frac{\Sigma f|X-M|}{N} = \frac{1976.44}{125} = 15.8$

उदाहरण : चार छात्रों A, B, C, D द्वारा प्राप्त 5, 7, 9, 11 अंकों से मानक विचलन और उसके गुणांक की गणना करें।

हल–

छात्र का नाम	अंक (X)	$(X-\bar{X})$ $= (X-8)$	$(X-\bar{X})^2$ $= (X-8)^2$
A	5	– 3	9
B	7	– 1	1
C	9	+ 1	1
D	11	+ 3	9
$N = 4$	$\Sigma X = 32$		$\Sigma(X-\bar{X})^2 = 20$

समांतर माध्य, $\bar{X} = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{32}{4} = 8$

मानक विचलन, $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma(X-\bar{X})^2}{N}} = \sqrt{\frac{20}{4}} = \sqrt{5} = 2.23$

और, मानक विचलन का गुणांक,

$$= \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right) = \frac{2.23}{8} = 0.28$$

उदाहरण : निम्नलिखित श्रृंखला के लिए मानक विचलन की गणना करें–

X	0	10	20	30	40	50	60	70	80
f	150	140	100	80	80	70	30	14	0

हल– यहां, हमारे पास हैं–

X	f	fX	$(X-\bar{X})$ $= (X-23)$	$(X-\bar{X})^2$ $= (X-23)^2$	$f(X-\bar{X})^2$ $f(X-23)^2$
0	150	0	– 23	529	79350
10	140	1400	– 13	169	23660
20	100	2000	– 3	9	900
30	80	2400	7	49	3920
40	80	3200	17	289	23120
50	70	3500	27	729	51030
60	30	1800	37	1369	41070
70	14	980	47	2209	30926
80	0	0	57	3249	0
	$N = \Sigma f = 664$	$\Sigma fX = 15,280$			$\Sigma f(X-\bar{X})^2 = 253976$

यहां, $\bar{X} = \frac{\Sigma fX}{N}$

$$= \left(\frac{15280}{664}\right) \approx 23$$

$$\therefore \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f(X-\bar{X})^2}{N}}$$

$$= \sqrt{\frac{253976}{664}} = 19.557$$

उदाहरण : निम्नलिखित के मानक विचलन की गणना करें–

श्रेणी	5–10	10–15	15–20	20–25	25–30	30–35	35–40	40–45
आवृत्ति	6	5	15	10	5	4	3	2

हल– यहां हमारे पास हैं–

श्रेणी	*मध्य–मान*	*आवृत्ति* (X)	$(X-\bar{X})$ (f)	$(X-\bar{X})^2$	$f(X-\bar{X})^2$
5 – 10	7.5	6	– 13.7	187.69	1126.14
10 – 15	12.5	5	– 8.7	75.69	378.45
15 – 20	17.5	15	– 3.7	13.69	205.35
20 – 25	22.5	10	1.3	1.69	16.90
25 – 30	27.5	5	6.3	39.69	198.45
30 – 35	32.5	4	11.3	127.69	510.76
35 – 40	37.5	3	16.3	265.69	797.07
40 – 45	42.5	2	21.3	453.69	907.38
कुल		$N = \Sigma f = 50$			$\Sigma f(X-\bar{X})^2 = 4140.50$

टिप्पणी

यहां, $\bar{X} = \frac{\Sigma fX}{N} = \left\{\frac{7.5(6)+12.5(5)+...+42.5(2)}{50}\right\}$

$$\bar{X} = \frac{1060}{50} = 21.2$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f\left(X-\bar{X}\right)^2}{N}} = \sqrt{\frac{4140.50}{50}} = 9.1$$

मानक विचलन का गुणांक $= \frac{\sigma}{\bar{X}} = \frac{9.1}{21.2} = 0.429$

उदाहरण : निम्न तालिका से शार्ट–कट विधि द्वारा मानक विचलन और उसके गुणांक की गणना करें–

श्रेणी	20 – 25	25 – 30	30 – 35	35 – 40	40 – 45	45 – 50
आवृत्ति	18	44	102	160	57	91

हल– मान लीजिए, माना गया माध्य $A = 32.5$

मध्य–मान (X)	*आवृत्ति (f)*	*(X –A) = d*	d^2	*fd*	fd^2
22.5	18	– 10	100	– 180	1800
27.5	44	– 5	25	– 220	1100
32.5	102	0	0	0	0
37.5	160	5	25	800	4000
42.5	57	10	100	570	5700
47.5	91	15	225	285	4275
कुल	$N = 472$			Σfd = 1255	Σfd^2 = 16875

$\therefore$ मानक विचलन, $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$

$$= \sqrt{\frac{16875}{472} - \left(\frac{1255}{472}\right)^2} = \sqrt{35.75 - 7.06} = \sqrt{28.69} = 5.356$$

और, समांतर माध्य,

$$\bar{X} = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)\right\} = \left\{32.5 + \left(\frac{1255}{472}\right)\right\} = 35.15$$

मानक विचलन का गुणांक $= \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right) = \frac{5.356}{35.15} = 0.152$

उदाहरण : चरण विचलन विधि द्वारा निम्न तालिका से मानक विचलन और उसके गुणांक की गणना करें–

श्रेणी	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80	80–90
आवृत्ति	3	61	132	153	140	51	2

हल– मान लीजिए माना गया माध्य, A = 55, तो हमें मिलता है–

मध्य–मान	आवृत्ति (X)	$(X - A)$ (f)	$d = \left(\frac{X-A}{i}\right) = (X - 55)$	$fd = (X - 55)/10$	fd^2
25	3	– 30	– 3	– 9	27
35	61	– 20	– 2	– 122	244
45	132	– 10	– 1	– 132	132
55	153	0	0	0	0
65	140	10	1	140	140
75	51	20	2	102	204
85	2	30	3	6	18
कुल	$N = \Sigma f = 542$			$\Sigma fd = -15$	$\Sigma fd^2 = 765$

$\therefore$ मानक विचलन, $\sigma = i \times \sqrt{\left\{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2\right\}}$

$$= 10 \times \sqrt{\left\{\frac{765}{542} - \left(\frac{-15}{542}\right)^2\right\}} = 11.84$$

और, समांतर माध्य,

$$\bar{X} = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right) \times i\right\}$$

$$= \left\{55 + \left(\frac{-15}{542}\right) \times 10\right\} = 54.72$$

मानक विचलन का गुणांक $= \frac{\sigma}{\bar{X}} = \frac{11.84}{54.72} = 0.216$

उदाहरण : निम्न परिणाम 10 मैचों में दो खिलाड़ियों A और B द्वारा बनाए गए रन के आधार पर प्राप्त किया गया। अधिक सुसंगत खिलाड़ी कौन है?

	खिलाड़ी *A*	खिलाड़ी *B*
औसत रन	44.30	62.70
मानक विचलन	4.21	9.83

हल– खिलाड़ी A के लिए–

भिन्नता का गुणांक $(C.V_A) = \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right) \times 100 = \left(\frac{4.21}{44.30}\right) \times 100 = 9.503$

खिलाड़ी B के लिए–

भिन्नता का गुणांक $(C.V_B) = \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right) \times 100 = \left(\frac{9.83}{62.70}\right) \times 100 = 15.678$

जैसे कि $C\text{–}V_A < C\text{–}V_B$, खिलाड़ी A खिलाड़ी B से ज्यादा सुसंगत है।

उदाहरण : 150 छात्रों का माध्य वजन, 60 किलो है। लड़कों का माध्य वजन 10 किलो के एक मानक विचलन के साथ 70 किलो है। लड़कियों के लिए, माध्य वजन 55 किलो है और मानक विचलन 15 किलो है। लड़कों की संख्या और संयुक्त मानक विचलन का पता लगाएं।

हल– (i) $\bar{X}_{12} = \left(\frac{N_1\bar{X}_1 + N_2\bar{X}_2}{N_1 + N_2}\right)$

दिया हुआ है $\bar{X}_{12} = 60, \bar{X}_1 = 70, \bar{X}_2 = 55, N_1 + N_2 = 150$

हमें लड़कों की संख्या का पता लगाना है।

मान लीजिए, $N_1 =$ लड़कों की संख्या

$N_2 =$ लड़कियों की संख्या $= (150 - N_1)$

प्रतिस्थापन पर, हमारे पास है–

$$60 = \left\{\frac{N_1(70) + (150 - N_1)55}{150}\right\}$$

स्थानांतरित करके, $N_1 = 100 \Rightarrow N_2 = 50$

(ii) संयुक्त मानक विचलन–

$$\sigma_{12} = \sqrt{\frac{N_1\sigma_1^2 + N_2\sigma_2^2 + N_1d_1^2 + N_2d_2^2}{N_1 + N_2}}$$

$N_1 = 50, \sigma_1 = 10,$

$N_2 = 100, \sigma_2 = 15$

$d_1 = |\bar{X}_1 - \bar{X}_{12}| = |70 - 60| = 10$

$d_2 = |\bar{X}_2 - \bar{X}_{12}| = |55 - 60| = 5$

$$\therefore \sigma_{12} = \sqrt{\frac{50(10)^2 + 100(15)^2 + 50(10)^2 + 100(5)^2}{50 + 100}}$$

$\sigma_{12} = 15.28$

उदाहरण : निम्न तालिका से लुप्त जानकारी खोजें–

	समूह I	*समूह II*	*समूह III*	*संयुक्त*
संख्या	50	?	90	200
मानक विचलन	6	7	?	7.746
माध्य	113	?	115	116

हल–

मान लीजिए N_1, N_2, N_3 क्रमशः 1, 2 और 3 समूहों में टिप्पणियों की संख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं।

$(N_1 + N_2 + N_3) = 200$

$\Rightarrow (50 + N_2 + 90) = 200$

$\Rightarrow N_2 = 60$

संयुक्त माध्य–

$$\bar{X}_{123} = \left(\frac{N_1\bar{X}_1 + N_2\bar{X}_2 + N_3\bar{X}_3}{N_1 + N_2 + N_3}\right)$$

टिप्पणी

$$\Rightarrow \qquad 116 = \left\{\frac{50(113)+60\bar{X}_2+90(115)}{50+60+90}\right\}$$

$$\Rightarrow \qquad \bar{X}_2 = 120 \text{ (On transposing)}$$

संयुक्त मानक विचलन–

$$\sigma_{123} = \sqrt{\frac{N_1\sigma_1^2+N_2\sigma_2^2+N_3\sigma_3^2+N_1d_1^2+N_2d_2^2+N_3d_3^2}{N_1+N_2+N_3}}$$

$\sigma_{123} = 7.746, \qquad d_1 = \left|\bar{X}_1-\bar{X}_{123}\right| = |113-116| = 3$

$\sigma_1 = 6 \quad d_2 = \left|\bar{X}_2-\bar{X}_{123}\right| = |120-116| = 4$

$\sigma_2 = 7 \quad d_3 = \left|\bar{X}_3-\bar{X}_{123}\right| = |115-116| = 1$

$\sigma_3 = ?$

इस प्रकार, $\sigma_{123} = \sqrt{\frac{50(6)^2+60(7)^2+90\sigma_3^2+50(3)^2+60(4)^2+90(1)^2}{50+60+90}}$

$= 7.746$

$\Rightarrow \qquad \sigma_3 = 8$ (स्थानांतरित करने पर)

उदाहरण– दिए गए आंकड़ों के लिए मानक विचलन ज्ञात करें।

11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21

हल– हमें पहले माध्य की गणना करनी होगी।

$$\text{माध्य} = \frac{\Sigma x}{N} = \frac{176}{11} = 16$$

और विचलन की गणना निम्नलिखित हैं।

x	$(x-\bar{x})$	$(x-\bar{x})^2$
11	−5	25
12	−4	16
13	−3	9
14	−2	4
15	−1	1
16	0	0
17	1	1
18	2	4
19	3	9
20	4	16
21	5	25
176		110

सूत्र 7 से $\sigma = \sqrt{\frac{110}{11}} = \sqrt{10} = 3.16$

उदारहण– लघु रीति से दिए गए आंकड़ो का मानक विचलन ज्ञात करें।

11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21

हल–माना गया कि $A = 15$

	$x' = (x - 15)$	x'^2
11	−4	16
12	−3	9
13	−2	4
14	−1	1
15	0	0
16	1	1
17	2	4
18	3	9
19	4	16
20	5	25
21	6	36
$N = 11$	$\Sigma x' = 11$	$\Sigma x'^2 = 121$

x	x^2
11	121
12	144
13	169
14	196
26	225
16	256
17	289
18	324
19	361
20	400
21	441
176	2926

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma x'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma x'}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{121}{11} - \left(\frac{11}{11}\right)^2}$$

$$= \sqrt{11 - 1} = \sqrt{10} = 3.16$$

दूसरा तरीका–अगर हम A को शून्य मान लें तब प्रत्येक मद का उसके काल्पनिक माध्य से समान मान का होगा, तब 11 शून्य के काल्पनिक माध्य से विचलित होगा 11 से 12 विचलित होगा 12 से और ऐसा ही। ऐसे काम में हम विचलन का बिना उसकी गणना किए उपयोग कर सकते हैं और सूत्र इस रूप में होगा।

परिक्षेपण के विभिन्न मापों की तुलना

परिक्षेपण के माप की गणना में परास सर्वाधिक सरल है, किंतु चरम मानों पर इसकी निर्भरता के कारण, यह प्रतिदर्श के आकार एवं प्रतिदर्श प्रसरण से अत्यंत संवेदनशील है। वास्तव में, जैसे-जैसे प्रतिदर्श का आकार बढ़ता है, नाट्कीय रूप से परास भी बढ़ता जाता है, क्योंकि कोई जितना अधिक वस्तुओं पर विचार करता है, कुछ वस्तुओं, जो पूर्व के न्यूनतम से छोटे या पूर्व के अधिकतम से बड़े के रूप में बदलने की संभावना उतनी ही अधिक रहती है। अतः, सामान्यतः जब तक प्रतिदर्श आकार स्थिर न हो प्रदत्त परास के महत्व को ठीक ढंग से समझना संभव नहीं। यही कारण है कि यह सांख्यिकीय गुणवत्ता नियंत्रण, जहां समान प्रतिदर्श आकार बार-बार प्रयुक्त होता है, में परास का केवल एक वैद्य अनुप्रयोग होता है, ताकि परासों की तुलना प्रतिदर्श आकार में अन्तरों से विकृत न हो।

चतुर्थक विचलन एवं विक्षेपण के अन्य ऐसे स्थितिक माप भी गणना करने में सरल हैं, किन्तु ये इस नुकसान से प्रभावित होते हैं क्योंकि इनका बीजगणितीय संक्रिया में प्रयोग नहीं होता। इसी प्रकार, माध्य विचलन उपयुक्त नहीं होता, क्योंकि संघटक श्रृंखला के विचलन से एक संयुक्त श्रृंखला के माध्य विचलन को ज्ञात नहीं किया जा सकता। हालांकि, यह समझने में आसान एवं मानक विचलन की तुलना में गणना करने में सरल होता है।

दूसरी ओर, आंकड़ा समूह का मानक विचलन इसे वर्णित करने वाले महत्वपूर्ण समंकों में से एक है। यह अपने को कठिन बीजगणितीय संक्रिया में भी लगाता है एवं इसे परिभाषित किया जा सकता है तथा यह सभी अवलोकनों पर आधारित होता है। इसीलिए यह, प्रतिदर्श आकार (जबकि आकार पर्याप्त बड़ा है) से बिल्कुल संवेदनहीन होता है एवं प्रतिदर्श विचरण से प्रभावित होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. किसी श्रृंखला के अधिकतम एवं न्यूनतम मान के अंतर को क्या कहते हैं?

   (क) परास (ख) गुणांक

   (ग) सह–संबंध (घ) विक्षेपण

6. अंतर–चतुर्थक परास का सूत्र निम्न में से कौन सा है?

   (क) $\frac{Q_3 - Q_1}{2}$ (ख) $Q_3 - Q_1$

   (ग) $\frac{Q_3 - Q_1}{4}$ (घ) $\frac{Q_3 - Q_1}{5}$

5.5 सहसंबंध और उसके माप

जब दो या दो से अधिक चरों (Variables) तथा घटनाओं में साहचर्यात्मक संबंध (Associative Relationship) पाया जाता है, तो ऐसे पारस्परिक संबंध को सह–संबंध कहते हैं।

सहसंबंध का अर्थ

सहसंबंध–Correlation शब्द की उत्पत्ति Co-relation से हुई है जिसका अर्थ है–पारस्परिक संबंध। सह–सम्बन्ध इस बात का सूचक होता है कि दो विशेषताओं के बीच कितना अंतःसंबंध है इससे इसकी जानकारी मिलती है। जैसे– किसी व्यक्ति की दो विषयों की विशेषताओं का परीक्षण द्वारा मापन करना और प्रत्येक व्यक्ति के दोनों विषयों के अलग–अलग प्राप्तांकों को तालिका में जोड़ों के रूप में व्यवस्थित करके सांख्यिकीय गणना द्वारा दोनों में सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है उसे सह–संबंध कहते हैं।

परिभाषा

गिलफोर्ड के अनुसार– "सह–सम्बन्ध गुणांक वह अकेली संख्या है जो यह बताती है कि दो वस्तुएँ किस सीमा तक एक दूसरे से सह–सम्बन्धित है तथा एक के परिवर्तन दूसरे के परिवर्तनों को किसी सीमा तक प्रभावित करते हैं।

डी.एन. श्रीवास्तव के अनुसार– "जब दो चर राशियां इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक चर राशि के बढ़ने से दूसरी चर राशि बढ़े या घटे या इसके विपरीत हो तो उन दोनों चर राशियों में सह–सम्बन्ध पाया जाता है।"

बेलिस के अनुसार– "सह–सम्बन्ध का अभिप्राय है–आंकड़ों के दो या अधिक विभिन्न समूहों की तुलना जिससे उसके सम्बन्ध को जाना जा सके और उस सम्बन्ध की मात्रा को अंकात्मक रूप में व्यक्त किया जा सके।"

मेहरसन एवं लेहमन के अनुसार– "व्यक्तियों के एक ही समूह से प्राप्त दो माप विन्यासों के बीच सम्बन्ध या 'सहगमशीलता' का स्तर द्योतक मापन है।"

अन्य शब्दों में– "सह–संबंध से दो चरों में पाये जाने वाले संयुक्त–संबंध (Joint-relation) का पता लगाया जाता है।"

फरग्यूसन (Ferguson) के शब्दों में–''सह–संबंध का उद्देश्य दो चरों में पायी जाने वाली संबंध की मात्रा का पता लगाना होता है।''

सह–संबंध की दिशायें

दो घटनाओं या चरों के मध्य में सह–संबंध प्रायः दो दिशाओं–समान दिशा में अथवा विपरीत दिशा में हो सकता है

समान एवं विपरीत दिशा

जब दो चरों की पारस्परिक अंतःक्रिया में, एक चर की मात्रा जैसे–जैसे बढ़ती है परिणामस्वरूप दूसरे चर की मात्रा में भी तदनुसार वृद्धि होती है तब सह–संबंध समान दिशा में होता है। इसके विपरीत, जब दो चरों की पारस्परिक अंतःक्रिया में एक चर की

टिप्पणी

मात्रा बढ़ती है और दूसरे चर की मात्रा घटती है अर्थात् दूसरे चर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, तब सह–संबंध विपरीत दिशा में होता है।

इन चरों (Variables) में ऋणात्मक (Negative) सह–संबंध पाया जाता है।

5.5.1 सह–संबंध के प्रकार

प्रायः सह–संबंध चार प्रकार का होता है।

1. धनात्मक सह–संबंध

जब दो चरों (Variables) में एक चर की मात्रा बढ़ने पर दूसरे चर की मात्रा में भी वृद्धि होती है। अथवा एक चर की मात्रा में कमी होने पर दूसरे चर की मात्रा में भी कमी आती है तो दोनों चरों की ऐसी अनुरूपता को धनात्मक सह–संबंध कहते हैं। जब दो चर एक ही दिशा में परिवर्तित होते हैं तो उनमें धनात्मक सह–संबंध पाया जाता है। अन्य शब्दों में जब दोनों चर साथ–साथ एक ही दिशा मे घटते अथवा बढ़ते हैं तो उनमें धनात्मक सह–संबंध मध्यम एवं निम्न प्रकार का हो सकता है। धनात्मक सह–संबंध तीन प्रकार के होते हैं–

(i) पूर्णतः धनात्मक सह–संबंध : जब दो चरों की मात्राएं समान दिशा में समान अनुपात में घटती–बढ़ती हैं तो उनमें पूर्णतः धनात्मक सह–संबंध पाया जाता है। इस प्रकार का सह–संबंध एक सरल रेखा का रूप लिये हुए होता है और यह रेखा नीचे से ऊपर उठती हुई होती है। इस चित्र में OP रेखा पूर्णतः धनात्मक सह–संबंध को स्पष्ट करती है।

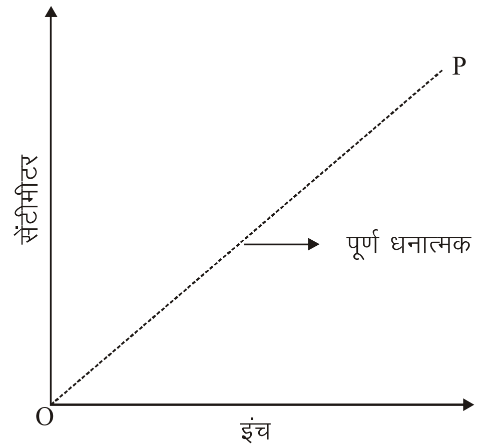

(ii) उच्च श्रेणी का धनात्मक सह–संबंध : कभी–कभी धनात्मक सह–संबंध पूर्ण न होकर उच्च श्रेणी का भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में सह–संबंध एक पतली रेखा न होकर कुछ मोटी रेखा के रूप में दिखाई देता है।

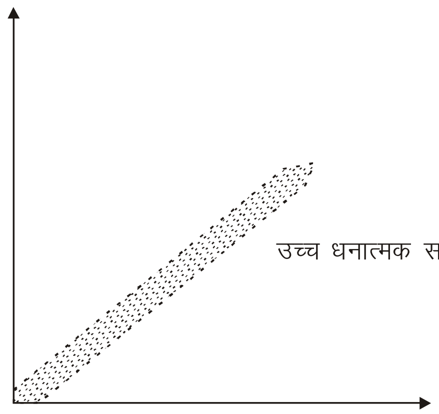

चित्र में उच्च धनात्मक सह–संबंध को दर्शाया गया है। इस स्थिति में दोनों चर एक दिशा में बढ़ते अथवा घटते हैं लेकिन एक अनुपात में नहीं।

(iii) मध्यम अथवा निम्न सह–संबंध : जब दोनों चरों के मध्यमानों का वितरण पर्याप्त मात्रा में मध्य रेखा के इधर–उधर फैला रहता है तब दोनों चरों में सह–संबंध मध्यम अथवा निम्न हो सकता है। ऐसे सह–संबंध को सामान्यतः सह–संबंध भी कहा जा सकता है यह स्थिति निम्न चित्र में स्पष्ट है–

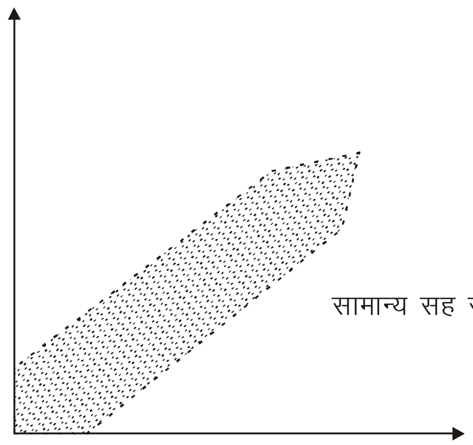

2. ऋणात्मक सह–संबंध

जब दो चरों (Variables) की मात्रा में एक चर की मात्रा घटने पर दूसरे चर की मात्रा बढ़ती है अथवा एक चर की मात्रा बढ़ने पर दूसरे चर की मात्रा घटती है तो ऐसी स्थिति में उनमें ऋणात्मक सह–संबंध पाया जाता है। अन्य शब्दों में ऋणात्मक सह–संबंध की स्थिति में दोनों चर विपरीत दिशा में चलते हैं। चरों की बहिर्मुखता तथा अन्तर्मुखता ऋणात्मक सह–संबंधों का एक अच्छा उदाहरण है। ऋणात्मक सह–संबंध भी धनात्मक सह–संबंध की भांति पूर्ण, उच्च श्रेणी का अथवा सामान्य (मध्यम/उच्च) हो सकता है।

(i) पूर्ण ऋणात्मक सह–संबंध : जब दो चरों की मात्राएं समान अनुपात में विपरीत दिशा में घटती अथवा बढ़ती हैं तो उनमें पूर्णतः ऋणात्मक सह–संबंध पाया जाता है। इस प्रकार का सह–संबंध एक सरल रेखा के रूप में होता है जो ऊपर से नीचे गिरती हुई होती है जैसा निम्न चित्र में स्पष्ट है–

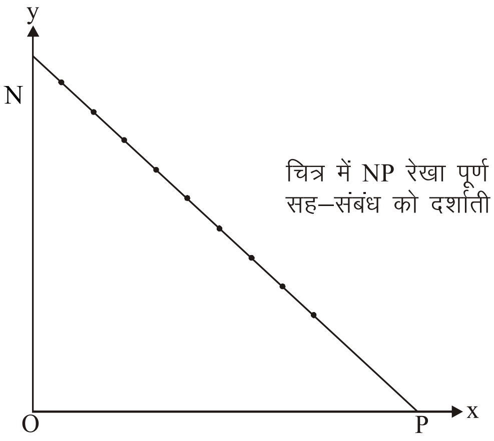

(ii) उच्च ऋणात्मक सह–संबंध : धनात्मक सह–संबंध की भांति ऋणात्मक सह–संबंध भी कभी–कभी पूर्ण न होकर उच्च श्रेणी का भी हो सकता है। दोनों श्रेणियों में उच्च ऋणात्मक सह–संबंध को निम्न रेखा चित्र के मध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

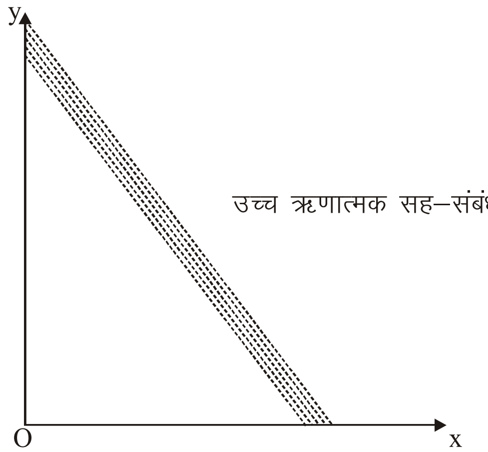

(iii) मध्यम/निम्न (सामान्य) ऋणात्मक सह–संबंध : जब दोनों चरों के मध्यमानों का वितरण मध्य रेखा के दोनों ओर फैला रहता है तो सामान्य ऋणात्मक सह–संबंध होता है। जैसा निम्न चित्र में स्पष्ट है ऐसी स्थिति में सह–संबंध रेखा पतली न होकर काफी मोटी होती है।

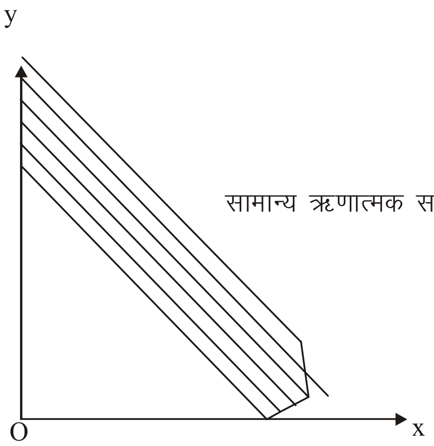

3. शून्य सह–संबंध

जब दो चरों में से कोई भी चर एक दूसरे को प्रभावित नहीं करता है, तब ऐसी स्थिति में दोनों चरों में सहचर्यात्मक संबंध (Associative Relationship) भी शून्य होता है, और उनमें सह–संबंध की मात्रा भी शून्य होती है। जैसे एक बालक के भार (Weight) तथा उसकी बुद्धिलब्धि (IQ) में कोई भी चर एक दूसरे पर प्रभाव नहीं डालता है। अतः इन दोनों चरों में शून्य सह–संबंध की मात्रा शून्य है ऐसे सह–संबंध को निम्नांकित चित्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

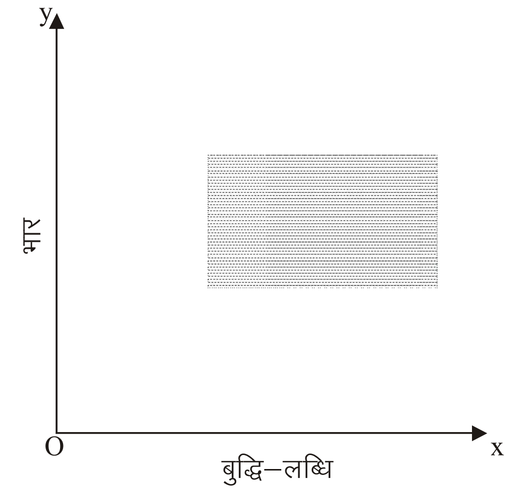

इस आकृति में बुद्धिलब्धि को x अक्ष पर तथा भार को y अक्ष पर दर्शाया गया है। चित्र को देखने से पता चलता है कि बुद्धि व भार के मान मध्य रेखा के चारों ओर बिखरे हुए हैं। इनमें न तो ऋणात्मक और न ही धनात्मक सह–संबंध है।

4. वक्र–रेखीय सह–संबंध

सह–संबंध के उपरोक्त तीन मुख्य प्रकारों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का भी सह–संबंध पाया जाता है, जिसे वक्र–रेखीय सह–संबंध कहते हैं। सह–संबंध की ऐसी स्थिति में दोनों चरों में सह–संबंध एक विशेष सीमा तक धनात्मक होता है और आगे चलकर जब दो चरों में सह–संबंध पहले धनात्मक तथा फिर ऋणात्मक होता है तब सह–संबंध रेखा केवल सीधी (Linear) न होकर आगे जाकर कुछ वक्र (Curve) वाली होती है जैसा निम्न चित्र में स्पष्ट है।

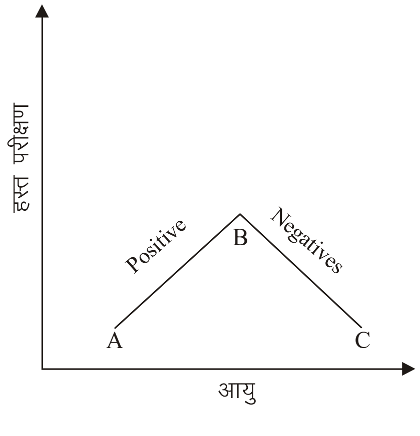

ऊपर चित्र में स्पष्ट है कि जैसे–जैसे आयु बढ़ती है, बालक के हस्त परीक्षण (High Grip Test) में प्राप्तांक भी बढ़ते चले जाते हैं परंतु एक विशेष अवस्था के बाद इसी परीक्षण में प्राप्तांक घटने लगते हैं चित्र में बिन्दु A से B तक धनात्मक सह–संबंध है और B से C तक ऋणात्मक सह–संबंध है प्रारंभ जैसे–जैसे आयु बढ़ती है व्यक्ति की हस्त परीक्षण शक्ति भी बढ़ती है अर्थात् एक उम्र के बाद शारीरिक तथा आयु में ऋणात्मक सह–संबंध दृष्टिगोचर होने लगता है। इस प्रकार सह–संबंध पहले एक दिशा की ओर अग्रसर होता है और उसके पश्चात् दूसरी दिशा में। इस प्रकार के दो चरों में पाये जाने वाले सहचर्यात्मक संबंध को वक्र–रेखीय (Curvilinear) सह–संबंध कहते हैं।

निरर्थक सह–संबंध (Nonsensical Correlation)

कभी–कभी साधारण अध्यनकर्ता अपने अध्ययन में दो पूर्णतः असह–संबंधित चरों में भी सह–संबंध की स्थिति स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं ऐसा तभी होता है जब अध्ययनकर्ता को दोनों चरों में पारस्परिक कार्य–कारण के संबंध का ठीक ज्ञान नहीं होता है। जैसे अध्ययनकर्ता अपने आंकड़ों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि देश में जैसे–जैसे सड़कों की संख्या बढ़ रही है वैसे–वैसे बीमारों की संख्या भी बढ़ रही है। यह प्रयास निरर्थक है क्योंकि इन आंकड़ों का परस्पर कोई संबंध नहीं है।

5.5.2 सहसंबंध की माप

सह–संबंध से केवल यही ज्ञात होता है कि दोनों चरों Variables में पारस्परिक संबंध किस प्रकार का है–धनात्मक, ऋणात्मक या शून्य। इसके अतिरिक्त हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि सह–संबंध थोड़ा है, सामान्य है अथवा अधिक है परंतु इसके द्वारा दोनों चरों में सह–संबंध की मात्रा का परिशुद्ध (Precise) वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा स्पष्ट ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। इस दोष को दूर करने के लिए सह–संबंध को सह–संबंध गुणांक के रूप में व्यक्त किया जाता है। सह–संबंध गुणांक एक प्रकार का ऐसा सूचकांक Index है जिससे दो चरों में एक का ज्ञान होने पर दूसरे चर के भविष्य में भविष्य कथन किया जा सकता है।

सह–संबंध गुणांक दो चरों में पाया जाने वाला ऐसा अनुपात है जिससे यह पता लगता है कि एक चर में होने वाले परिवर्तन दूसरे चर में होने वाले परिवर्तनों पर कितनी मात्रा में आधारित हैं, अथवा किस मात्रा में उनका अनुसरण करते हैं।

उदाहरण : एक परीक्षा में 10 छात्रों ने अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य में निम्न अंक प्राप्त किए।

क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
अर्थशास्त्र	30	25	23	29	24	28	31	22	32	26
वाणिज्य	32	27	25	34	26	36	38	24	39	28

हल :

क्रम संख्या x	अर्थशास्त्र x	वाणिज्य y	Rank x	Rank y	कोटि अंतर D	कोटि अंतरों के वर्ग का योग $\sum D^2$
1	30	32	3	5	–2	4
2	25	27	7	7	0	0
3	23	25	9	9	0	0
4	29	34	4	4	0	0
5	24	26	8	8	0	0
6	28	36	5	3	2	4
7	31	38	2	2	0	0
8	22	24	10	10	0	0
9	32	39	1	1	0	0
10	26	28	6	6	0	0
योग						8
				$N = 10$ $\sum D^2 = 8$		

$$P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$$

$$P = 1 - \frac{6(8)}{10(10^2-1)} \quad P = 1 - \frac{48}{10(99)} = P = 1 - \frac{48}{990}$$

$$P = 1 - 0.048 = 0.952 \qquad \text{or} \qquad 0.95$$

विवेचन–दोनों विषयों में अत्याधिक उच्च श्रेणी का धनात्मक सह–संबंध है।

सह–संबंध गुणांक का विस्तार (Magnitudeal Co-efficient Correlation)

सामान्यतः सह–संबंध गुणांक का मान +1.00 से –1.00 तक आता है। अर्थात् इसके सभी मान +1.00 से –1.00 तक की सीमाओं के अंतर्गत ही रहते हैं जब सह–संबंध गुणांक का मान (+) में आता है तब वह धनात्मक सह–संबंध का प्रतीक होता है और जब इसका मान (–) में आता है तब ऋणात्मक सह–संबंध कहलाता है। इन दोनों दशाओं के विपरीत जब सह–संबंध गुणांक का मान शून्य (Zero) होता है तब सह–संबंध शून्य कहलाता है। सह–संबंध के विस्तार को निम्न प्रकार से भी समझाया जा सकता है।

धनात्मक सह–संबंध

+ 1.00	पूर्ण धनात्मक सह–संबंध
+ 1.00 – + 0.99	→ उच्च श्रेणी का सह–संबंध
+ 0.99 – + 0.70	→ सामान्य सह–संबंध
+ 0.70 – + 0.40	→ निम्न परन्तु निश्चित सह–संबंध
+ 0.40 – + 0.20	→ सूक्ष्म एवं नगण्य सह–संबंध

ऋणात्मक सह–संबंध

– 0.20	सूक्ष्म एवं नगण्य सह–संबंध
– 0.40	निम्न परन्तु निश्चित सह–संबंध
– 0.70	सामान्य सह–संबंध
– 0.99	उच्च श्रेणी का ऋणात्मक सह–संबंध
+ 1.00	पूर्ण ऋणात्मक सह–संबंध

सह–संबंध गुणांक की विशेषताएं (Properties of Co-efficient of Correlation)

सह–संबंध गुणांक की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **प्रसार** (Range) : सह–संबंध गुणांक का मान –1.00 से लेकर +1.00 के बीच होता है। सह–संबंध गुणांक (τ) का मान कभी भी –1 से कम अथवा सैद्धान्तिक प्रसार –1 से +1 तक है।
2. **इकाइयों का प्रभाव नहीं** (No Effect of Units) : सह–संबंध गुणांक एक शुद्ध अंक है इसकी कोई इकाई नहीं होती है। यदि प्राप्तांकों की इकाइयों को बदल दिया जाए तो सह–संबंध गुणांक के मान में कोई अंतर नहीं आता है यही कारण है कि लंबाई को चाहे इंचों में नापे अथवा सेमी में, किसी दूसरे चर के साथ लंबाई का सह–संबंध गुणांक का मान अपरिवर्तित रहता है।
3. **प्राप्तांकों में स्थिरांक जोड़ने, घटाने, गुणा या भाग करने का प्रभाव नहीं** (No Effect of Addition, Substraction, Multiplication or Division of Constant) : किसी एक अथवा दोनों चरों के प्राप्तांकों में किसी स्थिरांक (Constant) को जोड़ने, घटाने, गुणा करने अथवा भाग देने पर सह–संबंध गुणांक अप्रभावित रहता है। सह–संबंध गुणांक (τ) की यह विशेषता गणना कार्य में अत्यंत उपयोगी है। इस विशेषता के कारण ही बड़े प्राप्तांकों से सह–संबंध गुणांक ज्ञात करते समय सभी प्राप्तांकों से किसी स्थिरांक को घटाने का सुझाव दिया जाता है। दोनों चरों से अलग–अलग स्थिरांक घटाये जा सकते हैं।
4. **सह–संबंध कारणता नहीं** (Correlation is not a Causation) : सह–संबंध कभी भी कार्य–करण संबंध का द्योतक नहीं होता है। कभी–कभी ऐसा भ्रमवश समझ लिया जाता है। यदि x तथा y के बीच सह–संबंध है तो तीन संभावनाएं हो सकती हैं–

(i) x का कारण y है।

(ii) y का कारण x है।

(iii) x व y दोनों का कारण कोई तीसरा चर z है।

केवल सह–संबंध गुणांक के आधार पर इन तीनों में से किसी एक को स्वीकार कर लेना अथवा अन्यों को अस्वीकार करना उचित नहीं होता है।

सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने की विधियां

सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने की मुख्य विधियां निम्नलिखित हैं–

1. स्पीयर मैन की कोटि अंतर/क्रमान्तर विधि
2. कार्ल पियरसन गुणन–आघूर्ण विधि सह–संबंध–गुणांक

स्पीयर मैन की कोटि अंतर विधि (Spearman's Rank Difference Method) : चार्ल्स स्पीयरमैन ने व्यक्तिगत समंकमालाओं में सह–संबंध ज्ञात करने की एक सरल रीति का प्रतिपादन किया है। इस रीति को कोटि–अंतर या क्रमान्तर–रीति भी कहते

हैं। यह रीति उन परिस्थितियों के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है जहां तथ्यों को केवल कोटि क्रम (Rank-Order) के अनुसार ही रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए जैसे सुंदरता का अंकात्मक माप संभव नहीं लेकिन फिर भी विभिन्न इकाइयों की सुंदरता को देखकर अर्थात् गुण की अधिकता के आधार पर उन्हें पहला, दूसरा, तीसरा इत्यादि क्रम प्रदान किया जा सकता है। इस विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक का सांकेतिक चिह्न (Symbol) = P होता है।

इस विधि में सर्वप्रथम X तथा Y श्रेणी के पद–मूल्यों को अलग–अलग कोटि क्रम प्रदान किए जाते हैं। इसमें सबसे बड़ी संख्या को 1 (एक) उससे छोटी को 2 (दो) फिर 3 (तीन) इस प्रकार क्रम निश्चित किया जाता है। तत्पश्चात् X श्रेणी के क्रमों में से Y श्रेणी के क्रमों को घटाकर क्रमान्तरों के अंतर (D = Rank X–Rank Y) की गणना की जाती है। ध्यान रखने की बात है कि $\sum D$ क्रमान्तरों के अंतर का योग सदैव (0) शून्य होता है। फिर क्रमान्तरों का वर्ग निकालकर उनका योग किया जाता है अर्थात् $\sum D^2$ ज्ञात किया जाता है और अंत में निम्न सूत्र का प्रयोग करके सह–संबंध ज्ञात किया जाता है।

$$P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)} \quad or \quad P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N^3 - N}$$

यहां

R = क्रम सहसंबंध गुणांक

D = दो मदों के क्रमों का अंतर

N = अवलोकनों की संख्या

उदाहरण : दो परीक्षणों में छात्रों के प्राप्तांक निम्न प्रकार हैं कोटि–अंतर विधि द्वारा दोनों परीक्षणों में सह–संबंध ज्ञात कीजिए।

क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
परीक्षण I	15	12	13	18	16	20	19	17	14	21
परीक्षण II	25	30	28	22	24	20	21	23	27	19

	परीक्षण I	**परीक्षण II**	**Rank I**	**Rank II**	**कोटि अंतर D**	**कोटि अंतरों के वर्गों का योग $\sum D^2$**
1	15	25	7	4	3	9
2	12	30	10	1	9	81
3	13	28	9	2	7	49
4	18	22	4	7	–3	9
5	16	24	6	5	1	1
6	20	20	2	9	–7	49
7	19	21	3	8	–5	25
8	17	23	5	6	–1	1
9	14	27	8	3	5	25
10	21	19	1	10	–9	81
					–25 + 25 =0	330

$$P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$$

$$P = 1 - \frac{6(330)}{10(10^2-1)}$$

$$P = 1 - \frac{1980}{10(99)}$$

$$P = 1 - \frac{1980}{990}$$

$$P = 1 - 2$$

$$P = -1$$

कार्ल पियरसन गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक

गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध विधि का प्रतिपादन कार्ल पियरसन के द्वारा सन् 90 में फ्रांसिस गाल्टन के द्वारा विकसित विचारों के आधार पर किया गया था। पियरसन के नाम पर इस विधि को पियरसनियन विधि तथा इस विधि से प्राप्त गुणांक को पियरसन सह–संबंध गुणांक कहा जाता है। इस विधि के अंतर्गत दोनों चरों पर विभिन्न व्यक्तियों के प्राप्तांकों के सापेक्ष Z प्राप्तांकों की गुणाओं का आघूर्ण अर्थात् गुणनफल–आघूर्ण (Moment of Product) ज्ञात किया जाता है। यह गुणनफल आघूर्ण ही दोनों चरों के बीच सह–संबंध की मात्रा को बताता है जिसे अंग्रेजी के अक्षर r (आर) से प्रदर्शित किया जाता है।

$$r = \frac{\sum Zx\, Zy}{N}$$

आघूर्ण वास्तव में विज्ञान/गणित से लिया गया शब्द है, किन्हीं अंकों का आघूर्ण उन अंकों के माध्यम से उनकी दूरियों का मध्यमान होता है। आघूर्ण को $\sum(X-M)/N$ या $\sum(X-M)/N\sum X/N$ से लिखा जा सकता है। द्विचर आघूर्ण में दो चरों के प्राप्तांकों के उनके मध्यमानों से लिये गये विचलनों की गुणा करते हैं इसलिए इसे गुणनफल आघूर्ण भी कहते हैं। यह आघूर्ण दो चरों के साथ–साथ परिवर्तित हो रहे विचलन को भी व्यक्त करता है इसलिए इसे सह–संबंध प्रसरण भी कहते हैं। गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक दोनों चरों के गुणनफल–आघूर्ण का दोनों चरों के मानक विचलनों के गुणनफल के साथ अनुपात है अतः

$$r = \frac{\sum_{xy}/N}{\delta_x \cdot \delta_y}$$

गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक के इस सूत्र को निम्नवत् ढंग से भी लिखा जा सकता है–

$$\frac{\sum \frac{x}{\delta x}\cdot\frac{y}{\delta y}}{N} \text{ क्योंकि } \frac{x}{\delta_x} = Z_x\ \frac{y}{\delta_y} = zy \text{ अतः } r = \frac{\sum z_x \cdot z_y}{N}$$

यह सह–संबंध ज्ञात करने का मूल एवं परिभाषिक सूत्र है किन्तु इस सूत्र से सह–संबंध गुणांक की गणना करना जटिल होता है। क्योंकि सभी प्राप्तांकों को z में बदलना पड़ता है तथा मानक विचलन एवं मध्यमान के दशमलव संख्या में होने पर घटाने व भाग की

गणना जटिल व श्रम साध्य हो जाती है। इसलिये इस सूत्र को सरल रूप में बदलने की आवश्यकता हुई। गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए इस सूत्र को निम्न प्रकार से सरल रूप में बदला जा सकता है।

$$r = \frac{\sum xy}{N \cdot \delta x \cdot \delta y}$$

$$r = \frac{\sum xy}{\sqrt{\sum x^2 \sum y^2}} = \frac{\sum(X - \overline{X})\,(4 - \overline{4})}{\sqrt{\sum(X - \overline{X})^2\ \sum(Y - \overline{Y})^2}}$$

$$r = \sum xy - \frac{(\sum x)\,(\sum y)}{\sqrt{\sum x^2 - \frac{(\sum x^2)}{N}}\sqrt{\sum y^2 - \frac{(\sum y)^2}{N}}}$$

or

$$r = \frac{N \cdot \sum xy - (\sum x)\,(\sum y)}{\sqrt{N \cdot \sum x^2 - (\sum x)^2}\sqrt{N \cdot \sum y^2 - (\sum y)^2}}$$

यह रीति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है क्योंकि इस रीति द्वारा सह–संबंध गुणांक का निश्चित रूप से तथा अंकात्मक रूप से अध्ययन किया जा सकता है। यह रीति गणितीय दृष्टि से उपयुक्त है क्योंकि यह प्रमाप विचलन व समान्तर माध्य पर आधारित है।

गुणांक निकालने की विधि

इस रीति के अंतर्गत सर्वप्रथम दोनों श्रेणियों का समान्तर माध्य निकाला जाता है। तत्पश्चात् दोनों श्रेणियों के समान्तर माध्य से विचलन ज्ञात किया जाता है। पहली श्रेणी के विचलनों को '*dx*' तथा दूसरी श्रेणी के विचलनों को '*dy*' कहते हैं। दोनों श्रेणियों के विचलनों का वर्ग d_x^2 तथा d_y^2 ज्ञात करके उनका योग किया जाता है। दोनों विचलनों को परस्पर गुणा करके (*dxdu*) योग ज्ञात किया जाता है और अन्त में निम्न सूत्र द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात किया जाता है।

$$r = \frac{\sum dx\,dy}{N \cdot \delta \cdot \delta y} \text{ या } r = \frac{\sum dx\,dy}{\sqrt{\sum d_x^2}\sqrt{\sum d_y^2}} \text{ जहां } \begin{matrix} dx = (X - \overline{X}) \\ dy = (Y - \overline{Y}) \end{matrix} \text{ है।}$$

उपरोक्त सूत्र x तथा y के सह–विचरण (Co-Variance) पर आधारित है। अर्थात् $\sum xy / N$ इसलिए इसे सह–विचरण रीति भी कहा जाता है।

उदाहरण : निम्न समंकों की सहायता से कार्ल पियरसन सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

यहां

$\sum(X - \overline{X})\,(Y - \overline{Y}) = 150\ N = 9 \quad \delta \times 5.8 \quad \delta y = 3.2 \quad \sum(X - \overline{X})\,(Y - \overline{Y}) = \sum dxdy$

हल :

$$r = \frac{\sum dxdy}{N \cdot \delta x \cdot \delta y} = \frac{150}{(9)(5.8)(3.2)} = \frac{150}{167.04} = +\,0.898$$

उदाहरण :

X =	17	18	19	19	20	20	21	21	22	23
Y =	12	16	14	11	15	19	22	16	15	20

हल :

X श्रेणी			y श्रेणी			
x	$(X-\overline{X})$ Dx	$(X-\overline{X})^2$ d_x^2	y	$dy^{y-\overline{y}}$	$d_y^{2y-\overline{y}}$	$dxdy$
17	–3	9	12	–4	16	12
18	–2	4	16	0	0	0
19	–1	1	14	–2	4	2
19	–1	1	11	–5	25	5
20	0	0	15	–1	1	0
20	0	0	1.9	+3	9	0
21	+1	1	22	+6	36	6
21	+1	1	16	0	0	0
22	+2	4	15	–1	1	–2
23	+3	9	20	+4	16	12
200	0	30	160	0	108	+35

$$\overline{X} = \frac{\sum y}{N} \qquad \overline{Y} = \frac{\sum y}{N}$$

$$\overline{X} = \frac{200}{10} \qquad \overline{Y} = \frac{160}{10}$$

$$X = 20 \qquad \overline{Y} = 16$$

$$\delta x = \sqrt{\frac{\sum d_x^2}{N}} \qquad \delta y\sqrt{\frac{\sum d_y^2}{N}}$$

$$\delta x = \sqrt{\frac{30}{10}} \qquad \delta y = \sqrt{\frac{108}{10}}$$

$$\delta x = \sqrt{3} \qquad \delta y = \sqrt{10.8}$$

$$\delta x = 1.73 \qquad \delta y - 3.28$$

$$r = \frac{\sum dxdy}{N(\delta x)\,(\delta y)}$$

$$= \frac{35}{10(1.73)\,(3.28)} = +0.615$$

$$r = \frac{\sum dxdy}{\sqrt{\sum d_x^2}\sqrt{\sum d_y^2}}$$

$$= \frac{35}{\sqrt{30 \times 108}}$$

$$= \frac{35}{\sqrt{3240}}$$

$$= \frac{35}{56.9}$$

$$= +0.615$$

इस विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए $r = \frac{\sum dxdy}{N \cdot \delta x \cdot \delta y}$ सूत्र की अपेक्षा $r = \frac{\sum dxdy}{\sqrt{\sum d_x^2}\sqrt{\sum d_y^2}}$ का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि इस सूत्र में δx तथा δy अलग–अलग निकालने की आवश्यकता नहीं होती है। यह सूत्र ऊपर बताये गये मूल सूत्र का ही सरल रूप है। इस सूत्र का प्रयोग करने में सापेक्षिकतः परिकलन (Calculation) कम करना पड़ता है, समय भी कम लगता है लेकिन $r =$ की शुद्धता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

परन्तु उपर्युक्त उदाहरण में एक विशेष बात देखने में आयी है कि दोनों चरों के मध्यमान (Means) पूरी संख्या (Round Figures) में ही आये हैं। यदि दोनों चरों के मध्यमान (Mean) दशमलव में आते हैं तो उन्हें मूल पदों से घटाने पर संबंधित विचलन (dx) तथा (dy) भी दशमलव में होंगे तथा उनके गुणनफल का मान भी अधिकतर दशमलव में होगा तो ऐसी स्थिति में गणना करना कठिन हो जाता है और हल करने में त्रुटियां भी आ सकती हैं। इस प्रकार की त्रुटियों की आशंका को दूर करने के लिए सह–संबंध गुणांक के लिए एक दूसरे सूत्र का प्रयोग किया जाता है जो कि कल्पित मध्यमान पर आधारित होता है।

कल्पित मध्यमान विधि

इस सूत्र में दोनों चरों के अथवा एक चर के कल्पित मध्यमान को मान लिया जाता है जो वास्तविक मध्यमान के आगे वाली या पहले वाली पूरी संख्या को कल्पित कर लिया जाता है। यह कल्पित मध्यमान को पूरी संख्या बनाने के लिए वास्तविक मध्यमान से घटाया या जोड़ा जाता है उसे शुद्धता का मान कहते हैं। यह शुद्धता M–Assumed Mean की होती है। यदि शुद्धता की आवश्यकता दोनों चरों में पड़ती है तो दोनों ही चरों में कल्पित मध्यमान का स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया जा सकता है। कल्पित मध्यमान द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए इस सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

सूत्र

$$\frac{\frac{\sum dxdy}{N} - (\overline{X} - A)(\overline{Y} - A)}{\left[\frac{\sum d_x^2}{N} - (\overline{X} - A)^2\right]\left[\frac{\sum d_y^2}{N} - (\overline{Y} - A)^2\right]}$$

उदाहरण : दो विषयों में 10 विद्यार्थियों ने निम्न अंक प्राप्त किये हैं इनके आधार पर दोनों विषयों में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए–

विद्यार्थी क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
गणित	25	32	18	24	29	33	28	19	23	25
विज्ञान	27	34	21	27	23	35	31	23	18	16

हल :

	गणित x श्रेणी			विज्ञान y श्रेणी			
क्रम संख्या	x	A = 26 (X–A) dx	d_x^2	y	$\frac{A=26}{(y-A)}dy$	d_y^2	$dxdy$
1	25	–1	1	27	+1	1	–1
2	32	+6	36	34	+8	64	48
3	18	–8	64	21	–5	25	40
4	24	–2	4	27	+1	1	–2
5	29	+3	9	23	–3	9	–9
6	33	+7	49	35	+9	81	63
7	28	+2	4	31	+5	25	10
8	19	–7	49	23	–3	9	21
9	23	–3	9	18	–8	64	24
10	25	–1	1	16	–10	100	10
योग	256		226	255		379	204

$\sum x = 256 \qquad \sum y = 255$

$X = \frac{\sum x}{N} \qquad Y = \frac{\sum y}{N}$

$\overline{X}\frac{256}{10} \qquad \overline{Y} = \frac{255}{10}$

$\overline{X} = 25.6 \qquad \overline{Y} = 25.5$

$\overline{X} - A \qquad \overline{Y} - A$

$25.6 - 26 = (-.4) \qquad 25.5 - 26 = (-.5)$

$(\overline{X} - A)^2 \qquad (\overline{Y} - A)^2$

$(25.6 - 26)^2 \qquad (25.5 - 26)^2$

$(-.4)^2 \qquad (-.5)^2$

$= .16 \qquad .25$

$$r = \frac{\frac{\sum dxdy}{N} - (\overline{X} - A)(\overline{Y} - A)}{\left[\sqrt{\frac{\sum d_x^2}{N} - (\overline{X} - A)^2}\right]\left[\frac{\sum d_y^2}{N} - (\overline{Y} - A)^2\right]}$$

$$\frac{\frac{204}{10} - (-.4)(-.5)}{\left[\frac{226}{10} - (-0.4)\right]\left[\frac{379}{10} - (-0.5)\right]}$$

$$\frac{20:4 - (+0.2)}{\sqrt{[22.6 - 0:16][37.9 - 0.25]}}$$

$$\frac{20.2}{\sqrt{(22.44)}\,37.65}$$

$$\frac{20.2}{\sqrt{844.9}} = \frac{20.2}{29.07} = 0.69$$

उच्च धनात्मक सह–संबंध

लघु प्राप्तांक विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करना

कभी–कभी मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में दोनों चरों के आंकड़े काफी बड़े–बड़े होते हैं तथा प्रयासों अथवा निरीक्षणों की संख्या भी काफी बड़ी होती है। इस प्रकार की संख्याओं से गणना करना अत्यधिक कठिन हो जाता है, संख्याओं के बड़े तथा विषम होने के कारण सावधानी रखते हुए भी भूल होने की आशंका बनी रहती है। ऐसी स्थिति से fui Vusd sfy , y ?kqi kIr kd fofek (Reduced Score Method) का प्रयोग अधिक उपयोगी रहता है। इस विधि की प्रमुख विशेषता यही है कि इसमें बड़े आंकड़ों को घटाकर सरलतापूर्वक कम कर दिया जाता है। इससे गणना का भार कम हो जाता है और परिणाम में भी शुद्धता की कमी नहीं होती है। उदाहरण के लिए नीचे सह–संबंध गुणांक को इसी विधि से निकाला गया है।

उदाहरण : एक कम्प्यूटर प्रोग्राम को सीखने में 20 विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि (I.Q) तथा सीखने के समय के मध्यमानों को निम्न तालिका में दिया गया है। इन दिए गये आंकड़ों के आधार पर सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

विद्यार्थियों की क्रम संख्या	बुद्धिलब्धि	सीखने का समय
1	92	110
2	108	86
3	96	112
4	85	120
5	110	82
6	108	85
7	96	112
8	113	90
9	98	81
10	88	118
11	94	112
12	106	82
13	115	80
14	94	110
15	118	100
16	120	80
17	99	102
18	100	90
19	98	100
20	106	86

टिप्पणी

हल :

	x श्रेणी			*y* श्रेणी			
	X	**dx**	d_x^2	**x**	**dy**	d_y^2	**Dxdy**
1	92	−8	64	110	10	100	−80
2	108	8	64	86	−14	196	−112
3	96	−4	16	112	12	144	−48
4	85	−15	225	120	20	400	−300
5	110	10	100	82	−18	324	−180
6	108	8	64	85	−15	225	−120
7	96	−4	16	112	12	144	−48
8	113	13	169	90	10	100	−130
9	98	−2	4	81	−19	361	+38
10	88	−12	144	118	18	324	−216
11	94	−6	36	112	12	144	−72
12	106	6	36	82	−18	324	−108
13	115	15	225	80	−20	400	−300
14	94	−6	36	110	10	100	−60
15	118	18	324	100	0	0	00
16	120	20	400	80	−20	400	−400
17	99	−1	1	102	+2	4	−2
18	100	0	0	90	−10	100	00
19	98	−2	4	100	0	0	00
20	106	6	36	86	−14	196	−84
योग		−6 +104 +44	1964		−158 +96 −62	3986	−2260 +38 −2222

$$\sum dx = +44 \qquad \sum dy = -62$$

$$\sum d_x^2 = 1964 \qquad \sum d_y^2 = 3986$$

$$\sum dxdy - 2222$$

$$\frac{\sum dxdy - \frac{(\sum dx)(\sum dy)}{N}}{\sqrt{\left[\sum d^2 x - \frac{(\sum dx)^2}{N}\right]\left[\sum d^2 y - \frac{(\sum dy)^2}{N}\right]}}$$

$$\frac{-2222 - \frac{(+44)\,(-62)}{20}}{\sqrt{\left[1964 - \frac{(44)^2}{20}\right]\left[3986 - \frac{(62)^2}{20}\right]}}$$

$$\frac{-2222 - (-136.4)}{\sqrt{[1964 - 96.8][3986 - 192.2]}}$$

$$\frac{-2222 + 136.4}{\sqrt{[1867.2][3793.8]}}$$

$$\frac{-2085.6}{7083783.36}$$

$$\frac{-2085.6}{2661.537} = 0.784$$

उपरोक्त दोनों चरों (x तथा y) के निरीक्षण से पता चलता है कि इनके मध्यमानों का विस्तार 80 से लेकर 120 तक फैला हुआ है। लघु प्राप्तांक विधि के अंतर्गत प्रत्येक चर में से एक स्थिर संख्या (Constant Number) घटानी होती है, वह संख्या ऐसी होनी चाहिए जिसके घटाने से प्राप्तांक का मान काफी कम से कम हो सके। इस उदाहरण के आधार पर यदि हम स्थिर संख्या 100 चुनते हैं तो शेष प्राप्तांक लघु संख्या ± 20 रहती है। यह संख्या सुविधाजनक है दोनों चरों के लिए स्थिर संख्या 100 चुनने से हमारा गणना कार्य काफी सरल हो जाता है यह स्थिर संख्या कुछ भी हो सकती है, तथा दोनों चरों के लिए स्थिर संख्या अलग–अलग हो सकती है और प्रायः अलग ही होती है। स्थिर संख्या का चयन करते समय माननीय कसौटी यह है कि संख्या ऐसी होनी चाहिए कि प्राप्तांकों को घटाने से प्राप्त शेष संख्या कम से कम रहे। जिससे गणना (Calculation) का कार्य सरल से सरल हो सके।

मूल प्राप्तांकों से सह–संबंध गुणांक निकालने की विधि

इस विधि से सह–संबंध गुणांक ज्ञात करना अधिक सरल होता है। इस विधि में विचलन नहीं लिये जाते बल्कि मूल्यों का सीधे ही प्रयोग किया जाता है। इसमें गणित कार्य कम करना पड़ता है। इस विधि से सह–संबंध गुणांक निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है–

$$r = \frac{N\sum xy - (\sum x)\,(\sum y)}{\sqrt{\left[N \times \sum x^2 - (\sum x)^2\right]\left[N \times \sum y^2 - (\sum y)^2\right]}}$$

उदाहरण : निम्न सारणी से मूल प्राप्तांकों का प्रयोग करते हुए सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

X–	3	4	6	7	10	11	14	16	18	20
Y–	1	3	5	4	8	7	9	10	13	12

हल :

x	x^2	y	$y2$	X^4
3	9	1	1	3
4	16	3	9	12
6	36	5	25	30
7	49	4	16	28
10	100	8	64	80
11	121	7	49	77
14	196	9	81	126
16	256	10	100	160
18	324	13	169	234
20	400	12	144	240

$$\frac{N \times \sum xy - (\sum x)(\sum y)}{\sqrt{\left[N \times \sum x^2 - (\sum x)^2\right]\left[N \times \sum y^2 - (\sum y)^2\right]}}$$

टिप्पणी

$$\frac{10\times 990-(109)(72)}{\sqrt{10(1507)-(109)^2}\sqrt{10(658)-(72)^2}}$$

$$\frac{9900-7848}{\sqrt{15070-11881}\sqrt{6580-5184}}$$

$$\frac{2052}{\sqrt{3189\times 1396}}=\frac{2052}{\sqrt{4451844}}=\frac{2052}{2109.93}=+0.97$$

गेन्स विधि

यह विधि कोटि अंतर विधि Rank Difference Method का ही सरल रूप है इसके अंतर्गत दोनों चरों की कोटियों में केवल धनात्मक अंतरों की ही गणना की जाती है जबकि ऋणात्मक संख्या में आने वाले पदमूल्यों को छोड़ दिया जाता है। इस विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक का सांकेतिक चिह्न (Symbol) R होता है इस विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$R=1-\frac{6\sum G}{(N^2-1)}$$

यहां R = गेन्स विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक है।

$\sum$G = धनात्मक अंतरों का योग यहां G Gain को संक्षिप्त रूप में व्यक्त करता है।

N = निरीक्षणों की संख्या है।

उदाहरण : निम्न सारणी में दिये गये मध्यमानों का गेन्स विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

विद्यार्थी	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
x	38	35	30	32	26	46	50	42	36	20
y	40	30	35	25	30	45	55	40	40	10

हल :

क्रम संख्या	x	y	R^1	R^2	G R^1-R^2	G R^2-R^1
1	38	40	4	4	0	0
2	35	30	6	7.5	–	1.5
3	30	35	8	6	2	–
4	32	25	7	9	–	2
5	26	30	9	7.5	1.5	–
6	46	45	2	2	0	0
7	50	55	1	1	0	0
8	42	40	3	4	–	1
9	36	40	5	4	1	–
10	20	10	10	10	0	0
योग					$\sum G=45$	$\sum G=4.5$

Note: $\sum G$ के दोनों स्तंभों का योग समान (Equal) होना चाहिए।

$$R = 1-\frac{6\sum G}{N^2-1}$$

$$= 1-\frac{6(4.5)}{10^2-1}$$

$$= 1-\frac{27}{100-1}$$

$$= 1-\frac{27}{99}$$

$$= 1-.2727$$

$= 0.727$ or $+0.73$ धनात्मक सह–संबंध है।

सह–संबंध गुणांक को ज्ञात करने की प्रमुख विधियों का वर्णन ऊपर किया गया है। इनमें प्रथम क्रमांतर विधि Rank Difference Method तथा दूसरी आघूर्ण गुणनफल विधि (Product Moment Method) क्रामांतर विधि का प्रयोग केवल उसी स्थिति में अधिक उपयुक्त रहता है जब दोनों चरों के आंकड़े केवल कोटियों के आधार पर व्यक्त किए जाते हैं और संख्या (N) अथवा प्रेक्षित आवृत्तियां कम रहती हैं इसीलिए कोटि–अंतर विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक (P) की गणना अप्राचल विधियों (Non-Parametric Method) में की जाती है। इसके विपरीत, प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक (r) की गणना प्राचल विधियों (Parametric Method) में की जाती है क्योंकि इस विधि के अंतर्गत प्राप्त आंकड़ों में प्रसामान्य वितरण (Normal Distribution) की उपधारणा (Assumption) रहती है।

इन दोनों प्रकार के आंकड़ों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी आंकड़े रहते हैं जिनमें एक चर (Variable) के आंकड़े निरंतर श्रेणी में तथा दूसरे चर के आंकड़ों का स्वरूप द्विभाजी रहता है। अथवा उनका स्वरूप किसी अन्य मापदण्ड के आधार पर दो भागों मे विभाजित रहता है, तथा दोनों चरों के आंकड़ों (Data) के विषय में प्रसामान्य वितरण (Normal Distribution) की उपधारणा भी रहती है। दोनों चरों मे से किसी एक चर के विषय में प्रसामान्य वितरण की धारणा अवश्य रहती है परन्तु दूसरे चर के आंकड़ों को प्रसामान्य वितरण के आधार पर विभाजित करना कठिन होता है, क्योंकि ऐसे आंकड़ों का स्वरूप वास्तव में द्वि–भाजी रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे आंकड़े भी रहते हैं जिनमें दोनों चरों का विभाजन द्वि–भाजी रहता है, और उनके आधार पर 2×2 की सारणी द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करना होता है।

द्वि–भाजी आंकड़े

सांख्यिकी में ऐसे आंकड़े आते हैं, जिनका स्वरूप खण्डित तथा द्वि–भाजी रहता है। द्वि–भाजी आंकड़ों से प्रायः ऐसे आंकड़ों का बोध होता है जिनकी व्याख्या तथा गणना व्यावहारिक रूप से केवल दो ही श्रेणियों में की जा सकती है। जैसा स्त्री–पुरुष, जीवित–मृत विवाहित–अविवाहित ऐसा द्वि–भाजन अरेखीय होता है। परन्तु कुछ

द्वि–भाजी आंकड़े ऐसे भी होते हैं जिनका स्वरूपरेखीय होता है तथा जिनका द्वि–भाजन किसी एक सूक्ष्म बिन्दु पर आधारित रहता है। जैसे सफल–असफल, आशावादी–निराशावादी, शुद्ध–अशुद्ध धार्मिक–अधार्मिक आदि। यहां द्वि–भाजन का आधार कोई एक मापदण्ड लिया जा सकता है। आंकड़ों के द्वि–भाजन का आधार मध्यमान (Mean) भी हो सकता है, इस स्थिति में श्रेणी का विभाजन मध्यमान के ऊपर तथा मध्यमान के नीचे किया जा सकता है। इस प्रकार द्वि–भाजन का आधार मध्यांक (Mediun) भी हो सकता है इस स्थिति में श्रेणी का भाजन मध्यांक के ऊपर तथा मध्यांक के नीचे किया जा सकता है। यहां आंकड़ों के वितरण के संबंध में कल्पना प्रसामान्य होने तथा निरंतर वितरण की होनी चाहिए।

द्वि–भाजी आंकड़ों के आधार पर प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक की गणना नहीं की जाती है क्योंकि प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि के लिए आंकड़ों में रेखीय सम्बन्ध होना चाहिए यदि ऐसा नहीं होता तो सह–संबंध गुणांक का मान कम रहता है।

इन विभिन्न प्रकार के आंकड़ों के आधार पर सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने की अलग–अलग विधियां होती है, तथा ऐसे सह–संबंधों को ज्ञात करने की विभिन्न विधियां एवं सूत्र भी अलग–अलग हैं जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं–

1. द्वि–पंक्तिक सह–संबंध (Biserial Correlation)
2. बिन्दु द्वि–'पंक्तिक सह–संबंध (Point Biserial Correlation)
3. फाई–गुणांक (Phi-Co-efficient)
4. चतुष्कोटिक सह–संबंध (Tetrachoric Correlation)
5. आंशिक सह–संबंध (Partial-Correlation)
6. बहुगुणी / बहुचरीय सह–संबंध (Multiple Correlation)

1. द्वि–पंक्तिक सह–संबंधी

जब दो चरों के आंकड़ों में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं तब द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना करना अधिक उपयुक्त होता है–

1. जब दोनों चरों का वितरण निरंतर (Continuous) हो, अथवा किसी कारणवश एक चर का वितरण निरंतर श्रेणी (Continuous Series) में न होकर द्वि–भाजी (Dichotomous) हो लेकिन यह द्वि–भाजन वास्तविक द्वि–भाजन (Real Dichotomy) नहीं होना चाहिए।
2. जब प्रेक्षित संख्या (Observed Number) बड़ी हो।
3. जब द्वि–भाजी चर में बहुत कम श्रेणियां (Categories) हों।
4. जब द्वि–भाजी आंकड़ों का वितरण अधिकतर अपने मध्यांक (Median) के निकट हो।
5. दोनों चरों के वितरणों के विषय में प्रसामान्य वितरण (Normal Distribution) की उपधारणा (Assumption) का होना आवश्यक है। यदि आंकड़े काफी विषम

(Skewed) हैं तो उनके विषय में प्रसामान्य वितरण की कल्पना करना प्रसामान्य वितरण की ही होनी चाहिए।

6. जब प्रतिदर्श के दोष के कारण, परीक्षण के प्रमापीकृत न होने के कारण अथवा प्रयोग में लाये गये यंत्र के दोष के कारण आंकड़े विषम हों, लेकिन ये आंकड़े प्रतिदर्श के कारण विषम हो सकते हैं लेकिन आंकड़ों के विषय में हमारी कल्पना प्रसामान्य वितरण की ही होनी चाहिए।
7. प्राप्त आंकड़ों का वितरण रेखीय (Linear) होना आवश्यक है।
8. जब द्वि–भाजी आंकड़े किसी कारण अपूर्ण हो और यह सन्देह बना रहे कि वे अपने मध्यमान से प्रायः समान दूरी पर नहीं है।
9. दोनों चरों के आंकड़ों के वितरण अपने–अपने मध्यमानों के दोनों और समान रूप से विचलित रहने चाहिए, आंकड़ों में इस प्रकार के विचलन की स्थिति को समविचलिता (Homascedasticity) कहा जाता है। द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना के लिए आंकड़ों में ऐसी स्थिति होना प्रत्याशित है।

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का प्रतीकात्मक चिह्न (Symbol) r_b होता है। इसकी गणना में प्रायः चार स्तम्भों (Four-Coloumns) का प्रयोग होता है। प्रथम स्तम्भ के प्रथम श्रेणी के व्यक्तियों की आवृत्तियां, तीसरे स्तंभ में y चर के द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियों की आवृत्तियां तथा चौथे स्तम्भ में समस्त व्यक्तियों की आवृत्तियां होती हैं। द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक को ज्ञात करने का सूत्र

$$r_b = \frac{m_p - m_q}{\delta_t} \times \frac{pq}{y}$$

r_b = द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक

r_b = प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान

Note: अधिक संख्या वाले विद्यार्थियों की गणना

m_p = प्रथम में तथा कम संख्या वाले विद्यार्थियों की गणना द्वितीय श्रेणी अर्थात् m_q में की जाती है।

p = समानुपात (Proportion) प्रथम श्रेणी वाले समूह

q = समानुपात (Proportion) द्वितीय श्रेणी वाले समूह

y = प्रसामान्य वितरण के कन्टिनुअम के उस बिन्दु पर कोटि का मान जहां p तथा q के समानुपात एक दूसरे से अलग होते हैं।

δ_t निरंतर वितरण Continuous Distribution वाले अथवा x चर के समस्त आंकड़ों का मानक विचलन

उदाहरण : बुद्धिलब्धि तथा समायोजन (Adjustment) के स्तर में सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए 64 विद्यार्थियों का एक प्रतिदर्श चुना गया है और समायोजन

अनुसूची के आधार पर समस्त समूह को दो श्रेणियों में A तथा B में विभाजित किया गया है। A श्रेणी में समायोजित विद्यार्थियों को तथा B श्रेणी में असमायोजित विद्यार्थियों को द्वि–भाजित किया गया है तथा बुद्धिलब्धि के आंकड़ों के सामने समायोजित व असमायोजित विद्यार्थियों की आवृत्तियां (F) दी गयी हैं। इन आंकड़ों के आधार पर दोनों चरों के मध्य द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

बुद्धिलब्धि प्राप्तांक	A श्रेणी की आवृत्तियां	B श्रेणी की आवृत्तियां
125 – 129	9	1
120 – 124	8	1
115 – 119	7	2
110 – 114	5	2
105 – 109	4	3
100 – 104	3	3
95 – 99	2	2
90 – 94	1	4
85 – 89	1	6
N =	40	24

हल :

	Y– Variable									
x Variable	A श्रेणी			B श्रेणी			A + B			
C–I	f	d	fd	f	d	fd	f	d	fd	Fd²
125 – 129	9	+4	36	1	+4	4	10	+4	40	160
120 – 124	8	+3	24	1	+3	3	9	+3	27	81
115 – 119	7	+2	14	2	+2	4	9	+2	18	36
110 – 114	5	+1	5	2	+1	2	7	+1	7	7
105 – 109	4	0	–	3	0	—	7	—	—	—
100 – 104	3	–1	–3	3	–1	–3	6	–1	–6	6
95 – 99	2	–2	–4	2	–2	–4	4	–2	–8	16
90 – 94	1	–3	–3	4	–3	–12	5	–3	–15	45
85 – 89	1	–4	–4	6	–4	–24	7	–4	–28	112
	40		64	24		–30	64		+35	463

NP = 40 Nq = 24 N = 64 $\sum fd^2 = 463$

$\sum fd^2 = +79 - 14 = 64 \quad \sum fd - 43 + 13 = -30 \quad \sum fd = +92 - 57 = +35$

$$M = AM + \frac{\sum fd}{N} \times i$$

$$Mp = 107 + \frac{65 \times 5}{40} = 107 + 8.125 = 115.125$$

$$Mq = 107 + \frac{-30 \times 5}{64} = 107 - 6.25 = 100.75$$

$$Mt = \frac{35 \times 5}{64} = 107 + 2.734 = 109.734$$

$$\delta t = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2} \times i$$

टिप्पणी

$$= \sqrt{\frac{463}{64} - \left(\frac{35}{64}\right)^2} \times 5$$

$$= \sqrt{7.234 - .299 \times 5}$$

$$= \sqrt{6.935 \times 5}$$

$= 2.633 \times 5$

$= 13.165$

$p = n_p/N = 40/64 = 0.625$

$q = n_q/N = 24/64 = 0.375$

y = .3792 (यह मान आगे परिशिष्ट में दी गयी सारणी में .625 के मान पर देखिए)

$$r_b = \frac{m_p - m_q}{\delta_t} \times \frac{p_q}{y}$$

$$= \frac{115.125 - 100.75}{13.165} \times \frac{0.625 \times 0.375}{.3792}$$

$$= \frac{14.375}{13.165} \times \frac{0.234375}{0.3792}$$

$= 1.092 \times 0.6181 = 0.675$

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का वैकल्पिक सूत्र–

$$r_b = \frac{m_p - m_t}{\delta_t} \times \frac{p}{y}$$

$$r_b = \frac{115.125 - 109.734}{13.165} \times \frac{0.625}{0.3792}$$

$$= \frac{5.391}{13.165} \times 1.648$$

$= 0.4094 \times 1.648 = 0.67469$

or 0.675

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) ज्ञात करने के चरण (Steps for Calculation of Biserial Co-efficient Correlation)

1. प्रथम श्रेणी (x) का मध्यमान ज्ञात करना (115.125)
2. द्वितीय श्रेणी (y) का मध्यमान ज्ञात करना (100.75)
3. x–चर की आवृत्ति वितरण का मानक विचलन ज्ञात करना (13.165)
4. p तथा q का का मान ज्ञात करना।

$$p = \frac{p \text{ की संख्या}}{\text{समस्त संख्या}} = 40/64 = .625$$

$$q = \frac{q \text{ की संख्या}}{\text{समस्त संख्या}} = 24/64 = 0.375$$

5. y का मान ज्ञात करना (जो पुस्तक के अंत में परिशिष्ट में दी गयी एक सारणी से ज्ञात किया जायेगा)
6. m_t यदि वैकल्पिक सूत्र का प्रयोग करना हो तो समस्त संख्या के मध्यमान m_t की गणना की जाती है। (109.734)
7. समस्त मानों को ज्ञात करके सूत्र में रखकर r_b का मान ज्ञात किया जाता है।

y के मान का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण–

y के मान को चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है।

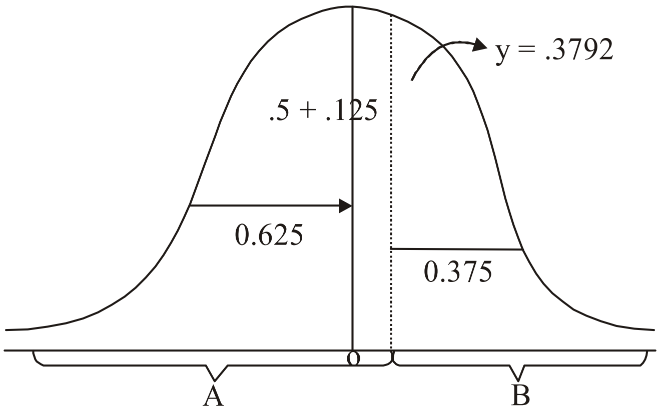

p चर में अंकों का विचलन अपने मध्यमान के दोनों ओर लगभग समान रूप से विस्तृत रहना चाहिए। अन्य शब्दों में p तथा q के मान 0.5 के ही निकट रहने चाहिए तथा दोनों में अधिक अंतर नहीं रहना चाहिए।

कभी–कभी द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) की मात्रा विशेष परिस्थितियों में ± 1 से अधिक भी हो सकती है ऐसा तभी संभव है जब चरों के अंकों का वितरण द्वि–बहुलांकी (Bimodal) होता है। द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) का मान प्रायः प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा ज्ञात सह–संबंध गुणांक (r) से अधिक होता है। दोनों प्रकार के सह–संबंध गुणांक में r_b की अपेक्षा (r) का मान अधिक विश्वसनीय होता है।

r_b की मान त्रुटि भी (r) की अपेक्षा होती है क्योंकि मानक त्रुटि की मात्रा p तथा q के मानों के अंतर में वृद्धि होने के साथ–साथ बढ़ जाती है। यहां एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि r_b प्रयोग प्रतीपगमन समीकरण (Regression Equation) में नहीं किया जा सकता क्योंकि y चर के अंकों का वितरण द्वि–भाजी रहता है।

2. बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का प्रतीकात्मक चिह्न (*rpbi*) होता है। जब एक चर (Variable) का वितरण निरंतर (Continuous) तथा प्रसामान्य (Normal) रहता है और दूसरे चर का वितरण वास्तविक रूप से खण्डित (Discrete) व द्वि–भाजी

(Dichotomous) रहता है अथवा दूसरे चर के वितरण के संबंध में प्रसामान्य (Normal) होने की कल्पना नहीं रहती है तो उस स्थिति में द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) की अपेक्षा बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) की गणना करना अधिक उपयुक्त होता है। अर्थात् जब कभी एक चर के आंकड़ों के संबंध में खण्डित व वास्तविक रूप से द्वि–भाजी (Dichotomous) होने का सन्देह होता है तो उस स्थिति में (r_{pbi}) की गणना की जानी चाहिए, तथा जब कभी एक चर का वितरण प्रसामान्य नहीं है इस बात का सन्देह होने लगे तो भी बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना ही उपयुक्त रहती है। स्मरण रहे कि जब आंकड़ों का वास्तविक द्वि–भाजन रहता है तब उनमें प्रसामान्य वितरण का प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तविक द्वि–भाजन के उदाहरण हैं–जीवित–मृत पुरुष–स्त्री, विवाहित–अविवाहित आदि। लेकिन व्यावहारिक जीवन में कभी–कभी एक चर के आंकड़ों का द्वि–भाजन किसी एक मापदण्ड के आधार पर किया जाता है और ऐसे द्वि–भाजन को ही एक प्रकार से वास्तविक द्वि–भाजन मान लिया जाता है जेसे सफल–असफल समायोजित–असमायोजित आदि। यहां दो श्रेणियों के मध्य अंतर एक सूक्ष्म बिन्दु के आधार पर ही किया जाता है और बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना में कभी–कभी ऐसे कृत्रिम द्वि–भाजन को भी वास्तविक द्वि–भाजन मान लिया जाता है। भले ही आंकड़ों का वितरण निरंतर भी हो और सामान्य भी हो।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणाक की गणना (Calculation of Point Biserial Co-efficient of Correlation)

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) की गणना में द्वि–भाजी आंकड़ों को दो श्रेणियों में अलग–अलग तथा शून्य (0) के भारित अंक प्रदान किये जाते हैं। अधिक संख्या वाली श्रेणी के व्यक्तियों को अंक 1 तथा कम संख्या वाली श्रेणी के व्यक्तियों को शून्य (0) अंक प्रदान किया जाता है।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने का सूत्र

$$r_{pbi} = \frac{m_p - m_q}{\delta_t}\sqrt{pq}$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) की गणना बहुत कुछ (r_b) के ही सूत्र व गणना के समान है। बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना को निम्न उदाहरण की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

उदाहरण : एक अध्ययन में बुद्धिलब्धि तथा यांत्रिक अभियोग्यता में सह–संबंध ज्ञात करने के लिए 10 विद्यार्थियों का संयोगिक आधार पर (On Random Basis) चयन किया गया पहले उनका मानकीकृत बुद्धि परीक्षण किया गया तथा उनके प्राप्तांक ज्ञात किए गये तत्पश्चात् उन्हें एक मानकीकृत यांत्रिक अभियोग्यता परीक्षण दिया गया इस परीक्षण में सफल होने वाले विद्यार्थियों को भारित अंक 1 तथा असफल विद्यार्थियों को 0 अंक प्रदान किया गया। दोनों परीक्षणों में परीक्षित विद्यार्थियों के संबंधित अंक निम्न सारणी में दिये गये दोनों चरों में विद्यार्थियों को दिये गये अंकों के आधार पर बिन्दु–द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) ज्ञात कीजिए।

विद्यार्थी	बुद्धिलब्धि x-Variable	यांत्रिक अभियोग्यता के परिणाम y-Variable		x^2	y^2	xy
		सफल	असफल			
1	120	1		14400	1	120
2	95		0	9025	0	00
3	118	1		13924	1	118
4	115		0	13225	0	00
5	124	1		15376	1	124
6	98		0	9604	0	00
7	116	1		13456	1	116
8	114		0	12996	0	00
9	112	1		12544	1	112
10	118	1		13924	1	118
	1130	Np = 6	Nq = 4	1,28,747	6	708

$$\sum x = 1130, \quad \sum p = 6, \quad \sum q = 4, \quad Np = 6, \quad Nq = 4, \quad N = 10$$

$$\sum x^2 = 128474 \quad \sum 4^2 = 6 \quad \sum x4 = 708$$

$$m_p = 120 + 118 + 124 + 116 + 112 + 118 + 708/6 = 118$$

$$m_q = 95 + 115 + 98 + 114 + = 422/4 = 105.5$$

$$m_t = 120 + 95 + 118 + 115 + 124 + 98 + 116 + 114 + 112 + 118 = 1130/10 = 113$$

$$\delta_t = \sqrt{\frac{\sum x^2}{N} - \left(\frac{\sum x}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{128474}{10} - \left(\frac{1130}{10}\right)^2}$$

$$= \sqrt{12847.4 - (113)^2}$$

$$= \sqrt{12847.4 - 12769}$$

$$= \sqrt{78.4} = 8.854$$

$$= \delta_t = 8.854$$

$$p = \sum P/N = 6/10 = 0.6$$

$$q = \sum q/N = 4/10 = 0.4$$

$$r_{pbi} = \frac{m_p - m_q}{\delta_t}\sqrt{pq}$$

$$= \frac{118 - 105.7}{8.854}\sqrt{0.6(0.4)}$$

$$= \frac{12.5}{8.854} \times \sqrt{0.24}$$

$$= 1.412 \times 0.48989$$

$$= 0.69$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना के लिए वैकल्पिक सूत्र
(Alternative Formula for Calculating Point Biserial Co-efficient of Correlation)

उदाहरण : $r_{pbi} = \frac{m_p - m_t}{\delta_t}\sqrt{\frac{p}{q}}$

उदाहरण 10 की सूचनाओं के आधार पर वैकल्पिक सूत्र के माध्यम से की गई गणना

$$= \frac{118-113}{8.854}\sqrt{\frac{0.6}{0.4}}$$

$$\frac{5}{8.854}\sqrt{1.5}$$

$$0.5647 \times 1.225 = 0.69$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक एक प्राचल (Parametric) विधि है इसी कारण इसका संबंध प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक से है। वास्तविकता तो यह है कि बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक जैसा ही है तथा गणना करने पर दोनों का मान एक ही आता है। इस बात को हम उदाहरण के मानों को मूल आंकड़ों से प्रोडक्ट मोमेण्ट द्वारा सह–संबंध गुणांक के सूत्र में रखकर सिद्ध भी कर सकते हैं।

मूल आंकड़ों से प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक का सूत्र है–

$$\frac{N\sum x4-(\sum x)(\sum 4)}{\sqrt{\left[N(\sum x^2)-(\sum x)^2\right]\left[N(\sum y^2)-(\sum y^2)\right]}}$$

उदारण : उदाहरण 10 में दिये गये मानों को सूत्र में रखने पर

$$\frac{10(708)-(1130)\ (6)}{\sqrt{[10(128474)-1130\times 1130][10(6)-6\times 6]}}$$

$$\frac{7080-6780}{\sqrt{[1284740-1276900][60-36]}}$$

$$\frac{300}{\sqrt{(7840)\ 24}}$$

$$\frac{300}{\sqrt{188160}} = \frac{300}{433.774}$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का मूल्यांकन
(Evaluation of Point Biserial Co-efficient of Correlation)

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) का मान प्रत्यक्ष रूप से m_q के अंतर पर आधारित होता है। यदि अंतर सार्थक रूप से अधिक होता है तो सह–संबंध गुणांक का मान भी उच्च तथा सार्थक होता है। बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक r_{pbi} के मान के संबंध में सार्थकता की जांच के लिए t परीक्षण का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रस्तुत उदाहरण में r_{pbi} का मान 0.69 है। यदि हमारी परिकल्पना बुद्धिलब्धि वाले विद्यार्थियों तथा यांत्रिक अभियोग्यता में सह–संबंध शून्य है तो ऐसी स्थिति में बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की सार्थकता की जांच (Significance of Point Biserial Correlation) प्रोडक्ट मोमेण्ट (r) के आधार पर की जा सकती है। क्योंकि r_{pbi} तथा r एक समान ही है। r_{pbi} की सार्थकता की जांच संबंधित सारणी में N-2 स्वतंत्रता के अंशों पर की जा सकती है।

प्रस्तुत उदाहरण में N = 10 तथा d.f. = 10–2 = 8 है। अतः 8 d.f. पर संबंधित सारणी देखने से पता लगता है कि 0.69 का r_{pbi} का मान .05 के विश्वास स्तर पर सार्थक है। क्योंकि इस स्तर पर सार्थकता का क्रान्तिक मान 0.632 से अधिक है। किन्तु यह मान 0.01 के विश्वास स्तर पर सार्थक नहीं है क्योंकि इस स्तर पर सार्थकता का मान 0.765 है और r_{pbi} का मान सार्थकता मान से कम है।

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक तथा बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का तुलनात्मक मूल्यांकन (Comparative Evaluation of Biserial Correlation and Point Biserial Correlation)

1. तुलनात्मक दृष्टि से बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) से अधिक उपयुक्त एवं अधिक विश्वसनीय होता है क्योंकि r_{pbi} गुणांक द्वि–भाजी आंकड़ों में प्रसामान्य वितरण की कोई कल्पना नहीं करता।
2. r_{pbi} का मान ± 1 की सीमाओं के अंतर्गत रहता है। यदि एक ही उदाहरण में r_b तथा r_{pbi} के सूत्रों का प्रयोग करके गणना की जाती है तो r_{pbi} का मान सदैव कम होगा। इसके विपरीत r_b का मान कभी–कभी ± 1 की सीमाओं से अधिक हो सकता है।
3. द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक r_b की तुलना किसी अन्य विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक से करना कठिन होता है इसके विपरीत बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) एक प्रकार से प्रोडक्ट मोमेण्ट (r) ही है।
4. पद विश्लेषण Item Analysis में दोनों प्रकार के सह–संबंधों r_b तथा r_{pbi} का प्रयोग किया जाता है परन्तु r_{pbi} का उपयोग अधिक उपयुक्त रहता है, क्योंकि इसमें द्वि–भाजी आंकड़ों के प्रति प्रसामान्य वितरण होने की कल्पना का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की मात्रा की अधिक सीमा
(Maximum Limit of Point Biserial Co-efficient Correlation)

जब दो चरों में से एक चर Variable निरंतर श्रेणी में रहता है और दूसरा चर द्वि–भाजी। उस स्थिति में कभी–कभी उनमें पूर्ण सह–संबंध (Perfect Correlation) भी हो सकता है परंतु फिर भी r_{pbi} का मान प्रायः ± 1 से कम ही होता है।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) का अधिकतम मान कभी भी न तो ± 1 रहता है और न ही इसका न्यूनतम मान कभी भी –1 तक आता है। अर्थात् r_{pbi} का मान ± 1 के बीच ही रहता है।

अभी तक सह–संबंध ज्ञात करने के जिन आंकड़ों का प्रयोग किया है उनमें एक चर निरंतर तथा दूसरा द्वि–भाजी रहा था लेकिन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में ऐसी भी स्थितियां आती हैं। जब दोनों ही चरों के आंकड़ें द्वि–भाजी हों तो ऐसी स्थिति में सह–संबंध गुणांक की गणना के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. फाई गुणांक (Phi-Co-efficient)
2. चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (Tetrachoric Correlation)

3. फाई गुणांक (Phi-Co-efficient)

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में दोनों चरों के आंकड़ों का स्वरूप द्वि–भाजी रहता है। यदि ये आंकड़े वास्तव में द्वि–भाजी होते हैं तो उनका विभाजन प्रसामान्य वितरण के स्वरूप का अनुसरण नहीं करता है। अतः जब दोनों चरों के आंकड़े खण्डित (Discrete) तथा द्वि–भाजी (Dichatomous) होते हैं और उनका वितरण प्रसामान्य नहीं होता है तो सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए फाई गुणांक की गणना अधिक उपयुक्त रहती है या इस प्रकार कहें कि आंकड़ों का किसी एक विशेष आधार पर द्वि–भाजन होता है तो उस स्थिति में फाई गुणांक की गणना की जा सकती है।

सैद्धान्तिक तौर पर जब आंकड़ों को केवल दो ही खण्डित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है जैसे विवाहित–अविवाहित, जीवित–मृत व स्त्री–पुरुष आदि तो आंकड़ों का वितरण प्रसामान्य नहीं हो सकता तथा सैद्धान्तिक रूप से ऐसे ही आंकड़ों के आधार पर जो 2×2 तालिका बनती है और ऐसे आंकड़ों से फाई–गुणांक की गणना उपयुक्त रहती है। परन्तु व्यावहारिक रूप में जब कभी निरंतर चरों को किसी एक विशेष आधार पर द्वि–भाजी बनाया जा सकता है जैसे तीव्र बुद्धि–मन्दबुद्धि, सफल–असफल, समायोजित–असमायोजित आदि अथवा जब आंकड़ों को मध्यांक के आधार पर मध्यांक के ऊपर तथा मध्यांक के नीचे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है उस स्थिति में 2×2 की तालिका के आधार पर फाई गुणांक ज्ञात किया जा सकता है।

फाई गुणांक को ज्ञात करने का सूत्र (Formula of Phi-Co-efficient)

फाई गुणांक का प्रतीकात्मक चिह्न ϕ होता है।

$$\phi = \frac{BC - AD}{\sqrt{(A+B)(C+D)(A+C)(B+D)}}$$

A, B, C तथा D दी गयी चतुष्पदी तालिका की चारों कोष्ठिकाओं (Cells) की आवृत्तियां हैं। B एवं C कोष्ठिकाओं की आवृत्तियां समान चिह्नों की आवृत्तियों को व्यक्त करती हैं। अर्थात् कोष्ठिका B में (++) (yes हां–yes हां) (सफल Pass–सफल Pass) आदि की आवृत्तियां रहती हैं तथा कोष्ठिका C में (– –) (No नहीं–No नहीं) (Fail–Fail) (असफल–असफल) आदि की आवृत्तियां। इसके विपरीत A व D कोष्ठिकाएं असमान आवृत्तियों को प्रदर्शित करती हैं। कोष्ठिका N में आवृत्तियों का स्वरूप (– +) (नहीं–हां) असफल–सफल आदि जबकि कोष्ठिका D में (+ –) (हां–नहीं)

सफल–असफल की आवृत्तियां रहती हैं। फाई गुणांक Phi co-efficient की गणना के लिए अंश (Numerator) में समान चिह्न वाली आवृत्तियों (++) तथा (– –) वाली आवृत्तियों के गुणनफल में से असमान चिह्न वाली आवृत्तियों (+ +) तथा (– –) वाली आवृत्तियों के गुणनफल में से असमान चिह्न वाली आवृत्तियों (– +) तथा (+ –) के गुणनफल को घटाकर लिखा जाता है, तथा हर (Denominator) में सीमान्त वाले (Marginal) योगों (Total) का वर्गमूल (Square root) रहता है। फाई गुणांक का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

X चर
++

Y चर (– –)			
	No-Yes नहीं–हां A	Yes-Yes हां–हां B	P A+B
	No-No नहीं–नहीं C	Yes-No हां–नहीं D	q C+D
	P' A+C	q' B+D	A+B+C+D N

उदाहरण : एक परीक्षण के दो पक्षों X तथा Y में 45 परीक्षार्थियों के परीक्षाफल के प्राप्त आंकड़ों के आधार पर निम्न तालिका द्वारा फाई गुणांक ज्ञात कीजिए

X चर

Y चर		असफल	सफल	योग
	असफल	A 11	B 16	A + B 27
	सफल	C 14	D 4	C+D 18
	योग	A+C 25	B+D 20	A+B+C+D =N 45

हल :

$$\phi = \frac{BC - AD}{\sqrt{(A+C)(B+D)(A+B)(C+D)}}$$

$$\phi = \frac{(16 \times 14) - (11 \times 4)}{\sqrt{(25)(20)(27)(18)}}$$

$$= \frac{224 - 44}{\sqrt{243000}}$$

$$= \frac{180}{482.95} = 0.3651 \text{ or } 0.37$$

उदाहरण : एक अभिरुचि अनुसूची में 100 परीक्षार्थियों के दो प्रश्नों (X तथा Y) के अन्तर हां तथा नहीं (yes or No) में नीचे तालिका में दिये गये हैं। दी गयी आवृत्तियों के आधार पर दोनों प्रश्नों में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

टिप्पणी

X चर

No	Yes	Total
A 27	B 20	A + B 47 P
C 24	D 29	C+D 53 q
A+C 51 P’	B+D 49 q’	A+B+C+D 100

$$\phi = \frac{(BC)-(AD)}{\sqrt{(A+C)(B+D)(A+B)(C+D)}}$$

$$= \frac{(20)(24)-(27)(29)}{\sqrt{(51)(49)(47)(53)}}$$

$$= \frac{480-783}{\sqrt{6225009}}$$

$$= \frac{-303}{\sqrt{2494-996}} \text{ or } \frac{-303}{2495} = 0.12$$

फाई गुणांक की गणना दी गयी आवृत्तियों के समानुपातों (Proportions) के आधार पर भी की जा सकती है। आवृत्तियों के समानुपातों के आधार पर फाई गुणांक ϕ का सूत्र इस प्रकार होता है–

$$\phi = \frac{bc-ad}{\sqrt{Pq\,P'q'}}$$

उदाहरण : उपर्युक्त उदाहरण के मानों को इस सूत्र में रखकर भी सह–संबंध गुणांक ज्ञात किया जा सकता है–

$$bc = \frac{20}{100} \times \frac{24}{100} = .0480$$

$$ad = \frac{27}{100} \times \frac{29}{100} = .0783$$

$$P = \frac{51}{100} = 0.51 \qquad q = \frac{49}{100} = 0.49$$

$$P' = \frac{47}{100} = 0.47 \qquad q' = \frac{53}{100} = 0.53$$

$$= \frac{0.0480-0.0783}{\sqrt{(0.51)(0.49)(0.47)(0.53)}}$$

$$= \frac{-.0303}{.06225009} = \frac{-0.0303}{0.2495}$$

$$= -0.12$$

टिप्पणी

यदि फाई गुणांक की गणना के लिए 2×2 तालिका के एक सीमान्त की दोनों कोष्ठिकाओं (Cells) के योग समान हों तब फाई गुणांक की गणना के लिए निम्न सरल सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$\phi = \frac{B - A}{\sqrt{Pq}}$$

उदाहरण : 50 विद्यार्थियों को दिये गये परीक्षण के दो पदों x तथा y में सफल तथा असफल विद्यार्थियों की आवृत्तियां नीचे तालिका में दी गयी हैं। प्राप्त परिणामों के आधार पर दोनों पदों x व y में सह–संबंध गुणांक कीजिए।

X चर

Y चर				
	सफल	A 12	B 18	A + B 30 P
	असफल	C 13	D 7	C+D 20 q
		A+C 25 P′	B+D 25 q′	A+B+C+D 100

इस तालिका में (A+C) तथा (B+D) के मान समान होने पर फाई गुणांक ϕ ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है।

$$\phi = \frac{B - A}{\sqrt{Pq}}$$

$$\phi = \frac{18 - 12}{\sqrt{30 \times 20}} = \frac{6}{\sqrt{600}}$$

$$= \frac{6}{24.495} = .245$$

फाई गुणांक ϕ के मान की जांच सबसे पहले प्रयुक्त किये गये फाई गुणांक के सूत्र द्वारा भी का जा सकती है। दोनों सूत्रों में ϕ का मान समान ही होगा।

उदाहरण :

$$\phi = \frac{BC - AD}{\sqrt{(A + C)(B + D)(A + B)(C + D)}}$$

$$= \frac{(18)(13)-(12)(7)}{\sqrt{(25)(25)(30)(20)}}$$

$$= \frac{234-84}{\sqrt{375000}}$$

$$= \frac{150}{612.37} = .229 \text{ or } 0.245$$

फाई गुणांक ϕ तथा प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध (σ) में संबंध–

फाई गुणांक ϕ एक प्रकार से प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक ही है। प्रथम उदाहरण को लिया गया है। दी गयी तालिका में केवल यह संशोधन किया गया है कि सफल होने वाले परीक्षार्थियों को 1 (one) तथा असफल होने वाले परीक्षार्थियों को 0 (zero) अंक प्रदान किये गये हैं। इस प्रकार अंक प्रदान करने के पश्चात 2×2 तालिका के अंकों में प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक σxy की तालिका निम्नवत् होगी–

Product Moment from a fold table प्रोडक्ट मोमेण्ट 4×4 तालिका द्वारा

उदाहरण :

X चर

Y चर	0	1	f	y′	fy′	fy′²	x′y′
1	11	16	27	1	27	27	16
0	14	4	18	0	0	0	
	25	20	48				

$x' = 1$

$fx' = 20$

$fx'^2 = 20$

$$\delta x = \sqrt{\frac{\sum fx'^2}{N} - \left(\frac{\sum fx'}{N}\right)^2}$$

$$\delta y = \sqrt{\frac{\sum fy'}{N} - \left(\frac{\sum fy}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{20}{45} - \left(\frac{20}{45}\right)^2} \qquad \delta y = \sqrt{\frac{27}{45} - \left(\frac{27}{45}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{40}{45} - \left(\frac{20}{45}\right)^2} \qquad = \sqrt{.60 - (.6)^2}$$

$$= \sqrt{.4444 - .1975} \qquad = \sqrt{0.24}$$

टिप्पणी

$\sqrt{0.2469}$ .4899

$\delta x = .4969$

$$r_{xy} = \frac{\frac{x'y'}{N} - C_x\, C_y}{(\delta x)(\delta y)}$$

$$r_{xy} = \frac{\frac{16}{45} - \frac{27}{45} \times \frac{20}{45}}{(.4969)(.4899)}$$

$$= \frac{.3556 - (0.6)\,(.44)}{0.2434}$$

$$= \frac{.3556 - .2667}{.2434}$$

$$= \frac{.0889}{.2434}$$

$$= 365 \quad or \quad 0.37$$

फाई गुणांक ϕ तथा फाई वर्ग $(x)^2$ में संबंध

फाई गुणांक तथा फाई–वर्ग में प्रत्यक्ष निकट संबंध है। 2×2 तालिका में x^2 फाई वर्ग ज्ञात करने का सूत्र

$$x^2 = \frac{N(AD - BC)^2}{(A+B)\,(C+D)\,(A+C)\,(B+D)}$$

तथा

$$\phi = \frac{(AD) - (BC)}{\sqrt{(A+B)\,(C+D)\,(A+C)\,(B+D)}}$$

अतः गणना करने पर

$$x^2 = N\phi^2$$

$$\phi = \sqrt{\frac{x^2}{N}}$$

उदाहरण : दोनों के संबंध को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

A 24	B 12	A+B 36
C 32	D 32	C+D 64
A+C 56	B+D 44	A+B+ C+C 100N

$$x^2 = \frac{N(AD - BC)^2}{(A+B)\,(B+D)\,(C+D)\,(A+C)} \qquad x^2 = \frac{100\,(24)\,32 - (12)\,(32)}{(56)\,(44)\,(36)\,(64)}$$

$$x^2 = \frac{100\,(768-384)}{5677056} \qquad \frac{100\,(768-384)^2}{5677056}$$

$$\frac{14745600}{5677056} \qquad = 2.59 \ or \ 2.6$$

$$\phi = \frac{(AD)-(BC)}{\sqrt{(A+C)\,(B+D)\,(A+B)\,(C+D)}}$$

$$\phi = \frac{(24)\,(32)-(12)\,(32)}{\sqrt{(56)\,(44)\,(36)\,(64)}} = \frac{768-384}{\sqrt{5677056}} = \frac{384}{2382.66}$$

$$= 0.16$$

$$x^2 = N\phi^2$$

$$x^2 = 100\,(.16)^2$$

$$= 100\,(0.256)$$

$$= 2.56$$

$$= 2.6$$

$$\phi = \frac{\sqrt{x^2}}{N}$$

$$\phi = \sqrt{\frac{2.6}{100}} = \sqrt{.026}$$

$$= .16$$

फाई गुणांक ϕ का मूल्यांकन

द्वि–भाजी आंकड़ों के लिए फाई गुणांक एक प्रकार का प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक ही है लेकिन प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक (r_{xy}) तथा फाई गुणांक (ϕ) का विवेचन समरूप नहीं होता है क्योंकि फाई गुणांक के लिए आंकड़ों का स्वरूप प्रसामान्य वितरण पर आधारित नहीं होता है जबकि प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक के लिए अंकों के वितरण में प्रसामान्य वितरण की कल्पना जरूरी होती है। माना ϕ का मान 0.45 है तथा r_{xy} का मान भी +.45 तब भी इन समान मानों की विवेचना समान नहीं होती है।

फाई वर्ग गुणांक की अपनी सीमायें होती हैं व्यावहारिक रूप से इसका मान +1 तथा –1 नहीं आता है। फाई गुणांक (ϕ) केवल उसी विशेष स्थिति में +1 के मान तक पहुंच सकता है जब 2×2 की तालिका में B = C है तथा A व D का मान अलग–अलग शून्य (0) होता है। जैसे निम्न तालिका से स्पष्ट है।

टिप्पणी

0	20	20
20	0	20
20	20	140

$\phi = +1$

इसी प्रकार फाई गुणांक के –1 मान के लिये B तथा C के अलग–अलग शून्य होने चाहिए।

50	0	50
0	50	50
50	50	100

$\phi = -1$

इन विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य परिस्थितियां भी फाई गुणांक के मान के सीमित रहने के कारण एक चर के ज्ञान के आधार पर, दूसरे चर के विषय में शुद्ध रूप से भविष्य कथन (Prediction) करना कठिन हो जाता है। अन्य शब्दों में 2×2 तालिका के द्वि–भाजी आंकड़ों में ϕ की सहायता से एक चर के ज्ञान द्वारा दूसरे मान का भविष्य–कथन शुद्ध रूप से करना संभव नहीं होता है और फाई गुणांक ϕ में यह दोष निरंतर देखने में आता है। परंतु इस कमी के कारण फाई गुणांक ϕ की उपयोगिता कम नहीं हुई है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में इसका विशेष महत्व होता है और उस स्थिति में फाई गुणांक का महत्व और भी बढ़ जाता है जबकि आंकड़ों का स्वरूप वास्तव में द्वि–भाजी रहता है।

फाई गुणांक के मान की सार्थकता की जांच

फाई गुणांक के मान की सार्थकता की जांच के लिए कोई सुविधाजनक सूत्र नहीं है अतः फाई गुणांक की मानक त्रुटि (Standard Error) का पता लगाना कठिन है। परंतु (x^2) फाई–वर्ग के माध्यम से फाई गुणांक के मान की सार्थकता की जांच आसानी से की जा सकती है। इसके लिए पहले फाई गुणांक ϕ के मान को निम्न सूत्र द्वारा फाई–वर्ग (x^2) में परिवर्तित करते हैं।

$$x^2 = N(\phi)^2$$

इस अध्याय की 2×2 तालिका पर आधारित एक उदाहरण में फाई गुणांक का मान 0.37 है तथा N = 45 है। इस मान को x^2 में परिवर्तित करने पर

$x^2 = N\phi 2$

$x^2 = 45\,(0.37)\,(0.37)$

$x^2 = 45\,(.1369)$

$x^2 = 6.16$

2×2 की तालिका में स्वतंत्रता (Degree of Freedom) = 1 होती है x^2 तालिका में सार्थकता मान

5% विश्वास स्तर पर 3.84

1% विश्वास स्तर पर 6.64 है

प्रस्तुत उदाहरण में प्राप्त x^2 का मान 6.16 5% विश्वास स्तर पर सार्थक है परंतु 1% के विश्वास स्तर पर सार्थक नहीं होता है। इस प्रकार ϕ फाई गुणांक के मान को कोई वर्ग (x^2) में परिवर्तित किया जाता है। तब फाई गुणांक ϕ का मान उसी विश्वास स्तर पर सार्थक होगा जिस पर x^2 का मान सार्थक होगा। इसके विपरीत यदि x^2 का मान सार्थक नहीं आता है तो फाई गुणांक ϕ का मान भी सार्थक नहीं माना जाता है।

4. चतुष्कोष्टिक सह–संबंध

जब द्विचर आंकड़ों का स्वरूप सुविधाजनक द्वि–भाजी होता है तथा उनका विवरण निरंतर रहता है और ऐसे आंकड़ों के संबंध में कल्पना प्रसामान्य वितरण की रहती है तो ऐसी स्थिति में 2×2 तालिका के आधार पर फाई गुणांक के स्थान पर चतुष्कोष्टिक सह–संबंध की गणना अधिक उपयुक्त रहती है क्योंकि फाई गुणांक ऐसे दोनों चरों में व्याप्त सह–संबंध गुणांक का मूल्यांकन कम करता है। दूसरा फाई गुणांक की गणना में प्रसामान्य वितरण की कल्पना नहीं होती क्योंकि जब आंकड़े वास्तविक रूप से द्वि–भाजी होते हैं तो प्रसामान्य रूप से वितरित होने की कल्पना नहीं की जा सकती है।

जब आंकड़ों का वास्तविक स्वरूप तो निरंतर हो तथा दोनों चरों के द्वि–भाजी आंकड़ों का स्वरूप रेखीय हो लेकिन गणना की सुविधा के लिए किसी अन्य कृत्रिम आधार में दो भागों में विभाजित कर लिया जाता है तो ऐसे आंकड़ों का स्वरूप द्वि–भाजी होते हुए भी निरंतर तथा कन्टिन्यूअम पर रहता है तो चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक का प्रतीकात्मक चिह्न *rt* होता है। इसकी गणना का मौलिक सूत्र जटिल है इसी कारण इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक *rt* को ज्ञात करने का सूत्र

(Formula for Calculating Tetrachoric Correlation)

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक (*rt*) की गणना के लिए निम्नलिखित को साइन–पाई सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$rt = \text{Cos}\ Cos\left(\frac{180}{1+\sqrt{BC/AD}}\right)$$

यहां *rt* चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक है ABC तथा D चतुष्कोष्टिक तालिका की कोष्ठिकाओं (Cells) की अलग–अलग आवृत्तियां हैं तथा पाई (π) का मान 180° है। *rt* को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

उदाहरण : समायोजन तथा शैक्षिक योग्यता में सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए दो अलग–अलग परीक्षणों के लिए एक कक्षा से संयोगिक आधार पर 125 विद्यार्थियों का चयन किया गया। समायोजन अनुसूची (Test x) के आधार पर 125 विद्यार्थियों में से 60 समायोजित तथा 65 असमायोजित पाए गये। दूसरे परीक्षण (Test y) में शैक्षिक योग्यता परीक्षण में 125 में 70 सफल तथा 55 असफल पाये गये। दोनों परीक्षणों द्वारा प्राप्त परिणाम को 2×2 की तालिका में अंकित किया गया है। दिये

गये इन आंकड़ों के परिणाम के आधार पर दोनों चरों x तथा y में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

x–चर

	असफल	सफल	योग
x–चर	A 30	B 40	A+B 70
	C 35	D 20	C+D 55
	A+C 65	B+C 60	N 125

हल :

उपरोक्त तालिका के आधार पर AD = 30 × 20 = 600

BC = 40 × 35 = 1400

$$rt = Cos\frac{180}{1+\sqrt{\frac{BC}{AD}}}$$

$$= Cost\left[\frac{180}{1+\sqrt{\frac{1400}{600}}}\right]$$

$$= \text{Cosine}\ \frac{180 \times 24.495}{61.912}$$

$$= \text{Cosine}\ \frac{4409.100}{61.912}$$

$$= 71.2 \quad \text{or} \quad 71°$$

$$= .326 \quad \text{or}.33$$

(परिशिष्ट में दी गयी Cosine Table में 71° का मान देखने पर 71° = .326 0.033)

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध rt का अन्य उदाहरण।

उदाहरण : बुद्धि के स्तर तथा गणित की योग्यता में सह–संबंध को जांचने के लिए 50 छात्रों का संयोगिक आधार पर चयन किया गया और उनका बुद्धि परीक्षण किया गया। बुद्धिलब्धि के आधार पर 180 छात्रों को दो भागों में विभाजित किया गया। (1) जिन्होंने 100 से ऊपर प्राप्तांक पाये (उच्चतर बुद्धि वाले (2) जिन्होंने 100 से कम प्राप्तांक पाये (निम्नतर बुद्धि वाले) फिर गणित परीक्षण में उन्हीं 100 छात्रों को प्राप्तांकों के आधार पर सफल तथा असफल श्रेणी में रखा गया। दोनों परीक्षणों के परिणाम नीचे 2 × 2 तालिका में दिये गये हैं।

	x–चर		
	असफल	सफल	योग
	A 30	B 40	A+B 70
y–चर	C 35	D 20	C+D 55
	A+C 65	B+C 60	N 125

हल :

उपरोक्त तालिका के आधार पर

$$BC = 36 \times 26 = 936$$

$$AD = 24 \times 14 = 336$$

$$rt = \text{Cosine}\left[\frac{180}{1+\sqrt{\frac{BC}{AD}}}\right]$$

$$= \text{Cosine}\frac{[180]}{1+\sqrt{\frac{936}{336}}}$$

$$= \text{Cosine}\left[1+\frac{\frac{180}{30.594}}{18.330}\right]$$

$$= \text{Cosine}\left[\frac{180 \times 18.33}{48.924}\right]$$

$$= \text{Cosine}\left[\frac{3299.4}{48.924}\right]$$

$$= \text{Cosine}\,67.43 \quad \text{or} \quad 67^\circ$$

तालिका में देखने पर 67° का मान = .391 है।

$$= 0.39$$

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध ज्ञात करने का संक्षिप्त सूत्र

1. $rt = \frac{BC}{AD}$ (यदि BC का मान AD के मान से अधिक हो) BC > AD

2. $rt = \frac{AD}{BC}$ (यदि AD का मान BC के मान से अधिक हो AD > BC)

यहां यह स्मरण रखने की बात है कि B तथा C कोष्ठिकाओं (Cells) के मान (++) तथा (– –) होने के कारण परस्पर सहमति को व्यक्त करते हैं अतः जब BC का मान AD के मान से अधिक रहता है तो धनात्मक सह–संबंध (Positive Correlation) प्राप्त होता है। इसके विपरीत A तथा D कोष्ठिकाओं (Cells) के मान (– +) तथा (+ –) होने के कारण परस्पर असहमति को प्रकट करते हैं अतः असहमति की स्थिति में ऋणात्मक सह–संबंध Negative Correlation प्राप्त होता है।

संक्षिप्त सूत्र द्वारा चतुष्कोष्टिक सह–संबंध की गणना की जांच–

अब rt के मान को सूक्ष्म सूत्र द्वारा ज्ञात करने के लिए ऊपर दिये गये उदाहरणों को ही प्रयोग में लाया गया है। पहले उदाहरण में

1. AD का मान = 30 × 20 = 600 तथा
2. BC का मान 40 × 35 = 1400

अतः BC तथा AD का अनुपात

$$\frac{BC}{AD}\ \frac{1400}{600} = 2.33$$

प्राप्त BC/AD के अनुपात के मान को परिशिष्ट में दी गयी तालिका में देखने पर rt का मान = 0.32 आता है। Consine Pie सूत्र द्वारा यह मान = .326 आता है।

इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में,

जबकि BC (36) (26) = 936

AD = (24) (14) = 336

अतः BC व AD अनुपात

$$\frac{936}{336} = 2.786$$

2.786 का मान संबंधित तालिका में देखने पर rt का मान 0.385 आता है Consine Pie सूत्र द्वारा यह मान 0.39 आता है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक rt का संक्षिप्त सूत्र बहुत ही सरल एवं सुविधाजनक है इसमें गणना कम करनी पड़ती है और परिणाम दशमलव के दो अंकों तक शुद्ध रहते हैं।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध के सूत्रों के प्रयोग की सीमाएं

(Limitation for the Use of *rt* Formula)

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध उसी स्थिति में उपयुक्त व उत्तम रहता है जब दोनों चरों के द्वि–भाजी आंकड़ों का विभाजन अपने–अपने मध्यांक के निकट हो, उनके विभाजन अपने वितरण में 0.5 भाग पर हों अथवा इस बिन्दु के आस–पास हों।

यदि आंकड़ों का विभाजन 0.95 तथा 0.5 के कटाव बिन्दुओं पर अथवा 0.90 तथा 0.10 पर हो तो इस सूत्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध की विश्वसनीयता

चतुष्टकोष्टिक सह–संबंध *rt* का मान उन स्थितियों में सबसे अधिक विश्वसनीय रहता है जब इसकी गणना अधिक आंकड़ों पर की गयी हो तथा अब आंकड़ों के वितरण में विभाजन के कटाव बिन्दु 0.50 पर हों।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (*rt*) तथा गुणांक ϕ का मूल्यांकन तथा तुलनात्मक अध्ययन

- फाई गुणांक तथा चतुष्कोष्टिक सह–संबंध में वही संबंध है, जो बिन्दु द्वि–पंक्तिक (*rpbi*) तथा द्वि–पंक्तिक सह–संबंध (*rb*) में होता है।
- फाई गुणांक की गणना के लिए चरों का द्वि–भाजन वास्तव में द्वि–भाजी होता है लेकिन फाई गुणांक के संबंध में प्रसामान्य वितरण तथा निरंतर व रेखीय वितरण होने की कोई कल्पना नहीं रहती है। इसके विपरीत चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (*rt*) के लिए द्वि–भाजी आंकड़ों का द्वि–भाजन कृत्रिम होता है व वितरण के प्रसामान्य होने की कल्पना भी रहती है तथा आंकड़ों का स्वरूप निरंतर व रेखीय रहता है।
- यदि दो एक समान 2×2 की तालिकाओं से (*rt*) तथा (ϕ) की गणना की जाए तब ϕ का मान सदैव *rt* से कम रहता है। अन्य शब्दों में ϕ एक प्रकार से *rt* का कम मूल्यांकन करता है।
- चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक (*rt*) की मान त्रुटि की गणना जटिल होती है लेकिन फाई गुणांक की विश्वसनीयता की जांच ϕ के मान को x^2 फाई वर्ग में परिवर्तित करके सरलतापूर्वक की जा सकती है। यदि x^2 का मान दिये गये d.f पर विश्वसनीय है तब फाई–गुणांक का मान भी विश्वसनीय मान लिया जाता है।
- चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक का मान सीमान्त योगों (Marginal Totals) से प्रभावित नहीं होता है लेकिन फाई–गुणांक ϕ के मान पर सीमान्त योगों का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।

5. आंशिक सह–संबंध

अभी तक सह–संबंध की जिन विधियों का वर्णन किया गया है उनका संबंध दो चरों से रहा है। व्यवहार में अनेक परिस्थितियां ऐसी आती हैं जब तीन या चार चरों के बीच सह–संबंध ज्ञात करना होता है। मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र तथा सामाजिक विज्ञानों में कभी–कभी ऐसी परिस्थितियां आती हैं जब हमें दो चरों के सह–संबंध में से तीसरे व चौथे के प्रभाव को अलग करना होता है, ऐसी स्थिति में आंशिक सह–संबंध ज्ञात किया जाता है। और कभी–कभी दो या इससे अधिक चरों के प्रभाव का किसी एक चर पर सह–संबंध ज्ञात करने की आवश्यकता होती है, ऐसी स्थिति में बहुचरीय सह–संबंध की गणना की जाती है।

आंशिक सह–संबंध में एक आश्रित चर (Dependent Variable) तथा एक स्वतंत्र (Independent Variable) में सह–संबंध इस आधार पर ज्ञात किया जाता है कि अन्य सभी चरों का प्रभाव स्थिर है अथवा उनके प्रभाव को हटा दिया गया है। अन्य शब्दों में आंशिक सह–संबंध गुणांक एक स्वतंत्र चर को छोड़कर अन्य सभी स्वतंत्र चरों को स्थिर मान लेता है।

जब कभी दो चरों में शुद्ध सह–संबंध ज्ञात करने के लिए किसी एक तीसरे चर के प्रभाव को स्थिर करना पड़ता है तो उस स्थिति में हमें जो आंशिक सह–संबंध प्राप्त होता है उसे प्रथम स्तरीय आंशिक सह–संबंध कहते हैं। और जब दो चरों में शुद्ध सह–संबंध ज्ञात करने के लिए अन्य संबंधित चरों के प्रभावों को अलग अथवा स्थिर कर दिया जाता है तो उस स्थिति में प्राप्त होने वाले सह–संबंध गुणांक को द्वि–स्तरीय आंशिक सह–संबंध कहते हैं। ऐसे आंशिक सह–संबंध का सांकेतिक चिह्न 12.34 होता है, इसका अर्थ है कि पहले, दूसरे चरों के सह–संबंध गुणांक में तीसरे व चौथे चर के प्रभाव को स्थिर कर दिया गया है। इसी प्रकार r 13.24 का अर्थ है पहले तथा तीसरे चर में सह–संबंध गुणांक के लिये दूसरे व चौथे चरों के प्रभाव को अलग कर दिया गया है।

आंशिक सह–संबंध का गणना सूत्र (Calculating Formula of Partial Correlation)

1. $r_{12.3} = \dfrac{r_{12} - r_{13}\, r_{23}}{\sqrt{1-r_{13}^2}\,\sqrt{1-r_{23}^2}}$

यहां– r_{12} = चर x_1 तथा x_2 में सह–संबंध गुणांक

r_{13} = चर x_1 तथा x_3 में सह–संबंध गुणांक

r_{23} = चर x_2 तथा x_3 में सह–संबंध गुणांक

$r_{12.3}$ = चर x_1 तथा x_2 में आंशिक सह–संबंध गुणांक तथा x_3 का प्रभाव स्थिर है।

2. $r_{12.3} = \dfrac{r_{13} - r_{12}\, r_{23}}{\sqrt{1-r_{12}^2}\,\sqrt{1-r_{23}^2}}$

$r_{13.2}$ x_1 तथा x_3 में आंशिक सह–संबंध है तथा x_2 का प्रभाव स्थिर है।

3. $r_{23.1} = \dfrac{r_{23} - r_{12}\, r_{13}}{\sqrt{1-r_{12}^2}\,\sqrt{1-r_{13}^2}}$

$r_{23.1}$ = चर x_2 तथा x_3 में आंशिक सह–संबंध है तथा चर x_1 का प्रभाव स्थिर है।

इसी प्रकार यदि चार चर (Four Variable) हों तो कुछ आंशिक सह–संबंध गुणांक निम्न सूत्रों के माध्यम से ज्ञात किए जाएंगे–

$$r_{14.2}\frac{r_{14}-r_{12}\ r_{24}}{\sqrt{\left(1-r_{12}^{r^2}\right)\sqrt{1-{}_{24}^{r^2}}}}$$

x_1 तथा x_3 में आंशिक सह–संबंध है तथा x_4 का प्रभाव स्थिर है।

$$r_{12.4}\frac{r_{12}-r_{14}\ r_{24}}{\sqrt{\left(1-r_{14}^{r^2}\right)\sqrt{1-{}_{24}^{r^2}}}}$$

x_1 तथा x_2 में आंशिक सह–संबंध है तथा x_4 का प्रभाव स्थिर है।

उदाहरण : तीन चरों वाले वितरण से निम्न सूचना प्राप्त है–

$r_{12} = 0.7 \quad r_{13} = 0.61 \quad r_{23} = .4$

तब,

$r_{23.1}$, $r_{13.2}$ तथा 12.3 के मान ज्ञात कीजिए।

1. $$r_{23}\frac{r_{23}-r_{12}\ r_{13}}{\sqrt{\left(1-r_{12}^{r^2}\right)\sqrt{1-{}_{13}^{r^2}}}}$$

$$r_{23.1}\frac{0.4-(0.7)\ (0.61)}{\sqrt{1-(.7)^2\ \sqrt{1-(.61)^2}}}$$

$$\frac{0.4-0.427}{\sqrt{1-.49}\ \sqrt{1-0.3721}}$$

$$\frac{0.027}{\sqrt{0.51}\ \sqrt{0.6270}}$$

$$\frac{0.027}{0.714\times.792}=\frac{0.027}{0.5658}=0.0477\ \ or\ \ 0.048$$

2. $$r_{13.2}=\frac{r_{13}-r_{12}\ r_{23}}{\sqrt{\left(1-r_{12}^2\right)}\ \sqrt{\left(1-r_{23}^2\right)}}$$

$r_{13} = 0.61$

$r_{12} = 0.7$

$r_{23} = 0.4$

$$r_{13.2}=\frac{0.61-(.7)\ (.4)}{\sqrt{(1-(.7)^2}\ \sqrt{1-(.4)^2}}$$

$$r_{13.2}=\frac{0.61-.28}{\sqrt{1-49}\ \sqrt{1-.16}}$$

$$\frac{0.33}{.51\sqrt{.84}}=\frac{0.33}{.6545}=0.504$$

टिप्पणी

3. $$r_{12.3} \frac{r_{12} - r_{13}\ r_{23}}{\sqrt{\left(1 - r_{13}^2\right)}\ \sqrt{1 - r_{23}^2}}$$

$$r_{12.3} \frac{.7 - (0.61)\ (0.4)}{\sqrt{(1 - (.61)^2}\ \sqrt{1 - (.4)}}$$

$$\frac{0.7 - 0.244}{\sqrt{1 - .3721}\ \sqrt{1 - .16}}$$

$$\frac{0.456}{0.7262} = .6279 \quad or \quad .628$$

6. बहुगुणी / बहुचरीय सह–संबंध

बहुगुणी / बहुचरीय सह–संबंध के अंतर्गत एक चर तथा दो या दो से अधिक स्वतंत्र (Independent Variable) चरों के बीच सह–संबंध ज्ञात किया जाता है। जब एक चर के संबंध में आकलन अन्य दो या दो से अधिक चरों पर आधारित रहता है, तो उन संबंधित चरों के संयुक्त प्रभाव को ज्ञात करने के लिए उनके संयोजित सह–संबंध गुणांक की गणना करनी होती है। ऐसे संयोजित सह–संबंध को ही बहुचरीय सह–संबंध कहते हैं।

उदाहरण स्वरूप $x_1\, x_2$ तथा x_3 दिये गये हैं। x_1 भार x_2 लंबाई तथा x_3 उम्र को व्यक्त करता है। तो हम किसी लंबाई तथा उम्र के लिए भार ज्ञात कर सकते हैं। इसी प्रकार उम्र तथा भार के लिए लंबाई ज्ञात की जा सकती है। इसका संकेताक्षर R होता है। बहुगुणी / बहुचरीय सह–संबंध गुणांक को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है–

$$R_{1.23} \sqrt{\frac{r_{12} + r_{13}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{23}^2}}$$

$$R_{2.13} \sqrt{\frac{r_{12}^2 + r_{23}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{23}^2}}$$

$$R_{3.12} \sqrt{\frac{r_{13}^2 + r_{23}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{13}^2}}$$

इसी प्रकार यदि चर Variable चार हैं तो सूत्र इस प्रकार होगा–

$$R_{1.24} = \sqrt{\frac{r_{12} + r_{14} - 2r_{12}\ r_{14}\ r_{24}}{1 - r_{24}^2}}$$

$$R_{2.14} = \sqrt{\frac{r_{12} + r_{24}^2 - 2r_{12}\ r_{14}\ r_{24}}{1 - r_{14}^2}}$$

$$R_{1.34}\sqrt{\frac{r_{13}^2 + r_{14}^2 - 2r_{13}\ r_{14}\ r_{34}}{1 - r_{34}^2}}$$

$$R_{3.24}\sqrt{\frac{r_{23}^2 + r_{24}^2 - 2r_{23}\ r_{24}\ r_{34}}{1 - r_{24}^2}}$$

R के नीचे दशमलव के बायीं ओर आश्रित चर तथा दायीं ओर स्वतंत्र चर दिये जाते हैं। जैसे $R_{2.134}$ यहां x_2 आश्रित तथा $x_1\,x_3$ व x_4 स्वतंत्र चर हैं।

बहुचरीय सह–संबंध की गणना

$r_{12} = 0.98$

$r13 = 0.44$

$r_{23} = 0.54$

इन सूचनाओं के आधार पर पहले चर को आश्रित तथा दूसरे व तीसरे चर को स्वतंत्र मानकर बहुगुणी सह–संबंध की गणना कीजिए–

$$R_{1.23}\sqrt{\frac{r_{12}^2 + r_{13}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{23}^2}}$$

$$\sqrt{\frac{(.98)^2 + (.44)^2 - 2(.98)\,(.44)\,(.54)}{1 - (.54)^2}}$$

$$\sqrt{\frac{.9604 + .1936 - .4557}{1 - .2916}}$$

$$\sqrt{\frac{.6883}{.7084}}$$

$\sqrt{.9716262} = 0.9857$ या 0.986

उदाहरण : निम्न सूचनाओं के आधार पर $R_{2.13}$ तथा $R_{3.12}$ ज्ञात कीजिए।

$r_{12} = 0.8$

$r_{13} = 0.4$

$r_{23} = 0.5$

$$R_{2.13}\sqrt{\frac{r_{12}^2 + r_{23}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{13}^2}}$$

$$\sqrt{\frac{(.8)^2 + (.5)^2 - 2(.16)}{1 - (.4)^2}}$$

$$\sqrt{\frac{.64+25-2(.16)}{1-.16}} = \sqrt{\frac{0.89-.32}{.84}} = \frac{.57}{.84}$$

$$= \sqrt{.67857} = 0.8237 \ or \ 0.824$$

$$R_{3.12} = \sqrt{\frac{r_{13}^2 + r_{23}^2 - 2(r_{13})(r_{13})(r_{23})}{1 - r_{12}^2}} = \sqrt{\frac{(.4)^2 + (.5)^2 - 2(.8)(.4)(.5)}{1-(.8)^2}}$$

$$= \sqrt{\frac{.09}{.36}} = \sqrt{.25} = 0.5$$

बहुचरीय सह–संबंध Multiple Correlation को ज्ञात करने के लिए x पर y तथा z के समानुपाती (Proportional) प्रभावों को संयोजित किया जाता है। y तथा z चरों के समानुपाती प्रभावों को संयोजित करने की विधियां काफी जटिल व कठिन हैं इसलिये यहां एक सरल विधि का प्रयोग किया गया है जिसे संचय वर्ग (Pooling Square) विधि कहते हैं। इसके उपयोग के लिए पहले विभिन्न चरों के सह–संबंध गुणांकों को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया जाता है–यदि $x_4 = .86, xz = .72$ or $yz = .48$

संचय वर्ग तालिका (Pooling Square Table)

चर	x	y	z
x	1.0	.86	.72
y	.86	1.0	.48
z	.72	.48	1.0

यहां y तथा z के प्रभावों को संयोजित करने के लिए y तथा z वाले स्तंभों (Columns) को दोहरी रेखाओं में अलग कर दिया जाता है। उसके पश्चात् सह–संबंध मैट्रिक्स की निम्न आधार पर रचना की जाती है–

$$\begin{array}{c|c} a & c \\ c & b \end{array}$$

$$a = r_{xx} = 1.0$$

$$c = r_{xy} + r_{xz} = .86 + .72 = 1.58$$

$$b = r_{yy} + r_{yy} + r_{yz} + r_{yz}$$

1.0 + 1.0 + .48 + .48

2.96

यहां बहुचरीय सह–संबंध का सूत्र इस प्रकार होगा–

$$R = \frac{C}{\sqrt{ab}}$$

$$\frac{1.58}{\sqrt{(1)\,(2.96)}} = \frac{1.58}{\sqrt{2.96}}$$

$$\frac{1.58}{1.72} = .918$$ या 0.92

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि पहले x चर का y तथा z के साथ अलग–अलग सह–संबंध .86 तथा .72 था लेकिन बहुचरीय सह–संबंध (अथवा y तथा z के प्रभावों को संयोजित करने पर) 0.92 हो गया है। भविष्य कथन y तथा z चरों के संयोजित सह–संबंध अथवा बहुचरीय सह–संबंध के आधार पर किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. गुणनफल–आपूर्ण सह–संबंध विधि का प्रतिपादन कार्ल पियरसन ने कब किया?

   (क) सन् 1885 (ख) सन् 1888

   (ग) सन् 1892 (घ) सन् 1890

8. कार्ल पियरसन का सह–संबंध गुणांक किस संकेताक्षर के द्वारा दर्शाया गया है?

   (क) rp (ख) r

   (ग) r_c (घ) r_k

5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (घ)
3. (ग)
4. (ख)
5. (क)
6. (ख)
7. (ग)
8. (ख)

5.7 सारांश

जिस प्रकार किसी समूह या समुदाय का मुख्य मान उस समूह अथवा समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है ठीक उसी प्रकार केन्द्रीय मान भी सम्पूर्ण समूह या प्राप्तांकों का प्रतिनिधित्व करता है।

गणित में किसी अनुपात को व्यक्त करने का एक तरीका प्रतिशत है। प्रतिशत का अर्थ है प्रति सौ या प्रति सैकड़ा। दूसरे शब्दों में प्रतिशत उन अनुपातों या समानुपातों को कहते हैं जिनका आधार 100 होता है। 100 को आधार मानकर किसी तथ्य को प्रकट करने के लिए प्राप्त संख्या प्रतिशत कहलाती है।

अंक सामग्री को आवृत्ति वितरण के रूप में व्यवस्थित कर लेने के पश्चात् विभिन्न समूहों अथवा योग्यताओं की तुलना के लिए एक ऐसे मूल्य की आवश्यकता पड़ती है जो कि समस्त समूह का प्रतिनिधित्व कर सके।

अंकगणितीय भाषा में जिसे औसत मान कहते हैं उसे ही सांख्यिकीय भाषा में मध्यमान, माध्य और समान्तर माध्य कहते हैं। यह गणितीय माध्यों में सबसे अधिक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण व सबसे अधिक विश्वसनीय माप है।

दीर्घ विधि से मध्यमान ज्ञात करने में काफी गुणा जोड़ करना पड़ता है। इसलिए समय बहुत लगता है। समय एवं समय के सदुपयोग की दृष्टि से मध्यमान निकालने के लिए एक सरल विधि निकाली गयी है। इस विधि में मध्यबिन्दु से एक कल्पित माध्य लेकर मध्यमान ज्ञात किया जाता है।

समांतर माध्य किसी श्रेणी का एक ऐसा मूल्य हो सकता है, जो उस श्रेणी में न होकर कोई बाहर का मूल्य हो।

जब दो चरों की पारस्परिक अंतःक्रिया में, एक चर की मात्रा जैसे–जैसे बढ़ती है परिणामस्वरूप दूसरे चर की मात्रा में भी तदनुसार वृद्धि होती है तब सह–संबंध समान दिशा में होता है। इसके विपरीत, जब दो चरों की पारस्परिक अंतःक्रिया में एक चर की मात्रा बढ़ती है और दूसरे चर की मात्रा घटती है अर्थात् दूसरे चर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, तब सह–संबंध विपरीत दिशा में होता है।

जब दो चरों (Variables) को मात्रा में एक चर की मात्रा घटने पर दूसरे चर की मात्रा बढ़ती है अथवा एक चर की मात्रा बढ़ने पर दूसरे चर की मात्रा घटती है तो ऐसी स्थिति में उनमें ऋणात्मक सह–संबंध पाया जाता है।

सह–संबंध से केवल यही ज्ञात होता है कि दोनों चरों Variables में पारस्परिक संबंध किस प्रकार का है–धनात्मक, ऋणात्मक या शून्य। इसके अतिरिक्त हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि सह–संबंध थोड़ा है, सामान्य है अथवा अधिक है परंतु इसके द्वारा दोनों चरों में सह–संबंध की मात्रा का परिशुद्ध (Precise) वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा स्पष्ट ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है।

चार्ल्स स्पीयरमैन ने व्यक्तिगत समंकमालाओं में सह–संबंध ज्ञात करने की एक सरल रीति का प्रतिपादन किया है। इस रीति को कोटि–अंतर या क्रमान्तर–रीति भी कहते हैं।

गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध विधि का प्रतिपादन कार्ल पियरसन के द्वारा सन् 90 में फ्रांसिस गाल्टन के द्वारा विकसित विचारों के आधार पर किया गया था। पियरसन के नाम पर इस विधि को पियरसनियन विधि तथा इस विधि से प्राप्त गुणांक को पियरसन सह–संबंध गुणांक कहा जाता है।

5.8 मुख्य शब्दावली

- **अनुपात** : दो सजातीय राशियों की तुलना को अनुपात कहा जाता है।
- **केंद्रीय प्रवृत्ति** : किसी सांख्यिकी श्रृंखला का मूल्य जो केंद्रीय मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है।

- **माध्यिका** : किसी समंक श्रेणी को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर उस श्रेणी के मध्य जो मूल्य आता है उसे माध्यिका कहते हैं।
- **परिक्षेपण** : परिक्षेपण पदों की विचलनशीलता की माप।
- **बहुलक** : किसी समूह का वह प्राप्तांक है जिसकी उस समूह के प्राप्तांकों में सबसे अधिक आवृत्ति होती है।
- **विचलनशीलता** : वह सीमा, जहां तक समंक एक माध्य मूल्य के दोनों ओर फैलने की प्रवृत्ति रखते हैं।
- **सह–संबंध** : जब दो या दो से अधिक चरों तथा घटनाओं में सहचर्यात्मक संबंध पाया जाता है तो ऐसे पारस्परिक संबंध को सह–संबंध कहते हैं।

5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अनुपात से आप क्या समझते है? इसकी मुख्य विशेषताएं बताइए।
2. केंद्रीय प्रवृत्ति को परिभाषित करते हुए इसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।
3. मध्यमान के गुण व दोषों को बताइए।
4. मध्यांक की विशेषताओं को बताइए।
5. परिक्षेपण को मापने के मुख्य उद्देश्य क्या है?
6. परास के गुण का दोषों को बताइए।
7. अंतर–चतुर्थक परास से क्या अभिप्राय है?
8. स्पीयरमैन की कोटि अंतर विधि को समझाइए।
9. सह–संबंध गुणांक की विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अनुपात के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
2. समानुपात किसे कहते हैं? प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष समानुपात में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. केंद्रीय प्रवृत्ति से क्या तात्पर्य है? इसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
4. निम्नलिखित समंकों का प्रत्यक्ष विधि द्वारा समांतर माध्य ज्ञात कीजिए।

प्राप्तांक	10	20	30	40	50	60	70
विद्यार्थियों की संख्या	6	8	10	15	20	12	8

5. समांतर माध्य के गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।

6. निम्नलिखित का परास ज्ञात कीजिए।

(क)	17,	23,	39,	51,	66,	94,	116,	126
(ख)	28,	34,	52,	64,	79,	108,	130	

7. निम्नलिखित समंकों का समांतर माध्य, प्रत्यक्ष विधि एवं पद विचलन विधि से ज्ञात कीजिए।

मजदूरी रु. में	0—10	10—20	20—30	30—40	40—50	50—60
विद्यार्थियों की संख्या	15	25	25	30	22	14

8. निम्नलिखित आवृत्ति विवरण से छात्रों की माध्य ऊंचाई ज्ञात कीजिए।

ऊंचाई	64	65	66	67	68	69	70	71	72	73
छात्रों की संख्या	1	6	10	22	21	17	14	5	3	1

9. निम्न समंक से चतुर्थक विचरण एवं उसके गुणांक की गणना कीजिए।

महीने	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
मासिक आय	49	50	50	51	51	52	52	53	53	54	54	55

10. निम्न समंक से चतुर्थक विचरण एवं उसके गुणांक की गणना कीजिए।

आकार x	2	4	6	8	10	12	14	16	18	20
आवृत्ति y	2	9	11	14	20	24	20	16	5	2

11. निम्न समंक से माध्य विचलन व मानक विचलन ज्ञात कीजिए।

क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9
आकार	54	71	57	52	49	45	72	57	47

12. X और Y में सहसंबंध गुणांक का निर्धारण कीजिए।

X	5	7	9	11	13	15
Y	1.7	2.4	2.8	3.4	3.7	4.4

13. दस विद्यार्थियों द्वारा गणित और सांख्यिकी में निम्नलिखित अंक प्राप्त किए गए। कोटि सह—संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

विद्यार्थी (रोल न.)	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
गणित में अंक	8	36	98	25	75	82	90	62	65	29
सांख्यिकी में अंक	84	51	91	60	68	62	86	58	53	47

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutledgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.